Impact Factor (IIFS) : 8

ISSN 2231-1351

पद चिन्ह

बहुविषयक सहकर्मी - समीक्षित एवं संदर्भित पत्रिका

यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

UGC Approved Journal No. 49359 (Old)

PADCHINHA

A MULTIDISCIPLINARY PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

April 2026 Volume: 15 Issue: 4

www.muditeducation.com/padchinha

Impact Factor (IIFS): 8 ISSN 2231-1351
UGC Approved Journal No. 49359 (Old) यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

PADCHINHA

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

April 2026 Volume: 15 Issue: 4

EDITOR

DR. AJAY PARMAR

B-30/239 Nagavan, Lanka, Varanasi - 221005

CO-EDITOR

DR. PANKAJ KUMAR SINGH

Mudit Shiksha Sanstha, Trimurti Nagar

Wardha (Maharashtra) PIN Code - 442001

Contact: 9823696685 **E-mail: padchinha@muditeducation.com**

Note:

• The views expressed in the journal "Padchinha" are not necessarily the views of peer reviewing board or publisher. Neither any member of the peer reviewing board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings.

• All disputes are subject to Varanasi jurisdiction only.

www.muditeducation.com/padchinha

संपादक-मंडल/ रेफेरीड बोर्ड

प्रो. प्रेमनारायण सिंह
निदेशक
अंतर विश्वविद्यालय अध्यापक शिक्षा केंद्र
बी. एच. यू. वाराणसी (उ. प्र.) पिन - 221005

प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी
पूर्व अधिष्ठाता, संस्कृति विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. मनोज कुमार राय
एसोसिएट प्रोफेसर, गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन - 442001

डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा
सहायक प्रोफेसर, मानविकी और भाषा संकाय
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी
(बिहार) पिन - 845401

डॉ. अनिल कुमार
वरीय सहायक प्राचार्य, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग
भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, पश्चिमी परिसर
पी.जी. सेंटर सहरसा, बिहार. पिन : 852201

डॉ. रणजीत कुमार
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
मौलाना मजहरूल हक अरबी व फारसी विश्वविद्यालय
पटना (बिहार) पिन - 800001

डॉ. प्रदीप त्रिपाठी
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक
(सिक्किम) पिन - 737102

प्रो. अमरेन्द्र त्रिपाठी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
(उत्तर प्रदेश) पिन - 211002

डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.) – 221005

डॉ. निमिषा त्रिपाठी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर-सह-अध्यक्ष,
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, डोरण्डा महाविद्यालय, राँची

डॉ. राम मनोहर मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
अकबरपुर महाविद्यालय, अकबरपुर
कानपुर देहात (उ.प्र.) पिन : 209101

रवीन्द्र पाण्डेय
हिंदी विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर (उ. प्र.) पिन - 273009

सलाहकार समिति

डॉ. राजीव रंजन गिरि
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कला संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली – 110007

डॉ. रवेन्द्र राजपूत
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक-शिक्षा विभाग
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़
उत्तर प्रदेश. पिन - 202001

डॉ. निशीथ राय
सहायक प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन – 442001

पदचिन्ह के लिए प्रकाशक अजय परमार, बी.- 30/239, नगवां, लंका वाराणसी द्वारा प्रकाशित और सूर्या आफसेट, 30, विवेकानंद कालोनी, मलदहिया, वाराणसी में मुद्रित। संपादक : अजय परमार

UGC Approved Journal No. 49359 (Old) Impact Factor: 8
यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

पदचिन्ह PADCHINHA

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

अप्रैल (April) 2026 वर्ष (Vol.): 15 अंक (Issue): 4

अनुक्रम

संपादकीय — पृष्ठ संख्या

- Genotoxic and Macromolecular Changes Induced by Sub-lethal Exposure to Diafenthiuron and Fenvalerate in the Liver and Kidney Tissues of Clarias batrachus _**Dr. Neetu Singh** — **01-07**
- मिथिला की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पहचान _**पिंकी कुमारी _डॉ. रुद्र नारायण** — **08-14**
- बिहार में समाजवादी चेतना के विकास में राम मनोहर लोहिया का योगदान _**रवि नंदन कुमार _डॉ. रुद्र नारायण** — **15-22**
- छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि _**डॉ. मुरारी कुमार सुमन** — **23-28**
- संस्कृति क्या है _**डॉ. संजीव कुमार झा** — **29-33**
- समकालीन हिन्दी नाटकों में आधुनिकता का स्वरूप _**डॉ. कोमलकुमार परदेशी** — **34-41**
- बाल अपराध : कारण एवं निवारण _**डॉ. रवेन्द्र राजपूत** — **42-49**
- इल्तुतमिश : दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक का एक विश्लेष्णात्मक अध्ययन _**विकास कुमार** — **50-53**
- यूजर्स जनित कंटेंट और नागरिक पत्रकारिता : प्रभाव एवं चुनौतियाँ _**डॉ. विजयेन्दु चतुर्वेदी** — **54-63**
- अकबर की सुलह –ए –कुल की नीतियां और भारतीय समाज पर उसका प्रभाव एक अवलोकन _**Sanjay Kumar Gupta** — **64-67**
- भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उत्तर प्रदेश के दलितों के योगदान का विश्लेषणात्मक अध्ययन _**अमृता आर्य _डॉ. लाला बाबू** — **68-73**
- Compassion Beyond Species: Ahimsa, Food Ethics, and Vegan Consciousness in Tirukkural and Gandhian Philosophy _**Dr. Yatin Batra** — **74-84**
- शिक्षा नीति 2020 : महाविद्यालय के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण का विश्लेषणात्मक अध्ययन _**खुशबू तिवारी** — **85-89**
- राजस्थानी लोकगीतों में स्त्री-विमर्श : श्रम, पीड़ा और प्रतिरोध का स्वर _**रनिका शेखावत _डॉ. सुरेश सिंह राठौड़** — **90-95**
- मालती जोशी की कहानियों का विमर्शपरक अध्ययन _**योगिता कोठावदे _डॉ. दादासाहेब नारायण डांगे** — **96-100**
- संथाली साहित्य : एक विश्लेषण _**Dr. Manoj Kumar Tudu** — **101-105**
- साइबर सुरक्षा व डिजिटल गवर्नेंस : सीमित फोकस (UPA) बनाम डिजिटल इंडिया का अंतर्राष्ट्रीय प्रचार (NDA) _**डॉ. नीतू कुमारी** — **106-112**
- Harmony with Nature as an Aspect of Sustainable Development in Hindu Tradition and Culture _**Dr. Sibkanta Das** — **113-118**

पदचिन्ह PADCHINHA

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

अप्रैल (April) 2026 वर्ष (Vol.): 15 अंक (Issue): 4

- Spatial Plan to Connect Patna Division with the Purvanchal and Nepal Tourism Circuits **_JAY SHANKAR** — **119-128**
- India's Soft Power Approach to Afghanistan: Dimensions and Challenges **_Dr. Joginder Saklani _Ritesh Kumar** — **129-138**
- शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र की जनजातीय छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन **_महिमा पटेल _डॉ. नाजिया कौसर** — **139-144**
- गुप्त साम्राज्य में आयुर्वेद और चिकित्सा ग्रंथों के विकास का अध्ययन **_जितेंद्र कुमार मीना _प्रो. (डॉ.) संजीव कुमार** — **145-151**
- 'जिंदगी एक जंजीर' उपन्यास में अभिव्यक्त क्वीर की त्रासदी **_Reshma K.R. _Pro. (Dr.) P. Geetha** — **152-154**
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति प्रवासी अभिभावकों की जागरूकता का अध्ययन **_प्रद्युम कुमार** — **155-164**
- Role of Kachargad Yatra in Strengthening Gond Community **_Ms. Karuna Ade** — **165-172**
- International and National Practices on Solid Waste Management **_ Dr. Saumya Shanker** — **173-183**
- बादलों के घेरे में : मोहभंग और मानवीय नियति का चित्रण **_डॉ सौम्या सी एस** — **184-187**
- पश्चिमबङ्गाल में उच्चशिक्षा के मुद्दे एवं चुनौतियां **_अनिमेष देवशर्मा _प्रो. चन्द्रकान्त** — **188-192**
- निर्मल वर्मा की कहानियों में नगरीय जीवन **_मोहित श्रीवास्तव** — **193-196**
- Custom's Ceiling: Ownership and Inheritance Through the Lens of Dima Hasao District of Assam **_Loilungthianglimi Nampui _Kingaule Newme** — **197-204**
- अवधी लोकगीतों में रामकथा **_अदिती शुक्ला** — **205-208**
- आत्मसंस्मरणातून उलगाडणारे जयपाल सिंह मुंडा : एक अभ्यास **_विश्वेश्वर भगवान महाजन** — **209-216**
- डिजिटल युग में तर्क और नैतिकता की चुनौतियाँ : सैद्धांतिक विश्लेषण **_डॉ. नीलिमा नागर** — **217-224**
- भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना की अवधारणा **_डॉ. शारदा वंदना** — **225-229**
- सामूहिक आत्माभिव्यक्ति के बीच पाठ की रचना / पुनर्रचना और प्रदर्शन तक उसकी यात्रा : समकालीन हिंदी डिवाइस्ड थिएटर के विशेष संदर्भ में **_आशुतोष प्रताप सिंह** — **230-236**
- Educational Philosophy of Gorakh-Naath and Its Relevance to Contemporary Yoga Education **_Preetam _Dr. Deepak Singh** — **237-246**
- NOTES FOR AUTHORS

संपादकीय

प्रिय पाठकों, शोधार्थियों एवं विद्वत्जनों,

अप्रैल का महीना प्रकृति में नवजीवन का संदेश लेकर आता है। वसंत की विदाई और ग्रीष्म के आगमन के इस संधिकाल में, जब धरती नई ऊर्जा से आपूरित होती है, तब शैक्षणिक जगत में भी नए विचारों और नई दिशाओं की अपेक्षा स्वाभाविक है। पदचिन्ह का यह अप्रैल 2026 अंक इसी नवचेतना को समर्पित है।

इस संपादकीय में मैं एक ऐसे विषय पर विचार करना चाहता हूँ जो आज के भारतीय शैक्षणिक परिदृश्य में अत्यंत प्रासंगिक है—शोध और समाज के बीच की दूरी। यह दूरी क्यों बढ़ रही है? इसके क्या परिणाम हैं? और हम एक शोधकर्ता के रूप में इसे पाटने के लिए क्या कर सकते हैं?

भारतीय ज्ञान परंपरा में शोध और समाज का संबंध अटूट रहा है। आर्यभट्ट ने खगोल विज्ञान पर जो कार्य किया, वह केवल ज्ञान के लिए नहीं, बल्कि मानव जीवन को समृद्ध करने के लिए था। चरक और सुश्रुत की चिकित्सा पद्धतियाँ समाज की पीड़ा से जन्मी थीं। लेकिन आज का शोध तेजी से प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों और विश्वविद्यालयों की दीवारों में सिमटता जा रहा है।

आज शोध पत्र प्रकाशित होते हैं—हजारों की संख्या में—परंतु उनमें से कितने किसी गाँव के किसान की समस्या हल करते हैं? कितने किसी आदिवासी बच्चे की शिक्षा में योगदान देते हैं? कितने किसी असंगठित मजदूर की जीवन दशा सुधारने में सहायक होते हैं? यह प्रश्न असुविधाजनक है, परंतु अनिवार्य है। पदचिन्ह का मूल दर्शन यही है कि शोध केवल अकादमिक उपलब्धि नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने भारतीय उच्च शिक्षा में एक क्रांतिकारी परिवर्तन की नींव रखी है। इस नीति में शोध को केवल पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं, बल्कि शिक्षा की आत्मा के रूप में स्थापित किया गया है। मल्टीडिसिप्लिनरी अप्रोच, क्रेडिट सिस्टम और इंटर्नशिप आधारित अध्ययन—ये सभी शोध को व्यावहारिक धरातल पर लाने के प्रयास हैं। परंतु नीति और क्रियान्वयन के बीच की खाई अभी भी विद्यमान है। अनेक संस्थानों में शोध के लिए आवश्यक संसाधन, प्रशिक्षित मार्गदर्शक और उपयुक्त वातावरण का अभाव है। ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों के महाविद्यालयों में कार्यरत प्राध्यापक, जो अपार संभावनाओं से भरे हैं, प्रायः संसाधनों की कमी के कारण अपनी शोध क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाते। यही कारण है कि पदचिन्ह ने संपादक मंडल के विस्तार की पहल की है। हम देश के विभिन्न कोनों से प्रतिभाशाली, अनुभवी और समर्पित प्राध्यापकों को एक मंच पर लाना चाहते हैं, ताकि शोध की गुणवत्ता और पहुँच—दोनों में वृद्धि हो सके।

अप्रैल के इस अंक में हमने विशेष रूप से बहुविषयक शोध को प्राथमिकता दी है। समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र का संगम, विज्ञान और दर्शन का संवाद, शिक्षा और मनोविज्ञान का समन्वय—ये सभी आज की जटिल सामाजिक समस्याओं के समाधान की ओर ले जाते हैं।

उदाहरण के रूप में, NTPC जैसे सार्वजनिक उद्यमों में अनुसूचित जाति वर्ग के कर्मचारियों की रोजगार संभावनाओं का अध्ययन केवल समाजशास्त्र का विषय नहीं है—यह अर्थशास्त्र, लोक प्रशासन, विधि और मनोविज्ञान का भी विषय है। ऐसे शोध तभी पूर्ण होते हैं जब विभिन्न विषयों के विद्वान मिलकर उन पर काम करते हैं। बहुविषयकता केवल एक शैक्षणिक अवधारणा नहीं—यह एक सामाजिक आवश्यकता है।

आज का युवा शोधार्थी असाधारण रूप से प्रतिभाशाली है। उसके पास तकनीक का ज्ञान है, वैश्विक दृष्टि है और परिवर्तन की तीव्र इच्छा है। परंतु प्रायः वह दिशाभ्रम का शिकार होता है। शोध का विषय क्या चुनें? पद्धति कौन सी अपनाएँ? संदर्भ कहाँ से जुटाएँ? किस पत्रिका में प्रकाशित करें?

हम युवा शोधार्थियों को यह संदेश देना चाहते हैं कि शोध का सबसे अच्छा विषय वह है जो आपके आसपास की किसी वास्तविक समस्या से जन्मे। आपका गाँव, आपका शहर, आपका समाज—ये सभी अनगिनत शोध प्रश्नों से भरे हुए हैं। केवल देखने की दृष्टि चाहिए।

पदचिन्ह और शोध खनिज ऐसे युवा शोधार्थियों का स्वागत करते हैं जो साहस के साथ नए प्रश्न पूछते हैं, नई परिकल्पनाएँ बनाते हैं और अपने निष्कर्षों को निर्भीकता से प्रस्तुत करते हैं।

इस अंक के साथ हम यह भी घोषणा करते हैं कि पदचिन्ह और शोध खनिज के संपादक मंडल में देशभर के Ph.D. धारक नियमित प्राध्यापकों को शामिल किया जा रहा है। यह केवल एक प्रशासनिक निर्णय नहीं, बल्कि पत्रिका की गुणवत्ता और विश्वसनीयता को नई ऊँचाइयों पर ले जाने का संकल्प है।

संपादक मंडल के सदस्यों को न केवल पत्रिका की प्रतिष्ठा से जुड़ने का अवसर मिलेगा, बल्कि प्रकाशन छूट, अतिथि संपादक का दर्जा, पारिश्रमिक और प्रमाण पत्र जैसे ठोस लाभ भी प्रदान किए जाएँगे। यह पहल शोध समुदाय को और अधिक सक्रिय और संगठित बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

शोध केवल डिग्री प्राप्त करने का माध्यम नहीं है। यह एक नैतिक जिम्मेदारी है—समाज के प्रति, भावी पीढ़ियों के प्रति, और उस ज्ञान परंपरा के प्रति जिसे हमने विरासत में पाया है। जब हम एक शोध पत्र लिखते हैं, तो हम केवल शब्द नहीं लिखते—हम ज्ञान के उस अनंत प्रवाह में अपना योगदान देते हैं जो सदियों से चला आ रहा है और सदियों तक चलता रहेगा।

पदचिन्ह इस यात्रा में आपका विश्वसनीय साथी है। आइए मिलकर शोध को समाज से जोड़ें, ज्ञान को क्रिया में परिवर्तित करें और भारत के शैक्षणिक भविष्य को एक नई दिशा दें।

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

Received: 01.03.2026 | Accepted: 01.04.2026 | Published: 30.04.2026

Genotoxic and Macromolecular Changes Induced by Sub-lethal Exposure to Diafenthiuron and Fenvalerate in the Liver and Kidney Tissues of Clarias batrachus

DR. NEETU SINGH*

neetusinghmail90@gmail.com

Abstract

Contamination of fresh water ecosystems by pesticides poses increasing risk to aquatic life and can be detrimental to the ecosystem of the water. This study aimed to assess the genotoxic and macromolecular alterations caused by sub-lethal exposure of diafenthiuron and fenvalerate in Clarias batrachus from Ousteri lake. Biochemical changes in the liver and kidney of fishes of pesticide polluted freshwater was studied using an experimental method at the field level. Fish samples were collected from the selected parts of the lake which were influenced by the agricultural runoffs and biochemical estimation of the DNA and RNA contents and protein content was done. Results showed statistically significant decreases in nucleic acids and protein in diafenthiuron and fenvalerate exposed fishes as compared to the control, which represents that these chemicals induced a high level of physiological stress and genotoxic damage. The most similarly toxic pesticide to liver and kidney tissues as assayed in the pesticides tested was fenvalerate. Some signs of degeneration, vacuolization and disorganization of the tissues in exposed fishes were also observed in the histopathological examination. The results show that continual discharge of pesticide residues to fresh water can have negative impacts on aquatic life and ecological equilibrium.

Keywords

Clarias batrachus, Diafenthiuron, Fenvalerate, Genotoxicity, Macromolecular alterations and Ousteri Lake.

1.Introduction

Agricultural pest and crop protection Chemical resistance Current agricultural pest management and crop protection is an issue because of the long history of intensive and continued use of chemical insecticides in agriculture, and due to the rate of insecticide resistance of key agricultural pests. The fall armyworm, Spodoptera frugiperda, is one of the most destructive invasive insects because it feeds on a wide variety of plant species, has a high reproductive potential and is highly adaptable to a variety of environmental conditions.
Studies have additionally indicated that when in contact with the microorganisms, the olfactory

* Department of Zoology, Jai Prakash University, Chapra.

response and adaptation of the insect may also be modified and as such, determine the destiny of the insect in the face of the chemicals (Ai et al., 2022). Glutathione transferase has also been theorized to play a role in insects and mammal chemical degradation and perception as well as in detoxification (Heydel et al., 2019; Schwartz et al., 2020). The study of detoxification-related genes and their evolutionary adaptations has improved considerably in recent years thanks to the recent advances in molecular biology and genomics.

Moreover, Drosophila melanogaster Reference Genome 6 is not the only available genomic resources used to make inferences about resistance-related molecular pathways since comparisons are facilitated by it (Hoskins et al., 2015). Ecological and physiological impacts of exposure to pesticides may extend beyond insects since they may cause effects on aquatic life and non-target species. The pyrethroids have been reported to produce significant biochemical, histopathological and genotoxic effects in liver and kidney in case of freshwater fish (Clarias batrachus) (Kumar et al., 2009; Kumar, 2025). These results suggest that overuse of pesticides can have a wider reaching impact on the environment and ecology. Therefore, understanding molecular resistant mechanisms and biochemistry of insecticides can play a key role in creating environmental-friendly approaches to manage pests in agriculture sustainably with low ecological footprint and high production. Resistance to chemical insecticides has been rapidly developing, particularly in the most important insect pests which are being increasingly relied on in the management of agriculture, such as the major insect pest: Spodoptera frugiperda.

2.Methodology

The experimental research design was used in the present investigation with field level experimental setup to evaluate genotoxic and macromolecular changes induced by sub-lethal exposure of diafenthiuron and fenvalerate in Clarias batrachus.

2.1. Study Area

Ousteri lake, one of the ecologically significant freshwater wetland in the border land of Puducherry and Tamilnadu have been selected as the study area. The lake is receiving agricultural effluents from the agricultural fields surrounding the lake where widely used insecticides (diafenthiuron, fenvalerate) are being used for protection of agriculture crops. As a result of the continuing agriculture activity near the lake area, the lake is a target area for pesticide contamination, and provides an ideal environment for studying toxicological effects on aquatic organisms. A selection of sampling points were chosen throughout the lake, depending on how they were close to areas of agricultural discharge and water flows. During the study, following water parameters were measured, relevant to fish physiology: Summaries of water temperature, pH, dissolved oxygen and turbidity.

2.2. Sampling sites

Fishing nets and traps used locally were also used to take samples of Clarias batrachus from the selected areas of Ousteri lake to get healthy specimen of the fish of almost similar size and weights. The fish samples were collected in the early morning to minimise the environmental stress and to ensure fish quality of the samples. Fishes collected were promptly put into plastic containers filled with lake water with aeration and were carried gently in the lab for additional investigation.

Observations of behavior in the water, body color, external lesions and physical abnormalities were recorded prior to laboratory processing. To ensure uniformity and reliability of the experimental observations, fish were excluded if they had signs of severe disease, injury or abnormal growth.

Water samples were taken concurrently from the fish sampling sites selected for Ousteri Lake to assess environmental quality and conditions of exposure to pesticides. All polyethylene bottles were pretreated for sampling, and rinsed with the lake water before sampling. Water physicochemistry parameters such as pH, temperature, dissolved oxygen, conductivity and turbidity were measured by the standard water analysis methods. The water samples were collected and then preserved in the laboratory under suitable conditions for further analysis of the chemical condition of pesticides and ecological quality. Water quality parameters needed to be monitored to determine the environmental stress and biochemical responses of aquatic organisms.

2.3. Sample preparation

The fishes collected were washed with distilled water and carefully dissected in lab conditions for isolation of liver and kidney tissues for biochemical and genotoxic analysis. The tissues were washed with cold physiological saline solution to remove any blood stains and unwanted substances. The homogenization of tissues was carried out in appropriate buffer solutions with the aim to maintain the biochemical stability and prevent the enzymatic degradation under cold conditions. Centrifuged homogenized samples were used for biochemical estimation of the nucleic acids and protein contents of the supernatants.

2.4.Biochemical and genotoxic screening test

Some biochemical analysis were conducted to evaluate the alteration of DNA, RNA and protein levels of the liver and kidney tissues of pesticide treated fishes. Macromolecule quantitative estimation was done by the use of the standard biochemical techniques. Because of the longterm pesticide exposure, changes in nucleic acids levels were used as indicators of genotoxic stress; protein changes as indicators of metabolic and physiological disturbances within tissues.

2.5. Statistical Analysis

The biochemical and histopathological results obtained from the study were analyzed statistically to find out the significance of the changes caused in the fish tissues due to the pesticides. All experimental parameters are calculated as means, SDs and percentage changes. Data on sampling groups and tissue responses were analysed by appropriate statistics and compared. Data analyzed were tabulated and plotted on graph to explain the results easily. The statistical assessment helped to understand the ecological impacts of pesticides contamination and impact to the health status of Clarias batrachus found in Ousteri Lake.

3.Results and discussion

Table 1. Modifications in DNA, RNA, and Protein Content in Liver Tissue

Experimental Group	DNA (mg/g tissue)	RNA (mg/g tissue)	Protein (mg/g tissue)
Control	18.6 ± 0.5	24.3 ± 0.7	62.4 ± 1.2
Diafenthiuron Exposed	13.2 ± 0.4	18.1 ± 0.5	48.6 ± 1.0
Fenvalerate Exposed	11.8 ± 0.3	16.4 ± 0.6	44.2 ± 0.9

The biochemical composition of the control fishes was normal and the exposed fishes to pesticides had significant decrease in their macromoleculic content (Table.1). Fenvalerate gave a higher level of decrease in nucleic acid and protein concentration than diafenthiuron, suggesting a relatively high toxicity to liver metabolism and liver integrity. Decreased levels of DNA and RNA may be due to oxidative stress, damage and inhibition of nucleic acid synthesis due to the pesticide. Prolonged reduction in protein level suggests disorders on metabolic activity and enzyme activity in the liver. Liver in fishes is the primary site for elimination of toxins, and is highly sensitive to toxic chemicals present in polluted aquatic habitats. The prolonged exposure to water contaminated by pesticides in Ousteri Lake might have resulted in prolonged biochemical stress and/or physiological changes. The histological result has also confirmed the biochemical results during the study, in which vacuolization and necrotic changes were observed in the liver tissues of the exposed fishes. The outcomes presented here show that chronic exposure to agricultural pesticides may cause genotoxic changes in important organs, with impact on normal cellular metabolism in aquatic organisms.

Table 2. Alterations in DNA, RNA, and Protein Content in Kidney Tissue

Experimental Group	**DNA (mg/g tissue)**	**RNA (mg/g tissue)**	**Protein (mg/g tissue)**
Control	16.9 ± 0.4	21.5 ± 0.6	58.7 ± 1.1
Diafenthiuron Exposed	12.1 ± 0.3	16.3 ± 0.5	45.4 ± 0.8
Fenvalerate Exposed	10.5 ± 0.2	14.8 ± 0.4	41.1 ± 0.7

The data presented in Table 2 shows the biochemical changes that took place in the kidney tissues of Clarias batrachus from the affected parts of Ousteri lake where pesticide is applied. A significant decrease in the content of DNA, RNA and protein of fishes exposed to diafenthiuron and fenvalerate than the control group was observed. All biochemical parameters were reduced the most after exposure to fenvalerate, indicating that fenvalerate has the greatest nephrotoxic effects and damage to the kidney tissues. Histopathological examination also showed that there was renal tubular degeneration, disorganization of cells and necrosis of tissues in the exposed fishes. Runoff of pesticide residues from agricultural fields to fresh water can, therefore, result in chronic toxicity to aquatic fauna. From the results of the present study it may be concluded that pesticides indiscriminately being used in agricultural fields surrounding Ousteri Lake pose ecological threat. The contamination of freshwater bodies, when happening on a long-term basis, can cause physiological and genetic damage to fish, which can jeopardize their survival, biodiversity and the stability of aquatic ecosystems.

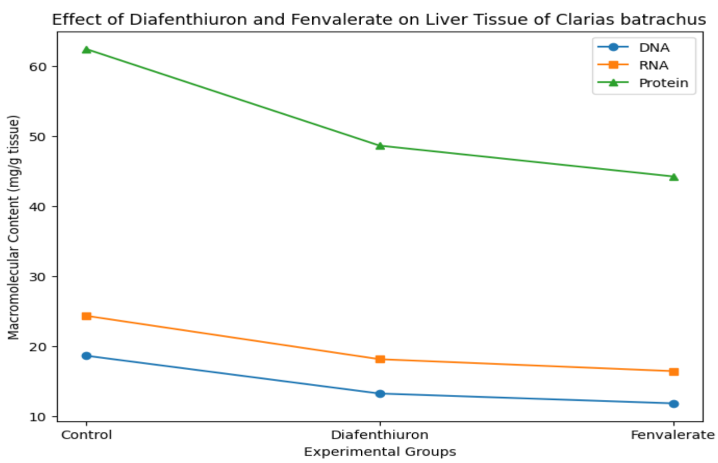

Figure 1. Effect of diafenthiuron and fenvalerate exposure on DNA, RNA, and protein contents in the liver tissue of Clarias batrachus.

Fig.1, shows DNA, RNA and protein content in liver tissues of Clarias batrachus decreased after treatment with diafenthiuron and fenvalerate. The control group had the highest biochemical values which were representative of normal physiology and metabolic balance of the cells. The fishes exposed to the pesticide contaminated condition indicated progressive decrease in all macromolecular parameters indicating their toxicity to the hepatic tissues. The decrease in DNA and RNA content is attributed to disruption of the ability of the cell to produce DNA and RNA molecules as well as to the accumulation of toxic metabolites resulting from oxidative stress. Likewise, protein decrease suggests the disruption of metabolic pathways and inability to synthesize enzymes in liver tissues. The run-off from agricultural chemicals that enter Ousteri Lake could lead to biochemical imbalance and tissue degeneration because the liver is the principal detoxification organ in fishes. The graph thus shows the visual evidence that long-term exposure to pesticides in freshwater systems can have a high impact on fish health, cell integrity and overall ecological conditions of the aquatic environment.

Conclusion

Overall, the study at Ousteri Lake indicated that ongoing application of agricultural pesticide like diafenthiuron and fenvalerate causes genotoxic and macromolecular changes in Clarias batrachus. Fenvalerate had a relatively higher toxicity indicating greater damage to the tissues and function of organs among the tested insecticides. Fishes are good bioindicators of environmental pollution, and the biochemical and genotoxic changes observed give good clues to the ecological impact of pesticide discharges in freshwater environments. Hence, frequent checks and control of pesticide contamination, adoption of environmental-friendly farming methods and proper management of pesticide application are crucial to safeguard aquatic plants and balance ecosystem.

References

Abbas, A., Ullah, F., Hasnain, A., Riyaz, M., Shoukat, K., Murtaza, G., Ghramh, H. A., Khan, K. A., Hafeez, F., & Zhao, C. R. (2026). Insights into fall armyworm (Spodoptera frugiperda) insecticide resistance development and underlying mechanisms: implications for sustainable pest management. *Journal of Plant Diseases and Protection*, *133*(2). https://doi.org/10.1007/s41348-025-01211-0

Ai, S., Zhang, Y., Chen, Y., Zhang, T., Zhong, G., & Yi, X. (2022). Insect-Microorganism interaction has implicates on insect olfactory systems. *Insects*, *13*(12), 1094. https://doi.org/10.3390/insects13121094

Chen, H., Wu, Y., Gao, J., Xu, X., Wang, X., & Yang, J. (2025). Resistance and metabolic pathway of Spodoptera frugiperda population to beta cypermethrin in Sichuan. *DOAJ (DOAJ: Directory of Open Access Journals)*. https://doi.org/10.7671/j.issn.1001-411x.202501008

Cruse, C., Moural, T. W., & Zhu, F. (2023). Dynamic roles of insect Carboxyl/Cholinesterases in chemical adaptation. *Insects*, *14*(2), 194. https://doi.org/10.3390/insects14020194

Du, Q., Ding, X., Guo, W., & Li, G. (2026). Genome-wide analysis of carboxyl/cholinesterases (CCE) genes in Phenacoccus solenopsis. *Comparative Biochemistry and Physiology Part D Genomics and Proteomics*, *59*, 101845. https://doi.org/10.1016/j.cbd.2026.101845

Gonis, E., Fraichard, S., Chertemps, T., Hecker, A., Schwartz, M., Canon, F., & Neiers, F. (2022). Expression patterns of drosophila melanogaster glutathione transferases. *Insects*, *13*(7), 612. https://doi.org/10.3390/insects13070612

Heydel, J., Menetrier, F., Belloir, C., Canon, F., Faure, P., Lirussi, F., Chavanne, E., Saliou, J., Artur, Y., Canivenc-Lavier, M., Briand, L., & Neiers, F. (2019). Characterization of rat glutathione transferases in olfactory epithelium and mucus. *PLoS ONE*, *14*(7), e0220259. https://doi.org/10.1371/journal.pone.0220259

Hoskins, R. A., Carlson, J. W., Wan, K. H., Park, S., Mendez, I., Galle, S. E., Booth, B. W., Pfeiffer, B. D., George, R. A., Svirskas, R., Krzywinski, M., Schein, J., Accardo, M. C., Damia, E., Messina, G., Méndez-Lago, M., De Pablos, B., Demakova, O. V., Andreyeva, E. N., . . . Celniker, S. E. (2015). The Release 6 reference sequence of the Drosophila melanogaster genome. *Genome Research*, *25*(3), 445–458. https://doi.org/10.1101/gr.185579.114

K, S. K. B., Moural, T., & Zhu, F. (2022). Functional and structural diversity of insect glutathione S-transferases in xenobiotic adaptation. *International Journal of Biological Sciences*, *18*(15), 5713–5723. https://doi.org/10.7150/ijbs.77141

Karuppaiah, V., Srivastava, C., & Subramanian, S. (2015). Effect of Host Plants on Insecticide Susceptibility and Detoxification Enzymes Activity in Spodoptera litura Fabricius (Noctuidae: Lepidoptera). *Proceedings of the National Academy of Sciences India Section B Biological Sciences*, *86*(3), 715–721. https://doi.org/10.1007/s40011-015-0515-z

Kumar, A., Sharma, B., & Pandey, R. S. (2009). Cypermethrin and λ -cyhalothrin inducedin vivoalterations in nucleic acids and protein contents in a freshwater catfish,Clarias batrachus(Linnaeus; Family-Clariidae). *Journal of Environmental Science and Health Part B*, *44*(6), 564–570. https://doi.org/10.1080/03601230903000537

Kumar, P. (2025). Induction of Various Diseases in Clarias batrachus (Linnaeus, 1758) Following Exposure to Cypermethrin and Fenvalerate, with Reference to Histopathological and Physiological Alterations. *International Journal for Research in Applied Science and Engineering Technology*, *13*(9), 1707–1713. https://doi.org/10.22214/ijraset.2025.74295

Lestrade, J., Preston, R. A., Rogers, A. E. E., Whitney, A. R., Neill, A. E., & Phillips, R. B. (1992). Stronger source as reference for weaker source in VLBI. *FEBS Letters*, *16*(7), 3038–3048. https://doi.org/10.1002/1873-3468.14770

Saruta, F., Yamada, N., & Yamamoto, K. (2019). Functional Analysis of an Epsilon-Class Glutathione S-Transferase From Nilaparvata lugens (Hemiptera: Delphacidae). *Journal of Insect Science*, *19*(5). https://doi.org/10.1093/jisesa/iez096

Schwartz, M., Boichot, V., Fraichard, S., Muradova, M., Senet, P., Nicolai, A., Lirussi, F., Bas, M., Canon, F., Heydel, J., & Neiers, F. (2023). Role of insect and mammal glutathione transferases in chemoperception. *Biomolecules*, *13*(2), 322. https://doi.org/10.3390/biom13020322

Schwartz, M., Menetrier, F., Heydel, J., Chavanne, E., Faure, P., Labrousse, M., Lirussi, F., Canon, F., Mannervik, B., Briand, L., & Neiers, F. (2020). Interactions between odorants and glutathione transferases in the human olfactory cleft. *Chemical Senses*, *45*(8), 645–654. https://doi.org/10.1093/chemse/bjaa055

Schwartz, M., Petiot, N., Chaloyard, J., Senty-Segault, V., Lirussi, F., Senet, P., Nicolai, A., Heydel, J., Canon, F., Sonkaria, S., Khare, V., Didierjean, C., & Neiers, F. (2024). Structural and Thermodynamic Insights into Dimerization Interfaces of Drosophila Glutathione Transferases. *Biomolecules*, *14*(7), 758. https://doi.org/10.3390/biom14070758

Vogels, C. B. F., Fros, J. J., Pijlman, G. P., Van Loon, J. J. A., Gort, G., & Koenraadt, C. J. M. (2017). Virus interferes with host-seeking behaviour of mosquito. *Journal of Experimental Biology*, *220*(19), 3598–3603. https://doi.org/10.1242/jeb.164186

Wang, K., Zhang, Y., Wang, H., Xia, X., & Liu, T. (2009). Influence of three diets on susceptibility of selected insecticides and activities of detoxification esterases of Helicoverpa assulta (Lepidoptera: Noctuidae). *Pesticide Biochemistry and Physiology*, *96*(1), 51–55. https://doi.org/10.1016/j.pestbp.2009.09.003

Yao, P., Mobarak, S. H., Yang, M., & Hu, C. (2025). Differential detoxification enzyme profiles in C-corn strain and R-rice strain of Spodoptera frugiperda by comparative genomic analysis: insights into host adaptation. *BMC Genomics*, *26*(1), 14. https://doi.org/10.1186/s12864-024-11185-2

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

Received: 01.03.2026 | Accepted: 01.04.2026 | Published: 30.04.2026

मिथिला की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पहचान

पिंकी कुमारी* **pinkikumariak1@gmail.com**

डॉ. रुद्र नारायण† **narayanrudra09@gmail.com**

सारः-

यह शोध-पत्र मिथिला क्षेत्र की भौगोलिक विशेषताओं और उसकी सांस्कृतिक पहचान के मध्य अंतर्संबंध का विश्लेषण प्रस्तुत करता है, विशेष रूप से बिहार राज्य के संदर्भ में। मिथिला, जो मुख्यतः उत्तरी बिहार तथा नेपाल के तराई क्षेत्र में विस्तृत है, अपनी विशिष्ट भौगोलिक संरचना गंगा के उत्तर का विस्तृत जलोढ़ मैदान, कोसी, गंडक, बागमती जैसी नदियों का जाल, तथा आवर्ती बाढ़ के कारण एक विशिष्ट प्राकृतिक परिवेश का निर्माण करता है। यही भौगोलिक स्थितियाँ यहाँ के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को गहराई से प्रभावित करती हैं। अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि किस प्रकार भौगोलिक कारक मिथिला की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों जैसे मैथिली भाषा, लोक-साहित्य, मधुबनी चित्रकला, पारंपरिक विवाह-प्रथाएँ एवं लोक पर्व को आकार देते हैं। शोध में द्वितीयक स्रोतों, जैसे जनगणना रिपोर्ट, बिहार आर्थिक सर्वेक्षण, तथा विभिन्न ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययनों का उपयोग किया गया है।

विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि बिहार के मिथिला क्षेत्र में प्राकृतिक आपदाएँ, विशेषतः बाढ़, जहाँ एक ओर आर्थिक चुनौतियाँ उत्पन्न करती हैं, वहीं दूसरी ओर सामुदायिक एकजुटता, सांस्कृतिक निरंतरता एवं पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों को सुदृढ़ करती हैं। इसके अतिरिक्त, सांस्कृतिक विरासत विशेषकर मधुबनी कला आज स्थानीय अर्थव्यवस्था और महिला सशक्तिकरण का महत्वपूर्ण आधार बनती जा रही है।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि मिथिला की भौगोलिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान के मध्य गहरा एवं अविभाज्य संबंध है, जिसे समझे बिना बिहार के इस क्षेत्र के समग्र विकास और सांस्कृतिक संरक्षण की प्रभावी रणनीति निर्मित नहीं की जा सकती।

कुंजी शब्दः-

मिथिला,भूगोल, सांस्कृतिक पहचान, बिहार, मधुबनी कला, मैथिली भाषा

प्रस्तावनाः-

भारतीय उपमहाद्वीप का सांस्कृतिक स्वरूप अपनी बहुआयामी संरचना, ऐतिहासिक गहराई तथा क्षेत्रीय विविधताओं के कारण विश्व में विशिष्ट स्थान रखता है। भारत की सांस्कृतिक पहचान केवल एकरूपता पर आधारित नहीं है, बल्कि यह विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियों के सह-अस्तित्व, परस्पर संवाद और ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया का परिणाम है। इसी संदर्भ में मिथिला क्षेत्र का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि यह क्षेत्र न केवल अपनी प्राचीनता के लिए प्रसिद्ध है, बल्कि अपनी विशिष्ट भौगोलिक संरचना और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के कारण भी भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में एक अलग पहचान रखता है।

मिथिला का भौगोलिक विस्तार मुख्यतः वर्तमान बिहार के उत्तरी भाग में स्थित है, जबकि इसका कुछ हिस्सा नेपाल के तराई क्षेत्रों तक फैला हुआ है। बिहार के संदर्भ में मिथिला क्षेत्र में दरभंगा, मधुबनी, सीतामढ़ी, सुपौल, सहरसा, मधेपुरा, पूर्णिया

* **पी-एच. डी शोधार्थी, इतिहास विभाग, डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।**

† **शोध निर्देशक & सह-प्राध्यापक, इतिहास विभाग, डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।**

तथा कटिहार जैसे जिले प्रमुख रूप से शामिल किए जाते हैं। यह क्षेत्र गंगा नदी के उत्तर में स्थित है और इसकी सीमाएँ उत्तर में हिमालय की तराई, दक्षिण में गंगा नदी, पूर्व में कोसी क्षेत्र तथा पश्चिम में गंडक नदी तक विस्तृत हैं। इस प्रकार मिथिला की भौगोलिक संरचना एक विशिष्ट प्राकृतिक परिवेश का निर्माण करती है, जो यहाँ के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन को गहराई से प्रभावित करता है।

मिथिला की भौगोलिक विशेषताओं में सर्वप्रमुख है इसका जलोढ़ मैदान, जो नदियों द्वारा लाई गई उपजाऊ मिट्टी से निर्मित है। कोसी, गंडक, बागमती, कमला और अधवारा समूह की नदियाँ इस क्षेत्र को जल और उर्वरता प्रदान करती हैं। यह प्राकृतिक व्यवस्था एक ओर कृषि उत्पादन के लिए अत्यंत अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है, वहीं दूसरी ओर बाढ़ जैसी गंभीर समस्याओं को भी जन्म देती है। विशेष रूप से कोसी नदी, जिसे "बिहार का शोक" कहा जाता है, अपने मार्ग परिवर्तन और तीव्र प्रवाह के कारण इस क्षेत्र में व्यापक विनाश का कारण बनती रही है।

बिहार के आर्थिक परिप्रेक्ष्य में मिथिला क्षेत्र का महत्व अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह क्षेत्र मुख्यतः कृषि पर आधारित है। यहाँ की अधिकांश जनसंख्या कृषि और उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर है। उपजाऊ भूमि, पर्याप्त जल संसाधन और पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ इस क्षेत्र की आर्थिक संरचना का आधार हैं। हालांकि, बाढ़, जल-जमाव, अवसंरचना की कमी और सीमित औद्योगिक विकास जैसे कारक इस क्षेत्र की आर्थिक प्रगति में बाधक सिद्ध होते हैं।

मिथिला की सांस्कृतिक पहचान उसकी भौगोलिक संरचना के साथ गहराई से जुड़ी हुई है। यहाँ की संस्कृति केवल परंपराओं और मान्यताओं का समूह नहीं है, बल्कि यह प्रकृति के साथ निरंतर संवाद और अनुकूलन की प्रक्रिया का परिणाम है। उदाहरण के लिए, बाढ़ की समस्या ने यहाँ के लोगों में सामूहिकता, सहयोग और सामाजिक एकता की भावना को विकसित किया है। यही कारण है कि मिथिला समाज में पारिवारिक और सामुदायिक संबंध अत्यंत मजबूत होते हैं।

मिथिला की सांस्कृतिक विरासत बहुआयामी और समृद्ध है, जिसमें कला, साहित्य, भाषा, लोक परंपराएँ और धार्मिक आस्थाएँ शामिल हैं। मधुबनी चित्रकला, जिसे "मिथिला पेंटिंग" भी कहा जाता है, इस क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान का सबसे प्रमुख प्रतीक है। यह कला शैली मुख्यतः महिलाओं द्वारा विकसित की गई है और इसमें प्राकृतिक रंगों तथा पारंपरिक प्रतीकों का उपयोग किया जाता है। मधुबनी चित्रकला न केवल एक कलात्मक अभिव्यक्ति है, बल्कि यह सामाजिक और धार्मिक जीवन का भी दर्पण है।

इसी प्रकार मैथिली भाषा मिथिला की सांस्कृतिक पहचान का एक महत्वपूर्ण आधार है। यह भाषा न केवल दैनिक जीवन में उपयोग की जाती है, बल्कि इसमें समृद्ध साहित्यिक परंपरा भी विद्यमान है। विद्यापति जैसे महान कवियों ने मैथिली साहित्य को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया। उनकी रचनाएँ प्रेम, भक्ति और सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को दर्शाती हैं, जो मिथिला की सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यक्त करती हैं।

बिहार के व्यापक सांस्कृतिक परिदृश्य में मिथिला का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। जहाँ एक ओर मगध क्षेत्र बौद्ध और जैन धर्म के उद्भव के लिए प्रसिद्ध है, वहीं मिथिला क्षेत्र अपनी वैदिक परंपराओं, विद्वत्ता और सांस्कृतिक समृद्धि के लिए जाना जाता है। प्राचीन काल में यह क्षेत्र शिक्षा और ज्ञान का एक प्रमुख केंद्र था, जहाँ अनेक विद्वान और दार्शनिक उत्पन्न हुए।

मिथिला की सांस्कृतिक परंपराओं में विवाह संस्कार, लोकगीत, पर्व-त्योहार और धार्मिक अनुष्ठान विशेष महत्व रखते हैं। यहाँ की विवाह परंपरा में "कोहबर" चित्रकला, "मधुशाला" गीत और विभिन्न रीति-रिवाज शामिल होते हैं, जो सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों को अभिव्यक्त करते हैं। इसी प्रकार छठ पर्व, सामा-चकेवा, झिझिया आदि लोक पर्व मिथिला की सांस्कृतिक जीवंतता को दर्शाते हैं। ये पर्व न केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक हैं, बल्कि सामाजिक एकता और सामुदायिक सहयोग को भी सुदृढ़ करते हैं।

समकालीन बिहार के संदर्भ में मिथिला की सांस्कृतिक पहचान नई चुनौतियों और अवसरों का सामना कर रही है। वैश्वीकरण, शहरीकरण और तकनीकी विकास के प्रभाव से पारंपरिक जीवन शैली में परिवर्तन आ रहा है। युवा पीढ़ी आधुनिक जीवन शैली की ओर आकर्षित हो रही है, जिसके परिणामस्वरूप पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। हालांकि, इसके साथ ही सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और संवर्धन के लिए नए प्रयास भी किए जा रहे हैं। मधुबनी चित्रकला को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिल रही है और यह स्थानीय महिलाओं के लिए रोजगार का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन चुकी

है। बिहार सरकार और विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों द्वारा इस कला के संरक्षण और प्रचार-प्रसार के लिए कई योजनाएँ संचालित की जा रही हैं।

मिथिला की भौगोलिक चुनौतियाँ विशेष रूप से बाढ़ और जल-जमाव आज भी इस क्षेत्र के विकास में प्रमुख बाधा हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए वैज्ञानिक और तकनीकी उपायों की आवश्यकता है, ताकि प्राकृतिक संसाधनों का प्रभावी उपयोग किया जा सके। साथ ही, विकास नीतियों में स्थानीय सांस्कृतिक विशेषताओं को भी ध्यान में रखना आवश्यक है, ताकि विकास प्रक्रिया समावेशी और टिकाऊ हो सके।

इस शोध का मूल उद्देश्य मिथिला की भौगोलिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान के मध्य संबंध का गहन विश्लेषण करना है, विशेष रूप से बिहार राज्य के संदर्भ में। यह अध्ययन इस धारणा पर आधारित है कि किसी भी क्षेत्र की सांस्कृतिक संरचना उसके भौगोलिक आधार से गहराई से जुड़ी होती है। अतः मिथिला के उदाहरण के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार प्राकृतिक परिस्थितियाँ सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक संरचनाओं और आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त, यह शोध बिहार के क्षेत्रीय विकास के संदर्भ में मिथिला की भूमिका को भी रेखांकित करता है। यह स्पष्ट करता है कि यदि इस क्षेत्र की भौगोलिक विशेषताओं और सांस्कृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग किया जाए, तो यह क्षेत्र न केवल आर्थिक रूप से सशक्त बन सकता है, बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी अपनी विशिष्ट पहचान को बनाए रख सकता है।

यह कहा जा सकता है कि मिथिला की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पहचान एक-दूसरे से अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई हैं। इस क्षेत्र की संस्कृति उसकी भौगोलिक परिस्थितियों का प्रतिबिंब है, और यही विशेषता इसे बिहार के अन्य क्षेत्रों से अलग करती है। अतः मिथिला का अध्ययन केवल एक क्षेत्रीय अध्ययन नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक विविधता को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है।

यह शोध स्पष्ट करती है कि मिथिला की भौगोलिक संरचना और सांस्कृतिक विरासत के मध्य गहरा संबंध है, जिसे समझे बिना बिहार के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र के समग्र विकास और सांस्कृतिक संरक्षण की प्रभावी रणनीति तैयार नहीं की जा सकती।

उद्देश्य:-

1.मिथिला के भौगोलिक स्वरूप का विश्लेषण करना- इस अध्ययन का उद्देश्य मिथिला क्षेत्र की प्राकृतिक संरचना- जैसे नदियाँ, मिट्टी, जलवायु एवं स्थलाकृति का व्यवस्थित विश्लेषण करना है, ताकि इसके भौगोलिक आधार को समझा जा सके।

2.भौगोलिक कारकों का सांस्कृतिक पहचान पर प्रभाव समझना:- यह शोध इस बात का विश्लेषण करता है कि किस प्रकार प्राकृतिक परिस्थितियाँ मिथिला की भाषा, कला, परंपराओं और सामाजिक जीवन को प्रभावित करती हैं।

3.मिथिला की सांस्कृतिक विरासत का अध्ययन करना:- इस उद्देश्य के अंतर्गत मधुबनी कला, मैथिली भाषा, लोक परंपराएँ, पर्व-त्योहार आदि का अध्ययन कर उनकी विशिष्टता को रेखांकित किया जाएगा।

4.बिहार के संदर्भ में मिथिला की भूमिका का मूल्यांकन करना:- यह शोध बिहार की सांस्कृतिक और सामाजिक संरचना में मिथिला के योगदान और महत्व को स्पष्ट करने का प्रयास करता है।

5.संरक्षण एवं विकास के उपाय सुझाना:- अध्ययन का अंतिम उद्देश्य मिथिला की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण तथा भौगोलिक चुनौतियों के समाधान हेतु व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना है।

साहित्य समीक्षा:-

रामशरण शर्मा (1983) ने अपनी कृति "India's Ancient Past" (1983) में मिथिला (प्राचीन विदेह) की सामाजिक-आर्थिक संरचना का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार इस क्षेत्र की उपजाऊ भूमि, नदियों की उपलब्धता तथा अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियों ने यहाँ कृषि आधारित स्थायी जीवन और संगठित सामाजिक ढांचे के विकास को

प्रोत्साहित किया। यह अध्ययन इस तथ्य को स्थापित करता है कि मिथिला की सांस्कृतिक पहचान का प्रारंभिक निर्माण उसके भौगोलिक आधार से गहराई से जुड़ा हुआ था, हालांकि आधुनिक संदर्भ में इस संबंध का विश्लेषण सीमित है।

के. एस. सिंह (1992). "People of India: Bihar" (1992) में के. एस. सिंह ने मिथिला क्षेत्र की जातीय, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता का नृवंशशास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस कार्य में विभिन्न समुदायों की जीवन-शैली, परंपराओं और सामाजिक संरचना का विस्तृत विवरण मिलता है। अध्ययन यह दर्शाता है कि मिथिला की सांस्कृतिक पहचान बहुस्तरीय है और यह स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों तथा सामाजिक अंतःक्रियाओं के परिणामस्वरूप विकसित हुई है, यद्यपि भौगोलिक प्रभावों का प्रत्यक्ष विश्लेषण अपेक्षाकृत सीमित है।

एम. झा (2010).एम. झा की कृति "Mithila Culture" (2010) मिथिला की सांस्कृतिक विरासत विशेषकर मधुबनी चित्रकला, मैथिली भाषा और लोक परंपराओं का विस्तृत विश्लेषण करती है। लेखक के अनुसार मिथिला की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ स्थानीय पर्यावरण, सामाजिक संरचना और धार्मिक विश्वासों से गहराई से प्रभावित होती हैं। विशेष रूप से मधुबनी चित्रकला को एक ऐसी परंपरा के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो प्रकृति और संस्कृति के समन्वय को अभिव्यक्त करती है, हालांकि इसमें भौगोलिक विश्लेषण सीमित रूप में मिलता है।

बिहार आर्थिक सर्वेक्षण (2023). Economic Survey of Bihar (2023) में राज्य की आर्थिक स्थिति, कृषि संरचना तथा क्षेत्रीय असमानताओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस रिपोर्ट में मिथिला क्षेत्र को बाढ़-प्रभावित और कृषि-प्रधान क्षेत्र के रूप में चिन्हित किया गया है। यह अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भौगोलिक परिस्थितियाँ विशेष रूप से बाढ़ आर्थिक विकास को प्रभावित करती हैं, जिससे अप्रत्यक्ष रूप से सांस्कृतिक जीवन और सामाजिक संरचना भी प्रभावित होती है।

यूनेस्को (2013) यूनेस्को की "Creative Economy Report" (2013) सांस्कृतिक विरासत को आर्थिक विकास और सामाजिक सशक्तिकरण के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में प्रस्तुत करती है। इस वैश्विक दृष्टिकोण को मिथिला के संदर्भ में देखने पर यह स्पष्ट होता है कि मधुबनी चित्रकला जैसी पारंपरिक कलाएँ स्थानीय अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने और विशेष रूप से महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं, यद्यपि इस रिपोर्ट में मिथिला का प्रत्यक्ष विश्लेषण सीमित है।

शोध-अंतर:-

उपरोक्त अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि मिथिला की सांस्कृतिक विरासत, सामाजिक संरचना और आर्थिक स्थिति पर पर्याप्त शोध उपलब्ध है, किंतु भौगोलिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान के अंतर्संबंध का समेकित एवं समकालीन विश्लेषण, विशेष रूप से बिहार के संदर्भ में, अपेक्षाकृत कम किया गया है। अतः प्रस्तुत शोध इसी अंतर को भरने का प्रयास करता है।

शोध पद्धति:-

इस शोध में मिथिला की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पहचान के अध्ययन हेतु मुख्यतः द्वितीयक (Secondary) स्रोतों का उपयोग किया गया है। इसके अंतर्गत ऐतिहासिक ग्रंथों, शोध-पत्रों, पुस्तकों, सरकारी रिपोर्टों (जैसे बिहार आर्थिक सर्वेक्षण), जनगणना आँकड़ों तथा सांस्कृतिक अध्ययन से संबंधित प्रकाशित सामग्री का विश्लेषण किया गया है।

अध्ययन की प्रकृति वर्णनात्मक (Descriptive) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) है, जिसमें मिथिला के भौगोलिक स्वरूप और सांस्कृतिक विशेषताओं के मध्य संबंध को समझने का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त, शोध में तुलनात्मक दृष्टिकोण (Comparative Approach) का भी सीमित उपयोग किया गया है, जिसके माध्यम से पारंपरिक एवं समकालीन परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है। इस प्रकार, प्रस्तुत शोध गुणात्मक (Qualitative) पद्धति पर आधारित है, जो मिथिला की भू-सांस्कृतिक संरचना के गहन अध्ययन में सहायक सिद्ध होती है।

परिणाम एवं विश्लेषण:-

प्रस्तुत शोध के अंतर्गत मिथिला की भौगोलिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान के मध्य संबंध का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है कि यह क्षेत्र प्राकृतिक परिस्थितियों और सांस्कृतिक विकास के बीच एक सशक्त

अंतर्संबंध का उदाहरण प्रस्तुत करता है। विशेष रूप से बिहार के संदर्भ में मिथिला की पहचान को समझने के लिए इसके भूगोल और संस्कृति को एकीकृत रूप में देखना अनिवार्य है।

सबसे पहले, भौगोलिक विश्लेषण के आधार पर यह पाया गया कि मिथिला क्षेत्र की स्थलाकृति, जलवायु तथा नदी-प्रणाली ने यहाँ के सामाजिक और आर्थिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। गंगा के उत्तर में स्थित यह क्षेत्र जलोढ़ मिट्टी से युक्त होने के कारण अत्यंत उपजाऊ है, जिससे कृषि यहाँ की प्रमुख आर्थिक गतिविधि बन गई है। कोसी, गंडक, बागमती और कमला जैसी नदियाँ इस क्षेत्र को जल संसाधन प्रदान करती हैं, किंतु इनके अनियमित प्रवाह और बाढ़ की समस्या ने विकास की प्रक्रिया को बाधित भी किया है। बाढ़ की यह आवृत्ति केवल एक प्राकृतिक आपदा नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख कारक भी है। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि बाढ़ की परिस्थितियों ने मिथिला के समाज में सामूहिकता, सहयोग और पारस्परिक निर्भरता की भावना को सुदृढ़ किया है। ग्रामीण समुदायों में सामाजिक एकजुटता और पारंपरिक सहयोग की व्यवस्था इस क्षेत्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, जो भौगोलिक चुनौतियों के अनुकूलन का परिणाम है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह पाया गया कि मिथिला की सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ जैसे मधुबनी चित्रकला, मैथिली भाषा, लोकगीत और पारंपरिक अनुष्ठान सीधे तौर पर इसके प्राकृतिक परिवेश से जुड़ी हुई हैं। मधुबनी चित्रकला में प्रयुक्त प्रतीक, रंग और विषयवस्तु प्रकृति, कृषि जीवन और धार्मिक विश्वासों को प्रतिबिंबित करते हैं। इसी प्रकार, लोकगीतों और पर्व-त्योहारों में भी प्राकृतिक चक्रों, ऋतुओं और कृषि गतिविधियों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

बिहार के व्यापक परिप्रेक्ष्य में यह भी स्पष्ट हुआ कि मिथिला क्षेत्र राज्य की सांस्कृतिक विविधता को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जहाँ एक ओर यह क्षेत्र अपनी विशिष्ट भाषा और परंपराओं के कारण अलग पहचान रखता है, वहीं दूसरी ओर यह बिहार की समग्र सांस्कृतिक संरचना का अभिन्न अंग भी है। मिथिला की सांस्कृतिक परंपराएँ राज्य के अन्य क्षेत्रों के साथ संवाद स्थापित करती हैं, जिससे एक व्यापक सांस्कृतिक समन्वय की स्थिति उत्पन्न होती है।

आर्थिक विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष सामने आया कि मिथिला की सांस्कृतिक विरासत आज केवल पहचान का माध्यम नहीं रह गई है, बल्कि यह आर्थिक विकास का भी एक महत्वपूर्ण साधन बनती जा रही है। विशेष रूप से मधुबनी चित्रकला का राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसार स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन और महिला सशक्तिकरण में सहायक सिद्ध हुआ है। कई ग्रामीण महिलाएँ इस कला के माध्यम से आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन रही हैं, जिससे सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को भी गति मिल रही है।

हालांकि, अध्ययन यह भी दर्शाता है कि मिथिला क्षेत्र अभी भी अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। बाढ़, अवसंरचना की कमी, सीमित औद्योगिक विकास और पलायन जैसी समस्याएँ इस क्षेत्र के समग्र विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं। इन चुनौतियों के कारण यहाँ की सांस्कृतिक परंपराओं पर भी अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, क्योंकि आर्थिक अस्थिरता के कारण पारंपरिक व्यवसाय और कला रूपों का संरक्षण कठिन हो जाता है।

इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के प्रभाव से पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन देखा जा रहा है। युवा पीढ़ी आधुनिक जीवन शैली की ओर आकर्षित हो रही है, जिसके परिणामस्वरूप पारंपरिक रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। हालांकि, यह परिवर्तन पूर्णतः नकारात्मक नहीं है, क्योंकि इसके माध्यम से सांस्कृतिक परंपराएँ नए रूप में विकसित भी हो रही हैं।

समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि मिथिला की भौगोलिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान के बीच गहरा और पारस्परिक संबंध है। प्राकृतिक परिस्थितियाँ जहाँ एक ओर जीवन की चुनौतियाँ प्रस्तुत करती हैं, वहीं दूसरी ओर वे सांस्कृतिक सृजन और सामाजिक संगठन को भी प्रेरित करती हैं। बिहार के संदर्भ में मिथिला का यह उदाहरण यह दर्शाता है कि क्षेत्रीय विकास और सांस्कृतिक संरक्षण के लिए भौगोलिक और सांस्कृतिक कारकों का समन्वित अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

अतः प्रस्तुत शोध के परिणाम इस निष्कर्ष की ओर संकेत करते हैं कि यदि मिथिला की भौगोलिक चुनौतियों का वैज्ञानिक समाधान किया जाए और उसकी सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण एवं संवर्धन किया जाए, तो यह क्षेत्र न केवल अपनी विशिष्ट पहचान को बनाए रख सकता है, बल्कि बिहार के समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

निष्कर्ष :-

प्रस्तुत शोध के आधार पर यह स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि मिथिला की भौगोलिक संरचना और उसकी सांस्कृतिक पहचान के बीच गहरा, अविभाज्य तथा पारस्परिक संबंध विद्यमान है। मिथिला, जो मुख्यतः बिहार के उत्तरी भाग में स्थित है, अपनी विशिष्ट प्राकृतिक परिस्थितियों जैसे उपजाऊ जलोढ़ भूमि, विस्तृत नदी-प्रणाली और बाढ़ की आवृत्ति के कारण एक विशिष्ट भू-सांस्कृतिक क्षेत्र के रूप में विकसित हुआ है।

अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि मिथिला की सांस्कृतिक विरासत केवल ऐतिहासिक परंपराओं का परिणाम नहीं है, बल्कि यह उसके भौगोलिक परिवेश के साथ निरंतर अंतःक्रिया का प्रतिफल है। यहाँ की कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था, प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता तथा पर्यावरणीय चुनौतियों ने समाज के जीवन-मूल्यों, परंपराओं और सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों को गहराई से प्रभावित किया है। विशेष रूप से बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं ने जहाँ एक ओर आर्थिक कठिनाइयाँ उत्पन्न की हैं, वहीं दूसरी ओर सामाजिक एकजुटता, सहयोग और सामुदायिक भावना को भी सुदृढ़ किया है।

मिथिला की सांस्कृतिक पहचान जिसमें मधुबनी चित्रकला, मैथिली भाषा, लोक परंपराएँ, पर्व-त्योहार और विवाह संस्कार शामिल हैं-इस क्षेत्र की विशिष्टता को स्पष्ट रूप से दर्शाती है। ये सांस्कृतिक तत्व न केवल सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग हैं, बल्कि वे इस क्षेत्र के लोगों की सामूहिक चेतना और ऐतिहासिक निरंतरता का भी प्रतीक हैं। बिहार के व्यापक सांस्कृतिक परिदृश्य में मिथिला का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह राज्य की सांस्कृतिक विविधता को समृद्ध बनाता है और क्षेत्रीय पहचान को सुदृढ़ करता है।

समकालीन संदर्भ में यह भी स्पष्ट हुआ है कि मिथिला की सांस्कृतिक विरासत केवल सांस्कृतिक पहचान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आर्थिक विकास का भी एक महत्वपूर्ण साधन बनती जा रही है। मधुबनी चित्रकला जैसी परंपरागत कलाएँ स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजन और महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। इस प्रकार, सांस्कृतिक संसाधनों का उचित उपयोग क्षेत्रीय विकास के लिए एक प्रभावी माध्यम बन सकता है।

हालांकि, अध्ययन यह भी इंगित करता है कि मिथिला क्षेत्र अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है, जिनमें बाढ़, अवसंरचना की कमी, सीमित औद्योगिक विकास और पलायन प्रमुख हैं। इन समस्याओं के कारण न केवल आर्थिक विकास बाधित होता है, बल्कि सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के प्रभाव से पारंपरिक सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन की प्रक्रिया भी देखी जा रही है, जो एक ओर सांस्कृतिक विकास का संकेत है, तो दूसरी ओर संरक्षण की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि मिथिला की भौगोलिक परिस्थितियाँ और सांस्कृतिक विरासत एक-दूसरे के पूरक हैं। इस क्षेत्र के समग्र विकास के लिए यह आवश्यक है कि भौगोलिक चुनौतियों का वैज्ञानिक समाधान किया जाए तथा सांस्कृतिक संसाधनों का संरक्षण और संवर्धन सुनिश्चित किया जाए। बिहार के संदर्भ में मिथिला का अध्ययन यह दर्शाता है कि यदि क्षेत्रीय विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए विकास नीतियाँ बनाई जाएँ, तो न केवल आर्थिक प्रगति संभव है, बल्कि सांस्कृतिक पहचान का संरक्षण भी सुनिश्चित किया जा सकता है।

इस प्रकार, प्रस्तुत शोध यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि मिथिला की भू-सांस्कृतिक संरचना को समझना बिहार के समग्र सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है।

सुझाव:-

1. भौगोलिक समस्याओं का वैज्ञानिक समाधान।

2. सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण एवं दस्तावेजीकरण।

3. स्थानीय कला और हस्तशिल्प को प्रोत्साहन।

4. पर्यटन विकास को बढ़ावा।

5. शिक्षा और जन-जागरूकता का विस्तार।

संदर्भ :-

1.शर्मा, रामशरण (1983). *भारत का प्राचीन इतिहास*. नई दिल्ली: ओरिएंट लॉन्गमैन, पृ. 120–145.

2.सिंह, के. एस. (1992). *पीपुल ऑफ इंडिया: बिहार*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 210–235.

3.झा, एम. (2010). *मिथिला संस्कृति: परंपरा और परिवर्तन*. पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ. 55–90.

4.ठाकुर, विजय कुमार. (2007). *मिथिला का इतिहास*. दरभंगा: मिथिला रिसर्च इंस्टीट्यूट, पृ. 75–110.

5.बिहार सरकार. (2023). *बिहार आर्थिक सर्वेक्षण 2022–23*. पटना: वित्त विभाग, पृ. 98–115.

6.भारत सरकार. (2011). *जनगणना भारत 2011 (बिहार)*. नई दिल्ली: रजिस्ट्रार जनरल, पृ. 45–60.

7.झा, एन. (2014). *मैथिली भाषा और साहित्य का विकास*. नई दिल्ली: साहित्य अकादमी, पृ. 130–160.

8.मिश्र, शैलेन्द्र. (2016). मधुबनी चित्रकला का सामाजिक एवं आर्थिक अध्ययन. *भारतीय कला शोध पत्रिका*, 8(2), 25–39.

9.कुमारी, अंजली. (2019). मधुबनी कला और महिला सशक्तिकरण: मिथिला का अध्ययन. *ग्रामीण विकास जर्नल*, 11(1), 50–65.

10.यादव, संजीव. (2017). मिथिला की सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक परिवर्तन. *समाज विज्ञान शोध पत्रिका*, 9(2), 30–44.

11.पासवान, दीपक. (2020). बाढ़, भूगोल और क्षेत्रीय विकास: मिथिला क्षेत्र का विश्लेषण. *आर्थिक अध्ययन पत्रिका*, 15(1), 60–78.

12.चौधरी, प्रमोद. (2018). मिथिला क्षेत्र का भौगोलिक स्वरूप और आर्थिक चुनौतियाँ. *भूगोल समीक्षा*, 6(1), 22–37.

13.सिंह, राकेश. (2021). सांस्कृतिक पर्यटन और मिथिला की संभावनाएँ. *पर्यटन अध्ययन जर्नल*, 7(2), 40–55.

14.UNESCO. (2013). *Creative Economy Report 2013: Widening Local Development Pathways*. Paris: UNESCO Publishing, pp. 150–170.

15.Jha, D. N. (2004). *Ancient India: In Historical Outline*. New Delhi: Manohar Publishers, pp. 85–110.

Received: 02.03.2026 | Accepted: 01.04.2026 | Published: 30.04.2026

बिहार में समाजवादी चेतना के विकास में राम मनोहर लोहिया का योगदान

रवि नंदन कुमार *
ravisahani61330@gmail.com

डॉ. रुद्र नारायण †
narayanrudra09@gmail.com

सार:

भारतीय समाजवादी आंदोलन के प्रमुख चिंतक एवं राजनेता डॉ. राम मनोहर लोहिया ने स्वतंत्रता उपरांत भारतीय राजनीति और समाज को नई वैचारिक दिशा प्रदान की है। उनके विचार केवल राजनीतिक परिवर्तन तक सीमित नहीं थे, बल्कि सामाजिक समानता, आर्थिक न्याय, जाति-विरोध, ग्रामीण विकास तथा पिछड़े वर्गों के सशक्तिकरण पर आधारित थे। बिहार उन राज्यों में प्रमुख रहा जहाँ लोहिया की समाजवादी विचारधारा ने व्यापक जनाधार प्राप्त किया तथा सामाजिक चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य बिहार में समाजवादी चेतना के विकास में डॉ. लोहिया के योगदान का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। शोध में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि लोहिया के विचारों ने बिहार के सामाजिक एवं राजनीतिक ढांचे को किस प्रकार प्रभावित किया। विशेष रूप से "समानता", "सामाजिक न्याय" तथा "पिछड़ा वर्ग प्रतिनिधित्व" संबंधी उनके विचारों ने बिहार में नई राजनीतिक चेतना को जन्म दिया।

इस अध्ययन में ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक शोध-पद्धति का उपयोग किया गया है। अध्ययन के लिए डॉ. लोहिया के भाषणों, लेखों, समाजवादी साहित्य, शोध-पत्रों तथा द्वितीयक स्रोतों का विश्लेषण किया गया है। शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि बिहार में समाजवादी चेतना के प्रसार में लोहिया की विचारधारा ने अत्यंत प्रभावशाली भूमिका निभाई। उनके विचारों ने सामाजिक रूप से वंचित वर्गों में राजनीतिक सहभागिता और अधिकार चेतना को मजबूत किया।

वर्तमान समय में भी बिहार की राजनीति एवं सामाजिक विमर्श में लोहियावादी विचारधारा की स्पष्ट उपस्थिति दिखाई देती है। इस प्रकार डॉ. राम मनोहर लोहिया का योगदान केवल एक राजनीतिक आंदोलन तक सीमित न होकर सामाजिक परिवर्तन की व्यापक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग सिद्ध होता है।

कुंजी शब्द:-

राम मनोहर लोहिया, समाजवादी चेतना, सामाजिक न्याय, पिछड़ा वर्ग आंदोलन, बिहार की राजनीति, लोहियावाद, सामाजिक परिवर्तन

प्रस्तावना:-

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम केवल राजनीतिक मुक्ति का आंदोलन नहीं था, बल्कि वह सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की व्यापक प्रक्रिया भी था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती एक ऐसे लोकतांत्रिक समाज की स्थापना थी, जिसमें समानता, न्याय और सामाजिक सहभागिता के सिद्धांत व्यवहारिक रूप में लागू हो सकें। यद्यपि भारत ने औपनिवेशिक शासन से मुक्ति प्राप्त कर ली थी, तथापि सामाजिक संरचना में विद्यमान जातिगत विषमता, आर्थिक असमानता, सामंती मानसिकता, लैंगिक भेदभाव तथा शैक्षणिक पिछड़ापन राष्ट्र के समक्ष गंभीर समस्याओं के रूप में उपस्थित थे। भारतीय संविधान ने सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान किए, किंतु सामाजिक यथार्थ में समानता की

* **पी-एच. डी. शोधार्थी, इतिहास विभाग, डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।**

† **शोध निर्देशक & सह-प्राध्यापक, इतिहास विभाग, डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।**

स्थापना एक कठिन कार्य सिद्ध हो रही थी। विशेष रूप से ग्रामीण भारत में जाति-आधारित सामाजिक विभाजन और संसाधनों पर सीमित वर्गों का नियंत्रण लोकतांत्रिक व्यवस्था के विकास में बाधक बना हुआ था। ऐसे संक्रमणकालीन समय में भारतीय राजनीति में समाजवादी विचारधारा एक वैकल्पिक राजनीतिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण के रूप में उभरी।

भारतीय समाजवादी आंदोलन ने स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय लोकतंत्र को सामाजिक न्याय और आर्थिक समानता की दिशा प्रदान करने का प्रयास किया। इस आंदोलन के प्रमुख नेताओं में राम मनोहर लोहिया का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। डॉ. लोहिया केवल एक राजनेता नहीं थे, बल्कि वे एक मौलिक चिंतक, सामाजिक क्रांतिकारी तथा भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप समाजवाद की अवधारणा विकसित करने वाले दार्शनिक भी थे। उन्होंने पश्चिमी समाजवाद की सीमाओं को पहचानते हुए भारतीय समाज की विशिष्ट समस्याओं-विशेषतः जाति-व्यवस्था, सामाजिक विषमता और सांस्कृतिक वर्चस्व को केंद्र में रखकर समाजवाद की नई व्याख्या प्रस्तुत की। लोहिया का समाजवाद केवल आर्थिक समानता तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें सामाजिक न्याय, स्त्री-पुरुष समानता, ग्रामीण विकास, भाषाई स्वाभिमान, विकेंद्रीकरण तथा पिछड़े वर्गों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को विशेष महत्व दिया गया।

डॉ. लोहिया का मानना था कि भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या केवल गरीबी नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि जब तक समाज के वंचित, पिछड़े और दलित वर्गों को राजनीतिक शक्ति तथा सामाजिक सम्मान में समान भागीदारी नहीं मिलेगी, तब तक भारत में वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना संभव नहीं होगी। इसी कारण उन्होंने सामाजिक न्याय को भारतीय राजनीति का केंद्रीय प्रश्न बनाया। लोहिया के विचारों का प्रभाव विशेष रूप से उत्तर भारत के राज्यों में अधिक दिखाई देता है, जहाँ जातिगत असमानता और सामाजिक विभाजन गहराई से विद्यमान थे। बिहार उन राज्यों में प्रमुख था जहाँ लोहियावादी समाजवाद ने व्यापक जन-आधार प्राप्त किया और समाजवादी चेतना के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बिहार ऐतिहासिक रूप से सामाजिक आंदोलनों और राजनीतिक जागरण की भूमि रहा है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक भारत तक बिहार ने अनेक सामाजिक एवं वैचारिक आंदोलनों को जन्म दिया। बुद्ध, महावीर, चाणक्य, आर्यभट्ट और जयप्रकाश नारायण जैसी महान विभूतियों की परंपरा ने बिहार की राजनीतिक एवं बौद्धिक चेतना को सदैव जीवंत बनाए रखा। किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बिहार अनेक गंभीर सामाजिक एवं आर्थिक चुनौतियों से घिरा हुआ था। राज्य की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित थी, किंतु भूमि का वितरण अत्यंत असमान था। सामंती शक्तियों का प्रभाव ग्रामीण समाज पर गहराई से विद्यमान था। जाति-आधारित सामाजिक संरचना ने समाज को अनेक स्तरों में विभाजित कर रखा था। उच्च जातियों का राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रभुत्व था, जबकि पिछड़े वर्ग, दलित और आदिवासी सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से हाशिये पर थे। शिक्षा और आर्थिक संसाधनों तक उनकी पहुँच सीमित थी। ऐसी परिस्थितियों में सामाजिक परिवर्तन और लोकतांत्रिक सहभागिता के लिए एक वैचारिक आंदोलन की आवश्यकता थी।

डॉ. राम मनोहर लोहिया ने बिहार की इसी सामाजिक वास्तविकता को समझते हुए समाजवादी आंदोलन को सामाजिक न्याय के प्रश्न से जोड़ा। उन्होंने यह माना कि भारतीय समाज में जितनी आर्थिक क्रांति की आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता सामाजिक क्रांति की की है। लोहिया ने जाति-व्यवस्था को भारतीय समाज की सबसे बड़ी बाधा बताया और इसे समाप्त किए बिना लोकतंत्र को अधूरा माना। बिहार में उनके विचारों ने विशेष रूप से पिछड़े वर्गों और ग्रामीण समाज के बीच नई चेतना उत्पन्न की। "पिछड़ा पावे सौ में साठ" का उनका प्रसिद्ध नारा बिहार की राजनीति और समाज में अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुआ। यह नारा केवल आरक्षण की मांग नहीं था, बल्कि सत्ता और संसाधनों में समान प्रतिनिधित्व का सिद्धांत था। इससे बिहार में पिछड़े वर्गों के बीच राजनीतिक जागरूकता और सामाजिक आत्मसम्मान की भावना विकसित हुई।

बिहार में समाजवादी चेतना के विकास की प्रक्रिया स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही प्रारंभ हो चुकी थी। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और किसान आंदोलनों ने राज्य में समाजवादी विचारधारा के प्रसार का प्रारंभिक आधार तैयार किया। जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेंद्र देव, यूसुफ मेहरअली और अन्य समाजवादी नेताओं ने बिहार के युवाओं और किसानों को सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरित किया। किंतु डॉ. लोहिया ने इस आंदोलन को नई वैचारिक दिशा प्रदान की। उन्होंने समाजवाद को केवल आर्थिक सिद्धांत के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे सामाजिक समानता और राजनीतिक लोकतंत्र के साथ

जोड़ा। बिहार में लोहियावादी आंदोलन का प्रभाव इस रूप में दिखाई देता है कि यहाँ समाजवादी राजनीति धीरे-धीरे सामाजिक न्याय और पिछड़े वर्गों के प्रतिनिधित्व का आंदोलन बन गई।

लोहिया की विचारधारा का एक महत्वपूर्ण पक्ष उनकी "सप्त क्रांति" की अवधारणा थी। इस सिद्धांत में उन्होंने सात प्रकार की असमानताओं और शोषण के विरुद्ध संघर्ष की बात कही- स्त्री और पुरुष के बीच असमानता, जातिगत भेदभाव, रंगभेद, आर्थिक विषमता, विदेशी प्रभुत्व, निजी जीवन में हस्तक्षेप तथा हथियारों और युद्ध की राजनीति। बिहार में इन विचारों का व्यापक प्रभाव पड़ा। विशेष रूप से जाति-विरोध, आर्थिक समानता और ग्रामीण विकास के प्रश्नों ने समाजवादी आंदोलन को जन-आधार प्रदान किया। लोहिया का मानना था कि भारतीय समाज में जाति और वर्ग एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं; इसलिए सामाजिक न्याय के बिना आर्थिक समानता संभव नहीं है। बिहार की सामाजिक परिस्थितियों में यह विचार अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध हुआ।

समाजवादी चेतना के विकास में भाषा और संस्कृति के प्रश्न को भी डॉ. लोहिया ने महत्वपूर्ण माना। उन्होंने अंग्रेज़ी के प्रभुत्व का विरोध करते हुए भारतीय भाषाओं को लोकतंत्र और सामाजिक समानता का आधार बताया। बिहार में हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा और प्रशासन की मांग समाजवादी आंदोलन के प्रमुख मुद्दों में शामिल रही। लोहिया का तर्क था कि अंग्रेज़ी भाषा का वर्चस्व भारतीय समाज में एक नए प्रकार की सामाजिक असमानता उत्पन्न करता है, क्योंकि इससे शिक्षा और प्रशासन पर एक सीमित वर्ग का नियंत्रण बना रहता है। बिहार के ग्रामीण और पिछड़े वर्गों में यह विचार व्यापक रूप से लोकप्रिय हुआ और इससे भाषाई आत्मसम्मान की चेतना विकसित हुई।

बिहार में समाजवादी चेतना के विकास में छात्र और युवा आंदोलनों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। 1960 और 1970 के दशक में बिहार छात्र आंदोलनों का प्रमुख केंद्र बन गया। बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, सामाजिक असमानता और प्रशासनिक अक्षमता के विरुद्ध युवाओं में असंतोष बढ़ रहा था। समाजवादी विचारधारा ने इन आंदोलनों को वैचारिक आधार प्रदान किया। लोहिया के विचारों से प्रेरित युवा सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक सुधार के लिए सक्रिय हुए। यही चेतना आगे चलकर संपूर्ण क्रांति आंदोलन और सामाजिक न्याय की राजनीति में परिवर्तित हुई। इस प्रकार बिहार में समाजवादी आंदोलन केवल राजनीतिक सत्ता परिवर्तन का माध्यम नहीं रहा, बल्कि सामाजिक जागरण और लोकतांत्रिक चेतना का आंदोलन बन गया।

डॉ. लोहिया का प्रभाव बिहार की राजनीति में विशेष रूप से पिछड़े वर्गों के राजनीतिक उदय के रूप में देखा जा सकता है। स्वतंत्रता के प्रारंभिक दशकों में बिहार की राजनीति पर उच्च जातियों का वर्चस्व था। प्रशासन, शिक्षा और राजनीति में पिछड़े वर्गों की भागीदारी अत्यंत सीमित थी। लोहियावादी विचारधारा ने इस स्थिति को चुनौती दी। कर्पूरी ठाकुर जैसे नेताओं ने लोहिया के सिद्धांतों को व्यवहारिक राजनीति में लागू करने का प्रयास किया। कर्पूरी ठाकुर द्वारा लागू की गई आरक्षण नीति सामाजिक न्याय की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम थी। इससे बिहार की राजनीति में सामाजिक प्रतिनिधित्व का नया दौर प्रारंभ हुआ। धीरे-धीरे पिछड़े वर्गों और दलित समुदायों की राजनीतिक भागीदारी बढ़ी और राज्य की सत्ता-संरचना में परिवर्तन दिखाई देने लगा।

यद्यपि बिहार में समाजवादी चेतना के विकास में लोहियावादी आंदोलन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही, फिर भी इसके समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी विद्यमान थीं। जातीय राजनीति, राजनीतिक अवसरवाद, वैचारिक विभाजन तथा आर्थिक पिछड़ापन समाजवादी आंदोलन की सीमाएँ बनकर उभरे। कई बार समाजवादी राजनीति सामाजिक न्याय के मूल उद्देश्यों से हटकर केवल सत्ता-प्राप्ति तक सीमित होती दिखाई दी। कुछ विद्वानों का मत है कि बिहार में लोहियावादी राजनीति ने सामाजिक प्रतिनिधित्व तो बढ़ाया, किंतु शिक्षा, स्वास्थ्य और आर्थिक विकास के क्षेत्र में अपेक्षित परिवर्तन नहीं ला सकी। इसके बावजूद यह तथ्य असंदिग्ध है कि सामाजिक न्याय और पिछड़े वर्गों की राजनीतिक भागीदारी को मुख्यधारा की राजनीति का केंद्रीय मुद्दा बनाने का श्रेय काफी हद तक लोहियावादी आंदोलन को जाता है।

वर्तमान समय में भी बिहार की राजनीति और सामाजिक विमर्श में लोहिया के विचारों की प्रासंगिकता बनी हुई है। सामाजिक न्याय, आरक्षण, समान प्रतिनिधित्व, ग्रामीण विकास और लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण जैसे मुद्दे आज भी राजनीतिक बहस के केंद्र में हैं। बिहार की अनेक राजनीतिक धाराएँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लोहियावादी विचारधारा से प्रभावित दिखाई देती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि लोहिया का समाजवाद केवल ऐतिहासिक अवधारणा नहीं, बल्कि समकालीन भारतीय राजनीति और समाज को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम भी है।

आज के वैश्वीकरण और उदारीकरण के दौर में आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक असमानता और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के प्रश्न पुनः महत्वपूर्ण हो गए हैं। बिहार जैसे राज्य में, जहाँ सामाजिक संरचना अभी भी जाति और वर्ग के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाई है, लोहियावादी विचारधारा सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक समानता की दिशा में प्रेरणा प्रदान करती है। लोहिया का यह विचार कि लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है जब समाज के सबसे कमजोर वर्ग को भी समान अवसर प्राप्त हो, आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना स्वतंत्रता के बाद था।

प्रस्तुत शोध "बिहार में समाजवादी चेतना के विकास में डॉ. राम मनोहर लोहिया का योगदान" इसी व्यापक ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह अध्ययन बिहार में समाजवादी आंदोलन के विकास, उसके सामाजिक प्रभाव तथा राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रिया का विश्लेषण करेगा। शोध का उद्देश्य केवल लोहिया के विचारों का वर्णन करना नहीं है, बल्कि यह समझना भी है कि उनके विचारों ने बिहार के सामाजिक ढांचे को किस प्रकार प्रभावित किया और सामाजिक चेतना के निर्माण में कैसी भूमिका निभाई।

यह अध्ययन बिहार में सामाजिक न्याय, लोकतांत्रिक चेतना और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की ऐतिहासिक प्रक्रिया को समझने में सहायक सिद्ध होगा। साथ ही यह भारतीय समाजवाद की क्षेत्रीय अभिव्यक्तियों तथा सामाजिक आंदोलनों के अध्ययन में भी महत्वपूर्ण योगदान देगा। वर्तमान समय में जब भारतीय लोकतंत्र सामाजिक न्याय, समानता और प्रतिनिधित्व के प्रश्नों पर पुनर्विचार कर रहा है, तब बिहार में लोहियावादी समाजवादी चेतना का अध्ययन न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि समकालीन राजनीतिक और सामाजिक विमर्श के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक है।

शोध उद्देश्य:-

1. बिहार में राम मनोहर लोहिया की समाजवादी विचारधारा के विकास और प्रसार का अध्ययन करना।
2. बिहार में सामाजिक न्याय, पिछड़ा वर्ग चेतना तथा राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर लोहियावादी आंदोलन के प्रभाव का विश्लेषण करना।
3. बिहार के समाजवादी आंदोलनों, छात्र आंदोलनों तथा ग्रामीण राजनीति में लोहिया के योगदान का मूल्यांकन करना।
4. बिहार की समकालीन राजनीति और सामाजिक संरचना में लोहियावादी विचारधारा की प्रासंगिकता का परीक्षण करना।
5. समाजवादी चेतना के माध्यम से बिहार में सामाजिक परिवर्तन और लोकतांत्रिक जागरूकता की प्रक्रिया को समझना।

साहित्य समीक्षा:-

राम मनोहर लोहिया (1963). मार्क्स, गांधी और सोशलिज़्म. नामक कृति भारतीय समाजवाद की वैचारिक आधारशिला मानी जाती है। पुस्तक में लोहिया ने मार्क्सवाद और गांधीवाद की तुलनात्मक व्याख्या करते हुए भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप समाजवाद की अवधारणा विकसित की है। लेखक ने जाति-व्यवस्था, आर्थिक असमानता, सामाजिक शोषण तथा ग्रामीण पिछड़ेपन को भारतीय समाज की प्रमुख समस्याएँ माना है। लोहिया का मत था कि भारतीय समाज में केवल आर्थिक क्रांति पर्याप्त नहीं है, बल्कि सामाजिक समानता और राजनीतिक प्रतिनिधित्व भी अनिवार्य हैं। इस पुस्तक में "सप्त क्रांति", "समानता" तथा "पिछड़ा वर्ग चेतना" संबंधी विचारों का विस्तार से वर्णन मिलता है, जो बिहार में समाजवादी चेतना के विकास को समझने में अत्यंत उपयोगी है।

यह पुस्तक मुख्यतः वैचारिक और सैद्धांतिक विश्लेषण पर आधारित है। बिहार में समाजवादी आंदोलन के व्यावहारिक स्वरूप, क्षेत्रीय सामाजिक परिस्थितियों तथा स्थानीय राजनीतिक प्रभावों का विस्तृत अध्ययन इसमें उपलब्ध नहीं है।

रजनी कोठारी (1970) पॉलिटिक्स इन इंडिया. राजनी कोठारी नेइस पुस्तक में भारतीय राजनीति की सामाजिक संरचना का गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया है। लेखक के अनुसार भारतीय लोकतंत्र में जाति, वर्ग और राजनीतिक शक्ति का घनिष्ठ संबंध रहा है। पुस्तक में स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति में उभरते सामाजिक समूहों तथा गैर-कांग्रेसी राजनीति के विकास का अध्ययन किया गया है। बिहार में पिछड़े वर्गों की राजनीतिक चेतना तथा समाजवादी आंदोलनों के प्रभाव को भी

लेखक ने महत्वपूर्ण माना है। अध्ययन यह संकेत देता है कि लोहियावादी विचारधारा ने उत्तर भारत में सामाजिक न्याय आधारित राजनीति को वैचारिक आधार प्रदान किया।

यह अध्ययन भारतीय राजनीति के व्यापक संदर्भ पर केंद्रित है। बिहार में डॉ. लोहिया की प्रत्यक्ष भूमिका, समाजवादी चेतना के सामाजिक प्रभाव तथा ग्रामीण स्तर पर हुए परिवर्तन का विश्लेषण सीमित रूप में प्रस्तुत किया गया है।

बिपिन चंद (1999) स्वतंत्रता के बाद भारत. बिपिन चंद्र द्वारा लिखित यह पुस्तक स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करती है। लेखक ने समाजवादी आंदोलन, गैर-कांग्रेसी राजनीति तथा सामाजिक न्याय की अवधारणा को स्वतंत्र भारत की राजनीति के महत्वपूर्ण घटकों के रूप में वर्णित किया है। बिहार में पिछड़े वर्गों के राजनीतिक उदय तथा समाजवादी राजनीति के विस्तार को भी इस पुस्तक में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। लेखक के अनुसार समाजवादी आंदोलनों ने लोकतंत्र को व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया तथा वंचित वर्गों को राजनीतिक रूप से सक्रिय बनाया।

पुस्तक राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक परिवर्तनों पर अधिक केंद्रित है। बिहार में समाजवादी चेतना के सांस्कृतिक, वैचारिक और सामाजिक प्रभावों का विशिष्ट एवं गहन विश्लेषण इसमें उपलब्ध नहीं है।

घनश्याम शाह (2004) भारत में सामाजिक आंदोलन. लेखक ने इस पुस्तक में भारत के विभिन्न सामाजिक आंदोलनों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण किया है। पुस्तक में किसान आंदोलन, पिछड़ा वर्ग आंदोलन, दलित आंदोलन तथा समाजवादी आंदोलनों को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से जोड़कर देखा गया है। लेखक का मत है कि समाजवादी राजनीति ने भारतीय लोकतंत्र में सामाजिक न्याय और राजनीतिक सहभागिता को मजबूत किया। बिहार के संदर्भ में यह अध्ययन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें पिछड़े वर्गों की सामाजिक चेतना और राजनीतिक सक्रियता के विकास को समाजवादी आंदोलनों से जोड़ा गया है।

अध्ययन सामाजिक आंदोलनों की सामान्य प्रकृति पर आधारित है। बिहार में लोहियावादी समाजवादी चेतना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा उसके दीर्घकालीन सामाजिक प्रभावों का विशिष्ट अध्ययन इसमें नहीं किया गया है।

Christophe Jaffrelot (2003) India's Silent Revolution: The Rise of the Lower Castes in North India. क्रिस्टोफ जाफ्रेलोट की यह पुस्तक उत्तर भारत में पिछड़े वर्गों और निम्न जातियों के राजनीतिक उदय का महत्वपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करती है। लेखक ने बिहार और उत्तर भारत में सामाजिक न्याय की राजनीति के विकास को लोहियावादी विचारधारा से जोड़कर देखा है। पुस्तक में यह स्पष्ट किया गया है कि समाजवादी आंदोलन ने पिछड़े वर्गों में राजनीतिक प्रतिनिधित्व, सामाजिक आत्मसम्मान और लोकतांत्रिक चेतना को मजबूत किया। लेखक के अनुसार लोहिया के विचारों ने भारतीय राजनीति में सत्ता-संरचना को चुनौती दी तथा सामाजिक रूप से वंचित वर्गों को राजनीतिक पहचान प्रदान की।

यह अध्ययन मुख्यतः चुनावी राजनीति और राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर केंद्रित है। बिहार में समाजवादी चेतना के शैक्षणिक, सांस्कृतिक और वैचारिक पक्षों का विस्तृत विश्लेषण इसमें अपेक्षाकृत कम मिलता है।

शोध अंतराल:-

उपरोक्त साहित्य समीक्षा से स्पष्ट होता है कि डॉ. राम मनोहर लोहिया, भारतीय समाजवाद, सामाजिक न्याय तथा पिछड़ा वर्ग राजनीति पर अनेक विद्वानों द्वारा महत्वपूर्ण अध्ययन किए गए हैं। अधिकांश शोध भारतीय राजनीति, उत्तर भारत के सामाजिक परिवर्तन तथा गैर-कांग्रेसी राजनीति के विकास पर केंद्रित हैं। कुछ अध्ययनों में बिहार में समाजवादी राजनीति और पिछड़े वर्गों के राजनीतिक उदय का उल्लेख अवश्य मिलता है, किंतु बिहार में समाजवादी चेतना के विकास में डॉ. लोहिया के विशिष्ट योगदान का समग्र एवं शोधपरक अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित है।

उपलब्ध साहित्य में मुख्यतः राजनीतिक परिवर्तन और चुनावी प्रतिनिधित्व पर अधिक बल दिया गया है, जबकि बिहार के सामाजिक ढांचे, ग्रामीण समाज, छात्र आंदोलनों, भाषाई चेतना तथा सामाजिक न्याय के व्यापक सांस्कृतिक प्रभावों का विश्लेषण अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है। विशेष रूप से यह प्रश्न अभी भी शोध का विषय है कि लोहियावादी विचारधारा ने बिहार के सामाजिक जीवन, लोकतांत्रिक चेतना तथा पिछड़े वर्गों की सामाजिक पहचान को किस प्रकार प्रभावित किया।

इसके अतिरिक्त, अधिकांश अध्ययनों में लोहियावादी आंदोलन के दीर्घकालीन सामाजिक प्रभावों तथा समकालीन बिहार की राजनीति में उसकी प्रासंगिकता का व्यवस्थित विश्लेषण नहीं मिलता। वर्तमान शोध इसी अंतराल को भरने का प्रयास करेगा। प्रस्तुत अध्ययन बिहार में समाजवादी चेतना के विकास में डॉ. राम मनोहर लोहिया के योगदान का ऐतिहासिक, सामाजिक एवं वैचारिक विश्लेषण प्रस्तुत करेगा, जिससे बिहार की समाजवादी राजनीति और सामाजिक न्याय आंदोलन को अधिक व्यापक रूप में समझा जा सकेगा।

शोध पद्धतिः-

प्रस्तुत शोध ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। अध्ययन में गुणात्मक शोध दृष्टिकोण का उपयोग किया गया है। शोध के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का सहारा लिया गया है।

प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत राम मनोहर लोहिया के भाषण, लेख, पत्र, समाजवादी दस्तावेज तथा समकालीन अभिलेखों का अध्ययन किया गया है। द्वितीयक स्रोतों में पुस्तकों, शोध-पत्रों, जर्नलों, समाचार-पत्रों एवं प्रकाशित शोध-प्रबंधों का उपयोग किया गया है।

अध्ययन में बिहार में समाजवादी चेतना के विकास, सामाजिक न्याय आंदोलन तथा पिछड़ा वर्ग राजनीति के ऐतिहासिक और सामाजिक प्रभावों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

परिणाम एवं चर्चाः-

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि राम मनोहर लोहिया ने बिहार में समाजवादी चेतना के विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके विचारों ने केवल राजनीतिक आंदोलन को दिशा नहीं दी, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को भी प्रभावित किया। बिहार जैसे राज्य में, जहाँ जातिगत असमानता, सामाजिक विषमता तथा आर्थिक पिछड़ापन गहराई से विद्यमान था, लोहियावादी विचारधारा ने वंचित वर्गों में नई सामाजिक और राजनीतिक चेतना उत्पन्न की।

अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि लोहिया के "सामाजिक न्याय" और "समान प्रतिनिधित्व" संबंधी विचारों ने बिहार की राजनीति को व्यापक रूप से प्रभावित किया। "पिछड़ा पावे सौ में साठ" का उनका सिद्धांत पिछड़े वर्गों के राजनीतिक अधिकारों और प्रतिनिधित्व की मांग का प्रमुख आधार बना। इससे बिहार में पिछड़े वर्गों, दलितों और ग्रामीण समाज के बीच राजनीतिक जागरूकता का विस्तार हुआ। समाजवादी आंदोलन के माध्यम से सामाजिक रूप से उपेक्षित वर्गों ने लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी प्रारंभ की।

शोध से यह भी स्पष्ट होता है कि बिहार में समाजवादी चेतना के विकास में छात्र और युवा आंदोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। लोहियावादी विचारधारा ने युवाओं को सामाजिक असमानता, भ्रष्टाचार तथा राजनीतिक वर्चस्व के विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रेरित किया। यही चेतना आगे चलकर सामाजिक न्याय आधारित राजनीति और लोकतांत्रिक आंदोलनों में परिवर्तित हुई। बिहार की समकालीन राजनीति में भी समाजवादी चेतना का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

अध्ययन यह दर्शाता है कि लोहिया ने भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था को लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ी चुनौती माना। बिहार में उनके जाति-विरोधी विचारों ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति प्रदान की। इससे पिछड़े वर्गों में सामाजिक आत्मसम्मान तथा राजनीतिक पहचान की भावना मजबूत हुई। समाजवादी आंदोलन ने सामाजिक न्याय, आरक्षण तथा समान अवसर जैसे मुद्दों को मुख्यधारा की राजनीति का महत्वपूर्ण विषय बना दिया।

हालांकि शोध से यह भी ज्ञात होता है कि बिहार में लोहियावादी आंदोलन अपने मूल आदर्शों को पूर्णतः व्यवहार में लागू करने में सफल नहीं हो सका। समय के साथ समाजवादी राजनीति में वैचारिक विभाजन, जातीय राजनीति तथा राजनीतिक अवसरवाद जैसी प्रवृत्तियाँ भी दिखाई दीं। इसके बावजूद यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि बिहार में सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व की जो चेतना विकसित हुई, उसके पीछे लोहियावादी विचारधारा की केंद्रीय भूमिका रही।

अतः अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि डॉ. राम मनोहर लोहिया का योगदान बिहार में समाजवादी चेतना के विकास का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक आधार रहा है। उनके विचारों ने बिहार के सामाजिक और राजनीतिक ढांचे में दीर्घकालीन परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रेरित किया तथा लोकतांत्रिक समाज में सामाजिक समानता की अवधारणा को मजबूत बनाया।

निष्कर्ष:-

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि राम मनोहर लोहिया भारतीय समाजवादी आंदोलन के ऐसे प्रमुख चिंतक थे जिन्होंने सामाजिक न्याय, समानता और लोकतांत्रिक सहभागिता को भारतीय राजनीति के केंद्र में स्थापित किया। बिहार में उनके विचारों का प्रभाव विशेष रूप से व्यापक और दीर्घकालीन रहा। उन्होंने समाजवाद को केवल आर्थिक दृष्टिकोण तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक परिवर्तन और मानवीय समानता के आंदोलन के रूप में विकसित किया।

बिहार की सामाजिक संरचना लंबे समय तक जातिगत असमानता, सामंती मानसिकता तथा राजनीतिक वर्चस्व से प्रभावित रही थी। ऐसी परिस्थिति में लोहिया की विचारधारा ने वंचित, पिछड़े और दलित वर्गों में नई सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना उत्पन्न की। "पिछड़ा पावे सौ में साठ" जैसे सिद्धांतों ने बिहार में सामाजिक प्रतिनिधित्व और राजनीतिक भागीदारी की मांग को वैचारिक आधार प्रदान किया। इसके परिणामस्वरूप पिछड़े वर्गों में आत्मसम्मान और अधिकार चेतना का विकास हुआ तथा वे लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अधिक सक्रिय हुए।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि बिहार में समाजवादी चेतना के विकास में छात्र आंदोलनों, किसान आंदोलनों तथा सामाजिक न्याय की राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका रही, जिन पर लोहियावादी विचारधारा का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। लोहिया ने जाति-व्यवस्था को भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या माना और सामाजिक समानता को लोकतंत्र की अनिवार्य शर्त बताया। उनके विचारों ने बिहार में सामाजिक न्याय आधारित राजनीति को मजबूत किया तथा लोकतंत्र को व्यापक सामाजिक आधार प्रदान किया।

हालांकि समय के साथ समाजवादी आंदोलन में वैचारिक विखंडन, जातीय राजनीति और राजनीतिक अवसरवाद जैसी चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आईं। कई बार समाजवादी राजनीति अपने मूल आदर्शों से विचलित होती हुई दिखाई दी। इसके बावजूद यह असंदिग्ध है कि बिहार में सामाजिक न्याय, आरक्षण और पिछड़े वर्गों की राजनीतिक भागीदारी को मुख्यधारा की राजनीति का केंद्रीय विषय बनाने में लोहियावादी आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

वर्तमान समय में भी बिहार की राजनीति और सामाजिक विमर्श में लोहिया के विचारों की प्रासंगिकता बनी हुई है। सामाजिक समानता, लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व, ग्रामीण विकास तथा सामाजिक न्याय के प्रश्न आज भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने स्वतंत्रता के बाद थे। इस दृष्टि से डॉ. राम मनोहर लोहिया का योगदान केवल ऐतिहासिक महत्व का विषय नहीं, बल्कि समकालीन भारतीय समाज और राजनीति को समझने का एक महत्वपूर्ण आधार भी है। अतः यह कहा जा सकता है कि बिहार में समाजवादी चेतना के विकास में डॉ. राम मनोहर लोहिया की भूमिका अत्यंत प्रभावशाली, परिवर्तनकारी और ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण रही है।

सुझाव:-

1. बिहार में राम मनोहर लोहिया की समाजवादी विचारधारा पर विश्वविद्यालय स्तर पर अधिक शोध एवं अकादमिक अध्ययन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

2. सामाजिक न्याय, समान प्रतिनिधित्व तथा लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करने हेतु लोहियावादी विचारों को शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में शामिल किया जाना आवश्यक है।

3. बिहार के ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में सामाजिक चेतना और राजनीतिक जागरूकता के लिए समाजवादी मूल्यों पर आधारित जन-जागरूकता कार्यक्रम संचालित किए जाने चाहिए।

4. छात्र एवं युवा वर्ग को सामाजिक समानता, लोकतांत्रिक सहभागिता और संवैधानिक मूल्यों के प्रति जागरूक करने के लिए विचार-विमर्श, संगोष्ठी एवं शोध गतिविधियों का आयोजन किया जाना चाहिए।

5. बिहार में सामाजिक न्याय और समावेशी विकास की नीतियों को प्रभावी बनाने हेतु लोहियावादी सिद्धांतों के व्यावहारिक पक्षों पर पुनर्विचार और गंभीर अध्ययन किया जाना चाहिए।

संदर्भ :

1. लोहिया, राम मनोहर. (1963). *मार्क्स, गांधी और समाजवाद*. हैदराबाद: नवहिंद प्रकाशन. पृ. 45–78.
2. लोहिया, राम मनोहर. (1967). *इतिहास चक्र*. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 112–140.
3. लोहिया, राम मनोहर. (1968). *जाति प्रथा*. इलाहाबाद: समाजवादी साहित्य प्रकाशन. पृ. 22–56.
4. कोठारी, राजनीति. (1970). *भारतीय राजनीति*. नई दिल्ली: ओरिएंट लॉन्गमैन. पृ. 210–245.
5. चंद्र, बिपिन. (1999). *स्वतंत्रता के बाद का भारत*. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स. पृ. 356–389.
6. शाह, घनश्याम. (2004). *भारत में सामाजिक आंदोलन*. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन. पृ. 148–176.
7. जाफ्रेलोट, क्रिस्टोफ. (2003). *उत्तर भारत में निम्न जातियों का उदय*. नई दिल्ली: परमानेंट ब्लैक. पृ. 95–132.
8. नारायण, जयप्रकाश. (1978). *समाजवाद से सर्वोदय*. पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी. पृ. 88–104.
9. ठाकुर, कर्पूरी. (1985). *सामाजिक न्याय और बिहार की राजनीति*. पटना: जनशक्ति प्रकाशन. पृ. 51–73.
10. बेनीपुरी, रामवृक्ष. (1981). *समाजवाद और भारतीय समाज*. पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद. पृ. 66–91.
11. कीर, धनंजय. (1972). *डॉ. राम मनोहर लोहिया: व्यक्तित्व एवं विचार*. मुंबई: पॉपुलर प्रकाशन. पृ. 101–126.
12. सिंह, अखिलेश्वर प्रसाद. (2010). बिहार में समाजवादी आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन. *भारतीय राजनीति समीक्षा*, 12(2), पृ. 45–58.
13. सिन्हा, सच्चिदानंद. (2008). बिहार में पिछड़ा वर्ग राजनीति का विकास. *समाज विज्ञान शोध पत्रिका*, 8(1), पृ. 66–79.
14. यादव, योगेंद्र. (2005). सामाजिक न्याय और उत्तर भारतीय राजनीति. *Economic and Political Weekly*, 40(13), पृ. 1220–1227.
15. मोहन, अरविंद. (2012). *लोहिया: एक पुनर्पाठ*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 134–159.

Received: 04.03.2026 | Accepted: 01.04.2026 | Published: 30.04.2026

छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि

डॉ. मुरारी कुमार सुमन*

smurari565@gmail.com

शोध सार-

छायावाद हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की चरम परिणति मानी जाती है। छायावाद युगीन काव्यधारा अंतर्गत वैविध्यपूर्ण विचारों के मध्य एक सामान्य एकता, राष्ट्र-स्वातंत्र्य के लिए आकुलता, साहित्य में अवगुंठित स्थूलता के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह, द्विवेदी युगीन काव्यगत नैतिकता के प्रतिरोध में वैयक्तिक स्वातंत्र्य की प्रबल कामना, साहित्यिक शुद्धता के बजाय स्वानुभूति की विवृत्ति, परंपरा का अनुगमन करने की अपेक्षा नवीन चेतना की आकांक्षा, यथार्थ के बजाय कल्पना का विधान, छंद मुक्त काव्य रचना तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान की उद्घोषणा के साथ सहज ही देखी जा सकती है। हालांकि छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि के महत्वपूर्ण कारकों में से एक कारक स्वदेश सहित संसार के अन्य देशों में युद्ध से आक्रांत (विश्वयुद्ध) का प्रतिफल अवसाद और वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध जो सामूहिक प्रतिक्रिया हुई, माना जा सकता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि उस प्रतिक्रिया की लहरें भारत में भी पहुंची जिसका असर आम भारतीय जनमानस के साथ-साथ हिंदी साहित्य पर भी अनिवार्यतः पड़ा। 'छायावाद' को वैश्विक युद्ध के विभीषिका की एक आवश्यक साहित्यिक प्रतिक्रिया कही जा सकती है।

बीज शब्द-

छायावाद, काव्य, काव्यधारा, पृष्ठभूमि, हिंदी साहित्य, छंद मुक्त, कारक, प्रवृत्तियाँ, चेतना, युगीन एवं विश्व।

वस्तुतः भारतीय जनता विश्व के भिन्न-भिन्न आंदोलनों से परिचय के उपरांत अधिक साहसी तथा आत्मविश्वास से युक्त हो गई थी। भारत के संघर्षशील मध्य वर्ग की चेतना इस तरह महायुद्ध के बाद पहले से बिलकुल बदल गयी। विश्वयुद्ध के प्रभाव और पाश्चात्य तथा बांग्ला साहित्य के अध्ययन का उस परिवर्तन को लाने में सर्वाधिक योग था। छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि में तत्कालीन मध्यवर्गीय चेतना का परिवर्तन कई-कई रूपों में दिखलाई पड़ता है। उदाहरणस्वरूप: व्यक्तिवाद और व्यक्ति-स्वातंत्र्य के अभिनव आदर्श की स्थापना हेतु प्रतिबद्धता, बुद्धि के विरुद्ध हृदय का अनुगमन, स्थूल के प्रसिद्ध सूक्ष्म का विद्रोह, सामाजिक यथार्थ के बंधनों से मुक्त होकर प्रकृति चित्रण, प्रेम, रहस्य, कल्पना और क्रांति के स्वप्नलोक में स्वच्छंदतापूर्वक पलायन, पुनरावर्तनवादी प्रवृत्तियों का विलोपन, क्षरणशील प्रवृत्तियों, यथा- कलावाद, निराशावाद, अहंवाद आदि का क्रमिक विकास तथा सामाजिक यथार्थवाद का प्रारंभ। छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि में उपरोक्त वर्णित कारकों पर तर्कसंगत विचार करते हुए छायावाद युग को मूलतः 'संक्रांति का युग' कहा जा सकता है।

छायावादी काव्य हिंदी साहित्य जगत के लिए एक ऐसी अमूल्य निधि है जो संपूर्ण भारतीय-भारतीयेतर साहित्य रूपी मानसरोवर में पल्लवित-पुष्पित सुकोमल 'कमल' के सदृश कही जा सकती है। संभवतः इसीलिए छायावादी कवियों के काव्य में राष्ट्र-प्रेम, स्वाधीनता की प्रखर चेतना, अतीत का गौरवबोध, अस्मिता की खोज, त्याग एवं बलिदान की तीव्र उत्कंठा, गीति-गान, काव्यगत स्वच्छंदता की उत्कट अभिलाषा, स्थूल का सूक्ष्म के प्रति विद्रोह, प्रकृति चित्रण का अद्भुत वर्णनादि तथा अन्यान्य कारक विद्यमान थे। वस्तुतः छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि तत्कालीन परिस्थितियों से उद्भूत है। उन दिनों हमारा देश परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़कर आजाद होने को आकुल था। समस्त भारतीय जनमानस में स्वतंत्रता प्राप्ति की आकांक्षा हिलोरें मार रही थीं। संपूर्ण विश्व समुदाय न चाहते हुए भी महायुद्ध (विश्वयुद्ध) की विभीषिका को झेलने के लिए

* **पूर्व शोधार्थी, हिंदी साहित्य विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)**

अभिशप्त था। ऐसे में राष्ट्र-प्रेम की स्वतःस्फूर्त भावना ने भारतवासियों को 'एकता के सूत्र' में पिरो दिया। जिसके फलस्वरुप ब्रिटिश शासन को जड़ से उखाड़ फेंकने हेतु समस्त भारतीय जनता द्वारा दृढ़-संकल्पित होकर सामूहिक उपक्रम किया गया। इसे छायावाद युगीन 'राजनीतिक पृष्ठभूमि' कही जा सकती है। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पुस्तक में 'छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि' के संदर्भ में संकेत करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि:

"तृतीय उत्थान में आकर परिस्थिति बहुत बदल गई। आंदोलनों ने सक्रिय रूप धारण कर लिया और गांव-गांव में राजनीतिक और आर्थिक परतंत्रता के विरोध की भावना जगाई गई। सरकार से कुछ मांगने के स्थान पर अब कवियों की वाणी देशवासियों को ही स्वतंत्रता देवी की बेदी पर बलिदान होने को प्रोत्साहित करने लगी। अब जो आंदोलन चले वे सामान्य जनसमुदायों को भी साथ लेकर चले। इससे उनके भीतर अधिक आवेश और बल का संचार हुआ। सबसे बड़ी बात यह हुई कि आंदोलन संसार के और भागों में चलने वाले आंदोलनों के मेल में लाए गए, जिससे ये क्षोभ की एक सार्वभौम धारा की शाखों से प्रतीत हुए। वर्तमान सभ्यता और लोक की घोर आर्थिक विषमता से जो असंतोष का ऊंचा स्वर पश्चिम में उठा उसकी गूंज यहां भी पहुंची।"[1]

आचार्य के उपरोक्त कथन से अभिप्राय यह है कि तत्कालीन वैश्विक महायुद्ध के वातावरण का प्रभाव हमारे देश पर भी पड़ा जिसके कारण भारत की सोई शक्ति जाग्रत हो उठी और स्वतंत्रता की आकांक्षा लिए आम भारतीयों के साथ-साथ कवियों की ओजमय वाणी भी निरंतर प्रस्फुटित होकर जनता में जोश भरने लगा। इसकी परिणति को 'छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि' के रूप में देखा जा सकता है। तत्कालीन परिस्थितियों के फलस्वरुप उपजा किसान आंदोलन, मजदूर आंदोलन, अछूत आंदोलन, स्वतंत्रता आंदोलन समेत अन्य आंदोलन एक विराट परिवर्तन का उद्घोष कर रहे थे।

यह सब भी इसके हेतु महत्वपूर्ण और समन्वित कारक रहा। हालाँकि इसका कारण जो भी हो, इन आंदोलनों का प्रखर स्वर हिंदी साहित्य के छायावाद काव्यधारा में साधिकार सम्मिलित हुआ। साहित्य समाज का दर्पण यूं ही नहीं कहलाता है; इस बात को परिपुष्ट करते हुए छायावादी कवियों ने अपने तेजोमय काव्य वाणी से उस युग की काव्यधारा को एक नयी दिशा प्रदान की। छायावादी काव्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि के विविध पक्षों पर विचार करने के उपरांत अब उसके 'साहित्यिक पृष्ठभूमि' की विवेचना करना समीचीन होगा। आचार्य शुक्ल इस संदर्भ में पुनः व्याख्यायित करते हैं-

"अतः इस तृतीय उत्थान में जो परिवर्तन हुआ और पीछे 'छायावाद' कहलाया वह उसी द्वितीय उत्थान की कविता के विरुद्ध कहा जा सकता है। उसका प्रधान लक्ष्य काव्यशैली की ओर था, वस्तुविधान की ओर नहीं। अर्थभूमि या वस्तुभूमि का तो उसके भीतर बहुत संकोच हो गया। समन्वित विशाल भावनाओं को लेकर चलने की ओर ध्यान ना रहा।"[2]

उपरोक्त व्याख्या से तात्पर्य यह है कि छायावादी कविता द्वितीय उत्थान अर्थात द्विवेदी युग की कविता के विरुद्ध कही जा सकती है। तत्कालीन छायावादी कवियों का मुख्य ध्येय कविता के वस्तुविधान की ओर न होकर काव्यशैली की ओर ही आधिकाधिक था। इस कारण से काव्य की अर्थभूमि अथवा भावभूमि का अतिशय अतिक्रमण हो गया था। देश के जनसमुदाय की विशाल भावनाओं को एकसाथ लेकर चलने में वे सक्षम न हो सके। इसे एक साहित्यिक संकुचन के रूप में देखा भी जा सकता है। वस्तुतः सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों से साहित्य का चिरकालिक संबंध रहा है और हमेशा रहेगा। जाहिर है कि इस पर वैश्विक प्रभाव भी अनिवार्यतः पड़ते हैं।

ऐसे में इन आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों के साथ संयोजन करके ही कवि की आत्मप्रवृत्ति साहित्य-सर्जना करती है। भले ही उसकी रचनाओं का साहित्यिक विधान भिन्न-भिन्न हो, किंतु वह देशकाल, तत्कालीन परिस्थितियों तथा वैश्विक प्रभावों से अछूता न रह सकेगा, अन्यथा समाज के विकास के साथ साहित्य के विकास का मिलाप न हो सकेगा। छायावादी काव्यधारा मूलतः इसी सामाजिक और साहित्यिक विकास की एक समन्वित धारा या कि एक विश्वव्यापी 'काव्य संलाप' है। छायावादी काव्य की पृष्टभूमि में इस संलाप की अनुगूँज गहरे अर्थों में बार-बार सुनाई पड़ती है, इसे बस ध्यानपूर्वक सुनने और गुनने की आवश्यकता है, तभी इसके संबंध में विस्तृत और व्यापक समझ बन सकेगी। इसकी पृष्टभूमि से जुड़े विभिन्न कारकों पर आचार्य शुक्लजी के अभिमत का उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है।

आचार्य के इस अभिमत- 'छायावाद अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली है', से तार्किक तौर पर असहमति जताते हुए तथा 'सांस्कृतिक परिस्थितियों' को भी छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक कारक मानते हुए हिंदी साहित्य के युगीन समालोचक पंडित नंददुलारे वाजपेयी यह लिखते हैं कि-

"छायावाद को हम शुक्लजी के अनुसार केवल अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली नहीं मान सकेंगे। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और स्वतंत्र दर्शन की नियोजना भी। पूर्ववर्ती काव्य से इसका स्पष्टतः पृथक अस्तित्व और गहराई है।"[3]

हिंदी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान का उपरोक्त कथन छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि के प्राथमिक कारकों में से एक प्रमुख कारक माना जा सकता है। सांस्कृतिक मनोभावना की प्रबलता उस युग-विशेष के काव्य में अपनी एक अलग पहचान रखता है। यह सर्वविदित है कि किसी भी साहित्यिक अथवा काव्यधारा की पृष्ठभूमि को गहराई से समझने के लिए उसके युगीन साहित्य का अध्ययन करना आवश्यक होता है। तत्कालीन विषमताएं व आकांक्षाएं किसी साहित्यकार के माध्यम से उसके काव्य को गर्हित स्वरूप तथा एक ठोस आधार प्रदान करती है। प्रकारांतर से यह कहा जा सकता है कि साहित्यधर्मियों में युग की चेतना अत्यंत गहरे रूप से पूंजीभूत और प्रत्यक्षतः साकार हो उठती है। छायावाद की 'साहित्यिक पृष्ठभूमि' पर विचार करते हुए आचार्य डॉ. नगेंद्र अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं-

"सबसे पहले छायावाद युग के साहित्यिक विरासत पर विचार करना उचित होगा। इस युग से पूर्व का काव्य द्विवेदी युगीन व्यापक नैतिकता से आक्रांत था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने काव्य की सामाजिक उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए साहित्य में 'सरलता, असलियत और जोश' पर बोल दिया। इनमें से असलियत वाली बात सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।"[4]

उक्त कथन से ऐसा प्रतीत होता है मानो द्विवेदीयुगीन काव्य छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि की पूर्वपीठिका हो। उस युगीन रचनाओं में कल्पना के बजाय यथार्थ की प्रधानता थी। चित्रमय शैली की अपेक्षा सरल-सहज काव्य रचने का प्रचलन था। राष्ट्रीय भावनाओं से संपृक्त काव्य रचनाओं का प्रस्फुटन द्विवेदीयुगीन साहित्य अथवा काव्य की प्रमुख मांग थी। छायावादी कवियों ने इस प्रमुख मांग से इतर एक नयी काव्य शैली का प्रतिपादन किया, जो आगे चलकर 'छायावाद' कहलाया। तात्पर्य यह है कि छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि का एक अनिवार्य कटु सत्य था- ब्रिटिश शासन का प्रभाव।

हालांकि छायावादी कवियों ने उस निरंकुश ब्रिटिश सत्ता का मुखर काव्यवाणी से पुरजोर प्रतिरोध किया। एक ओर अंग्रेजी शिक्षा पद्धति ने असीम संभावनाओं के द्वार खोले, वहीं दूसरी ओर उस नयी शिक्षा के माध्यम से सपने साकार करने का अवसर नहीं के बराबर थे। जिससे उत्पन्न क्षोभ तथा व्यक्तिवादिता के स्वर तीव्र से तीव्रतर होते चले गए। छायावादी कवियों द्वारा ब्रिटिश सत्ता के प्रति प्रतिरोध का स्वर इतना मुखर हुआ कि भारतीय जनमानस जागृत हो उठा और परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त होने का सामूहिक आह्वान करने लगा। साहित्य ने फिर से एक बार समाज को दिशा दिखाते हुए स्वाधीनता संग्राम आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने की प्रेरणा दी और जनता को प्रोत्साहित किया। कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने ब्रिटिश शासन का प्रबल प्रतिरोध करते हुए 'कैदी और कोकिला' शीर्षक कविता में लिखा-

"क्या ? देख ना सकती जंजीरों का गहना ?
हथकड़ियां क्यों ? यह ब्रिटिश राज्य का गहना,
कोल्हू का चर्रक चूं ? जीवन की तान,
मिट्टी पर लिक्खे अंगुलियों ने गान ?
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ,
खाली करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कूआं।"[5]

चतुर्वेदी जी की उपरोक्त ओजस्वी पंक्तियों में ब्रिटिश शासन के विरोधी किसी भी ऐसे व्यक्ति की आवाज स्पष्टतः सुनी जा सकती है जिसको भारतीय स्वाधीनता संग्राम हेतु संघर्ष करने के दंडस्वरूप कारागृह में बंदी बनाया गया हो। युगीन कवियों ने जनता को विश्वास दिलाया कि तुम्हारे अंदर असीम शक्ति है, इसको पहचानो और संघर्ष हेतु तैयार रहो।

"छायावादी कविता में कल्पना-प्रवणता, नवीन सादृश्य-विधान, वस्तुओं से पड़ने वाला नवीन प्रभाव और अपरिचय का भाव, यह सब मिलता है। यह समूची काव्य-साधना स्वाधीनता संग्राम के युग की है। अतएव स्वाधीनता संग्राम के केंद्रीय भाव से जुड़ कर ही यह सारी काव्य-साधना फलीभूत होती है, इसीलिए छायावाद अपनी सारी कल्पना-प्रवणता और रहस्य भावना के साथ शक्ति, जागरण और लोकमंगल का काव्य है, जिसमें व्यक्तिगत पीड़ा, दुख और अवसाद भी समाविष्ट हैं।"[6]

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के उपरोक्त कथन का अभिप्राय यह माना जा सकता है कि छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि का स्वरूप स्वाधीनता संग्राम के तत्कालीन परिस्थितियों से गहरे उद्भूत है। छायावादी कवियों द्वारा राष्ट्र-जागरण इन दोनों के मध्य उनकी संबद्धता का प्रमाण है। छायावादी कवियों ने भले ही कविता का रूप बदला, शब्द-संधान में नूतन प्रयोग किया, मुक्त छंद काव्य रचना पर जोर दिया, लयादि में अभिनव प्रयोग किए हों, किंतु फिर भी उनके हृदय में लोकमंगल की भावना का संचार निरंतर गतिमान रहा। संभवतः इसीलिए छायावादियों ने अपने काव्य में स्वानुभूति की विवृत्ति, व्यक्तिक पीड़ा, निज दुःख, नैराश्यपूर्ण अवसाद को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ राष्ट्र को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त कराने की अभिलाषा को अभिव्यंजित करते हुए देशवासियों में राष्ट्रहित हेतु एकत्व की भावना का संचार किया।

इससे यह स्पष्ट होता है कि छायावाद की पृष्ठभूमि में किसी एक कारक का योग नहीं अपितु युगीन परिस्थितियां ही समन्वित रूप से उसके हेतु समाविष्ट हैं। यह बात और है कि उसके मूल में स्वाधीनता संग्राम आंदोलन का प्राधान्य रहा। हालांकि डॉ. रामदरश मिश्र ने इसकी पृष्ठभूमि में 'भारत में पूंजीवादी सभ्यता के व्यापक फैलाव को भी एक अभीष्ट कारक माना है।' अतः इस संदर्भ में डॉ. मिश्र की निम्नलिखित टिप्पणी को यहाँ उल्लेखित करना बेहद समीचीन होगा-

"छायावाद के रूप में यह नवीन कविता पश्चिम से उधार नहीं ली गई है और न तो रवीन्द्र के अनुकरण पर रोपी गयी बल्कि भारतीय समाज में पूंजीवादी सभ्यता के क्रमशः घुलते हुए प्रभाव के कारण जो नवचेतना जागी, उसी के फलस्वरुप यह काव्य निर्मित हुआ।"[7]

उपरोक्त कथन इस बात को परिपुष्ट करता है कि छायावादी काव्य पश्चिम की अनुकृति नहीं है और न ही यह रवीन्द्रनाथ टैगोर का अंधानुकरण है। बल्कि दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि छायावादी काव्य भारतीय मनीषा के जाग्रत मनोभावों और नवचेतना का एक समुच्चय है। यह बात सत्य है कि साहित्य और समाज के मध्य शाश्वत संबंध होता है। यह दोनों एक-दूसरे के सर्वकालिक संपूरक माने जाते हैं। यह भी उतना ही सच है कि हर एक सभ्य समाज के लिए कविता एक प्राणदायिनी औषधि के सदृश रही है और समाज भी उसके लिए काव्य प्रेरणा का एक अजस्र स्रोत। छायावाद काव्यधारा की कविताएं अपने युग-विशेष की अवश्यंभावी परिणति है। यह भी यथार्थ सत्य है कि छायावाद युगीन संघर्षों के बीच में 'मैं' को वाणी चाहिए थी और वाणी को एक सशक्त साहित्यिक प्रणाली की आवश्यकता थी। छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि के संबंध में निम्नलिखित कथन को यहाँ उल्लेखित करना आवश्यक जान पड़ता है-

"नयी काव्य-दृष्टि ने इस विषय-स्थिति को परखा और उसने एक बार फिर काव्य की रसात्मकता प्रतिष्ठित करनी चाही, परंतु उसका कहना था कि यह रसात्मकता भक्तिकाव्य और रीतिकाव्य की प्रथित भूमि पर न होकर नये युग की भाव-भूमि पर पल्लवित हो, नया काव्य, नये युग के प्रतीकों पर आधारित हो और उसमें नये युग की सौंदर्यनिष्ठा तथा स्वच्छंदता प्रस्फुटित हो।"[8]

उपरोक्त कथन छायावाद काव्यधारा की भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि की ओर ध्यानाकर्षित करने के साथ-साथ छायावादी कवियों द्वारा काव्यसृजन के नित नवीन भाव-भूमि की प्रबल आकांक्षा को स्पष्टतः रेखांकित करता द्रष्टव्य है। उस युग के प्रबुद्ध कवियों को यह पूर्वानुमान होने लगा था कि ब्रिटिश शासन (साम्राज्यवादी उपनिवेश) में उनकी अस्मिता अर्थात भारतीय संस्कृति का अस्तित्व खतरे में है। इसके कारण उनका निज स्वाभिमान राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए उद्वेलित होने लगा परंतु अंग्रेजों के दमनकारी रवैये की वजह से उन्हें अपनी स्वतंत्र अभिव्यक्ति करने का मुक्त अवसर न मिल सका। हालांकि तदयुगीन युवा पीढ़ी आंदोलनों की दिशा में यथासंभव सक्रिय थी। देश के जनमानस में अपने गौरवपूर्ण अतीत के प्रति प्रखर एवं सच्ची आस्था का लोक जागरण करना अत्यंत आवश्यक था। ऐसा न किया जाता तो हताश-निराश जनता कुंठा से ग्रसित हो जाती, जिससे संपूर्ण जाति और समाज के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने की प्रबल आशंका थी। पंडित नंददुलारे वाजपेयी के साहित्यिक शब्दों में कहें तो- इस आशंका के मूल में ब्रिटिश शासन की 'आतंककारिणी वीभत्सता' विद्यमान थी। छायावाद युगीन संक्रामक परिस्थितियों पर विचार करते हुए प्रो. सूर्य प्रसाद दीक्षित लिखते हैं:

"छायावादी कवियों ने अनुभव किया कि देश की जनता को जीवित और जाग्रत रखने के लिए उसमें मानवीय रागात्मक बोध और सौंदर्य बोध का सम्मिश्रण करना होगा। इसके लिए उन्होंने प्रकृति को अपना विषय बनाया और समूची संवेदना के साथ मानुषभाव का संदेश दिया।"[9]

छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि के संदर्भ में गंभीरतापूर्वक विचार करने के उपरांत यह कहा जा सकता है कि छायावाद तत्कालीन सामाजिक तथा सांस्कृतिक वस्तुस्थिति की एक प्रतिच्छाया सदृश्य है। ध्यातव्य हो कि राष्ट्रीय जागरण की युगानुकूलता में छायावाद की रहस्यभावना और अंतर्मुखी प्रवृत्ति हिंदी साहित्य के कुछ आलोचकों को भले ही विलक्षण प्रतीत होती है, किंतु असल में केवल यही बात नहीं है। संघर्षकालीन प्रत्येक युग के पहले और उसके आरंभिक वर्षों में अधिकांश देशों के साहित्य में ऐसी समानता अथवा प्रतिच्छाया स्पष्टतः परिलक्षित होती दृष्टिगोचर है।

उदाहणस्वरुप: यह स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है कि फ्रांस की राज्य-क्रांति (सन्1789 ई.) से अत्यंत गहरे प्रभावित जिस रोमैंटिसिज्म (सौंदर्यवाद) का योरोप और इंग्लैंड में प्रचार-प्रसार हुआ, उसमें व्यैयक्तिक स्वछंदता और रहस्यानुभूति की मिश्रित भावनाएं दृष्टिगोचर होती है। वहां भी कवि स्वतंत्रता का आह्वान करते हुए रहस्योन्मुखता की ओर प्रवृत्त थे। एक अन्य उदाहरण: आयरलैंड के स्वतंत्रता संग्राम का विहंगम काल, जब आयरलैंडवासी अपने देश की स्वतंत्रता के लिए युद्धरत थे, वहां के युवा शत्रु की गोलियों के शिकार हो रहे थे, तब भी आयरिश साहित्य का पुनः उत्थान हुआ। 'आयरिश साहित्य' में भी रहस्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, स्वानुभूति और आध्यात्मिकता का ही ज्यादातर प्राधान्य था।

ठीक इसी प्रकार छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि के गहन अनुशीलनोपरांत इसकी विशद विवेचना करने पर सारतः हम यह देखते हैं कि इसकी पृष्ठभूमि में भले ही मूल कारक राष्ट्रीय आंदोलन का परिदृश्य हो, किंतु इसके पार्श्व में समानांतर ही स्वच्छंदतावाद, रहस्यात्मकता और स्वानुभूति की विवृत्ति की प्रवृत्ति भी सहज रूप से परिलक्षित होती है।

देश में चल रहे स्वतंत्रता आंदोलन की संघर्षकालीन तथा विकट परिस्थितियों के मध्य रचे गए इन काव्यों में वैयक्तिकता, रहस्यात्मकता, स्वच्छंद कल्पनाशीलता, नारी सौंदर्य और प्रेम चित्रण, राष्ट्रीय जन-जागरण, आत्म-दर्शनादि से युक्त भावनात्मक अभिव्यक्ति को देखकर यह कहा जा सकता है कि छायावादी कवियों ने स्वतंत्रता को सिद्धांतत: भले ही स्वीकार किया हो, परंतु उनमें राष्ट्र की स्वतंत्रता के सापेक्षतः उनकी काव्य रचनाधर्मिता में व्यैयक्तिक स्वतंत्रता का आग्रहपूर्ण अभिव्यंजना कहीं अधिक महत्वपूर्ण था। छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि के संदर्भ में समालोचक आचार्य डॉ. केसरी नारायण शुक्ल की निम्नलिखित टिप्पणी को यहाँ उल्लेखित करना बेहद समीचीन जान पड़ता है-

"छायावाद का जन्म और अंत दो विगत महायुद्धों की सीमा से घिरा है। यह समय राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय अशांति और हलचल का युग भी है। इसी समय से हमारे राष्ट्रीय जीवन ने क्रियात्मक रूप धारण किया। इसी समय से नवचेतना, उत्साह और कार्यशीलता के दर्शन होते हैं। साथ ही राष्ट्रीय आंदोलनों को कुचलने के लिए अधिकारियों द्वारा जो दमन-चक्र चलाया गया उसके फलस्वरुप जीवन में क्षोभ और निराशा का भी व्यापक प्रसार हुआ। राष्ट्र-जीवन की विवशता और दमन तथा दरिद्रता के परिणाम स्वरूप जो निराशा जगी उसकी अभिव्यक्ति सभी छायावादी कवियों की रचना में मिलती है। निराशावाद छायावाद का अंग बन गया और वर्तमान युग की विवशता और विषम परिस्थिति गीतों के रूप में फूट पड़ी।"[10]

निष्कर्ष:

छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि के संदर्भ में सूक्ष्मतापूर्वक चिंतन और गहन अनुशीलन करने के उपरांत निष्कर्ष के रूप में निश्चय ही यह कहा जा सकता है कि छायावाद युगीन काव्य की पृष्ठभूमि में दो वैश्विक महायुद्ध की विध्वंसक विभीषिका भी एक महत्वपूर्ण कारक थी। यह बात भी द्रष्टव्य हो कि स्वराष्ट्र उस समय स्वतंत्रता संग्राम को निर्णयात्मक परिणाम तक पहुंचाने के लिए कृत-संकल्पित था। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम की संक्रमणकालीन तत्कालीन परिस्थितियों में जागरूक साहित्यिक समुदाय अपनी रचनाओं, कवि वर्ग अपनी कविताओं से जन-जन में राष्ट्र की स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु नि:संकोच ही अपने प्राणों का उत्सर्ग तक कर देने का अखिल भारतीय स्तर पर जन-जागरण कर रहे थे। इस प्रकार समग्र रूप में यह देखा जा सकता है कि व्यैयक्तिक मनोभावों की प्रखर अभिव्यक्ति के साथ-साथ सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन के प्रति भी जवाबदेह छायावादी कवियों द्वारा क्रियात्मक रूप से राष्ट्र-रक्षा हेतु समग्रतापूर्वक योगदान दिया जा रहा था। समाज, साहित्य और संस्कृति, इन सभी मानकों के परिप्रेक्ष्य में निश्चित तौर पर वह समय एक नये युग के आरंभ का था।

राष्ट्र के सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में तत्सामयिक परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य जगत में भी यह परिवर्तन आना अवश्यंभावी ही था। छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि में बदलते युग की तस्वीर तो देखने को मिलती ही है, साथ ही साथ आने वाले समय के प्रति समाज को आगाह करने का प्रयत्न भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। इसके अनुशीलन के उपरांत

समग्रतापूर्वक यह कहा जा सकता है कि- छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि में भारत की सामाजिक चेतना का उभार, राजनीतिक आंदोलनों की उद्वेलनात्मक छाया, सांस्कृतिक पुनर्जागरण की लहरें, साहित्यिक क्रांति की आवश्यकता और विदेशी साहित्य का न्यूनाधिक प्रभाव; इन सभी महत्वपूर्ण कारकों का समन्वित योग रहा। छायावाद वस्तुतः व्यक्ति के अंतर्जगत की वह काव्यधारा है, जिसने हिंदी कविता को आत्माभिव्यक्ति, सौंदर्यबोध और कलात्मकता के उच्चतम शिखर पर आरोहित, प्रतिष्ठित और आलोकित करने में अपनी महती भूमिका निभाई है।

'छायावाद काव्यधारा की पृष्ठभूमि' से संबद्ध सभी कारकों के समन्वित योगदान का सार रूप यही है कि- छायावाद ने सामाजिक उत्थान हेतु युगीन समाज को संतुलित और मर्यादित जीवन का एक स्वतंत्र पाथेय तो दिया ही, साथ-साथ हिंदी साहित्य जगत को भी एक सर्वथा अधुनातन और रचनात्मक काव्यधारा रूपी साहित्यिक अवदान से उसके यश में अपार अभिवृद्धि की है। वस्तुतः 'छायावाद' विश्व साहित्य में भी अद्यतन अपनी प्रासंगिकता बनाये हुए है।

संदर्भ :-

[1] शुक्ल, रामचंद्र. (2015). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 513

[2] शुक्ल, रामचंद्र. (2015). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 515

[3] शरण, दीनानाथ. (1958). *छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन*. लखनऊ : नवयुग ग्रंथागार. पृ. 6

[4] नगेन्द्र. (2015). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. नोएडा : मयूर पेपरबैक्स, पृ. 516

[5] नगेन्द्र. (2015). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. नोएडा : मयूर पेपरबैक्स. पृ. 519

[6] त्रिपाठी, विश्वनाथ. (2015). *हिंदी साहित्य का सरल इतिहास*. हैदराबाद : ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेटलिमिटेड, पृ. 127

[7] मिश्र, रामदरश. (2009). *छायावाद का पुनर्मूल्यांकन*. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 17

[8] मिश्र, श्याम किशोर. (1985). *छायावाद की परिक्रमा*. इलाहबाद : लोकभारती प्रकाशन, पृ. 95

[9] दीक्षित, सूर्य प्रसाद. (2018). *छायावाद : सौ साल*. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 30

[10] टंडन, प्रेमनारायण.(संपा.). (1954). *हिंदी के दो प्रमुखवाद- रहस्यवाद और छायावाद*. लखनऊ : विद्यामंदिर प्रेस, पृ. 46

Received: 05.03.2026 | Accepted: 01.04.2026 | Published: 30.04.2026

संस्कृति क्या है ?

डॉ. संजीव कुमार झा*
jha.sanjeev841@gmail.com

मनुष्य को समस्त जीव-जगत में सर्वश्रेष्ठ होने का गौरव प्राप्त है। इस स्थापना पर विचार करने के क्रम में सर्वप्रथम जो प्रश्न विचारणीय हो जाता है वो यह कि मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ क्यों माना जाता है? मनुष्य ने ऐसी कौन-सी क्षमता विकसित कर ली है जिससे अन्य जीव वंचित रहे हैं। मनुष्य के अंदर ऐसा कौन-सा गुण है जो इसे प्राणी जगत में अन्य जीवों से अलग करता है। इस पर विचार करने के क्रम में कहा जा सकता है कि मनुष्य की सबसे विशिष्ट उपलब्धि संस्कृति ही है जो उसे प्राणी जगत में सर्वश्रेष्ठ बनाती है। मनुष्य इसलिए मनुष्य है क्योंकि उसके पास संस्कृति है। मनुष्य से यदि उसकी संस्कृति छीन ली जाय तो मनुष्य और अन्य जीवों में कोई अंतर नहीं रह जाएगा। संस्कृति के कारण ही मनुष्य जैविक अवधारणा से सामाजिक अवधारणा में तब्दील हो पाया है। संस्कृति के कारण ही मनुष्य बर्बर से सभ्य हो पाया है। मनुष्य में ही वह शक्ति और क्षमता मौजूद है कि वह संस्कृति का निर्माण कर सकता है। लेकिन फिर प्रश्न उठता है कि मनुष्य अपने किन गुणों के कारण यह क्षमता हासिल कर पाया है। इस प्रश्न पर विचार करते हुए प्रसिद्ध मानवशास्त्री लेस्ली व्हाइट ने मनुष्य के पाँच गुणों की ओर इशारा किया है जिसके कारण वह संस्कृति निर्माण का महान कार्य कर पाया है। उनके अनुसार मनुष्य "सीधे खड़े होने के कारण, स्वतंत्रतापूर्वक घुमाए जा सकने वाले हाथ के कारण, तीक्ष्ण एवं केंद्रित की जा सकने वाली दृष्टि के कारण, मेधावी मस्तिष्क के कारण एवं प्रतीकों के निर्माण के कारण।"[1]

एक साथ ये पाँचों गुण मनुष्य के अलावा किसी अन्य जीव में देखने को नहीं मिलते हैं। मनुष्य में ही यह गुण मौजूद होता है कि वह सीधा होकर खड़ा हो सकता है। वह अपने दो पाँवों की सहायता से चलता है एवं दो हाथों से अन्य सारे कार्य करता है। अन्य प्राणियों में यह गुण मौजूद नहीं होता। मनुष्य जब चाहे अपने हाथ को किसी भी दिशा में घूमा सकता है एवं अपनी अंगुलियों की विशिष्ट बनावट के कारण किसी भी वस्तु को सख्ती से पकड़ सकता है। पाँचों अंगुलियों में भी अंगूठे का तो कहना ही क्या! उसके बिना शेष चारों अंगुलियाँ लगभग निरर्थक हो जाती हैं। आज जिन विशाल भवनों, कारखानों, महान कलाओं एवं साहित्यों पर मनुष्य गौरवान्वित होता है इन सबका निर्माण मनुष्य ने अपने इन्हीं हाथों से किया है जिससे उसका संचित ज्ञान सुरक्षित रह पाया है। एक ही स्थान पर बहुत देर तक देखने की क्षमता के कारण ही मनुष्य किसी भी स्थिति का सही-सही अवलोकन कर पाता है एवं चेतनशील होने की वजह से वह नए नए ज्ञान-विज्ञान को विकसित कर पाया है। अपने मेधावी मस्तिष्क के कारण ही वह नए-नए आविष्कार करता रहता है। संस्कृति निर्माण में भाषा एवं प्रतीकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके द्वारा ही मनुष्य अपने विचार का सरलतापूर्वक आदान-प्रदान करता है एवं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान का हस्तांतरण भी करता है। प्रतीकों का निर्माण भी मनुष्य के अलावा जीव जगत में कोई दूसरा नहीं कर सकता है। बक़ौल सच्चिदानन्द सिन्हा, "भाषा की क्षमता शायद मनुष्य का सबसे विलक्षण गुण है। इसके पीछे होती है उसकी अवधारणात्मक क्षमता।"[2]

भाषा संकेतों की एक व्यवस्था है और संकेतों को अवधारणात्मक क्षमता के अभाव में व्यवस्थित नहीं किया जा सकता है। लेकिन यह भी सत्य है कि भाषा के बिना अवधारणात्मक क्षमता को विकसित नहीं किया जा सकता। अवधारणा मानवीय विकास के लिए जितनी आवश्यक है उतनी ही संस्कृति के लिए भी आवश्यक है। "अवधारणा की यह विशेषता होती है कि यह अवधारित वस्तु की उपस्थिति से अलग उसकी एक छवि दिमाग के सामने बरकरार रखती है। इससे हम किसी वस्तु का प्रयोग करने के पहले दिमाग में विभिन्न परिस्थितियों में उसके प्रयोग के संभावित परिणामों की कल्पना कर लेते हैं।"[3] संभावित परिणामों के हर पहलू की पूर्व कल्पना कर लेने की क्षमता मनुष्येतर प्राणियों में नहीं होता क्योंकि वह एक साथ भूत,

* **सहायक प्राध्यापक, डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय वैशाली, बिहार**

वर्तमान और भविष्य के बारे में चिंतन नहीं कर सकता जबकि मनुष्य ने खुद को ऐसा करने में सक्षम बनाया है। मनुष्य का बहुत बड़ा गुण यह है कि वह कल्पना कर सकता है, मनुष्येतर प्राणी में इस गुण का अभाव होता है।

ऐसा नहीं है कि मनुष्य के जिन गुणों की ओर लेसली व्हाइट ने इशारा किया है वे गुण सिर्फ मनुष्यों में ही पाए जाते हैं, वे गुण मनुष्येतर प्राणी में भी पाए जाते हैं और कभी-कभी तो इन प्राणियों में उक्त गुणों कि मौजूदगी बेहतरीन पाई जाती है। लेकिन एक साथ ये सारे गुण मनुष्य के अलावा किसी भी अन्य जीव में नहीं पाए जाते, मनुष्य इसलिए भी प्राणी जगत में सर्वश्रेष्ठ है। इन गुणों की एक साथ मौजूदगी के अभाव में वह संस्कृति निर्माण में सर्वथा अक्षम रह जाता। अब एक महत्त्वपूर्ण सवाल यह उठता है कि जिस संस्कृति के कारण मनुष्य संपूर्ण प्राणी जगत में सर्वश्रेष्ठ होने का गौरव प्राप्त कर पाया वह संस्कृति वास्तव में है क्या?

संस्कृति की व्युत्पत्ति के संदर्भ में विद्वान एकमत नहीं हैं। संस्कृति शब्द के सम-स-कृति ये मुख्य पर्व विभाग हैं। पाणिनी व्याकरण के नियमानुसार सम उपसर्ग के आगे रहने वाले कृति करादि की अवस्था में सुर का आगम हो जाता है। फलतः समकृति और समकार आदि विभाग संस्कृति संस्कार आदि शब्दों में परिणत हो जाते हैं।

ज्ञान कोश के अनुसार, " 'संस्कृति' शब्द 'कृष्टि' शब्द से बना है, जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कृष' धातु से मानी जाती है, जिसका अर्थ है – 'खेती करना', 'संवर्धन करना', 'बोना' आदि। सांकेतिक अथवा लाक्षणिक अर्थ होगा – जीवन की मिट्टी को जोतना और बोना। 'संस्कृति' शब्द का अंग्रेजी पर्याय 'कल्चर' शब्द भी वही अर्थ देता है। कृषि के लिए जिस प्रकार भूमि शोधन और निर्माण की प्रक्रिया आवश्यक है, उसी प्रकार संस्कृति के लिए भी मन के संस्कार-परिष्कार की अपेक्षा होती है।" इस संदर्भ में रामचंद्र वर्मा का मानना है कि "संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा का है जिसका उद्गम 'सम' उपसर्ग के साथ 'क' धातु के संयोग से हुआ है।"[4] वे फिर कहते हैं, "संस्कृति एक सृजनात्मक प्रक्रिया है। यह अपने स्वरूप से स्वयं ही प्रकट होती है। 'स' उपसर्ग के साथ 'कृति' का संयोग होता है। यह संयोग कृति को एक विशिष्ट अर्थ प्रदान करता है। 'कृति' का अर्थ है सृजन अथवा निर्माण।"[5] बृहद हिंदी कोष में शुद्धि, सुधार, परिष्कार, निर्माण तथा पवित्रीकरण को संस्कृति कहा गया है।6[†]
जिस तरह संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं उसी प्रकार संस्कृति की परिभाषा को लेकर विद्वानों के बीच मत भिन्नता देखने को मिलती है क्योंकि विभिन्न ज्ञानानुशासनों से जुड़े विद्वानों ने अपने-अपने अनुशासन के संदर्भ में संस्कृति को परिभाषित करने का प्रयास किया है-

प्रसिद्ध मानवशास्त्री एफ़. बी. टाइलर के अनुसार, "culture is that complex whole which includes knowledge ,belief, art, morals, law, custom and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society"[7]

अर्थात संस्कृति वह समग्र जटिलता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून तथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं एवं आदतों का समावेश होता है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में मनुष्य जीवन बहुत ही जटिल होता है। उसमें बहुत तरह के सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक, ऐतिहासिक आदि उपकरणों की आवश्यकता होती है जिसके सहारे वह वह सामाजिक जीवन जीने में सफल हो पाता है। इन उपकरणों के सामूहिक रूप को ही टाइलर संस्कृति कहते हैं।

मैलीनोवस्की के अनुसार, "संस्कृति जीवन व्यतीत करने की एक संपूर्ण विधि है, जो व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करती है और उसे प्रकृति के बंधनों से मुक्त करती है।"[8]

मैलीनोवस्की की उपर्युक्त परिभाषा पर यदि विचार किया जाए तो पता चलता है कि सर्वप्रथम वे मानते हैं कि संस्कृति एक ऐसी संपूर्ण विधि है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने समाज में जीवन व्यतीत करता है। विधि कोई भी हो उसकी निश्चित रूप-रेखा होती है, उसकी एक निश्चित दिशा भी होती है। विधि में संबंधित तत्त्वों की मात्रा और प्रामाणिकता भी होती है। इसलिए मानव जीवन एक निश्चित सामाजिक सांस्कृतिक दिशा की ओर अग्रसर रहती है। इसलिए संस्कृति मानव जीवन के लिए अपरिहार्य है क्योंकि उसी से मानव जीवन की तमाम आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। आगे जब वे कहते हैं कि वह प्रकृति के बंधनों से मुक्त करती है तो इस तथ्य को एक उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है – डाइनासोर को संभवतः संपूर्ण जीव-जगत में सबसे विशाल जीव माना जाता है किंतु वे नष्ट हो गए, क्योंकि वे बदलती हुई प्रकृति के साथ संतुलन

बनाने में अक्षम हो चुके थे। मनुष्य अपनी संस्कृति के माध्यम से प्रकृति के साथ संतुलन बनाने में अभी तक सफल रहा है क्योंकि उसकी संस्कृति का स्वरूप वही होगा जिससे वह प्रकृति के साथ संतुलन बनाने में सक्षम हो पाए। इसलिए संस्कृति के स्वरूप निर्माण में भौगोलिकता की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी ठंढ़े प्रदेश की वही संस्कृति नहीं होगी जो कि एक रेगिस्तानी प्रदेश की होगी। मनुष्य ने अपने अंदर यह गुण विकसित किया है कि वह बदलती हुई प्रकृति के साथ संतुलन बैठा लेता है जिसमें उसकी संस्कृति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार "संस्कृति मानव समाज में उसी तरह व्याप्त है, जिस तरह फूलों में सुगंध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता। कोई संस्कृति युग-युगांतर में निर्मित होती है।"[9]

दिनकर द्वारा दी गई उक्त परिभाषा पर यदि यदि विचार किया जाए तो पता चलता है कि संस्कृति हमारे सामाजिक जीवन में इस प्रकार घुला मिला है कि उसके बगैर एक कदम भी नहीं चला जा सकता। मानव जीवन का हर व्यवहार, क्रिया-प्रतिक्रिया संस्कृति से ही परिचालित होता है। किसी भी समाज का जो कुछ भी बेहतर है वह उसकी संस्कृति ही है। संस्कृति नित नवीन और चिर पुरातन एक साथ है। किसी भी संस्कृति का निर्माण सैकड़ों-हजारों वर्षों में होता है किंतु उसमें नए-नए सांस्कृतिक मूल्य जुड़ते रहते हैं जिससे उसमें नवीनता का समावेश होता रहता है। वस्तुतः संस्कृति निर्माण की प्रक्रिया बहुत ही जटिल होती है।

टी. एस. इलियट का मानना है कि, "शिष्ट व्यवहार, ज्ञानार्जन, कलाओं के आस्वादन आदि के अतिरिक्त किसी जाति अथवा राष्ट्र की वे समस्त क्रियाएँ व कार्य जो उसे विशिष्ट बनाते हैं, उसकी संस्कृति के अंग हैं।"[10]

टी. एस. इलियट मनुष्य के व्यवहार और उसकी रचनत्मक क्षमता को ही संस्कृति मानते हैं। मनुष्य अपनी जिस रचनात्मक क्षमता के बल पर जीव-जगत में श्रेष्ठ बना हुआ है वह उसकी संस्कृति है। जहाँ वे क्रिया और कार्य की बात करते है वहाँ क्रिया और कार्य का तात्पर्य मनुष्य के व्यवहार से है। इसी के साथ उन्होंने संस्कृति की विशिष्टता को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है। प्रत्येक संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान होती है जो उसे दूसरी संस्कृति से अलग करती है। इसलिए किसी भी संस्कृति को जब एक-दूसरे से अलगाया जाता है तो उस संस्कृति से जुड़े लोगों के व्यवहार, उसकी रचनात्मकता और उसकी कार्य प्रकृति को ही आधार बनाया जाता है। अर्थात उसी के आधार पर एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति को अलगाया जाता है और वही उसकी अपनी पहचान होती है जो उसे अन्य संस्कृतियों के बीच विशिष्ट बनाती है।

एडवर्ड सईद के अनुसार, "As I used the word 'Culture' means two things in particular. First of all, it means all those practices like the arts of description, communication, and representation, that have relative autonomy from the economic, social, and political realms and that often exist in aesthetic forms, one of whose principal aims is pleasure. Included of course, are both the popular stock of lore about distant part of the world and specialized knowledge available in such learned disciplines such ethnography, historiography, philology, sociology and literacy history."[11]

एडवर्ड सईद संस्कृति को बड़े परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास करते हैं। एक तरफ वे उन व्यवहारों को संस्कृति कहते हैं जिसका संबंध मनुष्य की रचनात्मकता से है, जैसे- वर्णन, संप्रेषण एवं प्रकाशन- कला। इसका स्वायत्त संबंध आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र से है अर्थात इन दोनों के बीच संबंध तो है किंतु इन सबका अपना स्वायत्त अस्तित्व भी है। संस्कृति को वे जब दूसरे अर्थों में ग्रहण करते हैं वहाँ उसका संबंध समूचे विश्व में उपस्थित ज्ञान के विशाल संग्रह से है । नृवंश, इतिहास लेखन, दर्शन, समाजशास्त्र, भाषा शास्त्र, शैक्षिक इतिहास जैसे अन्यान्य ज्ञानानुशाशन जो आपस में एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं इसे भी वे संस्कृति ही कहते हैं क्योंकि ये सारे ज्ञानानुशासन वस्तुतः दुनिया को समझने के लिए ही हैं जिसका लक्ष्य दुनिया को ज्यादा-से-ज्यादा सुंदर बनाना और सुख प्राप्त करना है।

रेमंड विलियम्स के अनुसार, "Culture includes the organization of production, the structure of the family, the structure of institutions which express or govern social relationships, the characteristic forms through which members of the society communicate"[12]

रेमंड विलियम्स का मानना है कि संस्कृति का निर्माण संस्थाओं के उत्पादन, परिवार की संरचना एवं संस्थाओं की संरचना के मिलने से होता है क्योंकि ये सारी संस्थाएँ सामाजिक रिश्ते एवं संवाद को विशेष रूप से अभिव्यक्त करती हैं। इसमें

वे सभी उपकरण हैं जिसको समाज के सदस्य आपस में अभिव्यक्त करते हैं। परिवार की आंतरिक संरचना और उसके सदस्यों के बीच संबंधों की प्रकृति संस्कृति निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। परिवार समाज की प्राथमिक इकाई होता है। इसलिए परिवार के सदस्यों के बीच का आपसी संबंध, उसके मूल्य, उसकी मान्यताएँ, किसी भी संस्कृति की विशिष्टता को भौतिक रूप से अभिव्यक्त करता है। यदि परिवार की आंतरिक संरचना में स्त्री हाशिए पर है तो उस संस्कृति को स्त्री विरोधी ही माना जाएगा क्योंकि वहाँ वह परिवार वस्तुतः अपनी संस्कृति को ही व्यक्त कर रहा होता है। इसलिए रेमंड विलियम्स ने परिवार की संरचना को संस्कृति का महत्त्वपूर्ण कारक माना है। किसी भी संस्कृति का स्वरूप कैसा होगा यह बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर करता है कि संबंधित समाज की उत्पादक संस्थाओं का स्वरूप कैसा है। वे संस्थाएँ किस रूप में काम करती हैं। उन संस्थाओं से जुड़े सदस्यों के बीच आपसी संबंध कैसे हैं। उत्पादन की प्रकृति कैसी है। उसी तरह वे सभी संस्थाएँ जो किसी भी समाज को व्यवस्थित रूप से चलाने में मदद करती हैं, उनकी कार्य पद्धति उनका दृष्टिकोण आदि उस समाज की संस्कृति को परिभाषित करने में मदद करती हैं। इसी के साथ वे सभी माध्यम जिनके द्वारा समाज के सदस्य आपस में भाव और विचारों का आदान-प्रदान करते है, संस्कृति को विशिष्टता प्रदान करते हैं।

लेवी स्ट्रॉस के अनुसार, "Man is a biological being as well as a social individual. Among the responses which he gives to external stimuli, some are the full product of his nature, and others of his condition... But it is not always easy to distinguish between the two... Culture is neither simply juxtaposed to nor simply superposed over life. In a way, culture substitutes itself to life, in another way culture uses and transforms life to realise a synthesis of a higher order."[13]

लेवी स्ट्रॉस मानते हैं कि मनुष्य एक जैविक अवधारणा तो है ही किंतु उसी के साथ सामाजिक अवधारणा भी है। उसके अंदर अन्य जीवों की तरह ही कुछ प्राकृतिक गुण पाए जाते हैं तो कुछ अपने समाज और संस्कृति के द्वारा अर्जित गुण भी मौजूद होते हैं जिसे वह सप्रयास सीखता है। ये दोनों तरह के गुण समय और परिस्थिति के हिसाब से वह व्यक्त करता रहता है। लेकिन इन दोनों तरह के गुणों के बीच अंतर करना हमेशा आसान नहीं होता है। संस्कृति न तो सरल ही होती है और न ही अध्यारोपित होती है। संस्कृति तो मानव जीवन का स्थानापन्न है। पूरी प्राकृतिक व्यवस्था के साथ मनुष्य जिस तरह संगति बिठा पाता है एवं जिस संश्लेषण क्रिया के माध्यम से वह अपने जीवन को बदल पाता है उसमें संस्कृति की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। आदमी एक जैविक होने के साथ ही सामाजिक व्यक्ति है।

न्गुगी वा थ्योंगों के अनुसार, "संस्कृति एक ऐसी चीज है जिसमें किसी समुदाय विशेष के मूल्यों का, उसके विश्व दृष्टिकोण का और अन्य समुदायों के साथ उसके संबंध का आधार निहित है। कुल मिलाकर संस्कृति उनकी समग्र गतिविधियों की वैचारिक अभिव्यक्ति है।"[14]

प्रसिद्ध समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे के अनुसार, "सीखे हुए व्यवहार प्रकारों को, उस समग्रता को, जो किसी समूह को वैशिष्ट्य प्रदान करती है, संस्कृति की संज्ञा दी जा सकती है।"[15]

मनुष्य को जिस प्रकार वंशानुक्रम में अपने माता-पिता से शरीर प्राप्त होता है उसी तरह संस्कृति प्राप्त नहीं होती। जिन व्यवहारों के समुच्चय को संस्कृति कहा जाता है वह व्यवहार मनुष्य को सीखना पड़ता है। संस्कृति वंशानुगत गुण नहीं बल्कि एक अर्जित गुण है जिसके माध्यम से कोई भी मनुष्य या समाज समस्त प्राणी जगत में तो खुद को अलग करता ही है साथ-साथ दूसरे समाज और समूह से भी स्वयं को अलग कर पाता है। इसी कारण प्रत्येक संस्कृति एक विशिष्ट संस्कृति बन जाती है। श्यामचरण दुबे ने उन्हीं व्यवहार समुच्चय को संस्कृति कहा है।

उपर्युक्त परिभाषाओं को यदि ध्यान में रखा जाए तो सच्चिदानंद सिन्हा का कहना सर्वथा उचित जान पड़ता है कि, "यह सोचना तो हिमाकत होगी कि विविध विषयों के जानकार, कलाकार, रंगकर्मी एवं पत्रकार जब सांस्कृतिक अतिक्रमण या ह्रास की बात करते हैं तो संस्कृति के बारे में बिना समझदारी के करते हैं। लेकिन ऐसा जरूर लगता है कि विभिन्न विधाओं से जुड़े लोग इसे अपनी अपनी विशेष विधा में और अपनी ही समस्या के नजरिए से देखते हैं और संस्कृति के संबंध में कोई समग्र दृष्टि नहीं प्रस्तुत करते। यहाँ पाँच अंधों और हाथी वाली प्रचलित कथा की स्थिति चरितार्थ होती है। पाँचों अंधे अपने-अपने अनुभव के अनुसार सच्ची बात ही कहते हैं, लेकिन पाँचों अनुभवों को जोड़ हाथी का कोई स्पष्ट समझदारी नहीं बना पाते और इस तरह सभी अपने-अपने सत्य का दावा पेश करते हुए झगड़ते रहते हैं।"[16]

उपर्युक्त वक्तव्यों के आलोक में सच्चिदानंद सिन्हा के इस वक्तव्य पर यदि विचार करें तो जितने भी विद्वानों ने संस्कृति को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है उन सब की भिन्न-भिन्न दिशा है। किसी के लिए साहित्य और कला ही संस्कृति है तो किसी के लिए दुनिया में संग्रहित समस्त ज्ञान राशि ही संस्कृति है। कोई समस्त मानव व्यवहार को ही संस्कृति मानता है तो किसी के लिए समाज को गति प्रदान करने वाली समस्त संस्थाओं का समुच्चय ही संस्कृति है।

निष्कर्ष

सभी विद्वानों ने संस्कृति को परिभाषित तो किया है किंतु किसी की परिभाषा को अंतिम और पूर्णतः सटीक नहीं माना जा सकता लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि ये परिभाषाएँ गलत हैं। कहना सिर्फ इतना भर है कि संस्कृति वस्तुतः इतनी जटिल और विशाल अवधारणा है कि इसे पूर्णतः परिभाषित नहीं किया जा सकता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आलोक में कहा जा सकता है कि संस्कृति मानव जीवन की वह महान उपलब्धि है जिसमें बौद्धिक, शारीरिक आदि सभी प्रकार के श्रम, आत्मिक उपलब्धियाँ एवं अनुभव आदि सब सन्निहित होता है। संस्कृति अतीत का सार, वर्तमान की ऊर्जा एवं प्रेरणा तथा भविष्य के लिए दिशा संकेत है।

संदर्भ :

1. गुप्ता, एवं शर्मा. (2005). *समाजशास्त्र*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशंस. (प्रथम संस्करण), पृ. 183-184.
2. सिन्हा, सच्चिदानंद. (2001). *संस्कृति विमर्श*. बीकानेर: वाग्देवी प्रकाशन. (प्रथम संस्करण), पृ. 37.
3. सिन्हा, सच्चिदानंद. (2001). *संस्कृति विमर्श*. बीकानेर: वाग्देवी प्रकाशन. (उपरोक्त).
4. वर्मा, रामचन्द्र. (सं.). (2007). *मानक हिंदी कोश*. प्रयाग: हिंदी साहित्य सम्मेलन, पृ. 1045.
5. वर्मा, रामचन्द्र. (सं.). (2007). *मानक हिंदी कोश*. प्रयाग: हिंदी साहित्य सम्मेलन, पृ. 1045.
6. प्रसाद, कालिका., सहाय, राजवल्लभ., एवं श्रीवास्तव, मुकुंदीलाल. (2010). *बृहद हिंदी कोश*. वाराणसी: इंडिया ज्ञान मंडल लिमिटेड, पृ. 1390.
7. मिश्र, उमाशंकर. (2008). *नृतत्त्व चिंतन* (छठा संस्करण). दिल्ली: पलका प्रकाशन, पृ. 3.
8. गुप्ता, एवं शर्मा. (2010). *समाजशास्त्र*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशंस, पृ. 185.
9. Welfare and creation. (2013, August 24). Retrieved from http://vidyutwithyuth.in/2013/08/blogpost_7180.html
10. Welfare and creation. (2013, August 24). Retrieved from http://vidyutwithyuth.in/2013/08/blogpost_7180.html
11. Retrieved from http://www.sundayobserver.lk/2011/02/13/mon05.asp
12. Retrieved from http://www.wsu.edu:8001/vcwsu/commons/topics/culture/culture-definitions/raymond-williams.html
13. Retrieved from http://varenne.tc.columbia.edu/hv/clt/and/culture_def.html
14. न्गुगी वा थ्योंगो. (1999). *भाषा, संस्कृति और राष्ट्रीय अस्मिता*. दिल्ली: सारांश प्रकाशन, पृ. 51.
15. Retrieved from http://www.sahityakunj.net/Pustak/SamajAurSanskriti_Amrit/saaNskrit_evam_saamajik_jeevan.html
16. सिन्हा, सच्चिदानंद. (2001). *संस्कृति विमर्श*. बीकानेर: वाग्देवी प्रकाशन, पृ. 9.

Received: 07.03.2026 | Accepted: 01.04.2026 | Published: 30.04.2026

समकालीन हिन्दी नाटकों में आधुनिकता का स्वरूप

डॉ. कोमलकुमार परदेशी[1]

komalkumarpardeshi@gmail.com

सारांश:

समकालीन हिन्दी नाट्य साहित्य में आधुनिकता का स्वरूप बहुआयामी, गतिशील और जटिल है, जो बदलते सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों से गहराई से जुड़ा हुआ है। आधुनिकता यहाँ केवल समयबोध का संकेत नहीं, बल्कि एक ऐसी वैचारिक दृष्टि है जो परंपरागत मान्यताओं, रूढ़ियों और स्थापित संरचनाओं को प्रश्नांकित करते हुए नए जीवन-मूल्यों की खोज करती है। हिन्दी नाटक के क्षेत्र में यह आधुनिकता कथ्य, शिल्प, भाषा और रंग-प्रयोग सभी स्तरों पर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। नाटककारों ने अपने समय की जटिलताओं जैसे शहरीकरण, मध्यवर्गीय संकट, अस्तित्वगत अकेलापन, स्त्री-चेतना, वर्ग-संघर्ष और राजनीतिक विडंबनाओं को अपने नाटकों में सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया है। समकालीन नाटककारों ने पारंपरिक कथानक संरचना, चरित्र-निर्माण और संवाद शैली से हटकर नवीन तकनीकों का प्रयोग किया है। प्रतीकवाद, बिंबात्मकता, विखंडित कथानक, फ्लैशबैक तकनीक तथा नॉन-लीनियर संरचना जैसे शिल्पगत प्रयोग नाटकों को अधिक प्रभावशाली और विचारोत्तेजक बनाते हैं। रंगमंचीय प्रस्तुति में भी प्रकाश, ध्वनि, मंच-सज्जा और अभिनय शैली में नवाचार देखने को मिलता है, जो आधुनिकता की अभिव्यक्ति को और सशक्त बनाता है। इसके अतिरिक्त, समकालीन हिन्दी नाटकों में भाषा का स्वरूप भी आधुनिकता के अनुरूप परिवर्तित हुआ है। समकालीन नाटकों में स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श और हाशिए के समुदायों की आवाज़ को भी प्रमुखता मिली है, जो आधुनिकता के लोकतांत्रिक और समावेशी स्वरूप को दर्शाता है। नाटककार अब सत्ता-संरचनाओं, लैंगिक असमानताओं और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध अपने नाटकों के माध्यम से प्रतिरोध दर्ज करते हैं। इस प्रकार, आधुनिकता का स्वरूप यहाँ एक आलोचनात्मक चेतना के रूप में उभरता है। यह आधुनिकता न केवल नाट्य-साहित्य को नवीन दिशा प्रदान करती है, बल्कि समाज में परिवर्तन और जागरूकता लाने का एक प्रभावी माध्यम भी बनती है।

Keywords:

समकालीन हिन्दी नाटक, आधुनिकता, नाट्य-शिल्प, यथार्थवाद, सामाजिक सरोकार, स्त्री-विमर्श, प्रयोगधर्मिता, रंगमंच, भाषा-परिवर्तन, आलोचनात्मक चेतना।

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में नाटक एक ऐसी सशक्त विधा है, जो साहित्य और रंगमंच दोनों के माध्यम से समाज के यथार्थ को प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत करती है। नाटक न केवल शब्दों का साहित्य है, बल्कि दृश्य, श्रव्य और संवेदनात्मक अनुभव का समन्वित रूप भी है। इसी कारण यह समाज के परिवर्तनशील स्वरूप को सबसे प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करने में सक्षम होता है। समकालीन हिन्दी नाटकों के संदर्भ में "आधुनिकता" एक केन्द्रीय अवधारणा के रूप में उभरती है, जो न केवल समय-विशेष का द्योतक है, बल्कि एक वैचारिक, सांस्कृतिक और सौंदर्यबोधात्मक दृष्टिकोण भी है। आधुनिकता का सामान्य अर्थ नवीनता या वर्तमानता से लिया जाता है, किंतु साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में इसका आशय कहीं अधिक व्यापक और गहन है। यह परंपरागत मान्यताओं, रूढ़ियों और स्थिर संरचनाओं के प्रति प्रश्नाकुलता और आलोचनात्मक दृष्टि को जन्म देती है। आधुनिकता व्यक्ति की स्वतंत्रता, तर्कशीलता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा से जुड़ी हुई है। हिन्दी नाट्य साहित्य में यह आधुनिक चेतना विशेष रूप से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद

---

[1] **सहायक प्रोफेसर, हिंदी साहित्य विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)**

अधिक सशक्त रूप में विकसित हुई, जब भारतीय समाज ने राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर व्यापक परिवर्तन का अनुभव किया।

समकालीन हिन्दी नाटकों में आधुनिकता का स्वरूप केवल कथ्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शिल्प और प्रस्तुति के स्तर पर भी उतना ही महत्वपूर्ण है। पारंपरिक नाट्य संरचनाओं जैसे रैखिक कथानक, स्पष्ट चरित्र-चित्रण और एकरेखीय संवाद शैली को चुनौती देते हुए नाटककारों ने नए प्रयोग किए हैं। प्रतीकात्मकता, बिंबात्मकता, विखंडित कथानक, नॉन-लीनियर संरचना, और आत्मपरक संवाद जैसे शिल्पगत तत्व आधुनिकता की अभिव्यक्ति को सशक्त बनाते हैं। रंगमंच के स्तर पर भी आधुनिकता ने हिन्दी नाटकों को नई दिशा प्रदान की है। मंच-सज्जा, प्रकाश-व्यवस्था, ध्वनि-प्रयोग और अभिनय शैली में निरंतर नवाचार देखने को मिलते हैं। प्रयोगधर्मी रंगकर्मियों ने नाटक को पारंपरिक मंचों से बाहर निकालकर खुले स्थानों, सड़कों और वैकल्पिक मंचों तक पहुँचाया है, जिससे नाटक अधिक जनसुलभ और प्रभावशाली बन सका है। इस संदर्भ में हिन्दी रंगमंच ने सामाजिक संवाद और जनचेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। समकालीन हिन्दी नाटकों में आधुनिकता का एक महत्वपूर्ण आयाम हाशिए के वर्गों और विमर्शों की उपस्थिति भी है। स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी विमर्श और अन्य सामाजिक मुद्दों को नाटककारों ने प्रमुखता से उठाया है।

भाषा के स्तर पर भी समकालीन हिन्दी नाटकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है। शुद्ध, साहित्यिक और अलंकृत भाषा के स्थान पर अब बोलचाल की भाषा, स्थानीय शब्दावली और बहुभाषिक प्रयोगों को अपनाया जा रहा है। इससे नाटक अधिक यथार्थपरक और सहज बनते हैं तथा दर्शकों के साथ उनका सीधा संवाद स्थापित होता है। भाषा की यह सहजता और विविधता आधुनिकता के उस स्वरूप को रेखांकित करती है, जो जीवन के वास्तविक अनुभवों के अधिक निकट है। इस प्रकार, समकालीन हिन्दी नाटकों में आधुनिकता का स्वरूप बहुआयामी और जटिल है, जो कथ्य, शिल्प, भाषा और रंगमंच सभी स्तरों पर अभिव्यक्त होता है। यह आधुनिकता केवल परिवर्तन का संकेत नहीं देती, बल्कि एक नई चेतना, नई दृष्टि और नए मूल्यों की स्थापना का प्रयास भी करती है। समकालीन नाटककार अपने समय के साक्षी और व्याख्याता के रूप में समाज की गहन पड़ताल करते हैं और अपने नाटकों के माध्यम से दर्शकों को सोचने, प्रश्न करने और परिवर्तन की दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते हैं।

आधुनिकता की अवधारणा और हिन्दी नाटक

आधुनिकता साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विमर्श की एक केंद्रीय अवधारणा है, जो केवल समय-विशेष का संकेत नहीं, बल्कि एक व्यापक वैचारिक, दार्शनिक और सामाजिक परिवर्तन का प्रतीक है। आधुनिकता का संबंध तर्कशीलता, व्यक्तिवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सामाजिक परिवर्तन और परंपरागत मान्यताओं के पुनर्मूल्यांकन से है। हिन्दी साहित्य, विशेषतः नाटक विधा में, आधुनिकता का प्रवेश एक निर्णायक मोड़ के रूप में देखा जाता है, जिसने न केवल विषय-वस्तु को प्रभावित किया, बल्कि शिल्प, भाषा और रंगमंचीय प्रस्तुति को भी नए आयाम प्रदान किए। रामविलास शर्मा के अनुसार, "आधुनिकता का अर्थ केवल नवीनता नहीं, बल्कि समाज और साहित्य में तर्क और यथार्थ के आधार पर परिवर्तन की चेतना है"[2] (शर्मा, 1995)। यह कथन स्पष्ट करता है कि आधुनिकता मूलतः एक आलोचनात्मक दृष्टि है, जो रूढ़ियों और परंपराओं को चुनौती देती है। इसी संदर्भ में नामवर सिंह आधुनिकता को "परंपरा के साथ संवाद और संघर्ष की प्रक्रिया" मानते हैं[3] (सिंह, 2002)।

हिन्दी नाटक में आधुनिकता का विकास विशेष रूप से स्वतंत्रता-उत्तर काल में तीव्र हुआ। इस समय भारतीय समाज में तीव्र सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन हो रहे थे—जैसे शहरीकरण, औद्योगीकरण, शिक्षा का प्रसार और लोकतांत्रिक मूल्यों का उदय। इन परिवर्तनों ने नाटककारों को नई दृष्टि और संवेदनाएँ प्रदान कीं। परिणामस्वरूप, नाटक केवल पौराणिक या ऐतिहासिक कथानकों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि समकालीन जीवन की जटिलताओं का सशक्त माध्यम बन गया। आधुनिक हिन्दी नाटक में व्यक्ति की आंतरिकता, अस्तित्वगत संकट और सामाजिक विसंगतियों को प्रमुखता दी गई है। मोहन राकेश का नाटक "आषाढ़ का एक दिन" इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, जिसमें पात्रों के मनोवैज्ञानिक द्वंद्व और जीवन की अनिश्चितता

[2] शर्मा, रामविलास. (1995). भारतीय साहित्य की भूमिका. पृ. 42

[3] सिंह, नामवर. (2002). कविता के नए प्रतिमान. पृ. 12

को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। इसी प्रकार, धर्मवीर भारती के "अंधा युग" में आधुनिकता का स्वरूप ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के माध्यम से समकालीन नैतिक संकट और युद्धोत्तर स्थिति की त्रासदी के रूप में सामने आता है।

शिल्पगत दृष्टि से भी आधुनिक हिन्दी नाटक में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते हैं। पारंपरिक नाट्य-रचना की रैखिक संरचना को तोड़ते हुए नाटककारों ने प्रतीकात्मकता, बिंबात्मकता और नॉन-लीनियर तकनीकों का प्रयोग किया है। गिरीश कर्नाड और बादल सरकार जैसे नाटककारों ने प्रयोगधर्मिता को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया, जिससे हिन्दी नाटक में आधुनिकता का स्वरूप और अधिक सशक्त हुआ। भाषा के स्तर पर भी आधुनिकता ने हिन्दी नाटक को प्रभावित किया है। अब नाटकों में बोलचाल की भाषा, स्थानीयता और बहुभाषिकता का प्रयोग बढ़ा है, जिससे नाटक अधिक यथार्थपरक और प्रभावी बन सके हैं। इस प्रकार, आधुनिकता ने हिन्दी नाटक को एक जीवंत, समकालीन और आलोचनात्मक विधा के रूप में स्थापित किया है।

समकालीन हिन्दी नाटकों का सामाजिक यथार्थ

समकालीन हिन्दी नाट्य साहित्य समाज के यथार्थ का सजीव और प्रभावी दर्पण है। नाटक की विशेषता यह है कि वह केवल पाठ्य अनुभव तक सीमित नहीं रहता, बल्कि मंच पर प्रत्यक्ष होकर सामाजिक वास्तविकताओं को दर्शकों के सामने उपस्थित करता है। आधुनिक समय में जब समाज तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, तब हिन्दी नाटककारों ने अपने युग की जटिलताओं, अंतर्विरोधों और विसंगतियों को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है। समकालीन हिन्दी नाटकों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण बहुआयामी रूप में सामने आता है। इसमें शहरी जीवन की समस्याएँ, मध्यवर्गीय संघर्ष, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, पारिवारिक विघटन, लैंगिक असमानता और राजनीतिक विडंबनाएँ प्रमुख विषय के रूप में उपस्थित हैं। नामवर सिंह का मत है कि "साहित्य का वास्तविक दायित्व समाज के यथार्थ को उद्घाटित करना और उसे बदलने की चेतना उत्पन्न करना है"[4] (सिंह, 2002)। यह विचार समकालीन हिन्दी नाटकों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

समकालीन नाटककारों ने व्यक्ति के आंतरिक द्वंद्व और सामाजिक दबावों के बीच के संघर्ष को भी गहराई से चित्रित किया है। मोहन राकेश के नाटक "आधे-अधूरे" में मध्यवर्गीय परिवार की विघटित संरचना और संबंधों की अस्थिरता को अत्यंत यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक में आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ और व्यक्ति का मानसिक तनाव स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है। *"आधे-अधूरे"* आधुनिक शहरी मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं और पारिवारिक विघटन का सशक्त दस्तावेज़ है। इस नाटक के संवादों में संबंधों की टूटन, असंतोष और पहचान के संकट का स्पष्ट चित्रण मिलता है। सावित्री का यह कथन "कोई भी आदमी पूरा नहीं होता... सब के सब आधे-अधूरे हैं।" यह संवाद आधुनिक जीवन की मूल विडंबना को उजागर करता है, जहाँ व्यक्ति पूर्णता की तलाश में निरंतर भटकता रहता है, किंतु उसे केवल अपूर्णता ही प्राप्त होती है।

एक अन्य संवाद में महेंद्रनाथ की असहायता झलकती है "मैं इस घर में एक रबर-स्टैम्प भी नहीं... सिर्फ एक नाम मात्र हूँ।"यह कथन परिवार में पुरुष की पारंपरिक भूमिका के विघटन और उसकी पहचान के संकट को दर्शाता है। इस प्रकार, नाटक के संवाद मध्यवर्गीय जीवन के तनाव, आर्थिक अस्थिरता और संबंधों की जटिलता को उजागर करते हैं।

इसी प्रकार, धर्मवीर भारती के "अंधा युग" में युद्ध और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न नैतिक पतन तथा सामाजिक विघटन को रूपायित किया गया है। *"अंधा युग"* ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित होते हुए भी समकालीन सामाजिक और नैतिक संकट का सशक्त प्रतीक है। महाभारत के युद्ध के बाद की स्थिति के माध्यम से नाटककार ने आधुनिक समाज की विडंबनाओं को व्यक्त किया है। नाटक का यह प्रसिद्ध संवाद "यह अंधों का युग है... जहाँ दृष्टि होते हुए भी लोग देखना नहीं चाहते।" यह संवाद आधुनिक समाज की नैतिक अंधता और संवेदनहीनता को उजागर करता है।

अश्वत्थामा का यह कथन—"मैं प्रतिशोध हूँ... मैं विनाश हूँ।" मानव के भीतर पल रहे हिंसा, क्रोध और विनाशकारी प्रवृत्तियों का प्रतीक है। यह संवाद युद्धोत्तर समाज की मानसिकता और मूल्य-संकट को दर्शाता है। इसी प्रकार, धृतराष्ट्र की असहायता और अंधता केवल शारीरिक नहीं, बल्कि नैतिक और राजनीतिक अंधता का प्रतीक है, जो सत्ता के पतन और सामाजिक विघटन को उजागर करता है। यह नाटक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में होते हुए भी समकालीन समाज की त्रासदी और

[4] सिंह, नामवर. (2002). कविता के नए प्रतिमान. पृ.86

मूल्य-संकट को उजागर करता है। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा का कथन उल्लेखनीय है कि "साहित्य में यथार्थ का चित्रण केवल बाह्य घटनाओं का वर्णन नहीं, बल्कि सामाजिक शक्तियों और अंतर्विरोधों का उद्घाटन है"[5] (शर्मा, 1995)।

समकालीन हिन्दी नाटकों में सामाजिक यथार्थ का एक महत्वपूर्ण पक्ष हाशिए के वर्गों की उपस्थिति भी है। स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श और अन्य उपेक्षित समुदायों की समस्याओं को नाटककारों ने प्रमुखता से उठाया है। स्त्री पात्र अब केवल सहायक भूमिका में नहीं, बल्कि अपने अधिकारों और पहचान के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई देती हैं। यह परिवर्तन आधुनिक समाज में बढ़ती जागरूकता और समानता की आकांक्षा को दर्शाता है। भाषा और शिल्प के स्तर पर भी सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति अधिक सशक्त हुई है। नाटककारों ने बोलचाल की भाषा, स्थानीय शब्दावली और यथार्थपरक संवाद शैली का प्रयोग किया है, जिससे नाटक अधिक जीवंत और प्रभावी बन सके हैं। मंचीय प्रस्तुति में भी यथार्थवादी तत्वों का समावेश किया गया है, जो दर्शकों को सीधे प्रभावित करता है।

नाट्य-शिल्प में आधुनिकता

समकालीन हिन्दी नाटकों में आधुनिकता का स्वरूप नाट्य-शिल्प के स्तर पर अत्यंत प्रभावशाली और परिवर्तनकारी रूप में सामने आता है। नाट्य-शिल्प से आशय नाटक की संरचना, कथानक-विन्यास, चरित्र-चित्रण, संवाद-शैली तथा रंगमंचीय प्रस्तुति से है। आधुनिकता ने इन सभी तत्वों को परंपरागत सीमाओं से मुक्त कर उन्हें अधिक लचीला, प्रयोगधर्मी और बहुआयामी बना दिया है। इस परिवर्तन के कारण हिन्दी नाटक अधिक जटिल, गहन और विचारोत्तेजक बन सका है। परंपरागत हिन्दी नाटकों में कथानक प्रायः रैखिक होता था, जिसमें घटनाएँ क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ती थीं और नाटक का अंत स्पष्ट समाधान के साथ होता था। किन्तु समकालीन नाटकों में इस संरचना को तोड़ते हुए विखंडित कथानक, नॉन-लीनियर तकनीक और बहुस्तरीय समय-चेतना का प्रयोग किया गया है। नामवर सिंह के अनुसार, "आधुनिक साहित्य की पहचान उसकी संरचनात्मक जटिलता और जीवन के बहुआयामी यथार्थ को पकड़ने की क्षमता में निहित है"[6] (सिंह, 2002)। यह कथन आधुनिक नाट्य-शिल्प पर भी समान रूप से लागू होता है।

समकालीन हिन्दी नाटकों में प्रतीकात्मकता और बिंबात्मकता का प्रयोग भी आधुनिकता का एक महत्वपूर्ण संकेत है। नाटककार सीधे-सीधे घटनाओं को प्रस्तुत करने के बजाय प्रतीकों और संकेतों के माध्यम से गहरे अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं। उदाहरणतः धर्मवीर भारती के "अंधा युग" में महाभारत की पृष्ठभूमि का प्रयोग आधुनिक समय के नैतिक संकट और युद्धोत्तर विडंबनाओं को व्यक्त करने के लिए किया गया है। यहाँ कथानक से अधिक प्रतीकात्मक अर्थों की महत्ता है। चरित्र-चित्रण के स्तर पर भी आधुनिकता ने महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। अब पात्र आदर्शवादी या एकरेखीय न होकर जटिल, द्वंद्वग्रस्त और मनोवैज्ञानिक रूप से गहरे होते हैं। मोहन राकेश के "आधे-अधूरे" में पात्रों का आंतरिक द्वंद्व और उनकी अस्थिर मानसिक स्थिति आधुनिक जीवन की विडंबनाओं को उजागर करती है। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा का कथन उल्लेखनीय है कि "आधुनिक साहित्य का चरित्र-निर्माण व्यक्ति के सामाजिक और मानसिक अंतर्विरोधों को प्रकट करता है"[7] (शर्मा, 1995)।

संवाद-शैली में भी आधुनिकता के प्रभाव स्पष्ट हैं। समकालीन नाटकों में संवाद अधिक यथार्थपरक, संक्षिप्त और प्रभावशाली हो गए हैं। अब संवाद केवल कथानक को आगे बढ़ाने का माध्यम नहीं, बल्कि पात्रों की मानसिकता और सामाजिक स्थिति को अभिव्यक्त करने का साधन भी हैं। बोलचाल की भाषा, स्थानीयता और बहुभाषिकता का प्रयोग संवादों को अधिक जीवंत बनाता है। रंगमंचीय प्रस्तुति के स्तर पर भी आधुनिकता ने नाट्य-शिल्प को नई दिशा दी है। प्रकाश, ध्वनि, मंच-सज्जा और अभिनय शैली में नए प्रयोग किए गए हैं। बादल सरकार ने 'थर्ड थियेटर' के माध्यम से पारंपरिक रंगमंच की सीमाओं को तोड़ा और नाटक को खुले स्थानों तथा जनसामान्य के बीच ले गए। इसी प्रकार गिरीश कर्नाड ने लोकनाट्य और आधुनिक शिल्प का समन्वय कर नाट्य-प्रस्तुति को समृद्ध किया। नाट्य-शिल्प में आधुनिकता ने हिन्दी नाटक को नई संरचना, नई संवेदना और नई अभिव्यक्ति प्रदान की है।

---

[5] शर्मा, रामविलास. (1995). भारतीय साहित्य की भूमिका. पृ. 64

[6] सिंह, नामवर. (2002). कविता के नए प्रतिमान. पृ.79

[7] शर्मा, रामविलास. (1995). भारतीय साहित्य की भूमिका. पृ. 103

रंगमंच और प्रयोगधर्मिता

समकालीन हिन्दी नाट्य-साहित्य में रंगमंच और प्रयोगधर्मिता का संबंध अत्यंत गहरा और अभिन्न है। नाटक केवल लिखित साहित्य नहीं, बल्कि मंच पर जीवंत होकर दर्शकों से संवाद स्थापित करने वाली विधा है। इस दृष्टि से रंगमंच नाटक की आत्मा है, और प्रयोगधर्मिता उसके विकास का प्रमुख साधन। आधुनिकता के प्रभाव में हिन्दी रंगमंच ने पारंपरिक सीमाओं को तोड़ते हुए नए रूप, तकनीक और प्रस्तुति-शैलियों को अपनाया है, जिससे नाटक अधिक प्रभावशाली, गतिशील और सामाजिक रूप से प्रासंगिक बन सका है। प्रयोगधर्मिता का आशय नाट्य-प्रस्तुति में नवीन तकनीकों, रूपों और विचारों के समावेश से है। समकालीन हिन्दी रंगमंच में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से उभरकर सामने आई है। पारंपरिक रंगमंच जहाँ स्थिर मंच, सीमित दर्शक-वर्ग और निश्चित प्रस्तुति-शैली तक सीमित था, वहीं आधुनिक रंगमंच ने इन सीमाओं को तोड़कर खुले स्थानों, सड़कों और वैकल्पिक मंचों को अपनाया। बादल सरकार ने 'थर्ड थियेटर' की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए नाटक को जनसामान्य के बीच ले जाने का प्रयास किया। उनका मानना था कि "रंगमंच को जीवित और प्रभावी बनाए रखने के लिए उसे जनता के जीवन से सीधे जुड़ना आवश्यक है"[8] (सरकार, 2012)।

इसी प्रकार, हबीब तनवीर ने लोकनाट्य परंपराओं को आधुनिक रंगमंच के साथ जोड़कर एक नया प्रयोगधर्मी स्वरूप प्रस्तुत किया। उनके नाटकों में छत्तीसगढ़ी लोकशैली, संगीत और नृत्य का समावेश देखने को मिलता है, जो आधुनिकता और परंपरा के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस संदर्भ में नेमिचंद्र जैन का कथन उल्लेखनीय है कि "आधुनिक रंगमंच की शक्ति उसके प्रयोगों में निहित है, जो उसे समय के साथ बदलने और समाज से जुड़े रहने में सक्षम बनाते हैं"[9] (जैन, 2005)। समकालीन रंगमंच में तकनीकी प्रयोग भी आधुनिकता का महत्वपूर्ण अंग हैं। प्रकाश-व्यवस्था, ध्वनि-प्रभाव, मंच-सज्जा और मल्टीमीडिया तकनीकों का उपयोग नाटकों को अधिक प्रभावशाली और आकर्षक बनाता है। इन तकनीकों के माध्यम से नाटककार और निर्देशक जटिल भावनाओं और विचारों को दृश्य रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम होते हैं।

भाषा और अभिव्यक्ति

समकालीन हिन्दी नाटकों में भाषा और अभिव्यक्ति का स्वरूप आधुनिकता के प्रभाव से अत्यंत परिवर्तनशील और बहुआयामी हो गया है। नाटक, एक मंचीय विधा होने के कारण, उसकी भाषा केवल साहित्यिक न होकर संवादपरक, जीवंत और संप्रेषणीय होती है। आधुनिक काल में हिन्दी नाटककारों ने भाषा को कृत्रिम अलंकरणों और शास्त्रीय बंधनों से मुक्त कर उसे अधिक यथार्थपरक, सहज और जीवन के निकट बनाया है। इस प्रकार, भाषा न केवल कथानक को आगे बढ़ाने का माध्यम बनती है, बल्कि पात्रों की मानसिकता, सामाजिक स्थिति और सांस्कृतिक परिवेश को भी प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करती है। परंपरागत हिन्दी नाटकों में भाषा प्रायः संस्कृतनिष्ठ, साहित्यिक और औपचारिक हुआ करती थी, जिससे उसकी संप्रेषणीयता सीमित हो जाती थी। इसके विपरीत, समकालीन नाटकों में बोलचाल की भाषा, लोक-प्रयोगों और क्षेत्रीय शब्दावली का व्यापक उपयोग देखने को मिलता है। नामवर सिंह के अनुसार, "भाषा साहित्य की आत्मा है, और उसकी जीवंतता इस बात में है कि वह जीवन के वास्तविक अनुभवों से कितनी जुड़ी हुई है"[10] (सिंह, 2002)। यह कथन आधुनिक हिन्दी नाटकों की भाषा पर पूर्णतः लागू होता है।

समकालीन नाटककारों ने भाषा को केवल संप्रेषण का साधन न मानकर, उसे अभिव्यक्ति का सशक्त उपकरण बनाया है। मोहन राकेश के नाटक "आधे-अधूरे" में संवाद अत्यंत संक्षिप्त, तीखे और यथार्थपरक हैं, जो पात्रों के अंतर्द्वंद्व और पारिवारिक तनाव को प्रभावी ढंग से उजागर करते हैं। इसी प्रकार, हबीब तनवीर के नाटकों में लोकभाषा और क्षेत्रीय बोलियों का प्रयोग नाटक को अधिक प्रामाणिक और जीवंत बनाता है। आधुनिक हिन्दी नाटकों में बहुभाषिकता भी एक महत्वपूर्ण विशेषता के रूप में उभरकर सामने आई है। नाटककारों ने हिन्दी के साथ-साथ उर्दू, अंग्रेज़ी तथा विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों और वाक्यांशों का प्रयोग किया है। इससे न केवल भाषा की अभिव्यक्ति में विविधता आती है, बल्कि सामाजिक यथार्थ

[8] सरकार, बादल. (2012). एवं इंद्रजीत. पृ. 19

[9] जैन, नेमिचंद्र. (2005). रंगमंच और नाटक. पृ. 37

[10] सिंह, नामवर. (2002). कविता के नए प्रतिमान. पृ. 62

का अधिक सटीक चित्रण भी संभव होता है। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा का कथन उल्लेखनीय है कि "भाषा का विकास समाज के विकास के साथ होता है, और साहित्य में यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है"[11] (शर्मा, 1995)।

अभिव्यक्ति के स्तर पर भी समकालीन हिन्दी नाटकों में नवीनता और प्रयोगधर्मिता देखने को मिलती है। अब नाटककार केवल प्रत्यक्ष संवादों पर निर्भर नहीं रहते, बल्कि प्रतीकों, बिंबों और मौन का भी प्रभावी उपयोग करते हैं। कई बार मौन स्वयं एक सशक्त अभिव्यक्ति बन जाता है, जो शब्दों से अधिक गहन अर्थ संप्रेषित करता है। इसके अतिरिक्त, संवादों में विडंबना, व्यंग्य और अंतःसंवाद का प्रयोग भी आधुनिक नाटकों की विशेषता है। ये तत्व नाटक को अधिक गहराई और बहुस्तरीयता प्रदान करते हैं, जिससे दर्शक नाटक के अर्थ को विभिन्न स्तरों पर ग्रहण कर पाते हैं। समकालीन हिन्दी नाटकों में भाषा और अभिव्यक्ति का स्वरूप आधुनिकता के अनुरूप विकसित हुआ है। यह भाषा अधिक जीवंत, संप्रेषणीय और यथार्थपरक है, जो नाटक को प्रभावी और समकालीन बनाती है। भाषा और अभिव्यक्ति के इन नए रूपों ने हिन्दी नाट्य साहित्य को समृद्ध किया है और उसे व्यापक दर्शक-वर्ग से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्त्री-विमर्श और अन्य विमर्श

समकालीन हिन्दी नाटकों में स्त्री-विमर्श और अन्य विमर्शों (विशेषतः दलित, आदिवासी और हाशिए के वर्गों से जुड़े विमर्श) की उपस्थिति आधुनिकता के लोकतांत्रिक और समावेशी स्वरूप को रेखांकित करती है। आधुनिकता ने जहाँ एक ओर व्यक्ति की स्वतंत्रता और समानता के विचार को बल दिया, वहीं दूसरी ओर उन वर्गों और समूहों को भी अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान किया, जो लंबे समय तक मुख्यधारा के साहित्य और समाज में उपेक्षित रहे। इस संदर्भ में हिन्दी नाटक एक सशक्त माध्यम के रूप में उभरता है, जिसने स्त्री और अन्य वंचित वर्गों की आवाज़ को मंच पर स्थापित किया। स्त्री-विमर्श समकालीन हिन्दी नाटकों का एक महत्वपूर्ण आयाम है, जिसमें स्त्री की पहचान, अस्मिता, अधिकार और स्वतंत्रता के प्रश्नों को प्रमुखता से उठाया गया है। परंपरागत नाटकों में स्त्री पात्र प्रायः सहायक, त्यागमयी या आदर्शवादी रूपों में सीमित थे, किंतु आधुनिक नाटकों में वे अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और संघर्षों के साथ एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में सामने आती हैं। मन्नू भंडारी के नाट्य-रूपांतर "महाभोज" में स्त्री पात्र सामाजिक अन्याय और राजनीतिक शोषण के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाते हुए दिखाई देती हैं। इसी प्रकार, मोहन राकेश के "आधे-अधूरे" में 'सावित्री' का चरित्र आधुनिक स्त्री के संघर्ष, असंतोष और आत्म-पहचान की जटिलताओं को उजागर करता है।

इस संदर्भ में मोहन राकेश का कथन उल्लेखनीय है कि "आधुनिक साहित्य में स्त्री केवल विषय नहीं, बल्कि एक सक्रिय दृष्टि के रूप में उपस्थित होती है"[12] (राकेश, 2004)। यह कथन समकालीन हिन्दी नाटकों में स्त्री की बदलती भूमिका को स्पष्ट करता है। स्त्री अब केवल पुरुष-प्रधान समाज की परिधि में नहीं, बल्कि उसके केंद्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है। दलित-विमर्श भी समकालीन हिन्दी नाटकों का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, जिसमें सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव और शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध की भावना दिखाई देती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे लेखकों ने अपने साहित्य के माध्यम से दलित जीवन की पीड़ा और संघर्ष को सामने लाया, जिसका प्रभाव नाट्य-साहित्य पर भी पड़ा। इस संदर्भ में हबीब तनवीर का कथन महत्वपूर्ण है कि "साहित्य का दायित्व है कि वह समाज के शोषित और वंचित वर्गों की आवाज़ को अभिव्यक्ति दे"[13] (तनवीर, 2008)।

आदिवासी और अन्य हाशिए के समुदायों से जुड़े विमर्श भी आधुनिक हिन्दी नाटकों में धीरे-धीरे स्थान प्राप्त कर रहे हैं। इन नाटकों में इन समुदायों की संस्कृति, संघर्ष और अस्तित्व की समस्याओं को रेखांकित किया जाता है। यह प्रवृत्ति आधुनिकता के उस स्वरूप को दर्शाती है, जो विविधता और समावेशिता को महत्व देता है। अभिव्यक्ति के स्तर पर भी इन विमर्शों ने नाट्य-शिल्प और भाषा को प्रभावित किया है। नाटककारों ने लोकभाषाओं, क्षेत्रीय बोलियों और सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग कर इन वर्गों की जीवन-शैली को अधिक प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया है। इससे नाटक अधिक यथार्थपरक

---

[11] शर्मा, रामविलास. (1995). भारतीय साहित्य की भूमिका. पृ. 29

[12] राकेश, मोहन. (2004). आधे-अधूरे. पृ. 31

[13] तनवीर, हबीब. (2008). चरणदास चोर. पृ. 19

और प्रभावी बन सके हैं। समकालीन हिन्दी नाटकों में स्त्री-विमर्श और अन्य विमर्श आधुनिकता की उस चेतना को अभिव्यक्त करते हैं, जो समानता, न्याय और स्वतंत्रता के मूल्यों पर आधारित है। ये विमर्श न केवल साहित्य को समृद्ध करते हैं, बल्कि समाज में परिवर्तन और जागरूकता लाने का भी कार्य करते हैं।

प्रमुख नाटककारों का योगदान

समकालीन हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास में प्रमुख नाटककारों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और निर्णायक रहा है। इन नाटककारों ने न केवल नाट्य-विधा को नई दिशा दी, बल्कि आधुनिकता के विविध आयामों जैसे सामाजिक यथार्थ, मनोवैज्ञानिक गहराई, प्रयोगधर्मिता और वैचारिक चेतना को भी सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया। इनके प्रयासों से हिन्दी नाटक पारंपरिक सीमाओं से मुक्त होकर एक सशक्त और समकालीन विधा के रूप में स्थापित हुआ। मोहन राकेश को आधुनिक हिन्दी नाटक का प्रमुख स्तंभ माना जाता है। उनके नाटकों में व्यक्ति के आंतरिक द्वंद्व, संबंधों की जटिलता और आधुनिक जीवन की विडंबनाएँ स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। "आधे-अधूरे" और "आषाढ़ का एक दिन" जैसे नाटक आधुनिकता के मनोवैज्ञानिक और अस्तित्ववादी पक्ष को उजागर करते हैं। इस संदर्भ में विजय तेंदुलकर का कथन उल्लेखनीय है कि "मोहन राकेश ने हिन्दी नाटक को आधुनिक संवेदना और शिल्प प्रदान किया"[14] (तेंदुलकर, 2008)।

इसी प्रकार, धर्मवीर भारती का योगदान हिन्दी नाट्य-साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनका नाटक "अंधा युग" आधुनिकता के नैतिक संकट और युद्धोत्तर त्रासदी का सशक्त चित्रण करता है। उन्होंने पौराणिक कथानक के माध्यम से समकालीन समस्याओं को प्रस्तुत कर नाट्य-शिल्प में एक नया आयाम जोड़ा। धर्मवीर भारती के अनुसार, "अंधा युग ने इतिहास और वर्तमान के बीच एक सेतु का निर्माण किया है"[15] (भारती, 2003)। विजय तेंडुलकर और बादल सरकार जैसे नाटककारों ने हिन्दी नाटक को व्यापक भारतीय परिप्रेक्ष्य में समृद्ध किया। तेंडुलकर के नाटकों में सामाजिक यथार्थ, सत्ता-संबंध और मानवीय क्रूरता का तीखा चित्रण मिलता है, जबकि बादल सरकार ने 'थर्ड थियेटर' के माध्यम से नाटक को जनसामान्य से जोड़ा और प्रयोगधर्मिता को नई दिशा दी।

इसी क्रम में हबीब तनवीर का योगदान भी उल्लेखनीय है, जिन्होंने लोकनाट्य परंपराओं और आधुनिक रंगमंच का सफल समन्वय किया। उनके नाटकों में लोकभाषा, लोकसंगीत और क्षेत्रीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जिससे हिन्दी नाटक अधिक जीवंत और जनसुलभ बन सका। दक्षिण भारतीय नाटककार गिरीश कर्नाड ने भी भारतीय नाट्य परंपरा को आधुनिक दृष्टि से पुनर्परिभाषित किया। उनके नाटकों में इतिहास, मिथक और आधुनिकता का समन्वय देखने को मिलता है, जिसने हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं के नाटकों को भी प्रभावित किया। इन सभी नाटककारों के योगदान को समग्र रूप में देखते हुए कहा जा सकता है कि इन्होंने हिन्दी नाट्य साहित्य को केवल विषय-वस्तु के स्तर पर ही नहीं, बल्कि शिल्प, भाषा और रंगमंचीय प्रस्तुति के स्तर पर भी समृद्ध किया है। इनकी रचनाएँ आधुनिक जीवन की जटिलताओं, सामाजिक अंतर्विरोधों और मानवीय संवेदनाओं का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करती हैं।

निष्कर्ष

समकालीन हिन्दी नाटकों में आधुनिकता का स्वरूप बहुआयामी, जटिल और गहन वैचारिक चेतना से संपृक्त है। यह आधुनिकता केवल समय की नवीनता का संकेत नहीं, बल्कि एक ऐसी दृष्टि है जो सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया को गति देती है। समकालीन नाटककारों ने अपने समय के यथार्थ को गहराई से समझते हुए उसे नाटकीय रूप में अभिव्यक्त किया है, जिससे हिन्दी नाटक एक प्रभावी सामाजिक दस्तावेज़ के रूप में उभरकर सामने आया है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आधुनिकता का प्रभाव हिन्दी नाटकों के सभी आयामों कथ्य, शिल्प, भाषा और रंगमंच पर व्यापक रूप से पड़ा है। सामाजिक यथार्थ के चित्रण में जहाँ व्यक्ति के अस्तित्वगत संकट, पारिवारिक विघटन, स्त्री और दलित विमर्श तथा राजनीतिक विसंगतियाँ प्रमुख विषय बनकर उभरते हैं, वहीं नाट्य-शिल्प में प्रयोगधर्मिता, विखंडित संरचना

[14] तेंडुलकर, विजय. (2008). घासीराम कोतवाल. पृ. 71

[15] भारती, धर्मवीर. (2003). अंधा युग. पृ. 138

और प्रतीकात्मकता के माध्यम से अभिव्यक्ति को नए आयाम प्राप्त हुए हैं। भाषा के स्तर पर भी सहजता, बोलचाल की शैली और बहुभाषिकता ने नाटकों को अधिक यथार्थपरक और संप्रेषणीय बनाया है।

मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, बादल सरकार और हबीब तनवीर जैसे नाटककारों ने हिन्दी नाटक को आधुनिक संवेदना और प्रयोगधर्मिता से समृद्ध किया है। इनके नाटकों में आधुनिक जीवन की जटिलताओं, अंतर्विरोधों और मूल्य-संकट का प्रभावी चित्रण मिलता है, जो दर्शकों को केवल मनोरंजन ही नहीं, बल्कि विचार और आत्ममंथन के लिए भी प्रेरित करता है। आधुनिकता के साथ उत्पन्न मूल्य-संकट ने भी समकालीन नाटकों को गहराई प्रदान की है। व्यक्ति के भीतर उत्पन्न द्वंद्व, सामाजिक अस्थिरता और नैतिक मूल्यों के विघटन को नाटककारों ने संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया है। इस प्रकार, हिन्दी नाटक आधुनिक समाज की चुनौतियों और समस्याओं को उजागर करते हुए परिवर्तन की दिशा में एक सक्रिय भूमिका निभाता है। समकालीन हिन्दी नाटकों में आधुनिकता का स्वरूप केवल साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि एक सशक्त वैचारिक आंदोलन है, जो समाज और व्यक्ति दोनों को प्रभावित करता है। हिन्दी नाटक आज भी अपने प्रयोगों, संवेदनाओं और सामाजिक प्रतिबद्धता के कारण प्रासंगिक और जीवंत बना हुआ है। यह न केवल वर्तमान यथार्थ को अभिव्यक्त करता है, बल्कि भविष्य की संभावनाओं की ओर भी संकेत करता है।

संदर्भ सूची :

शर्मा, रामविलास. (1995). *भारतीय साहित्य की भूमिका*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

सिंह, नामवर. (2002). *कविता के नए प्रतिमान*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

राकेश, मोहन. (2004). आधे-अधूरे. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

राकेश, मोहन. (2005). *आषाढ़ का एक दिन*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

भारती, धर्मवीर. (2003). *अंधा युग*. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ.

तेंडुलकर, विजय. (2008). *घासीराम कोतवाल*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

सरकार, बादल. (2012). *एवं इंद्रजीत*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

तनवीर, हबीब. (2008). *चरणदास चोर*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

कर्नाड, गिरीश. (2010). *तुगलक*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

जैन, नेमिचंद्र. (2005). *रंगमंच और नाटक*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

भंडारी, मन्नू. (2001). *महाभोज*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

वाल्मीकि, ओमप्रकाश. (2005). *जूठन*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.

द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (1998). *हिन्दी साहित्य की भूमिका*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

मिश्र, विद्यानिवास. (2001). *भारतीयता की पहचान*. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन.

अग्रवाल, रामचंद्र. (2007). *हिन्दी नाटक: स्वरूप और विकास*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

Received: 07.03.2026 | Accepted: 01.04.2026 | Published: 30.04.2026

बाल अपराध: कारण एवं निवारण

डॉ. रवेन्द्र राजपूत *

ravendrarajput@hotmail.com

सारांश

"बाल अपराध: कारण एवं निवारण" शोध-पत्र में बाल अपराध (Juvenile Delinquency) की अवधारणा, उसके प्रकार, कारण, निवारण तथा उपचार पर विस्तार से चर्चा की गई है। लेखक ने विभिन्न विद्वानों जैसे वैलेन्टाइन, स्किनर, गुड आदि की परिभाषाओं के माध्यम से स्पष्ट किया है कि जब कोई बालक सामाजिक एवं कानूनी मानदण्डों के विरुद्ध व्यवहार करता है, तो उसे बाल अपराध कहा जाता है। शोध-पत्र में बाल अपराध के स्वरूप को दो भागों में बाँटा गया है—

1. *चुनौतीपूर्ण प्रवृत्तियाँ जैसे चोरी, झूठ बोलना, स्कूल से भागना, लड़ाई-झगड़ा आदि।*
2. *यौन अपराध जैसे हस्तमैथुन, समलैंगिक अपराध, अश्लील प्रदर्शन आदि।*

शोध पत्र में बाल अपराध के अनेक कारण बताए गए हैं, जिनमें आनुवांशिक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, पारिवारिक, विद्यालयीय, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारण प्रमुख हैं। परिवार का विघटन, निर्धनता, माता-पिता का कठोर व्यवहार, अशिक्षा, बेरोजगारी तथा विद्यालयों में अनुशासनहीनता को बाल अपराध के प्रमुख कारण माना गया है। इसके अतिरिक्त बुरी संगति, गंदी बस्तियाँ, शहरीकरण तथा मनोरंजन के अभाव जैसे सामाजिक कारण भी बाल अपराध को बढ़ावा देते हैं।

शोध-पत्र में बाल अपराध की रोकथाम हेतु परिवार, विद्यालय, समाज तथा राज्य की संयुक्त भूमिका पर बल दिया गया है। अच्छे पारिवारिक वातावरण, उचित मार्गदर्शन, खेल एवं मनोरंजन, योग्य शिक्षकों की नियुक्ति, आर्थिक सहायता तथा नैतिक शिक्षा को निवारण के प्रमुख उपाय बताया गया है। साथ ही मनोवैज्ञानिक एवं वैधानिक उपचार जैसे मनोविश्लेषण, खेल चिकित्सा, किशोर न्यायालय, सुधार गृह तथा प्रोबेशन आदि की उपयोगिता भी स्पष्ट की गई है।

मुख्य शब्द

बाल अपराध, अपराध प्रवृत्ति, पारिवारिक वातावरण, सामाजिक कारण, मनोवैज्ञानिक कारण, बाल मनोविज्ञान, किशोर न्यायालय, सुधार गृह

बाल अपराध की परिभाषा -

1. "मोटे तौर पर "बाल अपराध" शब्द किसी कानून के भंग किये जाने का उल्लेख करता है।" - **वैलेन्टाइन**

2. "बाल अपराध किसी कानून का उल्लंघन है जो किसी वयस्क द्वारा किया जाता है।" - **स्किनर**

3. "बाल अपराधी वह युवक है जो बार-बार उन कार्यों को करता है जो अपराधों के रूप में दण्डनीय है। - **क्लासमियर एवं गुडविन**

4. "कोई भी बालक जिसका व्यवहार सामान्य सामाजिक व्यवहार से इतना भिन्न हो जाय कि उसे समाज विरोधी कहा जा सके बाल अपराधी है।" - **गुड**

बाल अपराध का स्वरूप या प्रकार -
(क) चुनौती देने वाली प्रवृत्तियाँ - 1. चोरी करना, 2. धूम्रपान करना, 3. झूठ बोलना, 4. निरुद्देश्य घूमना, 5. पलायन शीलता, 6. लड़ना-झगड़ना, 7. स्कूल की वस्तुयें नष्ट करना, 8. पीड़ा देना, 9. शेखी बघारना, 10. दीवाल पर लिखना

* **एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक-शिक्षा विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़**

(ख)यौन अपराध – i) भिन्न लिंगी अपराध:- इच्छा न रखने वाली छोटी आयु के सदस्य के साथ। इच्छा न रखने वाले छोटी आयु के सदस्य के साथ।

ii) विपर्याप्त – हस्तमैथुन, समलिंगी अपराध, निर्लज्ज प्रदर्शन का नंगापन

बाल अपराध के कारण (Causes of Delinquency):-

मेडिनस एवं जॉन्सन का मत है - "सामाजिक समस्या के रूप में बाल अपराध में वृद्धि होती हुई जान पड़ती है। यह वृद्धि तो जन संख्या की सामान्य वृद्धि के परिणाम स्वरूप और कुछ जनसंख्या के अधिक भाग के ग्रामीण वातावरण के बजाय शहरी वातावरण में रहने के परिणाम स्वरूप हो रही है।"

बाल अपराध की वृद्धि के कारण निम्न हैं-

1. आनुवांशिक कारण, 2. शारीरिक कारण, 3. मनोवैज्ञानिक कारण, 4. सामाजिक कारण, 5. पारिवारिक कारण, 6. विद्यालय सम्बन्धी कारण, 7. संवाद वाहन के साधन, 8. सांस्कृतिक कारण

आनुवांशिक कारण या वंशानुक्रम से सम्बन्धित कारण-

- अपराधी प्रवृत्ति - अनेक मनोवैज्ञानिक का मानना है कि बाल अपराधी वंशानुक्रम द्वारा पैदा होते हैं। लोम्ब्रोसो मॉडलसे एवं डगडेल ने अपने प्रयोगों से सिद्ध किया कि बालकों को अपराधी प्रवृत्ति अपने माता पिता से वंशानुक्रम द्वारा प्राप्त होती है। इसीलिए वैलेन्टाइन ने लिखा है - "आनुवांशिक लक्षण अपराधी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करते हैं।"
- क्रोमोसोम्स (उत्पादक गुणसूत्र): - मैडीसन एवं जानसन लिखते हैं- "व्यक्तियों में साधारणतः दो प्रकार के उत्पादक गुणसूत्र होते हैं- स्त्रियों में XX और पुरूषों में XY असाधारण अवस्था में कुछ स्त्रियों में केवल X गुणसूत्र और मनुष्यों में XYY गुण-सूत्र होते हैं। ऐसे मनुष्य बाल अपराधियों को जन्म देते हैं।
- शारीरिक रचना - बालक की शारीरिक रचना का आधारभूत कारण उसका वंशानुक्रम होता है। बाल-अपराधियों को वंशानुक्रम से एक विशेष प्रकार की शारीरिक रचना (मेसोमोर्फिस) प्राप्त होती है। और इनकी शरीर गठा हुआ हष्ट-पुष्ट खिलाड़ियों जैसा होता है। ग्लूक एवं ग्लूक ने अपने अध्ययनों के आधार पर लिखा है- "इस गढे हुए शरीर और बाल अपराध में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।"

वातावरण सम्बन्धी कारण (Environmental Factors):-

बाल अपराध की वृद्धि में वातावरण अपनी अहम् भूमिका निभाता है। चाहे वह गर्भावस्था का वातावरण हो चाहे पारिवारिक, सामाजिक या विद्यालय का वातावरण। शिशु के पलने बढ़ने के साथ ही ये सब कारक अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर देते हैं। इन्हें हम क्रमशः 1. घर का वातावरण 2. विद्यालय का वातावरण 3. सामाजिक वातावरण में विभक्त कर स्पष्ट कर सकते हैं-

घर का वातावरण (Family Related Causes)

शिशु दुनियां में आकर जब आँखें खोलता है तो स्वयं को परिवार के बीच पाता है। अपनी आयु वृद्धि के साथ-साथ वह सबसे पहले परिवार से सम्बन्ध करता है। बालक के अच्छे बुरे क्रिया कलापों पर परिवार का अवश्य ही प्रभाव पड़ता है जो उसे बाल अपराधी बनाने के लिए प्रेरित या मजबूर करते हैं। परिवार से जुड़े ये कारक निम्नवत हैं-

1. बरबाद परिवार - वह परिवार जिनमें जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लए कोई साधन उपलब्ध नहीं होता। ऐसा उस दशा में होता है जब धनोपार्जन करने वाले की मृत्यु हो जाती है या वह परिवार से अपना सम्बन्ध तोड़ देता है या अनैतिकता का मार्ग अपनाकर किसी की चिन्ता नहीं करता है। इसमें पति-पत्नी के बीच मतभेद, तलाक, पृथक्करण, मृत्यु के कारण बहुत से परिवारों का संगठन बिगड़ जाता है। ऐसी दशा में उस परिवार के बालक अपराध करने की ओर प्रवृत्त होते हैं।

2. सौतेले माता-पिता का व्यवहार - असमय में ही अपने प्राणप्रिय बालकों को छोड़कर उनके माता-पिता जब इस संसार से चले जाते हैं तो उनके पालन पोषण की जिम्मेदारी उनके अशिक्षित सौतेले माता-पिता पर आ जाती है, ये बालकों के साथ कड़ाई का व्यवहार करते हैं जिससे बालकों में हीन भावना पैदा होती है और वे बाल अपराधी बनने पर बाध्य हो जाते हैं।

3. अनैतिक परिवार - जिस परिवार में माता-पिता या अन्य सदस्य अनैतिक होते हैं, उनके बच्चे भी उन्हीं के समाज होते हैं।

4. निर्धनता - अत्यधिक निर्धन परिवार के बालकों को धनाभाव के कारण आरम्भ से ही खाने की वस्तुओं की चोरी करने का भीख माँगने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसके अलावा ये बच्चे जब अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते तो ये चोरी करने लगते हैं।

5. घर का वातावरण - यदि बच्चों के भाई-बहिन अपराधी हैं, माता पिता कठोर अनुशासन रखते हैं घर में कलह और कड़ा नियन्त्रण है तो बच्चे अपराध के मार्ग पर चलने लगते हैं। घर में खेलने को यदि स्थान नहीं होता तो वे गलियों में घूमने लगते हैं और बुरी संगति में पड़कर अपराधी बन जाते हैं।

6. तिरस्कृत बच्चे - जिन बच्चों को माता-पिता का प्यार नहीं मिलता या उनके द्वारा तिरस्कृत होते हें तो इनमें परिवार के प्रति विद्रोह की भावना हिलोरे लेने लगती हैं। मानसिक अन्तर्द्वन्द में फँसे ये बच्चे मजबूरन वाल अपराधी बन जाते हैं।

7. बालकों को दो आँखों से देखना- जो माता-पिता किसी बच्चे को तो बहुत प्यार करते हैं और किसी को हर समय तिरस्कृत करते रहते हैं तो ये तिरस्कृत बच्चे अपराध प्रवृत्ति की ओर झुक जाते हैं।

8. अशिक्षित माता-पिता- जिन बालकों के माता-पिता अशिक्षित होते हैं वे बालक का सुचारू रूप से मार्ग दर्शन नहीं कर पाते परिणाम स्वरूप उनके बालक अवांछित व्यवहार करना प्रारम्भ कर देते हैं।

9. बेरोजगारी - जिन घरों में माता-पिता बेरोजगार होते है उनके यहाँ परिवार के भरण-पोषण की भी समुचित व्यवसथा नहीं हो पाती ऐसे घरों के बच्चे भीख माँगना, जेब काटना, उठाईगीरी, चोरी की बुरी आदतों को अपना लेते हैं। बेकारी स्वयं ही एक समस्या है। कहा भी गया है - "खाली दिमाग शैतान का घर।"

10. माता-पिता दोनों का नौकरी करना - जिन बच्चों के माता-पिता दोनों ही नौकरी करते हैं तो ये माता-पिता अपने बच्चों की देख भाल पर ठीक ध्यान नहीं दे पाते हैं। ऐसे बालक प्यार को तरसते रहते हैं। और ये बालक आवारा हो जाते हैं, क्योंकि माँ बाप को उनकी परवाह ही नहीं होती।

विद्यालय का वातावरण (School Related Causes)

घर से निकलकर बालक ज्ञानार्जन के लिए विद्यालय आता है तो विद्यालय के सम्पूर्ण वातावरण से प्रभावित होता है। विद्यालय से जुड़े ये कारण बाल अपराध को इस प्रकर प्रोत्साहन देते हैं-

1. स्थिति - हमारे देश में ऐसे अनेक विद्यालय है जो नगर के दूषित और कोलाहलपूर्ण भागों में स्थित हैं। बालक वहाँ जाते हुए विभिन्न प्रकार के अमानवीय कृत्य देखते हैं कुछ बालक उनसे प्रभावित होकर उनको अपने जीवन का अंग बना लेते हैं।

2. अनुशासन व नियन्त्रण का अभाव - आजकल के विद्यालय संस्थायें शिक्षा की दुकानें हो गई हैं। जिनमें धन प्राप्त करने के लिए संख्या की ओर ध्यान दिये बिना बालकों को भर लिया जाता है ऐसे विद्यालयों में बालकों पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होता है। ये अपनी इच्छानुसार कहीं भी घूमने, सिनेमा देखने जा सकते हैं। ये बालक धीरे-धीरे बाल अपराध के मार्ग को पकड़ लेते हैं।

3. खेल व मनोरंजन का अभाव - विद्यालयों में खेल व मनोरंजन के साधनों का अभाव होने से बालक के अनेक संवेग दमित अवस्था में पड़े रहते हैं जो उभरने पर अति घातक सिद्ध होते हैं। ये बालकों को न केवल असमायोजित करते है वरन् उन्हें विविध प्रकार के अपराध करने के लिए भी प्रेरित करते हैं।

4. परीक्षा प्रणाली - हमारे विद्यालयों में दूषित परीक्षा प्रणाली का प्रयोग किया जाता है जो बालकों को परीक्षा भवनों में अनुचित साधनों का प्रयोग करने का अवसर देती है। यदि छात्रों को ऐसा करने से रोका जाता है तो मारपीट यहाँ तक कि हत्या भी कर देते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ बालक ऐसे भी होते हैं जो परीक्षा में असफल होने के कारण घर से भाग जाते हैं या आत्म हत्या कर लेते हैं। इस प्रकार हमारी दूषित प्रणाली बाल अपराधों को बढ़ावा दे रही है।

5. व्यक्तिगत स्कूल - व्यक्तिगत (प्राइवेट) स्कूलों के बारे में भ्ळण् वेल्स लिखते हैं- "यदि आप इस बात का अनुभव करना चाहते है कि पीढ़ियाँ किस प्रकार पहाड़ी नदियों के वेग से विनाश की ओर बढ़ रही हैं तो आप किसी प्राइवेट स्कूल को ध्यान से देखिये।" ये स्कूल बालकों के शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक विकास के लिए उपयुक्त सुविधायें नहीं जुटाते हैं। जिससे

अनेक बालकों का विकास विकृत रूप धारण कर लेता है और वे पक्के वाल अपराधी बन जाते हैं।" बालकों को अपराध प्रवृत्ति की ओर सुकाने वाले विद्यालय सम्बन्धी कुछ अन्य कारण ये भी है- 1. शिक्षक दुर्व्यवहार, 2. गन्दा वातावरण, 3. अरूचिकर शिक्षण पद्धति, 4. अनुशासन सम्बन्धी नियमों का अभाव 5. बालकों की सामर्थ्य व रूचि के अनुकूल पाठ्यविषयों का न होना, 6. प्रतियोगिता

7. पाठ्य सहगामी क्रियाओं तथा स्काउटिंग का अभाव, 8. वैयक्तिक भिन्नताओं पर ध्यान देना।

सामाजिक कारण (Social Reasons)

1. साथी - अकेले बालक बहुत कम अपराध करता है, उसके साथ प्रायः कोई न कोई साथी होता है। ग्लूक ने 500 अपराधी बालकों का अध्ययन कर बताया कि उनमें से 95 प्रतिशत शराबियों, जुआरियों, व्यभिचारियों और गुण्डों की संगति में रहे थे। हीली ने बताया कि अपराधी बालक किसी न किसी गुट के सदस्य अवश्य होते हैं। अतः बालक बुरे साथियों की संगति में पड़कर अपराध करते हैं।

2. अवकाश - यदि बालकों को अपना अवकाश बिताने के लिए मनोरंजन या खेल के उचित साधन प्राप्त नहीं है तो उनका अनुचित दिशा में जाना स्वाभाविक होता है। बोगोट ने अपने अध्ययन में पाया कि बाल अपराध अधिकतर तो शनिवार व रविवार को होते हैं या 4-5 बजे के बीच में होते हैं क्योंकि प्रायः इस समय बालक खाली रहते हैं।

3. नागरिक वातावरण - आधुनिक नगरों का वातावरण अत्यधिक कृत्रिम, दूषित और अनैतिक है। उनमें बात अपराध को प्रोत्साहन देने वाले सभी साधन विद्यमान है, जैसे - मदिरालय, वेश्यालय, सस्ते मनोरंजन कामुक चलचित्र, जुआ और सट्टा खेलने के अड्डे, लाउडस्पीकरों पर अश्लील गाने इत्यादि। जिस बालक पर उसके माता-पिता का पर्याप्त नियन्त्रण नहीं होता है, वह इनके प्रभाव से वंचित नहीं पाता है। परिणामतः वह कुमार्ग पर चलने लगता है।

4. गन्दी बस्तियाँ - मैडिसन एवं जानसन ने कहा है - "समाजशस्त्रियों का तर्क है कि अधिकांश बाल-अपराधी गन्दी बस्तियों के होते हैं।" उनके इस कथन को सत्य सिद्ध करने के लिए शॉ एवं मैकी ने अमेरिका के लगभग 25 नगरों के बाल अपराधों का अध्ययन कर बताया कि गन्दी बस्तियों में बाल अपराधों की दरें सबसे अधिक थीं।

5. युद्ध - युद्ध 3 विशेष कारणों से बाल अपराधों को प्रेरणा देते हैं। पहला, जिन बालकों के अभिभावक युद्ध क्षेत्र में चले जाते हैं उनकी देखभाल ठीक नहीं हो पाती। दूसरा, जो मनुष्य युद्ध में मारे जाते हैं उनमें से अधिकांश के बच्चे असहाय होते हैं। तीसरा, जिन देशों पर बम गिराये जाते हैं उनके अनेक बच्चे अनाथ हो जाते हैं ये सभी बच्चे अपने उदर की पूर्ति करने के लिए किसी प्रकार का भी अनैतिक कार्य करने में संकोच नहीं करते हैं।

6. देश का विभाजन - इस कारण का भारत से विशेष सम्बन्ध है। विभाजन से पूर्व यहाँ बाल अपराधों की संख्या बहुत कम भी विभाजन के कारण देश में हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक झगड़ों का ताँता लगा गया। इनमें वयस्कों के अलावा किशोरों ने विशेष रूप से भाग लिया। जिसके कारण बाल अपराधों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है।

2. शारीरिक करण (Physiological Causes)

1. शारीरिक दोष - बालक के शारीरिक दोष उसके तिरस्कार के कारण बनते हैं इससे उनके आत्म सम्मान को ठेस पहुँचती है। फलस्वरूप वह तिरस्कार का बदला होने के लिए दूसरों को कष्ट देने और सताने का अपराध करने लगता है। मैमसैट ने इसका एक उदाहरण दिया है- एक बालक की आँखें कम जोर थीं। वह पढ़ नहीं सकता था। दूसरे लड़के उसका मजाक उड़ाते थे। उसके उसके आत्म सम्मान को चोट पहुँचती थी। अतः उसने चश्मा लगाने वाले लड़कों के चश्में चुराने आरम्भ कर दिये। पहले तो उसने ऐसा उनको तंग करने के लिए किया पर धीरे-धीरे उसकी चोरी करने की आदत पड़ गई।

2. यौनांगों का तीव्र विकास - जिन बालक और बालिकाओं के यौनांगों का तीव्र विकास होता है वे अनेक प्रकार के काम सम्बन्धी अपराध करने लगते हैं। जैसे- हस्तमैथुन और सम या विषम लिंग के व्यक्तियों से सम्भोग।

3. मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Causes)

1. निम्न बुद्धि स्तर - निम्न बुद्धि स्तर वाले बालकों में अपराधी प्रवृत्ति का सरलता से विकास होता है। कारण यह है कि निम्न बुद्धि वाले बालक अच्छा बुरा नहीं सोच पाते हें वे अवांछनीय ढंग में जीविकोपार्जन करने में समर्थ हो जाते है ऐसी स्थिति में अवसर पड़ने पर ने तुरन्त अपराधी व्यवहार करने को तत्पर हो जाते हैं।

2. मानसिक रोग - बालकों के मानसिक रोग उनको अपराधी बनाने के लिए उत्तरदायी होते हैं। इन रोगों से ग्रस्त बालकों में मानसिक तनाव, विचार शून्यता, असन्तुलन या अन्तर्द्वन्द उत्पन्न हो जाता है। ऐसी दशा में वे अपना आत्म नियन्त्रण खोने के कारण अपराध कर बैठते हैं।

3. किशोरावस्था - स्टेनली हॉल के शब्दों में - ‘‘किशोरावस्था बड़े बल, तनाव और तूफान की अवस्था है।’’ उन्होंने इस अवस्था को अपराध की अवस्था भी कहा है क्योंकि इस अवस्था में संवेगात्मक तनाव और मानसिक संघर्ष की अधिकता रहती है। यह स्थिति उसे अनेक समाज विरोधी कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।

4. निराशा - निरन्तर निराश रहने वाला बालक आक्रमणकारी बनकर बाल अपराधी का दोषी बन जाता है।

5. अवरूद्ध इच्छा - अवरूद्ध इच्छाओं के कारण बालक में मानसिक संघर्ष उत्पन्न हो जाता है जो अनेक अपराधें का कारण होता है।

6. ग्रन्थियां - सामाजिक निषेधों के कारण बालकों को अपनी इच्छाओं, प्रवृत्तियों, भावनाओं का दमन करना पड़ता है। ये सब भावना ग्रन्थियों के रूप में उसके अचेतन मन में निवास करने लगती हैं धीरे-धीरे मानसिक संघर्ष तथा भावना ग्रन्थियाँ उसमें ‘‘मनोविक्षेप’’ को जन्म देती हैं। फलस्वरूप बालक अनेक प्रकार के अपराध करने लगता है।

बाल अपराध का निवारण या बाल अपराध को रोकने के उपायः-

(क)परिवार के कार्यः-

1. उत्तम वातावरण - परिवार का वातावरण उसके सदस्यों के पारस्परिक सहयोग, समायोजन और सहानुभूति का आदर्श प्रतीक होना चाहिए। ऐसा वातावरण बाल अपराध का घोर शत्रु होता है।

2. परिवार नियोजन - छोटा परिवार -सुखी परिवार होता है क्योंकि ऐसे परिवार के सदस्यों में एक दूसरे के प्रति आत्मीयता और निकटता की भावना होती है। अतः उनमें बाल अपराध का जन्म होना कठिन है।

3. सही मागदर्शन - बालक ज्ञान और समझदारी की कमी के कारण बाल-अपराध की ओर अग्रसर होते हैं। अतः उनके माता-पिता को चाहिए कि वे शिक्षा, चित्रों मनोरंजन के सम्बन्ध में पग पग पर उनका मार्गदर्शन करें। सही मार्गदशन प्राप्त ऐसे बालकों से बाल अपराध की आशा नहीं की जा सकती।

4. निरीक्षण - माता-पिता को अपने बालकों के मध्य प्रतिदिन कुछ समय व्यतीत करके, उनकी गतिविधियों का निरीक्षण करना चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर उनको परामर्श भी देना चाहिए। ऐसे माता-पिता की सन्तानें कुमार्ग पर नहीं चल सकतीं।

5. उचित व्यवहार - माता-पिता को बालकों के प्रति उचित-व्यवहार करना चाहिए। उन्हें न तो अधिक लाड़ प्यार कर बिगाड़ना चाहिए और न अधिक कठोर अनुशासन में रखकर इच्छाओं का दमन करना चाहिए। इस प्रकार का व्यवहार पाने वाले बालकों में अपराध प्रवृत्ति का विकास नहीं होता है।

6. अध्ययन की व्यवस्था - परिवार में बालकों के अध्ययन की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। उनको लिए शान्त एवं एकान्त स्थान सुरक्षित होना चाहिए। ऐसे स्थान में अध्ययन करके उनके मस्तिष्क का क्रमिक विकास होता चला जायेगा जो उनको बाल अपराध की हानियों से अवगत करायेगा।

7. आवश्यकताओं की पूर्ति - माता-पिता को बालकों की सभी उचित आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए। ऐसा न करने से बालक उनकी पूर्ति के लिए अनुचित उपायों का प्रयोग करके बाल अपराध के दोषी बन जाते हैं।

8. अच्छी आदतों का निर्माण - माता-पिता को बालकों में अच्छी आदतों का निर्माण करना चाहिए। ऐसी आदतों वाले बालक अनुचित कार्य करके अपराधी कहे जाने से घृणा करते हैं।

9. आत्मनिर्भरता का विकास - माता-पिता को बालकों में आत्मनिर्भरता के गुण का अधिक से अधिक विकास करना चाहिए। ऐसे बालक अपनी आवश्यकताओं को स्वयं कार्य करके पूर्ण करने का प्रयास करते है और अनुचित उपायों को नहीं अपनाते हैं।

(ख) विद्यालय के कार्य (Function of School):-

1. स्वस्थ व स्वच्छ उत्तम वातावरण - विद्यालयों को बालकों का शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक और संवेगात्मक विकास करने के लिए उत्तम वातावरण का निर्माण करना चाहिए।

2. स्वतन्त्रता - विद्यालयों को बालकों की क्षमताओं और योग्यताओं का विकास करने के लिए उनको स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाहिए पर यह स्वतन्त्रता नियन्त्रित और निश्चित सीमाओं के अन्तर्गत होनी चाहिए।

3. तरूण गोष्ठियों की स्थापना - वैलेन्टाइन कहते हैं- विद्यालयों में तरूण गोष्ठियों (यूथ क्लब) की स्थापना की जानी चाहिए। ये गोष्ठियां बालकों को अपनी रूचियों और क्षमताओं को अभिव्यक्त करने का अवसर प्रदान करती है।"

4. वैयक्तिक भिन्नताओं का विकास - विद्यालयों को बालकों की वैयक्तिक भिन्नताओं का अध्ययन करके उनके अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। ऐसा करके वह बालकों की विभिन्न योग्यताओं का विकास करने में सफलता प्राप्त कर सकता है।

5. अच्छे पुस्तकालय की व्यवस्था - विद्यालय में सभी प्रकार की बालोपयोगी पुस्तकों से सुसज्जित अच्छा पुस्तकालय होना चाहिए। साथ ही बालकों को पुस्तकालय का सदुपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

6. उपचारात्मक व व्यावसायिक कक्षायें - मैडनिस एवं जानसन कहते हैं- "उपचारात्मक शिक्षा की कक्षायें और कुछ व्यावसायिक कक्षायें लाभप्रद सिद्ध हो सकती है।"

7. पाठ्यसहगामी क्रियायें - बालकों में सामाजिक सम्बन्धों का विकास करने के लिए विद्यालय में पाठ्य सहगामी क्रियाओं की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए। एलिस कहते हैं - "बाल अपराधियों को पाठ्यसहगामी क्रियाओं में सम्मिलित करने का विशेष प्रयास किया जाना चाहिए क्योंकि इनसे उत्तम सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना होती है।"

8. अनुउत्तीर्ण होने की समस्या का समाधान - परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के कारण कुछ छात्र बाल अपराधी बन जाते हैं। एलिस का सुझाव है- "यदि हम सफलता की समस्या का समाधान करना चाहते हैं तो हमे छात्रों का वर्गीकरण करना चाहिए तथा पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों में इस प्रकार सुधार करना चाहिए कि छात्र जो भी करें, उसमें सफल हो।"

9. वांछनीय सामाजिक दृष्टिकोणों का विकास - एलिस ने कहा है- "बाल अपराध का मुख्य कारण अवांछनीय सामाजिक दृष्टिकोणों का विकास है। विद्यालय, सामाजिक दृष्टिकोणों के प्रति अधिक ध्यान देकर, विद्यालय से बाहर उपयुक्त क्रियाओं का आयोजन करके इस दिशा में बहुत कुछ कर सकता है।"

10. योग्य शिक्षकों की नियुक्ति - विद्यालयों में नियुक्त किये जाने वाले शिक्षकों में ये विशेषतायें होनी चाहिए-

- बाल मनोविज्ञान का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए ताकि उसे बालकों की रूचियों, इच्छाओं और अभिवृत्तियों को समझने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो।
- उनको बालकों के प्रति प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए।
- बालकों का मित्र, सहायक और पथ प्रदर्शक होना चाहिए।
- नवीन शिक्षण विधियों और शिक्षण उपकरणों के प्रयोग में कुशल होना चाहिए।
- बालकों की समस्या का समाधान करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।

समाज व राज्य के कार्य (Function of Society $ State):-

1. बालकों की राजनीति से पृथकता - राजनैतिक दल बालकों को अनुचित कार्यों के लिए प्रयोग कर बाल अपराध की ओर ले जाते हैं। अतः राज्य को कानून बनाकर 18 वर्ष तक की आयु के बालकों पर राजनैतिक कार्यों में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए।

2. मनोरंजन की व्यवस्था - समाज को बालकों के लिए मनोरंजन की उपयुक्त व्यवस्था करनी चाहिए ताकि वे अपने अवकाश के उचित उपयोग कर सकें।

3. निर्धन बालकों की आर्थिक सहायता - निर्धन बालकों को सम्पूर्ण शिक्षा निःशुल्क देनी चाहिए। तथा उनको अपनी शिक्षा के व्यय के लिए आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।

4. चल चित्रों पर नियन्त्रण - चलचित्र बालकों की अपराध प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करते हैं। अतः राज्य द्वारा अपराधी व अनैतिक कार्यों का प्रदर्शन करने वाले चलचित्रों पर कड़ा नियन्त्रण आरोपित किया जाना चाहिए।

5. सामूहिक संघों का निर्माण - सामूहिक संघों का निर्माण कर किशोरों को सामाजिक कार्य करने की प्रेरणा देनी चाहिए। ये सामाजिक कार्य उसके व्यवहार को स्वस्थ दिशा में मोड़ कर सामाजिक समायोजन का विकास करेंगें।

6. गन्दी बस्तियों की समाप्ति - गन्दी बस्तियाँ बाल अपराधों के जन्म और विकास के लिए कुरव्यात हैं। अतः इन बस्तियों को यथाशीघ्र समाप्त किया जाना चाहिए। यही कारण है किसी भी बड़े नगरों में यह कार्य किया जा रहा है।

7. अनैतिक कार्यों पर प्रतिबन्ध - अनैतिक कार्यों को बाल अपराधों को जननी कहा जा सकता है। अतः समाज को अनैतिकता से मुक्त करने के लिए सभी सम्भव प्रयास किये जाने चाहिए। इसी उद्देश्य से अनेक नगरों में वेश्यालयों को हटा दिया गया है और मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई आदि नगरों में "किशोर धूम्रपान अधिनियम" बनाकर 16 वर्ष से कम आयु के बालकों को धूम्रपान करने का निषेध कर दिया गया है।

बाल अपराध का उपचार (Treatment of Delinquency):- बाल अपराध का उपचार करने के लिए दो प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है- (क)मनोवैज्ञानिक विधियाँ। (ख)वैधानिक विधियाँ।

मनोवैज्ञानिक विधियाँ (Psychological Methods)

1. मनोविश्लेषण - इस विधि में मनोविश्लेषक अपराधी बालक के अचेतन मन का अध्ययन करके उसके दमित संवेगों और इच्छाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं। वह इनका विश्लेषण करके बालक द्वारा अपराध किये जाने के कारणों को जानने का प्रयास करता है। इस विधि की सफलता बालक के सहयोग पर निर्भर रहती है।

2. मनो-अभिनय - इस विधि में बाल अपराधी को अपनी इच्छा के अनुसार किसी प्रकार का अभिनम करने का अवसर जाता है। अभिनय करते समय वह अपने विभिन्न संवेगों, विचारों, मानसिक संघर्ष आदि को स्वतन्त्रता पूर्वक व्यक्त करता है। फलतः कुछ समय बाद वह मानसिक शान्ति का अनुभव करता है और उसका व्यवहार सन्तुलित हो जाता है।

3. खेल विधि - बाल अपराध का मुख्य कारण है कि बालक को अपनी रचनात्मक प्रवृत्ति को अभिव्यक्त करने का अवसर वहीं मिलता है। परिणामतः इस प्रवृत्ति का दमन हो जाता है, जो अवसर मिलने पर विनाशकारी कार्यों के रूप में प्रकट होती है। खेल द्वारा चिकित्सा में बाल को अपनी रचनात्मक प्रवृत्ति के अनुसार कोई भी वस्तु बनाने का अवसर दिया जाता है। इससे बालक की रचनात्मक प्रवृत्ति सन्तुष्ट हो जाती है और उसके मन का विकार दूर हो जाता है। बाल अपराधियों का उपचार करने में यह विधि बहुत सफल हुई है। इसीलिए मैडीसन एवं जानसन कहते हैं- "संवेगात्मक असन्तुलन वाले अधिकांश बाल अपराधियों की खेल द्वारा चिकित्सा की जाती है।"

वैधानिक विधियाँ (Legal Methods):-

1. कारावास - बाल अपराध का परम्परागत उपचार है - कारावास। इसमे रह रहे बालक की आयु में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे उसके व्यवहार में परिवर्तन होता जाता है। परिणामतः कारावास से मुक्त होने के बाद उसकी अपराधी प्रवृत्ति निर्बल हो जाती है।

2. किशोर न्यायालय - जब कोई बालक या किशोर अपराध करता है तो उसे साधारण न्यायालय में न ले जाकर किशोर न्यायालय में भेजा जाता है। न्यायालय का वातावरण सहानुभूतिपूर्ण होता है क्योंकि न्यायधीश मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय ढंग से बालक के अपराध के कारणों को जानने का प्रयास करता है। न्यायाधीशों में स्त्रियों भी होती हैं जो बालकों को वात्सल्य, ममता एवं स्नेह भावों से अच्छा मार्ग प्रदर्शन करती हैं। बालक को अपराधी न समझकर मानसिक तथा सामाजिक विचारों से पीड़ित रोगी समझा जाता है जिसे ठीक करने के लिए प्रेम और सहानुभूति की आवश्यकता है। भारत में दिल्ली, बंगाल, मुम्बई चेन्नई में ये किशोर न्यायालय स्थापित है।

3. प्रवीक्षण - प्रवीक्षण या प्रोवेशन वह युक्ति है जिसमें बाल अपराधी को न्यायालय के दण्ड मिलने पर जेल न भेजकर कुछ शर्तों पर समाज में रहने की आज्ञा मिल जाती है। इस प्रकार बालक को अपना सुधार करने का अवसर "सुधार अधिकारी" के निरीक्षण में मिलता है। यह अधिकारी मित्र व संरक्षक के रूप में बालक में सुधार का प्रयास करता है।

4. किशोर बन्दी गृह - ये बन्दी गृह वास्तव में सुधार संस्थायें हैं। इनमें बन्दियों को अपने परिवार के सदस्यों से मिलने की स्वतन्त्रता होती है। वे बन्दी गृह में सामाय और औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करते हैं।

5. किशोर सुधार गृह - ये एक प्रकार के औद्योगिक विद्यालय हैं। जब अपराधी इस स्कूल में कमाने के लिए कोई धन्धा सीख लेते हैं तो वे अपराध करना स्वयं छोड़ देते हैं।

6. वीर्स्टल संस्थायें - इन विद्यालयों का मुख्य सिद्धान्त अपराधी बालक के व्यक्तित्व को इस तरह बनाना है कि वह स्वयं अपराध प्रवृत्ति को त्याग दें। ये सुधार गृह के समान मान्यता प्राप्त विद्यालय होते हैं, किन्तु ये एक प्रकार के बन्दी गृह भी होते है। यदि इन विद्यालयों में कोई अपराधी नहीं सुधरता है तो उसे बन्दीगृह भेज दिया जाता है। इनमें 15-20 वर्ष तक की आयु के अपराधी रखे जाते हैं।

निष्कर्ष

यह शोध-पत्र स्पष्ट करता है कि बाल अपराध केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक, पारिवारिक, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक परिस्थितियों का संयुक्त परिणाम है। बालक जन्म से अपराधी नहीं होता, बल्कि प्रतिकूल वातावरण, उपेक्षा, निर्धनता, अशिक्षा, अनुशासनहीनता और बुरी संगति उसे अपराध की ओर प्रेरित करती है।

यदि परिवार स्नेहपूर्ण वातावरण प्रदान करे, विद्यालय बालक-केंद्रित शिक्षा अपनाएँ तथा समाज और राज्य बच्चों के लिए स्वस्थ मनोरंजन, शिक्षा और सुरक्षा की व्यवस्था करें, तो बाल अपराध को काफी हद तक रोका जा सकता है। साथ ही दण्डात्मक दृष्टिकोण के स्थान पर सुधारात्मक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना अधिक प्रभावी सिद्ध होगा। इस प्रकार बाल अपराध की समस्या का समाधान सामूहिक प्रयासों, संवेदनशील व्यवहार और उचित सामाजिक व्यवस्था द्वारा संभव है।

संदर्भ -

Abhishek, R. & Balamurugan, J. (2024). Factors and Patterns Associated with Juvenile Delinquency in India.

Belwal, A. (2016). Juvenile Delinquency in India. Bharti Law Review.

Kumar, S. (2021). The Rebirth of Delinquent 'Adult-Children'. Springer.

Samanta, P. P. (2025). A Systematic Review of Psychological Risk Factors Contributing to Juvenile Delinquency in India.

Tanuj (2024). The Psychology of Criminal Behavior in India. Legal Lock Journal.

गुप्त, राम बाबू. . *बाल मनोविज्ञान*. नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

पाठक, पी. डी. *शिक्षा मनोविज्ञान*. आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर.

शर्मा, सक्सैना, एवं बरौलिया. *शिक्षा मनोविज्ञान एवं मापन*. आगरा: साहित्य प्रकाशन.

श्रीवास्तव, गिरधारी लाल. *शिक्षा मनोविज्ञान*. इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन.

श्रीवास्तव, शर्मा, बी. एन. *शिक्षा मनोविज्ञान*. नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान.

Received: 08.03.2026 | Accepted: 01.04.2026 | Published: 30.04.2026

इल्तुतमिश : दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

(Iltutmish: An Analytical Study of the Real Founder of the Delhi Sultanate)

विकास कुमार*

Vk12119600@gmail.com

सारांश :-

दिल्ली सल्तनत के वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश को माना जाता है। क्योंकि इन्हें वास्तविक संस्थापक मानने का कोई एक कारण नहीं है, बल्कि अनेक कारण है। क्योंकि ऐबक के साम्राज्य पूरी तरह से बिखरा हुआ था और इल्तुतमिश ने उसे अपने पूरी ताकत लगा करके उसे संगठित करने का प्रयास किया। साथ ही मंगलो के आक्रमण बहुत तेज होते थे और चंगेज खान ने उनके साम्राज्य पर अनेक बार प्रहार करने की कोशिश की, इस संदर्भ में इल्तुतमिश ने अनेक आक्रमणों से उनके साम्राज्य की रक्षा किया। इल्तुतमिश अनेक कार्य करने के बाद उन्होंने काफी प्रशासनिक सुधार की जिसके कारण साम्राज्य की सुरक्षा सुनिश्चित किया गया। आम जनता को भी सुरक्षा मुहैया कराने का अहान किया और उन्होंने कुतुब मीनार को पूरा करवाया इसलिए इल्तुतमिश को दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। क्योंकि इन्होंने अनेक ऐसे कार्य किए जिनकी सहारना बहुत प्रतिष्ठा से किया जाता है। सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि जब कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु हो जाती है, इसके बाद साम्राज्य में आराजकाताओं का माहौल बन जाता है। स्थिति यह होता है की साम्राज्य में माहौल बिगड़ने लगता है। उस स्थिति में इल्तुतमिश ने अपने साहस की प्रबलता दिखाते हुए उन्होंने सबसे पहले चल रहे साम्राज्य के अराजकता को समाप्त किया। इसके बाद उन्होंने सूझबूझ कर राजहित में निर्णय लेते हुए दिल्ली के राजधानी के रूप में स्थापित किया। उनकी वीरता की कहानी इतनी प्रबल है कि उन्होंने बंगाल, बिहार, ग्वालियर आदि को जीतकर दिल्ली सल्तनत में मिलाया। इल्तुतमिश जानता था कि यदि राज्य को व्यवस्थित नहीं किया गया तो भविष्य में समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

कुंजी शब्द:-

राजनीति, सैन्य व्यवस्था, इल्तुत्मिस, साम्राजय की रक्षा , दिल्ली सल्तनत और दासों पर भरोसा

राज्य की कार्यप्रणाली अव्यवस्थित हो सकती है इस चीज को जानते हुए और उन्होंने भविष्य के देखते हुए एकता प्रणाली शुरू की। उन्होंने यह हर संभव प्रयास किया कि इस प्रणाली के माध्यम से राज्य के व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाया जा सकता है और परिस्थिति के अनुरूप हर समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। क्योंकि इस प्रणाली के माध्यम से इल्तुतमिश ने भूमि के बदले सैनिक सेवा शुरू किया था और काफी हद तक इस प्रणाली के माध्यम से उन्होंने हर समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया। राज्य को व्यवस्थित करने का हर संभव कोशिश किया नतीजा यह हुआ कि इस व्यवस्था के माध्यम से कुछ हद तक राज्य को सुरक्षित किया गया था। इतना ही नहीं उन्होंने अपने 40 सबसे भरोसेमंद गुलाम सरदारों का एक समूह बनाया जिस पर इल्तुतमिश का अटूट विश्वास था। वह जानता था कि हमारे साथ कभी गद्दारी नहीं कर सकता हमारे साम्राज्य और राज्य के व्यवस्था को बनाए रखने और सुरक्षा में अपनी जान को दे सकता है। ऐसे वफादार लोगों को शासन और सेवा में स्थान दिया और वे लोग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाए। जब उन्होंने यह प्रणाली के माध्यम से अपने आप को सशक्त कर लिया तब बहुत चतुराई के साथ ही इल्तुतमिश ने चंगेज खान के आक्रमण के खतरों को कूटनीति से टाल दिया। दिल्ली सल्तनत की रक्षा सूझबूझ कर किया तथा किसी प्रकार के नुकसान होने से उन्होंने सल्तनत को बचा लिया। क्योंकि

* **Nalanda Open University Nalanda Bihar 803111**

इल्तुतमिश एक बहादुर व्यक्ति था और वह यह सब कुछ जानता था इसलिए समस्याओं के आने से पहले ही उन्होंने सारे प्रबंध कर लिए थे ताकि भविष्य को सुरक्षित रखा जाए।

साहित्य पुनरावलोकन:-

इल्तुतमिश अपनी किशोरावस्था में ही गुलामो के हाथों में बेच दिए जाने के बावजूद भी उन्होंने अपनी योग्यता और असाधारण कूटनीति कौशल के दम पर एक विशाल और शक्तिशाली साम्राज्य के शासक का पद हासिल किया। इल्तुतमिश इतना होनहार विद्वान शासक था कि उन्होंने अपनी वीरता का परिचय देते हुए शासन व्यवस्था संभाला और राज्य को व्यवस्थित करने का प्रयास किया(**Singh, 2017**)। दिल्ली सल्तनत मध्यकालीन भारत की सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक और संस्कृतिक घटनाओं में से एक था। 13वीं शताब्दी की शुरुआत में मुस्लिम तुर्की आक्रमण कार्यों द्वारा स्थापित दिल्ली सल्तनत ने भारतीय उपमहाद्वीप के राजनीति परिदृश्य में एक बड़ा बदलाव लाते हुए, इस्लामी शासन और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की एक नई युग की शुरुआत की। दिल्ली के शुरुआती सुल्ताने विशेष कर मोहम्मद गोरी, कुतुबुद्दीन ऐबक और इल्तुतमिश ने इस व्यवस्था को सुदृढ़ करने, अपने क्षेत्र का विस्तार करने और एक केंद्रीकृत प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई (**Bashir & Mir, 2023**)। इल्तुतमिश ने रजिया के बुद्धि और शासन करने की क्षमता को पहचान कर स्पष्ट किया की अगला उत्तराधिकारी यही होगी। उन्होंने घोषणा किया इसके बाद रजिया ने अनेक भेदभाव और असमानताओं को समाप्त करने के प्रयास किया तथा वह साम्राज्य को स्थिति को और अपने पिता इल्तुतमिश के द्वारा बनाए गए नियम कानून और व्यवस्थाओं को आगे बढ़ने का प्रयास किया (**Gabba, 2011**)। इल्तुतमिशएक ऐसे विचार वाले शासक थे, जिन्होंने हर राजनीतिक स्थिरता को मजबूत की और उन्होंने अपने पूरे राज्य में निष्पक्ष न्याय व्यवस्था पर जोर दिया। क्योंकि इल्तुतमिश जानता था की शोषण और अन्याय के माध्यम से किसी भी व्यवस्था को सुचारू रूप से नहीं चलाया जा सकता है। एक शासक होने के नाते इल्तुतमिश का कर्तव्य था कि वह आम जनता को ध्यान में रखें और किसी भी समस्याओं का निपटारा निष्पक्ष रूप से करें। ताकि प्रजाओं के बीच में इल्तुतमिश एक वफादार शासक बना रहे (**Zoya, 2026**)। इल्तुतमिश भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण शासक था। जिन्होंने दिल्ली सल्तनत का दीर्घकालिक स्थिरता और प्रतिष्ठा की नई रखा। उनके शासनकाल में राजनीतिक कौशल प्रशासनिक नवाचार और एक शक्तिशाली सेवा का समावेश हुआ। उन्होंने सल्तनत को मध्यकालीन भारत की प्रमुख सत्ता में बदल दिया (**Khan**, 2024)। दिल्ली सल्तनत के तीसरी सुल्तान इल्तुतमिश ने 1211 से 1236 तक शासन किया और इस दौरान सल्तनत की सतह को काफी मजबूत किया। इल्तुतमिश का जन्म मध्य एशिया के इलबारी कबीले में हुआ था। इल्तुतमिश ने अपनी रणनीति नेतृत्व की क्षमता के बल पर सल्तनत के क्षेत्र का विस्तार किया और राजधानी को लाहौर से दिल्ली स्थानांतरण कर दिया (**Vajiram, 2026**)। इल्तुतमिश दिल्ली सल्तनत के एक सशक्त सुल्तान था। क्योंकि इतिहासकार बताते हैं कि इल्तुतमिश प्रतिभाओं से भरा हुआ व्यक्ति था और उन्होंने कुछ समय पहले बगदाद में भी समय बिताया था। इल्तुतमिश गुलाम द्वारा बेचे जाने के बाद भी उन्होंने ऐसी रणनीति अपनाई की एक दिन शासक बन गया। क्योंकि शासक बनने से पहले उन्हें गुलामो के द्वारा अनेकों बार बेचा जा चुका था। लेकिन इल्तुतमिश हमेशा सूझबूझ और दिमाग का प्रयोग करते हुए अपनी शासन तक की सत्ता का सफर किया (**Umar, 2019**)।

शोध अंतराल:-

उपयुक्त साहित्य समीक्षा के अध्ययन से यह पता चलता है कि सुल्तान इल्तुतमिश ने एक बहुत चतुर शासक था। क्योंकि उनके साथ बचपन में ही अनेक धोखाधड़ी हो चुका था। वह एक ऐसा व्यक्ति था कि उसे अनेक लोग के हाथों अर्थात गुलाम लोग के साथ बेचा गया था। लेकिन उन्होंने अपनी बुद्धि और विवेक के दम पर अपने आगे का रास्ता तय किया और अंत में सुल्तान बना। इल्तुतमिश आखिर सुल्तान कैसे बना एक शासक के रूप में प्रयुक्त कैसे हुआ। उसका जनता पर प्रभाव क्या था इस पर अध्ययन बहुत कम हुआ है, इसलिए यह अध्ययन अपेक्षणीय है।

शोध का उद्देश्य:- इल्तुतमिश के जीवन सहित उसके कार्यकाल को समझना।

आंकड़े संकलन की विधि:-

इल्तुतमिश बचपन से ही एक प्रखर बौद्धिक वाला व्यक्ति था क्योंकि बचपन में ही उन्हें अनेक बार गुलामी के द्वारा बेचा गया और खरीदा गया। लेकिन वह एक ऐसा व्यक्ति था जिनमें अनेक गुण बचपन में ही दिखाई देते थे। उन्होंने

गुलामगिरी की लकीर को पार करके एक महान शासक बना इसलिए इल्तुतमिश से संबंधित वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए मात्रात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। क्योंकि यह शोध प्रविधि एक ऐसा विधि है जिसके माध्यम से वैज्ञानिक आधार पर वास्तविक ज्ञान को प्राप्त किया जाता है। इस विधि के माध्यम से सुल्तान के संबंध में और उसके कार्यकाल में हुए परिवर्तन और समस्याओं से संबंधित वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करने के लिए सर्वेक्षण, रिकॉर्ड्स, रिव्यू, बुक, इंटरनेट आदि के माध्यम से वास्तविक ज्ञान को प्राप्त किया गया।

विश्लेषण:-

इल्तुतमिश को भले ही बचपन में गुलाम का हाथ में सौंप दिया गया था। लेकिन इल्तुतमिश ने कभी हार नहीं माना और उन्होंने बचपन से ही अनेक समस्याओं का सामना किया और आगे बढ़ने का प्रयास किया। वह एक ऐसा व्यक्ति था जिन में अनेक लक्षण दिखाई देता था और वह जानता था की कैसे यह गुलामी से बचा जा सकता है। कैसे अनेक जंजीरों को तोड़ते हुए आजादी पाया जा सकता है। उन्होंने हमेशा दिमाग का इस्तेमाल किया क्योंकि इल्तुतमिश ऐसा कोई गलती नहीं दोहराई जिससे खुद के नुकसान हो। हर गलतियों से सीख लेता गया और अंत में एक शासक बन गया। शासक बनने के बाद भी उन्होंने अनेक कार्य किया क्योंकि उन्होंने कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा स्थापित कमजोर नीव को मजबूत किया। वह हर एक क्षेत्र में काम किया चाहे वह प्रशासनिक क्षेत्र हो, चाहे राजनीतिक क्षेत्र हो, चाहे आर्थिक क्षेत्र हो, चाहे सामाजिक क्षेत्र हो, उन्होंने दिल्ली को राजधानी बनाया और अनेक उद्देश्य रखा की साम्राज्य को कैसे चलाना है और किस नियम को लाना है। ताकि प्राजों का भी समान हो और राज्य की प्रतिष्ठा बची रहे। क्योंकि उस समय अनेक लोगों के द्वारा आक्रमण हो रहा था वह आक्रमण को टालना या उस आक्रमण से दिल्ली को सुरक्षित करना बहुत चुनौती था। उस स्थिति में भी इल्तुतमिश ने कूटनीति का प्रयोग किया उसी के आधार पर सैनिक संगठन स्थापित किया। लोगों के में एकता की भावना को पैदा किया और बड़े-बड़े आक्रमण और बड़े-बड़े समस्याओं को टाल देता था। जिससे दिल्ली सल्तनत की साम्राज्य व्यवस्था पर किसी प्रकार के कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ा। इसलिए इल्तुतमिश को दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक भी माना जाता है। इनका वास्तविक संस्थापक माने जाने का कोई एक कारण नहीं है, क्योंकि इन्होंने राज्य के प्रति निष्ठा का भाव रखते हुए अनेक कार्य किया। इन्होंने ऐसे-ऐसे कार्य किया जिसमें कोई स्वार्थ का अंश भी नहीं था, निस्वार्थ की भावना से उन्होंने कार्य किया।

शोध का महत्व:-

- इल्तुतमिश द्वारा स्थापित दिल्ली सल्तनत किस प्रकार व्यवस्थित था उसको समझना जरूरी है।
- इल्तुतमिश के नियम प्रणाली के माध्यम से दिल्ली सल्तनत का क्या फायदा हुआ और आम लोगों पर इसका क्या प्रभाव पड़ा उसको समझना जरूरी है।
- इल्तुतमिश को गुलाम का हाथों बार-बार बेचा गया फिर भी एक शासक बना यह समझना अति आवश्यक है।
- इल्तुतमिश ने बड़े-बड़े आक्रमणों को अपने कूटनीति के माध्यम से कैसे टाल देता था इस पर विचार करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष:-

दिल्ली सल्तनत पर विचार करें तो स्पष्ट रूप से पता चलता है कि यह सल्तनत की स्थापना 1206 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक के द्वारा किया गया था। लेकिन यह पूरी ढांचा और यहां के पूरी व्यवस्था पूरी तरह से कमजोर था। कोई भी बाहरी आक्रमण इस व्यवस्था को तोड़ सकता था और वहां अपना आधिपत्य जमा सकता था। क्योंकि यह व्यवस्था पूरी तरह से कमजोर था इसी के अंतर्गत अनेक इतिहासकारों का मानना है कि इल्तुतमिश ने 1211 से लेकर 1236 के बीच में दिल्ली सल्तनत को एक मजबूत नीव तैयार किया। क्योंकि वह एक प्रबल बौद्धिक क्षमता वाला व्यक्ति था। इल्तुतमिश ऐबक का एक गुलाम था, फिर भी वह चतुर और दिमागों को प्रति विद्वान व्यक्ति था। क्योंकि वह इस प्रकार बात करता था और ऐसी नीतियों की वकालत करता था जो साम्राज्य और जनता के हक में था। अपनी राजनीति कुशलता और सैनिक क्षमता के बल पर सल्तनत को कई चुनौतियों और कई समस्याओं से बचाया। अपनी कड़ी मेहनत और दिमाग के बल पर विस्तृत किया क्योंकि वह जानता था की बाहरी आक्रमण से यदि साम्राज्य को नहीं बचाया गया आने वाला समय में दिल्ली सल्तनत स्वतः ही

समाप्त हो जाएगी। यहां किसी दूसरे शासका का शासन होगा, इस स्थिति के देखते हुए कुतुबुद्दीन ऐबक को हमेशा यह सलाह देता था की दिल्ली सल्तनत को कैसे मजबूत किया जा सकता है, और उसे कैसे चलाया जा सकता है। बाहरी आक्रमणों से कैसे बचाया जा सकता है, वह तरीका और विधि क्या हो सकता है। इस पर वह अत्यधिक विचार गोष्ठी करता था जिसका परिणाम यह हुआ कि वह आगे चलकर दिल्ली सल्तनत का महान शासक बना और इसी को कहा जाता है कि दिल्ली सल्तनत के वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश है।

संदर्भ :-

Singh, K. (2017). Iltutmish: Nomenclature and Early Life. *Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education.* 14(1). 943-944. Retrieved from https://ignited.in/index.php/jasrae/article/view/7123

Bashir, K. & Mir, I., A. (2023). the impact of early delhi sultanate's military and political strategies on medieval india. International Review of Practical Innovation, *Technology And Green Energy.* Page. 15-16. Retrieved from file:///C:/Users/hp/Downloads/History%20(1).pdf

Gabbay, A. (2011). In Reality a Man: Sultan Iltutmish, His Daughter, Raziya, and Gender Ambiguity in Thirteenth Century Northern India. *Made available courtesy of Brill Academic Publishers.* Retrieved from http://booksandjournals.brillonline.com/content/10.1163/187471611x568285

Zoya, (2026). Iltutmish: Architect of the Delhi Sultanat. *International Research Journal of Humanities and Interdisciplinary Studies.* 7(2). 51-54. DOI Link :: https://doi-ds.org/doilink/02.2026-92747497/IRJHIS2602006

Khan, S. (2024). Iltutmish: The Sultan who shaped the history of medieval India. In Fitness And In Health. Retrieved from https://medium.com/@malikmattiullah02/iltutmish-the-sultan-who-shaped-the-history-of-medieval-india-9ec9d7a8234a

Vajiram. & Ravi. (2026). Iltutmish (1211-1236), History, Administration, Architecture. Retrieved from https://vajiramandravi.com/upsc-exam/iltutmish/

Umar, K., B. (2019). Shams ud-Din Iltutmish. Tiwarikk khawani. Retrieved from https://tawarikhkhwani.com/shams-ud-din-iltutmish/

Received: 08.03.2026 | Accepted: 01.04.2026 | Published: 30.04.2026

यूजर्स जनित कंटेंट और नागरिक पत्रकारिता: प्रभाव एवं चुनौतियाँ

डॉ. विजयेन्दु चतुर्वेदी*

vijayendu.chaturvedy@gmail.com

सारांश

वर्तमान डिजिटल युग में सूचना और संचार के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन देखने को मिल रहा है। इंटरनेट, स्मार्टफोन और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स के विस्तार ने आम नागरिकों को भी सूचना निर्माण और प्रसारण की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बना दिया है। इसी परिवेश में यूजर्स जनित कंटेंट (यूजीसी) और नागरिक पत्रकारिता का महत्व तेजी से बढ़ा है। यूजर्स जनित कंटेंट वह सामग्री है जिसे सामान्य उपयोगकर्ता डिजिटल माध्यमों पर स्वयं निर्मित एवं साझा करते हैं, जबकि नागरिक पत्रकारिता वह प्रक्रिया है जिसमें आम नागरिक समाचारों की रिपोर्टिंग, विश्लेषण और प्रस्तुति करते हैं। यह शोध-पत्र यूजीसी और नागरिक पत्रकारिता के बढ़ते प्रभाव, उनके सामाजिक महत्व, मीडिया लोकतंत्रीकरण में उनकी भूमिका तथा उनसे उत्पन्न चुनौतियों का विश्लेषण करता है। अध्ययन में अन्ना आंदोलन, निर्भया कांड, किसान आंदोलन और कोविड-19 महामारी जैसे उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि नागरिक पत्रकारिता ने पारंपरिक मीडिया के समानांतर एक वैकल्पिक सूचना तंत्र विकसित किया है। दूसरी ओर, फेक न्यूज, तथ्यहीन सामग्री, नैतिकता की कमी और गोपनीयता उल्लंघन जैसी समस्याएँ भी सामने आई हैं। अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि यूजर्स जनित कंटेंट और नागरिक पत्रकारिता ने सूचना के लोकतंत्रीकरण को गति प्रदान की है तथा मीडिया को अधिक सहभागितापूर्ण बनाया है। हालांकि इसके सकारात्मक उपयोग हेतु मीडिया साक्षरता, तथ्य-जांच और नैतिक दिशा-निर्देशों की आवश्यकता अत्यंत महत्वपूर्ण है।

बीज शब्द:

यूजर्स जनित कंटेंट, नागरिक पत्रकारिता, डिजिटल मीडिया, सोशल मीडिया, मीडिया लोकतंत्रीकरण, फेक न्यूज, मीडिया नैतिकता, वैकल्पिक पत्रकारिता।

1. प्रस्तावना-

वर्तमान समय में डिजिटल तकनीक ने पत्रकारिता और संचार की परंपरागत संरचनाओं को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इंटरनेट और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स ने सूचना निर्माण और वितरण की प्रक्रिया को लोकतांत्रिक बना दिया है। पहले समाचार निर्माण का अधिकार मुख्यतः पेशेवर पत्रकारों और मीडिया संस्थानों तक सीमित था, लेकिन अब सामान्य नागरिक भी सूचना निर्माण और प्रसारण में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं।

यूजर्स जनित कंटेंट (यूजीसी) और नागरिक पत्रकारिता इसी परिवर्तन की प्रमुख अवधारणाएँ हैं। यूजीसी वह सामग्री है जिसे उपयोगकर्ता स्वयं तैयार कर डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर साझा करते हैं। वहीं नागरिक पत्रकारिता ऐसी प्रक्रिया है जिसमें आम नागरिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक घटनाओं की रिपोर्टिंग करते हैं। अन्ना आंदोलन (2011), निर्भया कांड (2012), किसान आंदोलन (2020-21) तथा कोविड-19 महामारी के दौरान सोशल मीडिया आधारित नागरिक पत्रकारिता ने सूचना प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक पत्रकारिता में आम नागरिकों की भागीदारी अत्यंत प्रभावशाली हो चुकी है। हालाँकि इसके साथ अनेक चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आई हैं, जैसे-फेक न्यूज, तथ्यहीन जानकारी, नैतिकता का अभाव और गोपनीयता उल्लंघन। यह शोध-पत्र इन्हीं पहलुओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

***सहायक आचार्य, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग, डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या।**

2. शोध के उद्देश्य-

1. यूजर्स जनित कंटेंट (यूजीसी) तथा नागरिक पत्रकारिता की अवधारणा, स्वरूप और विकास प्रक्रिया को स्पष्ट करना, ताकि डिजिटल पत्रकारिता के बदलते आयामों को समझा जा सके।
2. डिजिटल मीडिया और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से यूजीसी तथा नागरिक पत्रकारिता के बढ़ते प्रभाव का अध्ययन करना तथा यह विश्लेषण करना कि इन माध्यमों ने सूचना प्रसारण की प्रक्रिया को किस प्रकार परिवर्तित किया है।
3. मीडिया लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया में यूजर्स जनित कंटेंट और नागरिक पत्रकारिता की भूमिका का विश्लेषण करना, विशेष रूप से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, जनभागीदारी और सूचना के विकेंद्रीकरण के संदर्भ में।
4. नागरिक पत्रकारिता और यूजीसी से उत्पन्न प्रमुख चुनौतियों एवं आलोचनाओं का अध्ययन करना, जैसे-फेक न्यूज, तथ्यहीन सामग्री, मीडिया नैतिकता का अभाव, ट्रोलिंग, गोपनीयता उल्लंघन तथा सामाजिक वैमनस्य फैलाने वाली सूचनाएँ।
5. पारंपरिक पत्रकारिता पर यूजीसी और नागरिक पत्रकारिता के प्रभाव का मूल्यांकन करना तथा यह समझना कि इन नए डिजिटल माध्यमों ने मुख्यधारा मीडिया की कार्यप्रणाली, विश्वसनीयता और जवाबदेही को किस प्रकार प्रभावित किया है।

3 शोध पद्धति-

प्रस्तुत शोध वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है। इस अध्ययन का उद्देश्य यूजर्स जनित कंटेंट (यूजीसी) और नागरिक पत्रकारिता के स्वरूप, प्रभाव, चुनौतियों तथा मीडिया लोकतंत्रीकरण में उनकी भूमिका का समग्र विश्लेषण करना है। शोध में गुणात्मक अनुसंधान पद्धति को अपनाया गया है, जिसके माध्यम से डिजिटल मीडिया के बदलते स्वरूप और नागरिक भागीदारी का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन हेतु मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। इनमें विभिन्न शोध-पत्र, संदर्भ पुस्तकें, जर्नल लेख, सरकारी एवं गैर-सरकारी रिपोर्ट्स, समाचार-पत्र, वेब पोर्टल्स, ऑनलाइन लेख तथा सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर उपलब्ध सामग्री शामिल हैं। इसके अतिरिक्त डिजिटल मीडिया और नागरिक पत्रकारिता से संबंधित राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय अध्ययनों का भी संदर्भ लिया गया है।

शोध में केस स्टडी पद्धति का भी प्रयोग किया गया है। अन्ना आंदोलन (2011), निर्भया कांड (2012), किसान आंदोलन (2020-21) तथा कोविड-19 महामारी (2020) जैसी प्रमुख घटनाओं के दौरान सोशल मीडिया और यूजीसी की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। इन घटनाओं के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि नागरिक पत्रकारिता ने सूचना प्रसारण, जनमत निर्माण और सामाजिक जागरूकता में किस प्रकार प्रभाव डाला।

डेटा संकलन के अंतर्गत सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स जैसे फेसबुक, एक्स (पूर्व ट्विटर), यूट्यूब, इंस्टाग्राम और ब्लॉग्स पर साझा की गई सामग्री का अध्ययन किया गया। साथ ही मीडिया रिपोर्ट्स और फैक्ट-चेकिंग वेबसाइट्स के माध्यम से यूजीसी की विश्वसनीयता और प्रभाव का तुलनात्मक विश्लेषण भी किया गया।

शोध की सीमाओं के अंतर्गत यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अध्ययन मुख्यतः भारत-केंद्रित है तथा सोशल मीडिया सामग्री की निरंतर परिवर्तनशील प्रकृति के कारण सीमित घटनाओं और उपलब्ध स्रोतों पर आधारित विश्लेषण किया गया है।

4. यूजर्स जनित कंटेंट (यूजीसी) की अवधारणा-

डिजिटल संचार क्रांति के दौर में यूजर्स जनित कंटेंट मीडिया और संचार अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय बन चुका है। यूजीसी से आशय ऐसी डिजिटल सामग्री से है जिसे सामान्य इंटरनेट उपयोगकर्ताओं द्वारा स्वयं निर्मित कर विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स पर साझा किया जाता है। यह सामग्री किसी पेशेवर मीडिया संस्थान या संपादकीय प्रक्रिया तक सीमित न होकर आम नागरिकों की रचनात्मकता, अनुभव, विचार और प्रतिक्रियाओं का प्रतिनिधित्व करती है।

यूजीसी के अंतर्गत ब्लॉग, सोशल मीडिया पोस्ट, वीडियो, फोटो, पॉडकास्ट, कमेंट्स, रिव्यू, मीम्स तथा लाइव स्ट्रीमिंग जैसी सामग्री शामिल होती है। फेसबुक, एक्स (पूर्व ट्विटर), इंस्टाग्राम, यूट्यूब, ब्लॉगिंग वेबसाइट्स और अन्य सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स ने यूजीसी को व्यापक स्तर पर लोकप्रिय बनाया है।

वर्तमान समय में प्रत्येक इंटरनेट उपयोगकर्ता केवल सूचना का उपभोक्ता नहीं, बल्कि सूचना निर्माता भी बन गया है। यही कारण है कि यूजीसी ने पारंपरिक मीडिया संरचना को चुनौती देते हुए सूचना के लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान की है।

4.1 यूजीसी की प्रमुख विशेषताएँ

4.1.1 स्वतंत्र अभिव्यक्ति- यूजीसी उपयोगकर्ताओं को बिना किसी संस्थागत नियंत्रण के अपने विचार, अनुभव और भावनाएँ व्यक्त करने का अवसर प्रदान करता है। इससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बढ़ावा मिला है।

4.1.2 कम लागत में निर्माण- यूजीसी निर्माण के लिए अत्यधिक तकनीकी संसाधनों या बड़े निवेश की आवश्यकता नहीं होती। स्मार्टफोन और इंटरनेट की उपलब्धता ने इसे आम लोगों के लिए सुलभ बना दिया है।

4.1.3 तीव्र प्रसार क्षमता- सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से यूजीसी बहुत कम समय में लाखों लोगों तक पहुँच सकता है। वायरल कंटेंट इसका प्रमुख उदाहरण है।

4.1.4 संवाद और सहभागिता- यूजीसी केवल सूचना साझा करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उपयोगकर्ताओं के बीच संवाद, प्रतिक्रिया, टिप्पणी और बहस को भी प्रोत्साहित करता है।

4.1.5 सूचना का लोकतंत्रीकरण- यूजीसी ने सूचना निर्माण और प्रसारण की प्रक्रिया को विकेंद्रीकृत किया है। अब केवल मीडिया संस्थान ही सूचना के स्रोत नहीं रहे, बल्कि आम नागरिक भी सूचना निर्माण में भागीदार बन गए हैं।

4.2 यूजीसी का महत्व- यूजीसी ने डिजिटल मीडिया को अधिक सहभागितापूर्ण और लोकतांत्रिक बनाया है। इससे आम लोगों को अपनी बात रखने तथा सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर विचार व्यक्त करने का मंच मिला है।

4.2.1 सामाजिक आंदोलनों में भूमिका - मीटू आंदोलन, अरब स्प्रिंग, अन्ना आंदोलन और किसान आंदोलन जैसे कई सामाजिक एवं राजनीतिक अभियानों में यूजीसी ने जनजागरूकता और जनसमर्थन तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

4.2.2 जनमत निर्माण- यूजीसी के माध्यम से लोग विभिन्न मुद्दों पर अपने विचार साझा करते हैं, जिससे जनमत निर्माण की प्रक्रिया प्रभावित होती है। कई बार सोशल मीडिया पर वायरल कंटेंट मुख्यधारा मीडिया की खबरों को भी प्रभावित करता है।

4.2.3 वैकल्पिक पत्रकारिता का विकास- यूजीसी ने नागरिक पत्रकारिता और वैकल्पिक मीडिया को बढ़ावा दिया है। इससे ग्रामीण, आदिवासी और हाशिए पर खड़े समुदायों को भी अपनी आवाज उठाने का अवसर मिला है।

4.2.4 ब्रांडिंग और डिजिटल मार्केटिंग- कंपनियाँ और ब्रांड उपभोक्ताओं द्वारा निर्मित सामग्री का उपयोग प्रचार और विपणन के लिए करती हैं। उपभोक्ता समीक्षाएँ और सोशल मीडिया पोस्ट उपभोक्ताओं के निर्णयों को प्रभावित करते हैं।

4.3 यूजीसी की चुनौतियाँ- यद्यपि यूजीसी ने सूचना और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं, फिर भी इससे अनेक चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

4.3.1 फेक न्यूज और अफवाहें- बिना तथ्य-जाँच के सामग्री साझा किए जाने के कारण फेक न्यूज और भ्रामक सूचनाओं का प्रसार तेजी से होता है, जिससे सामाजिक भ्रम और तनाव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

4.3.2 कॉपीराइट उल्लंघन- कई बार उपयोगकर्ता बिना अनुमति के किसी अन्य की सामग्री का उपयोग कर लेते हैं, जिससे बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन होता है।

4.3.3 गोपनीयता का हनन- सोशल मीडिया पर निजी जानकारी, फोटो और वीडियो साझा किए जाने से व्यक्तियों की गोपनीयता प्रभावित हो सकती है।

4.3.4 सामाजिक और सांस्कृतिक असंवेदनशीलता- कुछ यूजीसी सामग्री धार्मिक, भाषायी या सांस्कृतिक भावनाओं को आहत कर सकती है, जिससे सामाजिक विवाद और वैमनस्य उत्पन्न हो सकता है।

4.3.5 ट्रोलिंग और साइबर बुलिंग- यूजीसी प्लेटफॉर्म्स पर ट्रोलिंग, अपमानजनक टिप्पणियाँ और साइबर बुलिंग जैसी समस्याएँ भी बढ़ी हैं, जिनका सामाजिक और मानसिक प्रभाव गंभीर हो सकता है।

इस प्रकार, यूजर्स जनित कंटेंट ने मीडिया और संचार के क्षेत्र में नई संभावनाओं के द्वार खोले हैं। यह सूचना के लोकतंत्रीकरण और जनभागीदारी का प्रभावशाली माध्यम है, किन्तु इसके सकारात्मक उपयोग हेतु नैतिकता, जिम्मेदारी और तथ्य-जाँच की आवश्यकता अत्यंत महत्वपूर्ण है।

5 नागरिक पत्रकारिता की अवधारणा-

पत्रकारिता का मूल उद्देश्य समाज को सूचित, शिक्षित और जागरूक बनाना रहा है। पारंपरिक मीडिया संस्थान लंबे समय से यह दायित्व निभाते आ रहे हैं, किंतु सूचना प्रौद्योगिकी, इंटरनेट और सोशल मीडिया के तीव्र विकास ने पत्रकारिता के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन किया है। इसी परिवर्तन के परिणामस्वरूप ''नागरिक पत्रकारिता'' की अवधारणा विकसित हुई।

नागरिक पत्रकारिता वह प्रक्रिया है जिसमें आम नागरिक स्वयं समाचारों का संकलन, विश्लेषण, प्रस्तुतीकरण और प्रसारण करते हैं। इसमें व्यक्ति केवल सूचना प्राप्त करने वाला उपभोक्ता नहीं रहता, बल्कि सूचना निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी निभाता है। इसे ''पब्लिक जर्नलिज्म'', ''पार्टिसिपेटरी जर्नलिज्म'' तथा ''यूजर जनरेटेड कंटेंट'' (यूजीसी) भी कहा जाता है।

आज मोबाइल फोन, इंटरनेट और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे फेसबुक, एक्स (ट्विटर), इंस्टाग्राम, यूट्यूब, ब्लॉग्स तथा पॉडकास्ट ने प्रत्येक व्यक्ति को संभावित पत्रकार बना दिया है। किसी घटना का प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति तुरंत वीडियो, फोटो या टिप्पणी साझा कर सकता है, जिससे समाचारों का प्रसार अत्यंत तीव्र हो गया है। नागरिक पत्रकारिता ने सूचना के लोकतंत्रीकरण को बढ़ावा दिया है और मुख्यधारा मीडिया के विकल्प के रूप में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई है।

5.1 नागरिक पत्रकारिता की उत्पत्ति और विकास

5.1.1 प्रारंभिक चरण- नागरिक पत्रकारिता की शुरुआत 1990 के दशक में अमेरिका में हुई। उस समय कुछ पत्रकारों और मीडिया चिंतकों ने महसूस किया कि पारंपरिक पत्रकारिता आम जनता की समस्याओं और सहभागिता को पर्याप्त महत्व नहीं दे रही है। परिणामस्वरूप ''पब्लिक जर्नलिज्म'' आंदोलन प्रारंभ हुआ, जिसका उद्देश्य जनता को समाचार प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनाना था। इस दौर में स्थानीय समाचार पत्रों और सामुदायिक मीडिया ने लोगों की राय और अनुभवों को समाचारों में स्थान देना शुरू किया। यह लोकतांत्रिक संवाद को मजबूत करने का प्रयास था।

5.1.2 डिजिटल युग- 2000 के बाद इंटरनेट और डिजिटल तकनीक के विस्तार ने नागरिक पत्रकारिता को नई गति प्रदान की। ब्लॉगिंग वेबसाइटों, माइक्रोब्लॉगिंग प्लेटफॉर्म, यूट्यूब और सोशल मीडिया ने सूचना साझा करना आसान बना दिया। स्मार्टफोन और सस्ते इंटरनेट के कारण लोग घटनास्थल से तुरंत वीडियो और फोटो साझा करने लगे। अरब स्प्रिंग आंदोलन (2010-11) जैसे वैश्विक आंदोलनों में सोशल मीडिया आधारित नागरिक पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डिजिटल युग में नागरिक पत्रकारिता केवल स्थानीय मुद्दों तक सीमित नहीं रही, बल्कि वैश्विक स्तर पर सूचना और जनमत निर्माण का प्रभावशाली माध्यम बन गई।

5.1.3 भारत में विकास- भारत में नागरिक पत्रकारिता का विकास विशेष रूप से सोशल मीडिया क्रांति के बाद तेजी से हुआ। अन्ना हजारे आंदोलन (2011), निर्भया कांड (2012), नागरिकता संशोधन अधिनियम (सीएए) विरोध प्रदर्शन, किसान आंदोलन (2020-21) तथा विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं के दौरान नागरिक पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन घटनाओं में आम लोगों द्वारा साझा किए गए वीडियो, पोस्ट और लाइव रिपोर्टिंग ने मुख्यधारा मीडिया को भी प्रभावित किया। कई बार नागरिक पत्रकारिता ने उन मुद्दों को उजागर किया जिन्हें पारंपरिक मीडिया पर्याप्त महत्व नहीं दे रहा था। ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में भी मोबाइल इंटरनेट के प्रसार ने स्थानीय समुदायों को अपनी समस्याएं और आवाज राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाने का अवसर दिया।

5.2 नागरिक पत्रकारिता के प्रकार

5.2.1 ब्लॉगिंग और माइक्रोब्लॉगिंग- ब्लॉगिंग नागरिक पत्रकारिता का प्रारंभिक और लोकप्रिय स्वरूप है। इसमें व्यक्ति अपने विचार, अनुभव और समाचारों को लेख के रूप में प्रस्तुत करता है। माइक्रोब्लॉगिंग प्लेटफॉर्म जैसे एक्स (ट्विटर) पर संक्षिप्त संदेशों के माध्यम से त्वरित सूचना साझा की जाती है। यह माध्यम राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर जनमत निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

5.2.2 वीडियो पत्रकारिता- मोबाइल फोन और कैमरा तकनीक के विकास ने वीडियो पत्रकारिता को अत्यधिक लोकप्रिय बनाया है। किसी घटना का प्रत्यक्षदर्शी व्यक्ति वीडियो रिकॉर्ड करके उसे सोशल मीडिया या यूट्यूब पर साझा कर सकता है। आज कई स्वतंत्र यूट्यूब चौनल नागरिक पत्रकारिता के माध्यम से सामाजिक मुद्दों, भ्रष्टाचार, प्रशासनिक लापरवाही और जन समस्याओं को उजागर कर रहे हैं।

5.2.3 सोशल मीडिया रिपोर्टिंग- फेसबुक, इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप और एक्स जैसे प्लेटफॉर्म नागरिक पत्रकारिता के प्रमुख माध्यम बन चुके हैं। इन माध्यमों के द्वारा समाचारों का त्वरित प्रसार संभव होता है। प्राकृतिक आपदाओं, दुर्घटनाओं और आंदोलनों के दौरान सोशल डमकपं रिपोर्टिंग अत्यंत प्रभावी सिद्ध होती है क्योंकि यह वास्तविक समय में सूचनाएं उपलब्ध कराती है।

5.2.4 ऑडियो पॉडकास्टिंग- पॉडकास्ट नागरिक पत्रकारिता का उभरता हुआ माध्यम है। इसमें व्यक्ति सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक या शैक्षिक विषयों पर ऑडियो संवाद प्रस्तुत करता है। पॉडकास्टिंग के माध्यम से वैकल्पिक विचारधाराओं और स्थानीय मुद्दों को व्यापक मंच मिलता है।

5.3 नागरिक पत्रकारिता के लाभ

5.3.1 सूचना का लोकतंत्रीकरण- नागरिक पत्रकारिता ने सूचना के अधिकार को व्यापक बनाया है। अब केवल बड़े मीडिया संस्थान ही समाचारों के स्रोत नहीं रहे, बल्कि हर नागरिक सूचना साझा कर सकता है। इससे लोकतांत्रिक संवाद को मजबूती मिलती है।

5.3.2 तत्काल रिपोर्टिंग- नागरिक पत्रकार घटनास्थल से तुरंत सूचना साझा कर सकते हैं। इससे समाचारों की गति तेज होती है और लोग वास्तविक समय में घटनाओं से अवगत हो पाते हैं।

5.3.3 मुख्यधारा मीडिया की जवाबदेही- कई बार नागरिक पत्रकारिता मुख्यधारा मीडिया की सीमाओं और पक्षपात को उजागर करती है। इससे मीडिया संस्थानों पर निष्पक्ष और उत्तरदायी बने रहने का दबाव बनता है।

5.3.4 वंचित आवाजों को मंच- ग्रामीण, आदिवासी, दलित, महिला और अन्य वंचित समुदायों को नागरिक पत्रकारिता के माध्यम से अपनी समस्याएं और अनुभव साझा करने का अवसर मिलता है। यह सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देती है।

5.4 नागरिक पत्रकारिता की चुनौतियाँ

5.4.1 सूचना की प्रामाणिकता- नागरिक पत्रकारिता की सबसे बड़ी चुनौती सूचना की सत्यता है। कई बार बिना सत्यापन के झूठी या भ्रामक खबरें वायरल हो जाती हैं, जिससे समाज में भ्रम और तनाव उत्पन्न हो सकता है।

5.4.2 नैतिकता और आचार संहिता का अभाव- अधिकांश नागरिक पत्रकार पेशेवर प्रशिक्षण प्राप्त नहीं करते। परिणामस्वरूप कई बार समाचार प्रस्तुत करते समय पत्रकारिता की नैतिकता और संवेदनशीलता का पालन नहीं हो पाता।

5.4.3 गोपनीयता और निजता का उल्लंघन- सोशल मीडिया पर वीडियो और फोटो साझा करते समय कई बार व्यक्तियों की निजता और संवेदनशीलता की अनदेखी हो जाती है। यह मानवाधिकार संबंधी समस्याएं उत्पन्न कर सकता है।

5.4.4 कानूनी जटिलताएँ- फेक न्यूज, मानहानि, कॉपीराइट उल्लंघन और हेट स्पीच जैसे मामलों में नागरिक पत्रकारों को कानूनी चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। डिजिटल मीडिया कानूनों की जानकारी का अभाव भी समस्या को बढ़ाता है।

5.5 भारत में नागरिक पत्रकारिता के उदाहरण

5.5.1 सीजीनेट स्वरा- सीजीनेट स्वरा छत्तीसगढ़ और मध्य भारत के आदिवासी समुदायों द्वारा संचालित एक नागरिक मीडिया प्लेटफॉर्म है। इसके माध्यम से ग्रामीण और आदिवासी लोग अपनी समस्याएं और स्थानीय समाचार साझा करते हैं। यह भारत में नागरिक पत्रकारिता का सफल उदाहरण माना जाता है।

5.5.2 द वायर, ऑल्ट न्यूज जैसे पोर्टल- द वायर, ऑल्ट न्यूज और अन्य डिजिटल प्लेटफॉर्म नागरिकों द्वारा साझा की गई सूचनाओं और ग्राउंड रिपोर्टिंग को महत्व देते हैं। विशेष रूप से ऑल्ट न्यूज फेक न्यूज की तथ्य जांच के लिए प्रसिद्ध है।

5.5.3 जन आंदोलनों में भूमिका- दिल्ली दंगे, किसान आंदोलन, सीएए विरोध प्रदर्शन तथा कोविड-19 महामारी के दौरान नागरिक पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कई स्वतंत्र पत्रकारों और नागरिकों ने जमीनी स्तर की रिपोर्टिंग करके वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किए।

नागरिक पत्रकारिता ने आधुनिक लोकतंत्र में सूचना के प्रवाह को नया आयाम प्रदान किया है। इसने आम नागरिकों को अभिव्यक्ति का सशक्त मंच दिया है तथा मीडिया के केंद्रीकरण को चुनौती दी है। यह लोकतांत्रिक सहभागिता, पारदर्शिता और सामाजिक जागरूकता को बढ़ावा देती है। हालांकि, इसके साथ फेक न्यूज, नैतिकता की कमी और कानूनी चुनौतियाँ जैसी समस्याएं भी जुड़ी हुई हैं। इसलिए आवश्यक है कि नागरिक पत्रकारिता के क्षेत्र में मीडिया साक्षरता, तथ्य-जांच, नैतिक प्रशिक्षण और जिम्मेदार उपयोग को बढ़ावा दिया जाए। उचित दिशा-निर्देशों और जागरूकता के साथ नागरिक पत्रकारिता समाज परिवर्तन का प्रभावी माध्यम सिद्ध हो सकती है।

6. सोशल मीडिया और यूजीसी का प्रभाव-

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स ने यूजर्स जनित कंटेंट (यूजीसी) को वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय और प्रभावशाली बना दिया है। फेसबुक, एक्स (पूर्व ट्विटर), इंस्टाग्राम, यूट्यूब, व्हाट्सएप तथा अन्य डिजिटल माध्यमों ने प्रत्येक व्यक्ति को कंटेंट निर्माता और सूचना प्रसारक बनने का अवसर प्रदान किया है।

पहले समाचार और सूचनाओं का नियंत्रण मुख्यतः बड़े मीडिया संस्थानों के पास होता था, किंतु सोशल मीडिया ने इस व्यवस्था को बदल दिया। अब आम नागरिक भी अपने विचार, अनुभव, वीडियो, फोटो और समाचार लाखों लोगों तक तुरंत पहुँचा सकते हैं। सोशल मीडिया और यूजीसी ने सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में गहरा प्रभाव डाला है। इसके माध्यम से जनमत निर्माण, सामाजिक आंदोलनों, डिजिटल मार्केटिंग और ऑनलाइन संवाद की प्रक्रियाएँ अधिक सक्रिय और व्यापक हुई हैं।

6.1 सामाजिक प्रभाव

6.1.1 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का विस्तार- सोशल मीडिया और यूजीसी ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को व्यापक रूप से बढ़ावा दिया है। अब प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी बड़े मीडिया संस्थान पर निर्भर हुए अपने विचार और अनुभव साझा कर सकता है। ब्लॉग्स, पोस्ट, वीडियो और पॉडकास्ट के माध्यम से लोग सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा व्यक्तिगत मुद्दों पर खुलकर अपनी राय व्यक्त कर रहे हैं। इससे लोकतांत्रिक संवाद को मजबूती मिली है तथा समाज के विभिन्न वर्गों को अपनी आवाज उठाने का अवसर प्राप्त हुआ है।

6.1.2 सामाजिक आंदोलनों को गति- यूजीसी आधारित सोशल मीडिया अभियानों ने कई सामाजिक आंदोलनों को नई ऊर्जा प्रदान की है। MeToo, Black Lives Matter, किसान आंदोलन, नागरिकता संशोधन अधिनियम (सीएए) विरोध तथा पर्यावरण संरक्षण से जुड़े अभियानों में सोशल मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन आंदोलनों में आम लोगों द्वारा साझा किए गए वीडियो, पोस्ट और अनुभवों ने व्यापक जनसमर्थन तैयार किया और मुख्यधारा मीडिया को भी इन मुद्दों पर ध्यान देने के लिए प्रेरित किया।

6.1.3 सूचना का विकेंद्रीकरण- सोशल मीडिया ने सूचना के केंद्रीकरण को समाप्त कर उसे अधिक लोकतांत्रिक बनाया है। अब सूचना केवल बड़े समाचार चौनलों और अखबारों तक सीमित नहीं रही, बल्कि हर व्यक्ति सूचना का स्रोत बन सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों, आदिवासी समुदायों और हाशिए पर स्थित वर्गों की समस्याएँ भी अब सोशल मीडिया के माध्यम से राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर तक पहुँच रही हैं।

6.1.4 जनमत निर्माण में भूमिका- सोशल मीडिया आज जनमत निर्माण का एक अत्यंत प्रभावशाली माध्यम बन चुका है। राजनीतिक दल, सामाजिक संगठन और आम नागरिक विभिन्न मुद्दों पर अपनी राय व्यक्त करके लोगों की सोच को प्रभावित करते हैं। चुनावों, सरकारी नीतियों और सामाजिक मुद्दों पर सोशल मीडिया चर्चाएँ जनमत को दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कई बार सोशल मीडिया पर वायरल होने वाले मुद्दे राष्ट्रीय बहस का विषय बन जाते हैं।

6.2 व्यावसायिक प्रभाव

6.2.1 इन्फ्लुएंसर मार्केटिंग का विकास- सोशल मीडिया ने इन्फ्लुएंसर मार्केटिंग को एक बड़े उद्योग के रूप में विकसित किया है। आज लाखों फॉलोअर्स वाले कंटेंट क्रिएटर्स और इन्फ्लुएंसर्स कंपनियों के उत्पादों और सेवाओं का प्रचार करते हैं। लोग पारंपरिक विज्ञापनों की तुलना में इन्फ्लुएंसर्स की राय और अनुभवों पर अधिक विश्वास करने लगे हैं, जिससे कंपनियाँ अपनी मार्केटिंग रणनीतियों में यूजीसी का अधिक उपयोग कर रही हैं।

6.2.2 ब्रांड प्रचार में यूजीसी का उपयोग- कई कंपनियाँ अपने उपभोक्ताओं द्वारा तैयार किए गए कंटेंट को प्रचार के लिए उपयोग करती हैं। ग्राहक रिव्यू, अनबॉक्सिंग वीडियो, उत्पाद अनुभव और सोशल मीडिया टैगिंग ब्रांड प्रमोशन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुके हैं। यूजीसी आधारित प्रचार अधिक विश्वसनीय और प्रभावशाली माना जाता है क्योंकि यह वास्तविक उपभोक्ताओं के अनुभवों पर आधारित होता है।

6.2.3 डिजिटल विज्ञापन रणनीतियों में परिवर्तन- सोशल मीडिया और यूजीसी ने विज्ञापन उद्योग की पारंपरिक रणनीतियों को बदल दिया है। अब विज्ञापन केवल एकतरफा संदेश नहीं रहे, बल्कि इंटरएक्टिव और सहभागितापूर्ण बन गए हैं। कंपनियाँ सोशल मीडिया कैंपेन, लाइव स्ट्रीमिंग, हैशटैग अभियानों और यूजर एंगेजमेंट गतिविधियों के माध्यम से उपभोक्ताओं से सीधा संवाद स्थापित कर रही हैं। इससे ब्रांड और उपभोक्ताओं के बीच संबंध अधिक मजबूत हुए हैं।

इस प्रकार सोशल मीडिया और यूजीसी ने समाज और व्यवसाय दोनों क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन किए हैं। इन्होंने सूचना के प्रसार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, जनसंचार तथा डिजिटल अर्थव्यवस्था को नई दिशा प्रदान की है।

7. पत्रकारिता में लोकतंत्रीकरण-

डिजिटल मीडिया और इंटरनेट क्रांति ने पत्रकारिता के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन किया है। पहले समाचारों के निर्माण और प्रसारण का अधिकार मुख्यतः बड़े मीडिया संस्थानों, समाचार पत्रों और टीवी चौनलों तक सीमित था, लेकिन सोशल मीडिया, ब्लॉगिंग प्लेटफॉर्म्स, यूट्यूब और अन्य डिजिटल माध्यमों ने इस व्यवस्था को बदल दिया है।

आज प्रत्येक व्यक्ति मोबाइल फोन और इंटरनेट की सहायता से सूचना का निर्माण, प्रसारण और विश्लेषण कर सकता है। यही प्रक्रिया पत्रकारिता में ‘‘लोकतंत्रीकरण’’ कहलाती है। इसका अर्थ है कि पत्रकारिता अब केवल पेशेवर पत्रकारों और संस्थानों तक सीमित न रहकर आम जनता की भागीदारी से संचालित होने लगी है। लोकतंत्रीकरण ने सूचना के प्रवाह को अधिक खुला, व्यापक और सहभागी बनाया है। इससे समाज के विभिन्न वर्गों को अपनी बात रखने और जनमत निर्माण में भाग लेने का अवसर मिला है। हालांकि इसके साथ कुछ गंभीर चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

7.1 लोकतंत्रीकरण के लाभ

7.1.1 विविध समुदायों की भागीदारी- पत्रकारिता के लोकतंत्रीकरण ने समाज के उन वर्गों को भी अभिव्यक्ति का अवसर दिया है, जो पहले मुख्यधारा मीडिया में पर्याप्त स्थान नहीं पाते थे। ग्रामीण समुदाय, महिलाएँ, आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक और युवा वर्ग अब सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से अपनी समस्याएँ, विचार और अनुभव साझा कर रहे हैं। इससे मीडिया अधिक समावेशी और बहुआयामी बना है। विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों को मंच मिलने से लोकतांत्रिक संवाद मजबूत हुआ है।

7.1.2 सूचना तक व्यापक पहुँच- डिजिटल पत्रकारिता ने सूचना तक पहुँच को अत्यंत सरल और व्यापक बना दिया है। अब लोग किसी भी समय और किसी भी स्थान से समाचार और जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इंटरनेट और स्मार्टफोन के कारण दूर-दराज क्षेत्रों में रहने वाले लोग भी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय घटनाओं से जुड़ पाए हैं। इसके अतिरिक्त, नागरिक पत्रकारिता के माध्यम से स्थानीय मुद्दों और समस्याओं को भी व्यापक स्तर पर पहचान मिलने लगी है

7.1.3 पारदर्शिता और जवाबदेही में वृद्धि- सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने सरकार, प्रशासन और मीडिया संस्थानों की जवाबदेही बढ़ाई है। अब किसी घटना, भ्रष्टाचार या प्रशासनिक लापरवाही की जानकारी तुरंत सार्वजनिक की जा सकती है। लाइव वीडियो, फोटो और प्रत्यक्षदर्शियों की रिपोर्टिंग के कारण घटनाओं को छिपाना कठिन हो गया है। इससे पारदर्शिता में वृद्धि हुई है और जनहित से जुड़े मुद्दों पर त्वरित प्रतिक्रिया संभव हुई है।

7.2 लोकतंत्रीकरण की चुनौतियाँ

7.2.1 फेक न्यूज का प्रसार - पत्रकारिता के लोकतंत्रीकरण की सबसे बड़ी चुनौती फेक न्यूज और भ्रामक सूचनाओं का तेजी से फैलना है। सोशल मीडिया पर बिना सत्यापन के समाचार और वीडियो वायरल हो जाते हैं, जिससे समाज में भ्रम, भय और तनाव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। कई बार राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक उद्देश्यों से झूठी सूचनाएँ जानबूझकर फैलायी जाती हैं, जो सामाजिक सौहार्द के लिए खतरा बन जाती हैं।

7.2.2 विश्वसनीयता का संकट- डिजिटल माध्यमों में कोई भी व्यक्ति सूचना साझा कर सकता है, लेकिन सभी सूचनाएँ तथ्यात्मक या विश्वसनीय नहीं होतीं। पेशेवर संपादन और तथ्य-जांच की कमी के कारण कई बार गलत या अधूरी जानकारी प्रसारित हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप लोगों के बीच मीडिया की विश्वसनीयता को लेकर संदेह उत्पन्न होने लगा है। पाठकों और दर्शकों के लिए सही और गलत सूचना में अंतर करना चुनौतीपूर्ण हो गया है।

7.2.3 पेशेवर गुणवत्ता में कमी- पारंपरिक पत्रकारिता में समाचारों की प्रस्तुति के लिए भाषा, तथ्य-जांच, नैतिकता और संपादन के निश्चित मानक होते हैं, जबकि नागरिक पत्रकारिता और सोशल मीडिया आधारित रिपोर्टिंग में इन मानकों का अभाव देखा जाता है। कई बार बिना प्रशिक्षण के लोग संवेदनशील मुद्दों पर रिपोर्टिंग करते हैं, जिससे समाचारों की गुणवत्ता प्रभावित होती है। सनसनीखेज और वायरल कंटेंट को प्राथमिकता मिलने से गंभीर और शोधपरक पत्रकारिता कमजोर पड़ सकती है।

इस प्रकार पत्रकारिता में लोकतंत्रीकरण ने सूचना और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मजबूत किया है तथा समाज के विभिन्न वर्गों को सक्रिय भागीदारी का अवसर प्रदान किया है। हालांकि इसके सकारात्मक प्रभावों को बनाए रखने के लिए तथ्य-जांच, मीडिया साक्षरता, नैतिकता और जिम्मेदार पत्रकारिता को बढ़ावा देना अत्यंत आवश्यक है।

8. यूजीसी और नागरिक पत्रकारिता: चुनौतियाँ एवं आलोचनाएँ-यूजर्स जनित कंटेंट (यूजीसी) और नागरिक पत्रकारिता ने आधुनिक मीडिया परिदृश्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इन माध्यमों ने सूचना के लोकतंत्रीकरण, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और जनभागीदारी को बढ़ावा दिया है। अब कोई भी व्यक्ति मोबाइल फोन और इंटरनेट की सहायता से समाचार, वीडियो, फोटो और विचारों को वैश्विक स्तर पर साझा कर सकता है। हालाँकि, इन सकारात्मक परिवर्तनों के साथ अनेक चुनौतियाँ और आलोचनाएँ भी सामने आई हैं। कई बार बिना सत्यापन की जानकारी, नैतिकता की कमी और सोशल मीडिया के दुरुपयोग के कारण समाज में भ्रम, तनाव और गलत सूचनाओं का प्रसार बढ़ जाता है। इसलिए यूजीसी और नागरिक पत्रकारिता के प्रभावों का समालोचनात्मक अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

8.1 प्रमुख चुनौतियाँ

8.1.1 तथ्यहीन जानकारी- यूजीसी और नागरिक पत्रकारिता की सबसे बड़ी चुनौती अपुष्ट और तथ्यहीन सूचनाओं का प्रसार है। सोशल मीडिया पर कोई भी व्यक्ति बिना पर्याप्त सत्यापन के समाचार या वीडियो साझा कर सकता है। कई बार फेक न्यूज, अफवाहें और भ्रामक सूचनाएँ बहुत तेजी से वायरल हो जाती हैं, जिससे सामाजिक तनाव और भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। चुनाव, महामारी, धार्मिक मुद्दों और आपदाओं के दौरान यह समस्या अधिक गंभीर रूप से दिखाई देती है।

8.1.2 नैतिकता का अभाव- पारंपरिक पत्रकारिता में निष्पक्षता, संतुलन, संवेदनशीलता और जिम्मेदारी जैसे नैतिक सिद्धांतों का पालन किया जाता है। लेकिन नागरिक पत्रकारिता में अधिकांश लोग पेशेवर प्रशिक्षण प्राप्त नहीं करते, जिसके कारण कई बार नैतिक मानकों की अनदेखी होती है। सनसनीखेज सामग्री, अधूरी जानकारी और व्यक्तिगत विचारों को समाचार के रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति मीडिया की गुणवत्ता को प्रभावित करती है।

8.1.3 गोपनीयता का उल्लंघन- सोशल मीडिया और यूजीसी के माध्यम से कई बार व्यक्तियों की निजी जानकारी, फोटो और वीडियो बिना अनुमति के साझा कर दिए जाते हैं। दुर्घटनाओं, अपराधों या व्यक्तिगत घटनाओं की संवेदनशील सामग्री

भी सार्वजनिक कर दी जाती है। इससे व्यक्तियों की निजता और मानवाधिकारों का उल्लंघन होता है तथा मानसिक और सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

8.1.4 नफरत फैलाने वाली सामग्री- यूजीसी प्लेटफॉर्म्स पर कई बार घृणास्पद भाषण, ट्रोलिंग, साइबर बुलिंग और सांप्रदायिक या जातीय विद्वेष फैलाने वाली सामग्री का प्रसार होता है। ऐसी सामग्री समाज में विभाजन और असहिष्णुता को बढ़ावा देती है तथा सामाजिक सौहार्द को प्रभावित करती है। सोशल मीडिया की त्वरित और व्यापक पहुँच के कारण इसका प्रभाव और अधिक गंभीर हो जाता है।

8.2 प्रमुख आलोचनाएँ

8.2.1 बिना प्रशिक्षण के रिपोर्टिंग- आलोचकों का मानना है कि पत्रकारिता एक पेशेवर कार्य है, जिसके लिए तथ्य-जांच, भाषा, प्रस्तुति और नैतिकता का ज्ञान आवश्यक होता है। नागरिक पत्रकारिता में कई लोग बिना किसी प्रशिक्षण के रिपोर्टिंग करने लगते हैं, जिससे समाचारों की गुणवत्ता और विश्वसनीयता प्रभावित होती है। कई बार अधूरी या गलत जानकारी समाज में भ्रम पैदा कर देती है।

8.2.2 एजेंडा आधारित पत्रकारिता- कुछ मामलों में यूजीसी और नागरिक पत्रकारिता व्यक्तिगत, राजनीतिक या वैचारिक एजेंडे से प्रभावित दिखाई देती है। कई कंटेंट निर्माता किसी विशेष विचारधारा, संगठन या समूह के समर्थन में सामग्री प्रस्तुत करते हैं, जिससे निष्पक्षता और संतुलन प्रभावित होता है। इससे पत्रकारिता की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लगते हैं।

8.2.3 सोशल मीडिया एल्गोरिद्म का प्रभाव- सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स के एल्गोरिद्म ऐसे कंटेंट को अधिक बढ़ावा देते हैं जो अधिक वायरल और आकर्षक हो। परिणामस्वरूप कई बार सनसनीखेज, विवादास्पद या भावनात्मक सामग्री को प्राथमिकता मिलती है, जबकि तथ्यात्मक और गंभीर पत्रकारिता पीछे छूट जाती है। इस प्रवृत्ति ने "वायरल संस्कृति" को बढ़ावा दिया है, जहाँ लोकप्रियता को गुणवत्ता से अधिक महत्व मिलने लगा है।

8.2.4 पारंपरिक मीडिया की विश्वसनीयता पर असर- यूजीसी और नागरिक पत्रकारिता के बढ़ते प्रभाव ने पारंपरिक मीडिया संस्थानों की भूमिका को चुनौती दी है। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि सोशल मीडिया आधारित त्वरित और असंपादित सामग्री के कारण गहन शोध और पेशेवर पत्रकारिता कमजोर पड़ रही है। हालाँकि नागरिक पत्रकारिता ने वैकल्पिक आवाजों को मंच दिया है, फिर भी कई बार इससे विश्वसनीय और तथ्यपरक पत्रकारिता की साख प्रभावित होती है।

इस प्रकार यूजीसी और नागरिक पत्रकारिता ने सूचना और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में नई संभावनाएँ पैदा की हैं, लेकिन इनके साथ कई गंभीर चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं। आवश्यक है कि डिजिटल मीडिया के उपयोग में तथ्य-जांच, नैतिकता, मीडिया साक्षरता और जिम्मेदार व्यवहार को बढ़ावा दिया जाए, ताकि यह माध्यम लोकतंत्र और समाज के लिए सकारात्मक भूमिका निभा सके।

निष्कर्षः

वर्तमान डिजिटल युग में यूजर्स जनित कंटेंट (यूजीसी) और नागरिक पत्रकारिता ने पत्रकारिता और जनसंचार के स्वरूप को व्यापक रूप से परिवर्तित किया है। इंटरनेट, सोशल मीडिया और स्मार्टफोन तकनीक के विकास ने सूचना निर्माण और प्रसारण की प्रक्रिया को अधिक लोकतांत्रिक, सहभागितापूर्ण और त्वरित बना दिया है। अब पत्रकारिता केवल पेशेवर मीडिया संस्थानों तक सीमित नहीं रही, बल्कि आम नागरिक भी सूचना के निर्माण, विश्लेषण और प्रसारण में सक्रिय भूमिका निभाने लगे हैं। यूजीसी और नागरिक पत्रकारिता ने सूचना के लोकतंत्रीकरण को गति प्रदान की है। इन माध्यमों ने समाज के विभिन्न वर्गों, विशेषकर ग्रामीण, वंचित और हाशिए पर स्थित समुदायों को अपनी आवाज उठाने का अवसर दिया है। सामाजिक आंदोलनों, प्राकृतिक आपदाओं, महामारी, चुनाव और राजनीतिक घटनाओं के दौरान नागरिक पत्रकारिता ने त्वरित और जनपक्षीय सूचना उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अन्ना आंदोलन, निर्भया कांड, किसान आंदोलन तथा कोविड-19 महामारी जैसे उदाहरण यह सिद्ध करते हैं कि नागरिक पत्रकारिता कई बार मुख्यधारा मीडिया के समानांतर एक प्रभावी सूचना स्रोत के रूप में उभरी है।

इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया और यूजीसी ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, जनभागीदारी और पारदर्शिता को मजबूत किया है। आज प्रत्येक व्यक्ति अपने विचार, अनुभव और समस्याओं को वैश्विक स्तर पर साझा कर सकता है। इससे लोकतांत्रिक संवाद को नई दिशा मिली है तथा जनमत निर्माण की प्रक्रिया अधिक व्यापक हुई है। हालाँकि, इन सकारात्मक प्रभावों के साथ अनेक गंभीर चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। फेक न्यूज, तथ्यहीन जानकारी, अफवाहों का प्रसार, पत्रकारिता की नैतिकता में कमी, ट्रोलिंग, नफरत फैलाने वाली सामग्री तथा गोपनीयता के उल्लंघन जैसी समस्याएँ डिजिटल मीडिया के दुष्परिणामों के रूप में उभरी हैं। कई बार बिना सत्यापन की सूचनाएँ समाज में भ्रम, तनाव और अस्थिरता पैदा कर देती हैं। इसके अतिरिक्त, बिना प्रशिक्षण के रिपोर्टिंग और एजेंडा आधारित सामग्री पत्रकारिता की विश्वसनीयता को भी प्रभावित करती है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि मीडिया साक्षरता, तथ्य-जांच (फैक्ट-चेकिंग), डिजिटल नैतिकता और जिम्मेदार ऑनलाइन व्यवहार को बढ़ावा दिया जाए। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स सरकार, शैक्षणिक संस्थानों और समाज को मिलकर ऐसे प्रयास करने होंगे, जिनसे डिजिटल मीडिया का उपयोग अधिक उत्तरदायी और सकारात्मक बनाया जा सके।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यूजर्स जनित कंटेंट और नागरिक पत्रकारिता आधुनिक लोकतांत्रिक समाज में सूचना सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन चुके हैं। यदि इनका उपयोग सत्यता, नैतिकता, उत्तरदायित्व और संवेदनशीलता के साथ किया जाए, तो ये समाज में जागरूकता, पारदर्शिता और लोकतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ करने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं।

संदर्भ :

1. Gillmor, Dan. (2004). We the Media: Grassroots Journalism by the People, for the People. O'Reilly Media.
2. Rajan, Nalini. (2007). Journalism and Responsibility. New Delhi.
3. कुमार, एम. (2012). नागरिक पत्रकारिता का सामाजिक प्रभाव. मीडिया अध्ययन पत्रिका, 7(2).
4. Reuters Institute. (2021). Digital News Report 2021.
5. IAMAI. (2020). Internet and Mobile Association of India.
6. Brooks, Jennifer. (2015). Citizen Journalism and Democracy. Routledge Publications.
7. Mehta, Vinod. (2010). Media and Democracy. Penguin Books.
8. The Wire. (n.d.). https://thewire.in
9. Alt News. (n.d.). https://www.altnews.in
10. CGNet Swara. (n.d.). https://cgnet.in

Received: 10.03.2026 | Accepted: 01.04.2026 | Published: 30.04.2026

अकबर की सुलह –ए –कुल की नीतियां और भारतीय समाज पर उसका प्रभाव एक अवलोकन

(Akbar's Policies of Sulh-i-Kul and Their Impact on Indian Society: An Overview)

Sanjay Kumar Gupta*
gupta.sanjaykumar7@gmail.com

परिचय:-

महान अकबर की धार्मिक नीति सुलह –ए -कुल एकता और शांति की भावनाओं पर आधारित था। क्योंकि अकबर चाहते थे कि इस नीति के माध्यम से सभी लोगों के बीच तथा सभी धर्म के बीच समानता, सहिष्णुता, आपसी भाईचारा, सद्भावना एकाग्रता आदि को स्थापित करना आवश्यक है। अकबर ने पुरानी रूढ़िवादी विचारधाराओं को तैयागकर उदारवादी दृष्टिकोण को अपनाने के प्रयास किया। उन्होंने पहले से चले आ रहे हैं वैसे कानून जो जनहित में न हो उसे समाप्त किया जैसे उन्होंने 1564 में जजिया कर को समाप्त किया। इसी प्रकार उन्होंने इस नीति के माध्यम से सभी को एक साथ एक भावनाओं में लाने के लिए अकबर ने प्रयास किया। उनका मानना था की सभी धर्म के बीच आपसी भाईचारा और सद्भावना स्थापित करना जरूरी है। ताकि साम्राज्यवादी व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाया जा सके। इस नीति के तहत उन्होंने पहले से चले आ रहे एक दूसरे के बीच खाई को पाटने ने का प्रयास किया। इतना ही नहीं अकबर ने एक दूसरे के बीच आपसी भाईचारा बढ़ाने के लिए फतेहपुर सीकरी में धार्मिक चर्चा के लिए एक ऐसा भवन का निर्माण करवाया। जहां हिंदू, ईसाई, मुस्लिम, बौद्ध, जैन और पारसी विद्वानों के साथ बैठकर अकबर चर्चा करता था। सुलह –ए- कुल नीति के माध्यम से अकबर ने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि हिंदू और मुसलमान के बीच जो आपसी मतभेद है वह समाप्त हो। आपसी भाईचारा विकसित हो और जो अनेक प्रकार के सदियों से चले आ रहे हैं समस्या है वह समाप्त हो। लोग एक दूसरे के बीच किसी प्रकार की संघर्ष न करे आदि के उद्देश्य के ध्यान में रखते हुए अकबर ने इस नीति को अपनाया था। अकबर ने इस धार्मिक नीति के माध्यम से अनेक समुदाय के लोगों को आपस में एकजुट करने का प्रयास किया जिसका प्रभाव यह रहा कि इस नीति के माध्यम से लोग एक दूसरे के संपर्क में भी आय।

कुंजी शब्द:-

अकबर, सुलह –ए –कुल, नीति का प्रसिंगिता, हिन्दू –मुस्लिम एकता , सार्वभौमिकता और सहिष्णुता

एक दूसरे के लोग सहायता किया तथा काफी हद तक यह नीति का प्रभाव मध्यकालीन भारतीय समाज पर पड़ा था। क्योंकि अकबर एक ऐसे विचारक थे जिन्होंने सभी धर्म और वर्गों के लोगों को एक साथ लेकर चलने का प्रयास किया था। जिसका नतीजा यह हुआ कि मध्यकालीन भारत में अधिकांश अनेक समुदाय के लोग उनके विचारों को समझने का प्रयास किया तथा एकजुट होने के में भी लोग सक्रिय रहे। इस नीति के माध्यम से भारतीय समाज के जानता ने काफी स्वागत भी किया था और इस नीति के माध्यम से लोग एक दूसरे को समझाने का प्रयास किया था।

* **J. S. University Shikohabad (Firozabad) U.P. 283203**

साहित्य पुनरावलोकन:-

अकबर एक ऐसे महान शासक थे जिन्होंने अनेक कार्य किया जिसके चलते उन्हें महान बादशाहों में गिना जाता है। जब दिल्ली के गादी पर बैठे तब उनका उम्र मात्र 14 साल था। अकबर सभी लोगों को एकजुट करके एक साथ चलने के लिए उन्होंने काफी प्रयास किया। इस प्रयास का प्रभाव मध्यकालीन भारतीय इतिहास में देखा जा सकता है(**Shrivant, eti all. 2013**)। अकबर की राजनीति व्यवहार और उदारवादी विचारधारा के वजह से कट्टर रूढ़िवादी के लोग उनसे टकराते थे। राज्य के राजनीतिक और धार्मिक मामलों में जबरदस्त दखल अंदाज देने का प्रयास करते थे। लेकिन महान अकबर ने अपने चतुराइयों से सभी लोगों के एक साथ साधने का प्रयास करते थे इसलिए अखबार नीतियों के मामले में अग्रिम थे(**Angel, 2018**)। अकबर पहले ऐसे मुगल सम्राट थे जिनका जन्म भारत में हुआ था लेकिन उनके रक्त में कोई भारतीय अंश नहीं था। वास्तव में रक्त के मामले में फार्सियों के अधिक करीब थे। क्योंकि उनकी मां और भाभी फारसी थी। हुमायु की मृत्यु के समय अकबर अपने संरक्षक बैरम खान के साथ युद्ध क्षेत्र में थे। अपने दादा की तरह अकबर ने भी बहुत कम उम्र में ही अपने सैन्य जीवन की शुरुआत कर दी थी तथा उन्होंने समय-समय पर ऐसी नीति का निर्माण किया जिसका प्रभाव पूरे भारत में देखा जाता है(**Sadiq,2025**)। महान अकबर को आमतौर पर न केवल भारतीय शासको में बल्कि दुनिया के महान शासको में भी एक गद्दावर हस्ती के रूप में गिना जाता है। उनकी महानता उनके साम्राज्य विस्तार में नहीं बल्कि इस बात में निहित है कि उन्हें उन्होंने अक्सर हिंदू और मुसलमान के बीच सदियों पुराने संघर्स को समाप्त करने के लिए काफी प्रयास किया। इन्हीं सब महान कार्य के वजह से अकबर को महान अकबर के नाम से जाना जाता है(**Chaudhry,2017**)। भारतीय इतिहास में अकबर का एक बहुत ही महत्वपूर्ण और अस्थाई स्थान है। क्योंकि अकबर ने साम्राज्य निर्माण के रूप में भारत में मुगल साम्राज्य के वास्तविक संसाधन के रूप में धार्मिक सहिष्णुता के समर्थन के रूप में और एक नवीन सांस्कृतिक परंपरा के रचयिता के रूप में उन्हें भारत में याद किया जाता है(**Sonawane & Chhaburao**)। सातवीं और आठवीं शताब्दी में भारत में मुस्लिम व्यापारियों के आगमन के बाद मुसलमान और हिंदुओं के बीच मेलजोल और आपसी संबंध शुरू हुए। वास्तव में अकबर मुसलमान और दक्षिण एशियाई हिंदुओं के बीच हुई मुलाकातों की शुरुआत विवरण आपसी मेलजोल और संबंधों की एक विस्तृत श्रृंखला को दर्शाती है(**Kutlutürk, 2016**)। अकबर भारतीय इतिहास की सबसे असाधारण हस्तियों में से एक है। हालांकि अकबर अनपढ़ थे फिर भी उन्होंने महान मानसिक और प्रख्यात गुण रखते थे, जो कि इंसान को महान बनाता है। अबुल फजल और यहां तक कि उनके विरोधी भी इस बात को स्पष्ट करते हैं कि अकबर हर लिहाज से एक महान व्यक्ति है और उन्होंने सभी लोगों को एक साथ एकाग्र करने का काफी प्रयास किया(**Jerin & Verma, 2025**)। हुमायूं की मृत्यु के बाद हुमायूं का सबसे बड़ा बेटा अकबर मुश्किल से 13 साल का था। फिर भी वह एक ऐसा होनहार और निडर व्यक्ति था जो अपने संरक्षक बैरम खान के साथ पंजाब में डेरा डाले हुए था। वह सिकंदर का पीछा कर रहा था जो जींद पर पड़ा था और शाही गधी पर अपना दावा करता जा रहा था। इस दृष्टि से महान अकबर को उनकी महानता की हर क्षेत्र में झलक दिखाई देती है। उन्होंने अनेक कार्य ऐसे किया जिसकी सहारना पूरे भारत में भी किया जाता है(**Das, 2025**)। सुलह –ए- कुल अकबर यह नीति विभिन्न धर्मो के लोगों के बीच शांति और सद्भावना पर आधारित था। जिसके माध्यम से एक दूसरे के लोग एक दूसरे के बीच आपसी सद्भावना को बढ़ाने का प्रयास करते थे। ऐसी एक व्यवस्था की निर्माण करना चाहते थे जिसमें सभी लोगों को एक समान जनक व्यवहार हो और जो आपसी मतभेद या खाई है वह समाप्त हो और पुरानी रूढ़िवादी व्यवस्था समाप्त हो। अकबर ने इस नीति के माध्यम से अनेक धर्म के विद्वानों के साथ परिचर्चा करता था और चर्चा में भाग लेने वाले अनेक विभिन्न धर्मो के विद्वानों को सामान की दृष्टि से देखाता(**Mandal,2025**)। सुलह –ए- कुल एक अरबी शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है सभी के साथ शांति, सार्वभौमिक शांति या पूर्ण शांति। यह एक सूफी रहस्यवादी सिद्धांत से लिया गया है। भारत के तीसरे मुगल सम्राट अकबर के द्वारा यह अपनाया जाने पर यह विभिन्न धर्मों के बीच एक शांतिपूर्ण और सौहार्दपूर्ण संबंध को दर्शाता है(**Fard, 2016**)।

शोध अंतराल:-

अकबर के इस महान धार्मिक नीति का प्रभाव मध्यकालीन भारत में बहुत काफी था। यह नीति एक ऐसा आकर्षण का केंद्र था। क्योंकि सदियों से चले आ रहे रूढ़िवादी व्यवस्थाओं को समाप्त करने के लिए किसी मुगल शासक ने पहली बार इस कदम को उठाया था। लेकिन इस नीति का किस प्रकार पालन किया जाता था और उसकी क्या प्रासंगिकता था, कैसे लोग एक दूसरे के संपर्क में आते थे और आपसी भाईचारा सद्भावनाओं का सामान करते थे। अकबर ने इस नीति को एक दूसरे के बीच सामाजिक संपर्क और समस्याओं को समाप्त करने के लिए ही स्थापित किया था। यह नीति किस प्रकार कार्य करती थी

लोग इसको किस दृष्टिकोण से देखते थे इस पर शोध कार्य बहुत कम ही हुआ है। इसलिए यह अध्ययन सुलह –ए- कुल के बारे में संपूर्ण जानकारी के लिए अध्ययन अपेक्षणीय है।

शोध का उद्देश्य:- अकबर के धार्मिक नीति को समझना।

आंकड़े संकलन की विधि:- सुलह –ए- कुल नीति से संबंधित वास्तविक तथ्य को प्राप्त करने के लिए मात्रात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। क्योंकि यह एक ऐसे प्रविधि है जिसके माध्यम से वास्तविक ज्ञान को प्राप्त किया जाता है। क्योंकि अकबर के धार्मिक नीति का प्रभाव मध्यकाल में क्या था और उसे नीति के माध्यम से अकबर कैसे एक दूसरे के साथ आपसी सद्भावना और भाईचारा का परिचय देते थे। पुरानी प्रथाओं को समाप्त कर एक नए समाज निर्माण करने के लिए प्रयास कर रहे थे तथा विभिन्न धार्मिक गुरुओं के साथ संपर्क स्थापित करके एक नई पहल की शुरुआत करते थे। आदि से संबंधित तथ्य को प्राप्त करने के लिए मात्रात्मक शोध प्रविधि के द्वारा तथ्य को एकत्रित किया गया है। धार्मिक नीति से संबंधित वास्तविक जानकारी प्राप्त करने के लिए सर्वेक्षण, रिकॉर्ड्स, रिव्यू, पत्र-पत्रिकाएं, बुक, इंटरनेट आदि के माध्यम से वास्तविक तथ्य को संकलन किया गया है।

अकबर के धार्मिक नीति का महत्व:-

अकबर के धार्मिक नीति का महत्व अटूट है। क्योंकि मुगलों के इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ जब महान अकबर ने एक ऐसी नीति की संकल्पना की जिसके द्वारा चले आ रहे हैं पुराने से पुराना हिंदू और मुसलमान के बीच जो खाई थे वह काफी हद तक इस नीति से समाप्त हुए । क्योंकि अकबर चाहते थे कि यह देश यहां की आम जानता के हैं और आम लोगों की रक्षा करना सभी को सामान की दृष्टि से देखना मेरा कर्तव्य है। इसलिए महान अकबर ने इस धार्मिक नीति के माध्यम से जो कटरपन्नता था उसको समाप्त करने का प्रयास किया। क्योंकि अकबर जानते थे की रूढ़िवादी और कट्टरवादी विचारधारा दोनों समाज के लिए एक विष की समान है। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अकबर ने अनेक साहरनीय कार्य किए। इस दृष्टिकोण से यदि देखा जाए तो अकबर की इस महान नीति की प्रासंगिकता मध्यकालीन भारत में बहुत काफी था। क्योंकि जहां पहले से चले आ रहे हैं एक ऐसी व्यवस्था था जिसके द्वारा लोगों को शोषण चरम सीमा पर होता था। इस नीति ने आम जानता को थोड़ा सा राहत प्रदान किया था।

विश्लेषण:-

अकबर के दरबारी लोगों को मानना था कि सुलह –ए- कुल का सिद्धांत बुद्धिमान नेतृत्व की एक नई पहल है। क्योंकि यह एक ऐसी नीति है जो सभी धर्म के लोगों के और सभी लोगों को स्वतंत्रता प्रदान करती है। इस नीति के माध्यम से लोग एक दूसरे के बीच आपस में संघर्ष के बारे में नहीं सोचते थे। क्योंकि इस नीति के द्वारा लोगों को एक साथ जोड़ने का प्रयास किया जाता था और ऐसा माना जाता था की संघर्ष और प्रतिकूल विचारधारा समाज ही नहीं बल्कि देश के लिए भी हानिकारक है। इसलिए जरूरी है कि सभी धर्म के लोग पहले से चले आ रहे कुरीतियों और रूढ़ियां दोनों को समाप्त करना अति आवश्यक है। क्योंकि समाज में जब तक असमानताएं और वैचारिक भिन्नता व्याप्त रहेगी तब विकसित समाज की संकल्पना नहीं किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण का ध्यान में रखते हुए महान अकबर ने अनेक धर्म के लोगों को एक मंच पर लाने का प्रयास किया। क्योंकि यह नीति इस उद्देश्य के लिए ही बना था जिसके माध्यम लोगों के बीच आपसी भाईचारा का संबंध स्थापित हो। अकबर चाहते थे कि सभी धर्म और संप्रदायों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध हो और नौकरों, दसों के साथ अच्छा व्यवहार हो तथा यहां तक की पशु के प्रति दया भाव भी हो। इस दृष्टिकोण के नजर में रखते हुए महान अकबर ने इस प्रकार की नीति का आकलन किया ताकि हर क्षेत्र में हर दृष्टि से लोग एक दूसरे के सामान करें।

निष्कर्ष:-

उपर्युक्त अध्ययन से यह पता चलता है की महान अकबर की सुलह –ए- कुल नीति एक ऐसा नीति था जो सत्य, अहिंसा, दया भाव और पवित्रता पर आधारित था। यह निति के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों और समस्याएं थी उसको समाप्त करने के अकबर ने प्रयास किया। सिर्फ समस्याओं को समाप्त करने के लिए ही नहीं इस नीति का निर्माण किया गया था, बल्कि आने वाले जो समस्याओं और अनेक ऐसी अनैतिक कार्य थे उसको किस प्रकार समाप्त किया जाए। इस दृष्टि के ध्यान में देखते हुए अकबर ने इस नीति को लागू किया था। इस नीति को लागू होने के बाद कुछ रूढ़िवादी विचारधाराओं ने जबरदस्त विरोध किया फिर भी अकबर ने इस नीति को पेश कर एक समाज में मशाल कायम किया और इस नीति के माध्यम से अनेक समाजों के बीच दूरियां और खाई को समाप्त किया। मध्य भारत में इस नीति की काफी प्रासंगिकता थी और इस नीति

की चर्चा पर चर्चा हर समय हर जगह किया जाता था क्योंकि जहां जनता अनेक नीतियों से परेशान थे वहां इस नीति ने जनता को राहत प्रदान किया। जनता ने इस नीति के माध्यम से स्वतंत्र महसूस करने लगे और धार्मिक गुरुओं ने भी इस नीति के महत्व को समझा और इस विचारों को अपनाने पर जोर दिया, ताकि सभी प्रकार के वैमनस्य को समाप्त किया जाए। इस नीति के माध्यम से अकबर ने जाति और धर्म पर आधारित बंधनों को मुक्त करने का प्रयास किया और इस नीति के माध्यम से अकबर ने पुरोहित वर्ग के वर्चस्व और बाहरी कर्मकांड को अलग कर दिया था।

संदर्भ :-

Shrivant, S., S. Ganpatrao, B., V. (2013). Jalaluddin muhammad akbar: the great mughal emperor. *International Journal of Research in Social Sciences And Humanities* . 3 (3). 16-19. Retrieved from https://ijrssh.com/admin/upload/03%20SOLE%20SANJAY%20SHRIVANT.pdf

Angel, M., A. (2018). Akbar's religious policy . *International Journal of Humanities and Social Science Research*. 4 (5). 18-20. Retrieved from https://www.socialsciencejournal.in/assets/archives/2018/vol4issue5/4-5-34-226.pdf

Sadiq, T., U. (2025). Din-I Ilahi and Emperor Akbar's Policy of Social Inclusiveness. *Jamal Academic Research Journal-An Interdisciplinary*. 6 (3). 13-16. Retrieved from https://www.jmcjarj.org/index.php/jarj/article/view/483

Chaudhry. S. (2017). Evolution of Akbar's Religious Policy. *Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education*. 13 (1).1015-1016. Retrieved from https://ignited.in/index.php/jasrae/article/view/6674

Chhaburao, S., J. (2018). akbar's policy of religious tolerance. Aarhat Multidisciplinary International Education Research Journal. 7 (2). 81-82. Retrieved from https://zenodo.org/records/6941436

Kutlutürk, C. (2016). A Critical Analysis of Akbar"s Religious Policy: Din-i Ilahi. *International Relations and Diplomacy,* 4 (6). 408-412. Retrieved from https://pdfs.semanticscholar.org/0dd0/db5552c3102c948b1c37622757a38fa4572b.pdf

Jerin, V. & Verma, i. (2025). Sulh-E-Kul; Emperor Akbar"s Religious Policy. *International Journal of Enhanced Research in Educational Development*. 13(4). 206-209. Retrieved from https://www.erpublications.com/uploaded_files/download/dr-vandana-jerin-ms-ishita-verma_hGmST.pdf

Das, S. (2025). Impact of Akbar's Policies on Modern India. *International Journal of Novel Research and Development*. 10 (6). 66-69. Retrieved from https://www.ijnrd.org/papers/IJNRD2506108.pdf

Mandal .U. (2025). Akbar's religious views and its relevance in modern India. *International Journal of Scientific Development and Research*. 10 (6).77-80. Retrieved from https://ijsdr.org/papers/IJSDR2506009.pdf

Fard, R., H. (2016). Key Concepts in Intercultural Dialogue – by Concept. *Center for Intercultural Dialogue*. Retrieved from https://centerforinterculturaldialogue.org/wp-content/uploads/2014/02/key-concept-intercultural-dialogue1.pdf

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

Received: 11.04.2026 | Accepted: 15.04.2026 | Published: 30.04.2026

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उत्तर प्रदेश के दलितों के योगदान का विश्लेषणात्मक अध्ययन

अमृता आर्य* **डॉ. लाला बाबू†**

aryaamrita5@gmail.com **lbgaur999@gmail.com**

सारांश

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भारत के विभिन्न धर्मों एवं वर्गों ने मिलकर अंग्रेजी शासन का विरोध किया। समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों ने अपने प्राणों की आहुति देकर भारत को आजादी दिलवायी। उपइया, चेतराम जाटव, बल्लू (महतर), बांके, रामपति, लोचन मल्लाह, जियालाल कर्दम, रामजीलाल सहायक, लोने सिंह, जीतन चमार, रामस्वरूप जाटव, सुरेन्द्र प्रताप जाटव, झलकारी बाई, महावीरी देवी, अवंतीबाई जैसी प्रमुख दलित योद्धाओं ने क्रांतिकारी आंदोलनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तर प्रदेश के दलित वर्ग के क्रान्तिकारी की भूमिका का विश्लेष्णात्मक अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द:

भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, दलित क्रान्तिकारी, मेरठ, हापुड़, उत्तर प्रदेश, उपइया, चेतराम जाटव, बल्लू (महतर), बांके, रामपति, लोचन मल्लाह, जियालाल कर्दम, रामजीलाल सहायक, लोने सिंह, जीतन चमार, रामस्वरूप जाटव, सुरेन्द्र प्रताप जाटव

प्रस्तावना -

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन एक वर्ग के संघर्ष की वीर गाथा नहीं है, अपितु भारतीय समाज के प्रत्येक जाति, वर्ग एवं धर्म के लोगों ने अपने जीवन की आहुति देकर स्वतन्त्रता के बीज को बोया और उसी बीज से स्वतन्त्र भारत का निर्माण हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध लड़ते हुए लाखों भारतीय शहीद हुए, जिसमें दलित एवं आदिवासी भी शहीद हुए। जब हम भारतीय स्वाधीनता संग्राम की बात करते है तो समाज के कुछ वर्गों के ही विशेष योदान की बात करते है, जबकि समाज के प्रत्येक वर्ग का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान अतुल्यन्य है। प्रस्तुत शोध पत्र में समाज के उसी दलित वर्ग के प्रमुख क्रान्तिकारियों का विश्लेषण किया गया है, जिससे हम उपने अध्ययन में स्थान देने संकोच करते हैं।

शोध आलेख -

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में भारत के विभिन्न वर्गों के योगदान में दलितों का योगदान भी अतुलन्य रहा। सम्पूर्ण देश में चारों ओर क्रान्तिकारी आन्दोलन गुजनें लगें। उत्तर प्रदेश भी इन आन्दोलनों से अछूता नहीं रह पाया और उत्तर प्रदेश में भी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष प्रारम्भ हो गया। इस आन्दोलन में सभी वर्गो ने भाग लिया, जिनमें दलितों के योगदान को कम नहीं आंका जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में सभी दलितों का उल्लेख नहीं किया जा सकता है। इसलिए कुछ प्रमुख दलितों के योगदान की चर्चा ही इस पत्र में की जायेगी।

उपइया - उपइया का उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद में अग्रेजों विरूद्ध संघर्ष में महत्वपूर्ण स्थान स्वीकार किया जाता है। उपइया एक पहलवान थे और उनकी ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। छतारी के नवाब नाहर खां के पुत्र दूदे खां अंग्रेजी शासन के कट्टर शत्रु थे। उन्होंने 1804 व 1807 में अंग्रेजों से घमासान युद्ध किया था। उपइया चमार उनका वफादार था और उसने इस

* शोधार्थिनी, **इतिहास विभाग, कृषक (पी.जी.) कॉलेज मवाना, मेरठ**

† **शोध निर्देशक एवं सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, कृषक (पी.जी.) कॉलेज मवाना, मेरठ**

संघर्ष में उनका साथ दिया। उसने सैंकड़ों अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया। उसने गनौरी के खाली किले में बारूद की सुरंगें बिछा दी। जैसे ही अंग्रेजों ने किले में प्रवेश किया तो सुरंग फटनें लगीं और चारों तरफ अंग्रेजों की लाशें फैल गया। बाद में अंग्रेजों द्वारा उन्हें पकड़ लिया गया और उन्हें 1807 में फाँसी पर चढ़ा दिया गया।[1]

चेतराम जाटव

चेतराम जाटव एटा जनपद के निवासी थे। बैरकपुर छावनी में क्रान्ति का समाचार सुनते ही एटा जनपद में भी क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। 24 मई 1857 को एटा में सैकड़ों देशभक्तों ने अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। 26 मई को चेतराम अंग्रेजों के विरूद्ध क्रान्ति में कूद पड़े। फिलिप्स, जो एटा के तत्तकालीन अधिकारी थे, की सेना का क्रान्तिकारियों ने डट कर मुकाबला किया, परन्तु क्रान्ति विफल हो गयी। उन्हें गिरफ्तार कर पेड़ से बाध दिया गया और गोलियों से उन्हें छन्नी कर दिया गया। इस तरह भारत माँ का यह वीर सदैव के लिए मौत की नींद सो गया।[2]

बल्लू (महतर)

बल्लू (महतर) भी एटा निवासी थे और चेतराम जाटव के परम मित्र थे। अपने मित्र के साथ उन्होंने कंधे से कंधा मिलाकर क्रान्ति में योगदान दिया। अपने मित्र के समान वह भी वीरता और साहसी थे। उन्होंने भी बड़ी वीरता से अंग्रेजी सेना का सामना किया। क्रान्ति कर विफलता के साथ ही उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया। अपने मित्र के समान उन्हें भी पेड़ से बाध कर गोलियों से छन्नी कर दिया गया।[3]

बांके

बांके जनपद जौनपुर की मछली तहसील के कुंवरपुर गांव के निवासी थे। वह बागी नेता हरिपाल सिंह का साथी था। उन्होंने अपनी अंग्रेजों के विरूद्ध अपनी वीरता और साहस का परिचय दिया। क्रान्ति विफल होने पर उन्हें बागी घोषित कर दिया गया और उन पर ब्रिटिश सरकार द्वारा 50 हजार का इनाम घोषित कर दिया। बांके चमार को गरिफ्तार कर फाँसी पर चढ़ा दिया गया।[4]

रामपति

रामपति का नाम भी दलित क्रान्तिकारियों में बड़े आदर से लिया जाता है। यह चौरी-चौरा के दलित क्रान्तिकारी थे। चौरी-चौरा के बाद अंग्रेजों ने सैकड़ों क्रान्तिकारियों को पकड़ कर फाँसी दे दी थी। रामपति भी उन क्रान्तिकारियों में सम्मिलित थे। उन्हें भी पकड़ लि गया और उन्हें फाँसी दे दी गयी। इस तरह यह भारत माँ का सपूत भारत माँ की गोद में सदैव के लिये सो गया।[4]

लोचन मल्लाह

27 जून 1857 को कानपुर में अंग्रेजों के विरूद्ध क्रान्ति की ज्वाला भड़क गयी। अंग्रेज अपने परिवारों को लेकर भागने लगे। अंग्रेज गंगा नदी से नाव के द्वारा इलाहाबाद भागना चाहते थे। लोचन मल्लाह ने एक क्रान्तिकारी टोली के साथ उनका पीछा किया। अंग्रेज लगातार उनकी नाव पर गोली चला रहे थे, परन्तु उन्होंने अपनी जान की परवाह किये बिना उनका पीछा किया और उनकी सूझ-बूझ से अंग्रेजों के स्त्री और बच्चों को छोड़ क्रान्तिकारियों ने अंग्रजों को गोलियों से भून दिया।[5]

जियालाल कर्दम

जियालाल कर्दम का जन्म मेरठ के खेखड़ा तहसील के खेड़ी गांव में हुआ था। उनके पिता का नाम घीसा राम था। वह बचपन से ही क्रान्तिकारी विचारों वाले व्यक्ति थे। वह सदैव ब्रिटिश के विरोधी रहे।

11 सितम्बर, 1942 को गनेश फ्लोर मिल्स में अंग्रेजों के विरूद्ध आन्दोलन चल रहा था। इसमें जियालाल ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। उन्होंने इस आन्दोलन में आजादी के नारे लगाये। अंग्रेज इसके कारण उनसे नाराज हो गये और उन्हें आजादी के नारे लगाने के विरोध में गिरफ्तार कर लिया गया। 31 दिसंबर, 1942 को दो वर्ष की सजा हुई। दिल्ली और लाहौर की जेलों में बन्द रहे। 1944 में पुनः नौ महीने के कठोर कारावास का दण्ड रोहतक कारागार में रह कर सहा।[6]

रामजीलाल सहायक

रामजीलाल सहायक का जन्म मेरठ के किठोर कस्बे में 2 जनवरी 1918 को हुआ था। इनके पिता का नाम उदयराम आर्य था तथा वे आर्य समाजी थे। इनके पिता दलित वर्ग के उत्थान के लिए कार्य करे रहे थे। अपने पिता का इन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। वह 1930 में ही नमक छोड़ो आंदोलन से जुड़ गए थे। 1937 में आप इस संस्था के व्यवस्थापक बने। नमक आन्दोलन के दौरान मेरठ के आंदोलन कर्मियों द्वारा हिंडन नदी पर कानून भंग किया। इस आन्दोलन में रामजीलाल सहायक भी शामिल हुए थे। इसके बाद वह इलाहाबाद चले गए। वहां इन्होंने क्रांतिकारियों की बम पार्टी में तीन वर्ष तक कार्य किया। 1942 तक उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेने लगे थे, उनका काम था नवयुवकों को अंग्रेजों के विरुद्ध गोलबंद करना। इसके अतिरिक्त वे इलाहाबाद के हरिजन आश्रम के व्यवस्थापक भी रहे। उन्होंने 'हरिजन प्रेम', 'सहायक मंडल' तथा 'नवयुवक हरिजन संघ' की भी स्थापना की थी। आजादी के बाद उन्होंने स्वयं को समाज सेवा व साहित्यिक कार्यों में लगा दिया।[7]

लोने सिंह

लोने सिंह उत्तर प्रदेश के सीतापुर के निवासी थे। 1857 की लड़ाई में उन्होंने अंग्रजों के विरूद्ध लोहा लिया और अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया था। उनके पास अपनी स्वंय की सेना थी। अंग्रेजों से लोहा लेते हुए वह शहीद हो गये।[8]

जित्तन चमार

जित्तन चमार उत्तर प्रदेश के सीतापुर के निवासी थे। वह एक पहलवान था। 1857 की लड़ाई में उन्होंने अंग्रजों के विरूद्ध लोहा लिया और अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया था। अपने नेतृत्व में एक सेना लेकर वह अंग्रेजों पर टूट पड़ा और उसकी सेना ने 50 सैनिकों को मार दिया। अंग्रेजों से लोहा लेते हुए वह शहीद हो गये। सीतापुर में उन्हीं के नाम पर चमार शहीद स्थल बनाया गया है।[9]

रामस्वरूप जाटव

रामस्वरूप जाटव उत्तर प्रदेश के हापुड़ के निवासी थे। जब 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन अपने चरम पर था। उस समय हापुड़ में भी क्रान्तिकारियों ने भी गतिविधियां अपने चरम पर थी। 9 अगस्त 1942 को सुबह सर्वप्रथम हापुड़ में बाबू सरजू और लक्ष्मी नारायण, ला0 बखतावर लाल को गिरफ्तार कर दिया। 10 अगस्त को हड़ताल हुई व जलूस निकला। 11 अगस्त को भी कांग्रेस ने जलूस निकाला। श्री कैलाश चन्द महेश और लाला शादी राम जलूस का नेतृत्व कर रहे थे। जब जलूस टाऊस हाल में 5 सशस्त्र पुलिस के जवान, थाना इन्चार्ज मेहता, नजीर अहमद पुलिस अफसर दोयम व होम गार्ड का दरोगा हामिद हुसैन और हापुड़ का तत्कालीन कलक्टर गय्यूर जीमल व रियाजुल हसन रमजी नायब तहसीलदार और काफी संख्या पुलिस बल था। इस समय अनेक कान्तिकारियों के साथ रामस्वरूप जाटव भी जलूस में सम्मिलित थे। पुलिस ने जलूस को रोका और चेतावनी दी। परन्तु जलूस नहीं रूका और आगे बढ़ने लगा। इस डिप्टी मजिस्ट्रेट ने बिना चेतावनी दिये गोली चलाने का आदेश दिया। पुलिस ने 15 गोली हवा में चलायी। इन गोली से जब कोई भी नहीं गिरा तो उसने कहा कि अगर कोई नहीं मरा तो सब नौकरी से निकाल दूगाँ। बस इतने पर पुलिस ने नीचे की ओर फायरिंग कर दी। 14 राउड गोली नीचे की ओर छोड़ी। रामस्वरूप जाटव सबसे आगे जलूस में भाग ले रहे थे। वे अंग्रेजों से नहीं डरे और डटे रहे। यही कारण है कि इस गोली चलने में क्रान्तिकारी रामस्वरूप जाटव को सबसे पहले गोली लगी और वह गोली लगने से वही शहीद हो गये। आज भी हापुड़ जनपद में उनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है और उनके साथ उनके शहीद साथियों के नाम पर प्रतिवर्ष 10 मई को शहीद मेले का आयोजन किया जाता है।[10]

सुरेन्द्र प्रताप जाटव

सुरन्द्र प्रताप जाटव हापुड़ के पिलखुवा गांव के मुकीमपुर गांव के निवासी थे। वह कांग्रेस के महान् स्वतन्त्रता सेनानी थे। उन्होंने कांग्रेस द्वारा चलाये गये आन्दोलन में सक्रिय योगदान दिया।[11]

महावीरी देवी

वीरांगना महावीरी देवी, मुजफ्फरनगर के मुंडभर भाजू गाँव की एक महान और वीर स्वतंत्रता सेनानी थीं।[12] उनके पिता करछुल और पंखे बनाते थे।[13] वाल्मिकी समाज की वह महिला अशिक्षित थीं, लेकिन असाधारण बुद्धि की धनी थीं। यदि गाँव का कोई धनी व्यक्ति किसी गरीब व्यक्ति को परेशान या प्रताड़ित करता, तो वे असहाय और कमजोर लोगों के लिए सबसे

शक्तिशाली व्यक्ति से भी भिड़ जातीं। महाबीरी देवी ने अपने समुदाय की महिलाओं का एक संगठन बनाया, जिसका आदर्श वाक्य था सम्मान के लिए जीना और मरना। महाबीरी देवी ने गरीबों और जरूरतमंदों के लिए संघर्ष किया। उनके घर का खर्च बड़ी मुश्किल से चलता था। गरीबी से जूझते हुए, उन्होंने कभी अपनी गरिमा से समझौता नहीं होने दिया। महाबीरी देवी का जन्म ऐसे समय में हुआ था जब अछूतों की हालत कुत्तों और बिल्लियों से भी बदतर थी।[14] जब अंग्रेजों ने मुजफ्फरनगर पर कब्जा करने के लिए हमला किया, तो महाबीरी देवी ने 22 महिलाओं के एक समूह का नेतृत्व किया और ब्रिटिश सेना पर सशस्त्र हमला किया। अंग्रेजों को अंदाजा नहीं था कि गाँव की महिलाएँ इतना अचानक और सशस्त्र हमला कर देंगी। उन्हें आश्चर्य हुआ कि इन महिलाओं को लड़ने से क्या हासिल होगा।

महाबीरी देवी के समूह की महिलाएँ कुल्हाड़ी, भाले और काँटे हथियार के रूप में लिए हुए थीं।[15] इन्हीं हथियारों से, 23 महिलाओं ने अपनी मातृभूमि के लिए ब्रिटिश सेना से युद्ध किया। महाबीरी देवी ने कई अंग्रेजों को मार गिराया। एक भीषण युद्ध हुआ। अंग्रेजों को लगा कि इन महिलाओं को तलवारों से नियंत्रित नहीं किया जा सकेगा। इसलिए उन्होंने उन महिलाओं पर गोलियों की बौछार कर दी, जिनमें से 23 गोलियों से छलनी हो गईं। उनका बलिदान राष्ट्र के लिए सदैव प्रेरणादायी रहेगा।[16]

अशिक्षित होते हुए भी बुद्धिमान, महाबीरी देवी हमेशा अन्याय के विरुद्ध अग्रिम पंक्ति में रहीं। अधिकांश दलित महिलाओं को देवी या बाई की उपाधि दी जाती है। उन्हें अत्यंत नैतिक, कुलीन, साहसी और राष्ट्रवादी दलित महिलाओं के रूप में चित्रित किया जाता है। उन्हें शक्ति का प्रतीक माना जाता है। इन सभी महिलाओं को पुरुषों के वेश में, शरीर ढके हुए दिखाया गया है। उन्हें तैराकी, घुड़सवारी, तीरंदाजी और तलवारबाजी में निपुण बताया गया है। यह चित्रण दलित महिलाओं के बारे में प्रचलित रूढ़ियों को भी चुनौती देने का प्रयास करता है।[17]

झलकारीबाई

झलकारीबाई कोरी ने 1857 की क्रांति में रानी लक्ष्मीबाई के साथ मिलकर युद्ध लड़ा था। झलकारीबाई के पिता मूलचंद सेना में उच्च पद पर थे। उनका विवाह पूरन नामक व्यक्ति से हुआ था, जो झाँसी की सेना में कार्यरत था। एक दिन, जब झलकारीबाई लक्ष्मीबाई के पास पहुँचीं, तो उन्होंने उन्हें एक महिला सेना बनाने का निमंत्रण दिया। झलकारीबाई ने दुर्गा दल नामक एक महिला सैन्य दल का गठन किया और झलकारीबाई उसकी सेनापति बनीं। इस दल का उद्देश्य रानी के सम्मान और गरिमा की रक्षा तथा झाँसी की सुरक्षा करना था।[18]

क्रांति के दौरान जब अंग्रेजों ने झाँसी के किले पर आक्रमण किया, तो झलकारीबाई और उनकी सेना ने वीरतापूर्वक युद्ध किया। उन्होंने ब्रिटिश सेना को परास्त कर दिया। वीरांगनाओं का साहस क्षीण होने लगा। जैसे ही शत्रु किले में प्रवेश करने लगे, झलकारीबाई को रानी की गरिमा की चिंता होने लगी। झलकारीबाई किसी तरह रानी के महल में पहुँच गईं और रानी तथा उनके दत्तक पुत्र को बाहर निकालने की योजना बनाई। रानी लक्ष्मीबाई महल छोड़ने को तैयार नहीं थीं। हालाँकि, झलकारीबाई के समझाने पर रानी मान गईं। झलकारीबाई ने रानी के वस्त्र, आभूषण और मुकुट धारण किए और रानी को सुरक्षित किले से बाहर ले गईं। झलकारीबाई ने रानी के वेश में युद्ध करना शुरू कर दिया और अंग्रेजों के पैर उखड़ने लगे। लेकिन अचानक, अंग्रेजों ने झलकारीबाई को घेर लिया और उन्हें गिरफ्तार कर लिया। झलकारीबाई अंग्रेज सेना के हाथों गिर गईं, लेकिन वह उनके हाथों मरना नहीं चाहती थीं। उन्होंने अपनी सहेली वीरबाला से अपने सीने में खंजर घोंपने को कहा। वीरबाला हिचकिचाईं, लेकिन झलकारीबाई के आग्रह ने उन्हें विवश कर दिया। इस प्रकार, झलकारीबाई ने वीरबाला के हाथों अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली।[19]

वीरांगना उदा देवी

लखनऊ के उजरियावां में जन्मी उदा देवी जगरानी पासी के नाम से भी जानी जाती थीं और उनका विवाह पासी जाति के मक्का से हुआ था। वे बेगम हजरत महल की सहयोगी बनीं और उनके नेतृत्व में एक महिला सेना का गठन किया। उनके पति चिनहट के युद्ध में शहीद हो गए। जब कैम्पबेल के नेतृत्व में अंग्रेजों ने सिकंदरबाग पर आक्रमण किया, तो उनका सामना दलित महिलाओं की एक सेना से हुआ।

1857 में चिनहट में अंग्रेजों से लड़ते हुए कई सैनिक शहीद हुए। इनमें उदा देवी की सहेली मक्का पासी भी शामिल थीं। अपने पति की मौत का बदला लेने के लिए, उदा देवी ने 16 नवंबर, 1857 को घर छोड़ दिया। वह लखनऊ के सिकंदर बाग पहुँचीं, जो पेड़ों से भरा एक घना जंगल था। पति की मृत्यु से आहत, उदा देवी एक पीपल के पेड़ पर चढ़ गईं। पेड़ के नीचे

ठंडे पानी से भरे घड़े रखे थे। अंग्रेज सेना वहाँ अपनी प्यास बुझाने आती थी। जब ब्रिटिश सेना की 53वीं और 63वीं बटालियन पहुँचीं, तो उदा देवी ने पेड़ से 32-36 अंग्रेज सैनिकों को मार गिराया। जब कैप्टन डॉसन सैनिकों की तलाश में पेड़ पर पहुँचे, तो उन्हें केवल लाशें मिलीं। कैप्टन डॉसन ने एक पेड़ के ऊपर पुरुष वेश में एक साया देखा। एक अंग्रेज अधिकारी ने उसे गोली मार दी।[20] वह नीचे गिर गई। उन्होंने एक तंग गुलाबी जैकेट पहनी हुई थी। जैसे ही वह पेड़ से गिरीं, जैकेट खुल गई। अंग्रेज कप्तान को एहसास हुआ कि यह एक महिला है, तभी जनरल कैंपबेल वहाँ पहुँच गए। वे दंग रह गए कि एक महिला ने यह कारनामा कर दिखाया। कैम्पबेल उदा देवी की अद्भुत बहादुरी से इतने अभिभूत हुए कि उन्होंने अपनी टोपी उतारकर उन्हें सम्मानपूर्वक सलामी दी।

वीरांगना उदा देवी की बहादुरी और पराक्रम पूरे स्वतंत्रता संग्राम को एक नई गरिमा प्रदान करता है। अमर शहीद उदा देवी, अवध के छठे राजा नवाब वाजिद अली शाह की महिला टुकड़ी की सदस्य थीं। वाजिद अली शाह ने अपनी बटालियनों को रंग-बिरंगी विविधता और आकर्षण से भी संपन्न किया। उन्होंने उन्हें तिरछा रिसाला, गुलाबी दाउदी, आबनूस और जाफरी जैसे नाम दिए और उनकी वर्दी इन फूलों के रंगों में डिजाइन की गई। बाद में, इन रंगों के ऊपर एक काली वर्दी (चोगा) अनिवार्य कर दी गई। शायद यही कारण है कि लेफ्टिनेंट कर्नल गार्डन अलेक्जेंडर बटालियन की महिलाओं को काली बिल्लियों के रूप में देखते थे। ब्रिटिश सार्जेंट फोर्ब्स मिशन ने अपने संस्मरणों में पहली बार सिकंदराबाग के एक पीपल के पेड़ पर बैठी एक ब्लैक केट का जिक्र किया था, जिसने एक-एक करके ब्रिटिश सेना के 36 अफसरों और सैनिकों को मार डाला था। यह उदा देवी थीं।

उपसंहार -

उपर्युक्त दलित स्वतन्त्रता सेनानियों के अध्ययन से पता चलता है कि भारत के स्वाधनीता संग्राम में विभन्न वर्गों एवं धर्मों के व्यक्तियों के साथ-साथ दलित वर्ग के व्यक्तियों का योगदान भी कुछ कम नहीं था। उन्होंने अन्य वर्गों के साथ कंधे से कंधा मिला कर देश की आजादी के लिए संघर्ष किया। यद्यपि दलित वर्ग के लोगों के योगदान को सदैव कम आंका जाता है, लेकिन दलित वर्ग ने आजादी के इस संघर्ष में अद्भुत नेतृत्व, साहस और बलिदान का परिचय दिया। स्वतन्त्रता के स्वाधीनता संघर्ष में इन दलितों ने अपने योगदान से यह सिद्ध कर दिया कि दलित वर्ग भी आजादी के स्वतन्त्रतस संग्राम में पीछे नहीं था, बल्कि दलित वर्ग ने अन्य वर्गों के क्रान्तिकारियों के साथ कंधे से कंधा मिला कर आजादी के संघर्ष में भाग लिया और एक नये क्रीतिमान स्थापित किये।

संदर्भ :

1. सिंह, सतनाम. *सिंह सतनाम, चमार जाति का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान (1807 से 1947 तक)*. सम्यक प्रकाशन, 2013, पृ. 35.
2. दिनकर, डी. सी. *स्वतन्त्रता संग्राम में अछूतों का योगदान*. पृ. 35.
3. देव, आचार्य भगवान. *भारत के अमर क्रान्तिकारी*. पृ. 8-9.
4. दिनकर, डी. सी. *स्वतन्त्रता संग्राम में अछूतों का योगदान*. पृ. 71-72.
5. *दलित साहित्य, वार्षिकी*. 2005, पृ. 220.
6. सिंह, सतनाम. *सिंह सतनाम, चमार जाति का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान (1807 से 1947 तक)*. सम्यक प्रकाशन, 2013, पृ. 73.
7. सिंह, सतनाम. *सिंह सतनाम, चमार जाति का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान (1807 से 1947 तक)*. सम्यक प्रकाशन, 2013, पृ. 69.
8. पंचम, ए. के. "लेख." *अपेक्षा*, जुलाई 2007.

9. सिंह, सतनाम. *सिंह सतनाम, चमार जाति का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान (1807 से 1947 तक)*. सम्यक प्रकाशन, 2013, पृ. 36.

10. त्यागी, रिछपाल. *हापुड़ का स्वतन्त्रता संघर्ष का इतिहास*. ज्ञान लोक, 1976, पृ. 73-75.

11. आचार्य, दीपांकर. *स्वाधीनता संघर्ष और मेरठ*. मेरठ, 1993, पृ. 207-208.

12. नैमिशराय, मोहनदास. *स्वतन्त्रता संग्राम के दलित क्रान्तिकारी*. दिल्ली, पृ. 138.

13. नैमिशराय, मोहनदास. *स्वतन्त्रता संग्राम के दलित क्रान्तिकारी*. दिल्ली, पृ. 138.

14. नैमिशराय, मोहनदास. *स्वतन्त्रता संग्राम के दलित क्रान्तिकारी*. दिल्ली, पृ. 138.

15. सुमन, मंजू. *दलित महिलाएं*. सम्यक प्रकाशन, 2013, पृ. 215.

16. सुमन, मंजू. *दलित महिलाएं*. सम्यक प्रकाशन, 2013, पृ. 215.

17. सुमन, मंजू. *दलित महिलाएं*. सम्यक प्रकाशन, 2013, पृ. 215.

18. अनु, अनसूया. *झलकारीबाई*. नई दिल्ली, 1993, पृ. 11.

19. अनु, अनसूया. *झलकारीबाई*. नई दिल्ली, 1993, पृ. 13-16.

20. नैमिशराय, मोहनदास. *स्वतन्त्रता संग्राम के दलित क्रान्तिकारी*. दिल्ली, पृ. 5.

Received: 12.04.2026 | Accepted: 15.04.2026 | Published: 30.04.2026

Compassion Beyond Species: Ahimsa, Food Ethics, and Vegan Consciousness in Tirukkural and Gandhian Philosophy

Dr. Yatin Batra*
yatin.batra@fulbrightmail.org

Abstract

Tirukkural, composed by the Tamil poet-philosopher Thiruvalluvar, remains one of the most influential ethical texts in Indian literary history. The work foregrounds virtues such as compassion, self-restraint, non-killing, and harmonious coexistence among living beings. One of the central ethical concerns of the text is the doctrine of ahimsa or non-violence, which extends beyond human interactions to include animals and nature. This paper explores the relationship between non-violence and vegan ethics through a comparative reading of Tirukkural and the philosophy of Mahatma Gandhi. Situating the discussion within broader Indian philosophical traditions such as Hinduism, Jainism, and Buddhism, the study argues that vegan ethics in these traditions are not merely dietary practices but ethical expressions of compassion and ecological responsibility. The paper further examines the contemporary relevance of these ideas through environmental ethics and modern spiritual movements. By analyzing selected couplets from Tirukkural alongside Gandhian writings, the paper demonstrates how classical Indian thought offers an alternative ethical framework grounded in coexistence, empathy, and non-violence in a world increasingly shaped by ecological crises and exploitative systems.

Keywords: *Tirukkural, Ahimsa, Veganism, Animal Ethics, Non-violence, Environmental Ethics*

Introduction

Classical Indian literature has historically functioned as a significant repository of ethical, philosophical, and spiritual ideas. Among such works, *Tirukkural*, authored by the Tamil saint-poet Thiruvalluvar, occupies a distinctive position because of its universal moral teachings. Consisting of 1330 couplets divided into the sections of virtue, wealth, and love, the text offers guidance on ethical living and social conduct (Thiruvalluvar 12). Unlike many classical texts associated with specific religious doctrines, *Tirukkural* transcends sectarian boundaries and articulates principles relevant to humanity at large.

One of the most important ethical ideas foregrounded in *Tirukkura* is *ahimsa* or non-violence. The concept is not restricted merely to abstaining from physical violence toward humans but extends to all forms of life, including animals. Compassion, empathy, and non-killing emerge as essential virtues for harmonious coexistence. The ethical dimensions of the *Tirukkural* remain deeply relevant in the contemporary world where industrialized animal agriculture, environmental

* **Assistant Professor (English), Zakir Husain Delhi College (M), University of Delhi; Fulbright Fellow, Brown University, USA (2023-2024 session)**

degradation, and ecological exploitation have intensified concerns regarding ethical responsibility toward non-human life.

The contemporary discourse surrounding veganism and animal ethics has increasingly emphasized the relationship between violence, consumption, and environmental destruction. Modern debates regarding factory farming, climate change, and animal rights reveal how systems of exploitation operate through normalized practices of consumption. In this context, revisiting classical Indian philosophical traditions becomes particularly significant. The ethical insights of *Tirukkural* anticipate many contemporary concerns by foregrounding compassion and restraint as moral obligations.

Mahatma Gandhi further expanded the principle of *ahimsa* into both a moral and political philosophy. His commitment to vegetarianism, self-discipline, and ethical living demonstrates the continuing influence of Indian philosophical traditions in modern ethical discourse. Gandhi regarded food practices as moral choices reflecting one's relationship with other living beings and viewed vegetarianism as an expression of compassion and self-restraint.

The ethical philosophy articulated in *Tirukkural* also reflects a broader ecological sensibility that resonates strongly with present-day concerns regarding sustainability and environmental justice. The text repeatedly emphasizes moderation, self-control, and moral responsibility in human actions, suggesting that excessive desire and exploitation ultimately disturb social and natural harmony. Such ethical reflections acquire renewed significance in the Anthropocene era, marked by climate crises, biodiversity loss, and increasing awareness about the ecological consequences of human consumption patterns. Vegan consciousness, therefore, may be understood not only as a personal ethical choice but also as an environmental and philosophical response to systems of violence embedded within modern industrial practices.

Furthermore, Indian philosophical traditions have historically acknowledged the interconnectedness of all living beings through concepts such as *karuna* (compassion), *dharma* (ethical duty), and *vasudhaiva kutumbakam* (the world as one family). These principles encourage a vision of coexistence that rejects domination over nature and instead promotes mutual care and interdependence. In this regard, both *Tirukkural* and Gandhian thought offer alternative ethical frameworks that challenge consumerist ideologies centered on exploitation and material excess. Their emphasis on simplicity, compassion, and non-violence provides valuable intellectual foundations for contemporary discussions on ethical living, sustainability, and animal liberation in an increasingly globalized world.

This paper examines the relationship between non-violence and vegan consciousness through a comparative study of *Tirukkural* and Gandhian philosophy. It situates these ideas within broader Indian philosophical traditions and contemporary ethical debates concerning animal rights and environmental responsibility. The study argues that vegan ethics emerge not merely as dietary practices but as philosophical extensions of compassion, coexistence, and ecological consciousness.

Literature Review

Scholarly studies on *Tirukkural* have often focused upon its ethical universality, literary excellence, and philosophical depth. Kamil Zvelebil observes that the text transcends sectarian identities and

presents a universal ethical framework rooted in virtue and social responsibility (Zvelebil 156). Scholars have also emphasized the influence of Jain and Hindu ethical traditions upon the *Tirukkural*, particularly regarding non-violence and vegetarianism.

Christopher Key Chapple, in his study of non-violence in Asian traditions, discusses how Indian philosophical systems conceptualize compassion toward all forms of life (Chapple 21). His work demonstrates the interconnectedness between spirituality, ethics, and ecological responsibility within Indian traditions. Such frameworks provide an important context for understanding the ethical orientation of *Tirukkural*.

Scholars of Gandhian philosophy have similarly examined Gandhi's interpretation of *ahimsa* as both a personal and political principle. Bhikhu Parekh argues that Gandhi transformed non-violence into a comprehensive ethical philosophy grounded in compassion and self-discipline (Parekh 94). Gandhi's emphasis on vegetarianism and restraint reflected his belief that ethical transformation begins with individual conduct.

Contemporary scholarship on veganism and animal ethics has further expanded discussions concerning violence and moral responsibility. Peter Singer's Animal Liberation argues that the ability to suffer entitles animals to moral consideration (Singer 7). Tom Regan similarly critiques systems that reduce animals to objects of human consumption (Regan 35). Carol J. Adams connects meat consumption with broader structures of domination and violence within society (Adams 42).

Despite growing scholarship on *Tirukkural*, Gandhian philosophy, and animal ethics, limited research has comparatively examined the relationship between *ahimsa* and vegan consciousness through these traditions. This paper seeks to bridge that gap by bringing together classical Indian ethical thought and contemporary discussions concerning ecological responsibility and non-violence.

Methodology

The present study adopts an interdisciplinary and comparative approach combining literary analysis, ethical philosophy, and eco-critical perspectives. The paper primarily relies upon textual analysis of selected couplets from *Tirukkural* alongside Gandhian writings concerning vegetarianism and non-violence. Secondary scholarly sources on Indian philosophy, animal ethics, and environmental humanities are also incorporated to contextualize the discussion.

The methodology is interpretive in nature and examines how concepts such as compassion, non-killing, and restraint operate within both classical and contemporary ethical frameworks. The study further employs eco-critical perspectives to understand the relationship between violence, consumption, and ecological sustainability.

Ahimsa in Indian Philosophical Traditions

The principle of ahimsa occupies a central place in Indian philosophical traditions, particularly Hinduism, Jainism, and Buddhism. Although interpreted differently across traditions, all three emphasize compassion toward living beings and condemn unnecessary violence (Chapple 21). In Hinduism, ahimsa gradually evolved into a major ethical virtue. Early Vedic traditions included ritual animal sacrifice; however, later philosophical developments emphasized compassion, self-

restraint, and the unity of life. The Upanishadic worldview encouraged recognition of the interconnectedness among living beings, thereby strengthening ethical responsibility toward animals and nature. Philosophical ideas such as the presence of the divine in all beings and the cyclical nature of existence contributed to ethical reflections on the value of life. Texts such as the Mahabharata and the Bhagavad Gita further developed moral discourses concerning duty, self-control, and compassion, thereby expanding the significance of ahimsa beyond ritual practice into everyday ethical conduct.

Jainism presents perhaps the most rigorous articulation of ahimsa. Non-violence is regarded as the highest religious duty, and Jain practitioners strive to avoid harm to all forms of life, including insects and microscopic organisms. Vegetarianism and careful conduct emerge from the ethical imperative to minimize suffering (Chapple 46). Such emphasis on compassion significantly influenced Indian ethical traditions. Jain monks and followers often adopt highly disciplined lifestyles involving dietary restrictions, mindful movement, and practices intended to reduce violence in even the smallest actions. This radical ethical commitment transformed ahimsa from a philosophical concept into a lived social practice grounded in accountability toward all living beings.

Similarly, Buddhism foregrounds compassion and non-harming as central ethical virtues. The prohibition against killing living beings forms one of the Five Precepts in Buddhism. Violence is associated with suffering and negative karmic consequences, while compassion and loving-kindness are viewed as essential virtues for spiritual development. Buddhist teachings on *karuna* (compassion) and *metta* (loving-kindness) encourage individuals to cultivate empathy toward humans and animals alike. The Buddhist understanding of interdependence further reinforces the idea that suffering inflicted upon others ultimately affects the collective moral order. Consequently, ethical living in Buddhism involves minimizing harm and practicing mindfulness in thought, speech, and action.

These traditions collectively shaped the ethical environment within which *Tirukkural* emerged. Thiruvalluvar's emphasis on non-killing, compassion, and vegetarian ethics reflects the broader Indian philosophical concern with harmonious coexistence. His teachings synthesize moral principles that transcend religious divisions and present ahimsa as a universal ethical value essential for social harmony and spiritual progress. In this sense, *Tirukkural* becomes part of a long intellectual tradition that links ethical conduct with respect for life and ecological balance.

Non-Violence and Food Ethics in Tirukkural

Tirukkural contains several couplets that explicitly condemn violence and meat consumption, presenting ethical living as inseparable from compassion toward all forms of life. Thiruvalluvar consistently associates killing with moral degradation while identifying kindness and non-harming as the foundations of virtuous conduct. The text thus advances a moral philosophy grounded in empathy, restraint, and reverence for life.

One of the most significant couplets addressing food ethics is Couplet 254: "If it be asked what kindness is and what is not, it is not killing and eating flesh obtained by killing" (Thiruvalluvar 254).

This couplet establishes a direct relationship between compassion and abstinence from meat consumption. Ethical responsibility is not limited merely to refraining from violence but also includes rejecting participation in systems sustained through the suffering and killing of living beings. Thiruvalluvar thereby broadens the scope of moral accountability by linking individual dietary practices with larger ethical consequences. Similarly, Couplet 256 critiques the social and economic structures that normalize violence through consumption: "If the world refrained from killing for food, none would engage in selling flesh" (Thiruvalluvar 256).

The couplet recognizes the interconnected relationship between demand and violence. By suggesting that the meat trade survives because of consumer participation, Thiruvalluvar anticipates contemporary ethical debates surrounding industrial animal agriculture, consumer responsibility, and exploitative systems of production. The ethical implications of consumption practices therefore become central to his moral vision.

Couplet 253 further intensifies this critique by drawing a comparison between meat consumption and violence: "The mind of one who relishes another creature's flesh is like the mind of one who carries a deadly weapon" (Thiruvalluvar 253).

Here, violence is portrayed not merely as a physical act but as a psychological condition normalized through appetite and habitual consumption. The act of consuming flesh symbolically reflects emotional detachment from suffering and the gradual erosion of compassion. Thiruvalluvar thus presents ethical sensitivity as essential to moral and spiritual development.

Another important couplet, 318, foregrounds empathy as the basis of ethical conduct: "Why inflict suffering upon another being when one knows the pain of suffering oneself?" (Thiruvalluvar 318).

The couplet emphasizes shared experience as the foundation of compassion. Ethical behavior emerges from the recognition that suffering is universal and that all living beings possess the capacity to experience pain. Such an understanding challenges hierarchical distinctions between humans and non-human life forms.

The ethical framework of *Tirukkural* therefore critiques anthropocentric attitudes that privilege human desires over the lives of other beings. Vegetarianism is presented not as a matter of ritual purity alone but as a philosophical and ethical commitment rooted in empathy, non-violence, and self-restraint. In this sense, Thiruvalluvar's teachings remain highly relevant to contemporary discussions concerning vegan ethics, animal rights, and ecological responsibility.

Gandhian Philosophy: Vegetarianism and Moral Self-Discipline

Mahatma Gandhi transformed the principle of ahimsa into one of the most influential ethical and political philosophies of the modern era. Although Gandhi is widely remembered for leading India's anti-colonial struggle against British rule through non-violent resistance, his philosophical concerns extended far beyond politics. His understanding of non-violence encompassed everyday practices such as food habits, consumption, self-restraint, and ethical living. For Gandhi, personal conduct and political action were inseparable, and moral transformation at the individual level formed the basis for broader social change.

Gandhi's ethical outlook was shaped by multiple intellectual and spiritual influences. Jain philosophy, with its rigorous emphasis on non-violence toward all living beings, played a

particularly significant role in shaping his moral consciousness during his early years in Gujarat. In addition, Gandhi was deeply influenced by the writings of Leo Tolstoy and Henry Salt, especially Salt's *A Plea for Veget*arianism, which strengthened his conviction that vegetarianism was not merely a cultural or religious practice but a profound ethical commitment (Moral Basis 14). These influences encouraged Gandhi to critically examine the relationship between violence, appetite, and moral responsibility.

In *The Moral Basis of Vegetarianism*, Gandhi argues that the ethical progress of humanity can be measured through its treatment of animals (Moral Basis 27). He regarded violence against animals as morally degrading because it cultivated insensitivity, cruelty, and indifference toward suffering. According to Gandhi, compassion could not be selectively practiced; rather, it required recognition of the interconnectedness of all life. Vegetarianism therefore emerged as an ethical practice grounded in empathy, self-restraint, and respect for living beings. Gandhi believed that food choices reflected an individual's moral consciousness and that ethical eating constituted an important aspect of spiritual development.

Gandhi's autobiography, *The Story of My Experiments with Truth*, further illustrates how dietary discipline became central to his ethical and spiritual journey. He consistently associated control over appetite with self-mastery and viewed bodily discipline as necessary for cultivating moral strength (Autobiography 118). Gandhi conducted numerous experiments with food, fasting, and simplicity in order to understand the relationship between desire, discipline, and truth. These practices were not acts of denial alone but methods of achieving clarity, self-purification, and ethical awareness. Fasting, in particular, functioned as both a spiritual exercise and a moral statement, symbolizing resistance against excess and attachment.

Importantly, Gandhi also connected non-violence with simplicity and ethical consumption. He strongly criticized modern industrial civilization for promoting greed, materialism, exploitation, and uncontrolled consumption. In works such as *Hind Swaraj*, Gandhi argued that industrial modernity alienated human beings from ethical responsibility by normalizing exploitation of both humans and nature. His advocacy of simple living therefore reflected a broader concern with sustainability, ecological balance, and social justice. Gandhi's ethical philosophy anticipated contemporary critiques of consumer culture and environmental degradation by emphasizing moderation, local economies, and responsible consumption.

The ethical parallels between Gandhi and Thiruvalluvar are particularly significant. Both thinkers associate compassion with self-restraint and regard violence toward animals as incompatible with moral and spiritual living. Their philosophies reject anthropocentric attitudes that justify exploitation in the name of habit, superiority, or social custom. Furthermore, both emphasize that ethical living requires conscious engagement with one's actions, including food practices and patterns of consumption. In this sense, Gandhian philosophy and *Tirukkural* collectively provide a moral framework that remains highly relevant to contemporary discussions on vegan ethics, animal rights, ecological sustainability, and non-violent coexistence.

Ahimsa and Ecological Consciousness

The contemporary ecological crisis has intensified global discussions concerning ethical responsibility toward nature and non-human life. Climate change, environmental degradation,

deforestation, biodiversity loss, and industrialized farming practices increasingly reveal the destructive consequences of exploitative relationships between humans and the natural world. Rapid industrialization and consumer-driven economic systems have accelerated the depletion of natural resources, contributing to ecological imbalance and threatening the survival of countless species. In this context, ethical reflections on coexistence, sustainability, and compassion have acquired renewed urgency within contemporary philosophical and environmental discourse.

Eco-critical studies and environmental ethics increasingly emphasize the interconnectedness between violence against animals and violence against the environment. Industrial animal agriculture, in particular, has emerged as one of the major contributors to greenhouse gas emissions, deforestation, water depletion, and soil degradation. The large-scale exploitation of animals for food production not only normalizes systemic violence toward non-human beings but also intensifies ecological destruction through unsustainable agricultural practices. Contemporary environmental debates therefore call for a critical reconsideration of human consumption patterns, particularly those driven by excessive consumption, profit-oriented industrial systems, and anthropocentric attitudes toward nature.

Within these discussions, the ethical insights of *Tirukkural* remain profoundly relevant. Thiruvalluvar's emphasis on compassion, restraint, and non-killing challenges consumerist ideologies that prioritize desire, material gain, and human dominance over ecological balance and ethical responsibility. The text advocates harmonious coexistence and foregrounds the moral obligation to minimize suffering toward all living beings. By linking ethical conduct with self-restraint, *Tirukkural* implicitly critiques exploitative relationships with both animals and nature. Its ethical framework promotes moderation and compassion as essential principles for sustaining social and environmental harmony.

Similarly, Gandhi's philosophy foregrounds simplicity, sustainability, and ethical responsibility as central components of non-violent living. Gandhi strongly criticized modern industrial civilization for encouraging greed, materialism, and excessive consumption at the expense of both human welfare and ecological balance. His critique of industrial modernity anticipated many contemporary concerns regarding environmental destruction and unsustainable development. Gandhi famously argued that nature provides enough to satisfy human need but not human greed (Autobiography 145). This ethical principle remains highly relevant in present discussions concerning climate change, resource exploitation, and environmental justice. Gandhi's advocacy of simple living and restraint therefore reflects not merely personal morality but a broader ecological consciousness grounded in responsibility toward future generations and the natural world.

The relationship between vegan consciousness and ecological responsibility has become increasingly significant in contemporary ethical debates. Plant-based living is often associated not only with compassion toward animals but also with environmental sustainability and reduced ecological harm. Vegan ethics challenge systems of industrial exploitation by questioning practices that contribute to animal suffering, environmental degradation, and resource inequality. Consequently, veganism emerges not merely as a dietary preference but as a philosophical and ethical response to interconnected forms of violence embedded within modern consumer culture.

Moreover, contemporary environmental movements increasingly recognize that ecological crises cannot be separated from questions of ethics, justice, and social responsibility. The exploitation of animals, destruction of ecosystems, and overconsumption of natural resources collectively reflect broader structures of domination and inequality. In this regard, the philosophies of Thiruvalluvar and Gandhi offer alternative ethical frameworks rooted in compassion, restraint, and coexistence. Their teachings encourage a reimagining of human relationships with nature based on mutual care rather than domination and exploitation.

Thus, the principle of ahimsa extends beyond interpersonal ethics to encompass ecological consciousness and environmental responsibility. Both *Tirukkural* and Gandhian philosophy emphasize that non-violence must include respect for animals, nature, and the interconnected web of life. Their ethical visions remain deeply relevant in the contemporary world, where sustainable coexistence has become essential for addressing the environmental challenges of the twenty-first century.

Contemporary Vegan Ethics and Animal Rights

The rise of vegan movements across the world reflects increasing awareness regarding animal suffering, environmental degradation, and the ethical consequences of modern consumption practices. Veganism today is no longer understood merely as a dietary preference but as a broader ethical, political, and philosophical stance that challenges systems of exploitation embedded within social, economic, and cultural structures. Contemporary vegan discourse foregrounds questions of justice, compassion, sustainability, and moral responsibility toward non-human life. In this sense, vegan ethics extend beyond food practices to encompass concerns regarding animal rights, ecological balance, and ethical coexistence.

Modern philosophical discussions on animal ethics have significantly contributed to the development of vegan consciousness. Peter Singer, in *Animal Liberation*, argues that animals, as sentient beings capable of experiencing pain and suffering, deserve moral consideration equal to that granted to humans (Singer 7). Singer critiques speciesism, the belief that human beings possess inherent superiority over other species, and contends that discrimination against animals solely on the basis of species is ethically unjustifiable. By emphasizing the capacity to suffer as the basis of moral consideration, Singer challenges traditional anthropocentric frameworks that exclude animals from ethical concern.

Similarly, Tom Regan critiques systems that reduce animals to commodities existing solely for human use and consumption (Regan 35). Regan argues that animals possess intrinsic value independent of their utility to humans and therefore deserve rights protecting them from exploitation and harm. His rights-based approach to animal ethics opposes practices such as factory farming, animal experimentation, and commercial exploitation because they treat living beings as objects rather than subjects with inherent worth. Regan's philosophy therefore expands ethical discourse beyond welfare concerns to questions of justice and moral rights.

Carol J. Adams further deepens these discussions by examining the relationship between meat consumption, patriarchy, and structures of domination. In *The Sexual Politics of Meat*, Adams argues that systems of meat production and consumption are closely linked to broader forms of

violence, objectification, and power relations within society (Adams 42). She demonstrates how language, culture, and social practices normalize violence toward animals while simultaneously reinforcing structures of domination over marginalized groups. Adams' work reveals that ethical concerns surrounding meat consumption cannot be isolated from larger questions of gender, power, and social inequality.

These contemporary ethical concerns strongly resonate with the principles articulated in *Tirukkural* and Gandhian philosophy. Both traditions challenge the normalization of violence within everyday life and foreground compassion, restraint, and empathy as the foundations of ethical conduct. Thiruvalluvar's condemnation of killing and meat consumption reflects an ethical worldview that recognizes the moral significance of non-human life. Similarly, Gandhi's advocacy of vegetarianism and non-violence emphasizes that ethical living requires sensitivity toward the suffering of all beings. Both thinkers reject the idea that human desires justify violence and exploitation.

The industrialization of global food systems has further intensified ethical concerns surrounding animal rights and veganism. Factory farming practices involve confinement, forced breeding, physical mutilation, and mass slaughter under conditions that frequently disregard animal welfare. Animals within industrial farming systems are often treated as units of production rather than living beings capable of suffering. Such practices reveal the extent to which violence has become normalized and institutionalized within systems of consumption driven by profit and efficiency. Moreover, industrial meat production contributes significantly to environmental degradation, water pollution, greenhouse gas emissions, and resource depletion, thereby linking animal exploitation with ecological crises.

The ethical framework of ahimsa offers an alternative mode of thinking grounded in empathy, non-violence, and coexistence. Rather than viewing animals merely as economic resources or commodities for consumption, ahimsa encourages recognition of shared vulnerability and interconnectedness among living beings. It promotes an ethical consciousness that values compassion over domination and restraint over excess. In this regard, vegan ethics emerge as an extension of the broader philosophical principle of non-violence, emphasizing the moral responsibility to minimize suffering wherever possible.

Furthermore, contemporary vegan movements increasingly intersect with discussions on environmental justice, sustainability, and human health. The growing popularity of plant-based lifestyles reflects a shift toward ethical awareness concerning the long-term consequences of industrialized consumption practices. Veganism therefore functions not only as an individual ethical choice but also as a form of resistance against exploitative systems that harm animals, humans, and the environment alike.

Thus, the principles of ahimsa articulated in Indian philosophical traditions, *Tirukkural*, and Gandhian thought continue to remain deeply relevant within modern debates on vegan ethics and animal rights. Their emphasis on compassion, ethical responsibility, and harmonious coexistence offers valuable philosophical frameworks for addressing contemporary concerns regarding violence, exploitation, and ecological sustainability in an increasingly interconnected world.

Conclusion

The present study demonstrates that *Tirukkural* and Gandhian philosophy together offer a profound ethical framework grounded in ahimsa, compassion, self-restraint, and ecological responsibility. Through its condemnation of killing and meat consumption, *Tirukkural* articulates a moral vision that extends beyond interpersonal ethics to encompass respect for animals, nature, and the interconnectedness of all life forms. Thiruvalluvar's teachings foreground non-violence not merely as abstention from physical harm but as an ethical consciousness rooted in empathy, coexistence, and moral accountability. Similarly, Gandhi's reinterpretation of ahimsa expanded these ethical principles into broader domains of personal conduct, political resistance, ethical consumption, and environmental responsibility. His emphasis on vegetarianism, simplicity, and self-discipline reflects a holistic understanding of non-violence as both a spiritual and social practice.

The paper further establishes that vegan ethics within Indian philosophical traditions cannot be reduced to dietary regulations alone. Rather, they emerge as philosophical expressions of compassion and resistance against systems of domination and exploitation. By examining selected couplets from *Tirukkural* alongside Gandhian writings, the study reveals how food practices become deeply connected with questions of morality, justice, and ethical responsibility. Both Thiruvalluvar and Gandhi challenge anthropocentric worldviews that justify violence toward non-human beings in the name of culture, convenience, habit, or economic gain. Their philosophies instead advocate a model of coexistence based on restraint, mutual care, and recognition of shared vulnerability among living beings.

The discussion also highlights the contemporary relevance of these ethical frameworks in the context of ecological crises, industrialized animal agriculture, and consumer-driven systems of exploitation. Modern environmental and animal rights discourses increasingly recognize the interconnected relationship between violence against animals, ecological degradation, and unsustainable patterns of consumption. In this regard, the principles articulated in *Tirukkural* and Gandhian thought anticipate many concerns central to contemporary vegan ethics and environmental humanities. Their emphasis on moderation, compassion, and non-violent living provides valuable philosophical alternatives to systems rooted in excessive consumption, materialism, and exploitation.

Furthermore, the study underscores how the principle of ahimsa transcends religious and historical boundaries to remain deeply significant within present global ethical debates. The philosophies of Thiruvalluvar and Gandhi encourage a reimagining of humanity's relationship with animals and nature through ethical sensitivity and ecological consciousness. Their teachings challenge hierarchical structures that privilege human desire over the well-being of other life forms and instead foreground the importance of harmony, interdependence, and moral responsibility.

Ultimately, *Tirukkural* and Gandhian philosophy invite the cultivation of compassion beyond species boundaries. They envision an ethical world grounded not in domination, violence, and exploitation but in empathy, coexistence, and respect for the interconnected web of life. In an age increasingly marked by ecological instability, environmental injustice, and moral crises surrounding consumption, these traditions continue to offer enduring insights for constructing more compassionate, sustainable, and ethically conscious modes of living.

References:

Adams, Carol J. *The Sexual Politics of Meat: A Feminist-Vegetarian Critical Theory*. 20th anniversary ed., Continuum, 2010.

Agarwal, Anil. *Nature's Economy: The Quest for a Sustainable Future*. Centre for Science and Environment, 1991.

Chapple, Christopher Key. *Nonviolence to Animals, Earth, and Self in Asian Traditions*. State U of New York P, 1993.

Derrida, Jacques. *The Animal That Therefore I Am*. Edited by Marie-Louise Mallet, translated by David Wills, Fordham UP, 2008.

Gandhi, Mohandas K. *An Autobiography: The Story of My Experiments with Truth*. Translated by Mahadev Desai, Beacon Press, 1993.

Gandhi, Mohandas K. *Hind Swaraj and Other Writings*. Edited by Anthony J. Parel, Cambridge UP, 1997.

Gandhi, Mohandas K. *The Moral Basis of Vegetarianism*. Navajivan Publishing House, 1959.

Haraway, Donna J. *When Species Meet*. U of Minnesota P, 2008.

Jaini, Padmanabh S. *The Jaina Path of Purification*. U of California P, 1979.

Nussbaum, Martha C. *Frontiers of Justice: Disability, Nationality, Species Membership*. Belknap Press of Harvard UP, 2006.

Parekh, Bhikhu. *Gandhi's Political Philosophy: A Critical Examination*. U of Notre Dame P, 1989.

Plumwood, Val. *Environmental Culture: The Ecological Crisis of Reason*. Routledge, 2002.

Ranganathan, Shyam. *Ethics and the History of Indian Philosophy*. Bloomsbury Academic, 2017.

Regan, Tom. *The Case for Animal Rights*. U of California P, 1983.

Salt, Henry S. *Animals' Rights Considered in Relation to Social Progress*. Macmillan, 1894.

Shiva, Vandana. *Earth Democracy: Justice, Sustainability, and Peace*. South End Press, 2005.

Singer, Peter. *Animal Liberation*. Harper Perennial Modern Classics, 2009.

Taylor, Paul W. *Respect for Nature: A Theory of Environmental Ethics*. Princeton UP, 1986.

Thiruvalluvar. *Tirukkural*. Translated by Rev. G. U. Pope, Asian Educational Services, 1990.

Wolfe, Cary. *Animal Rites: American Culture, the Discourse of Species, and Posthumanist Theory*. U of Chicago P, 2003.

Zimmerman, Michael E., et al., editors. *Environmental Philosophy: From Animal Rights to Radical Ecology*. Pearson Prentice Hall, 2005.

Zvelebil, Kamil. *The Smile of Murugan: On Tamil Literature of South India*. Brill, 1973.

Received: 13.04.2026 | Accepted: 15.04.2026 | Published: 30.04.2026

शिक्षा नीति 2020:

महाविद्यालय के विद्यार्थियों के दृष्टिकोण का विश्लेषणात्मक अध्ययन

खुशबू तिवारी*

nt75021@gmail.com

सारांश -

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में व्यापक सुधार हेतु 29 जुलाई 2020 को लागू की गई है। प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य कोरबा और रायगढ़ जिले के स्नातक के विद्यार्थियों का का NEP 2020 के कुछ मुख्य बिंदुओं के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन करना है। अध्ययन हेतु लगभग 250 विद्यार्थियों से प्रश्नावली व साक्षात्कार के माध्यम से संपर्क करके आंकड़ों को एकत्रित किया गया है।

जिसका परिणाम कुछ बिंदुओं पर सकारात्मक रहा है, वहीं कुछ बिंदुओं पर नकारात्मक भी रहा है। सेमेस्टर परीक्षा और असाइनमेंट को विद्यार्थियों ने बहुत अधिक पसंद नहीं किया है क्योंकि इससे उनका अध्ययन कार्य अधिक हो गया है। विषय बंधन की समाप्ति व सभी विषयों के पाठ्यक्रम के परिवर्तन को विद्यार्थियों ने भी स्वीकार किया है। NEP के कुछ बिंदुओं के प्रति विद्यार्थियों के नकारात्मकता का प्रमुख कारण यह भी है कि उन्हें NEP के मुख्य बिंदुओं का पूरी तरह ज्ञान नहीं है। एबीसी क्रेडिट बैंक प्रणाली [Academic Bank of Credit (ABC)] के बारे में अभी भी बहुत से विद्यार्थी ऐसे हैं जिन्हें जानकारी नहीं है।

विद्यार्थियों के नकारात्मक जवाब के मुख्य कारणों में NEP के संबंध में जानकारी की कमी, जमीनी स्तर पर नई शिक्षा नीति का अच्छे से क्रियान्वयन न होना, शिक्षकों के प्रशिक्षण की कमी व सबसे महत्वपूर्ण देश के अधिकांश शिक्षण संस्थानों में आधारभूत अवसंरचना नहीं होना है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि नई शिक्षा नीति का सैद्धांतिक स्वरूप बहुत मजबूत है, परंतु इसके सफल क्रियान्वयन हेतु गुरूदक्षता कार्यक्रम (Orientation Programme), कार्यशाला, सेमिनार समय-समय पर आयोजित करना आवश्यक है व शिक्षण संस्थानों में आवश्यक संसाधनों की आपूर्ति चरणबद्ध तरीके से करने से राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में जल्द ही सफल होगी।

मुख्य शब्द :-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, विद्यार्थी, कॉलेज, एबीसी क्रेडिट बैंक प्रणाली, सेमेस्टर परीक्षा, मल्टीप्ल एंट्री एग्जिट सिस्टम, सकारात्मक व नकारात्मक दृष्टिकोण.

प्रस्तावना :-

शिक्षा नीति जो किसी भी देश की जनता को जाति, धर्म, लिंग में भेदभाव किए बिना सभी को आगे बढ़कर खुद को और राष्ट्र को विकसित करने के लिए एक मंच प्रदान करती है। आजादी के बाद से अब तक हमारे देश में मे तीन शिक्षा नीतियां लागू हो चुकी है। 1968 व 1986 की शिक्षा नीतियों ने भारत देश की मानव शक्ति को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। देश की बदलती हुई और वर्तमान स्थितियों को और अधिक बेहतर करने के उद्देश्य से 29 जुलाई 2020 को नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को भारत के संसद द्वारा अनुमोदित किया गया है। यह नीति भारत के शिक्षा पद्धति को जड़ों से

* **सहायक प्राध्यापक वाणिज्य, नवीन शासकीय महाविद्यालय कुसमरा जिला रायगढ़ (छत्तीसगढ़)**

बदलकर पूर्णतः नई शिक्षा प्रणाली को स्थापित करने का कार्य कर रही है। शिक्षा नीति 2020 में उच्च शिक्षा के लिए FYUP (Four Year Undergraduate Programme) 4 वर्षीय स्नातक कार्यक्रम को 3 वर्षों के स्नातक कार्यक्रम से प्रतिस्थापित किया है। मल्टीप्ल एंट्री एग्जिट सिस्टम के साथ सब्जेक्ट की सभी दीवारों को तोड़ दिया है। सेमेस्टर सिस्टम लाकर छात्रों पर पढ़ाई का बोझ कम करते हुए विभिन्न प्रकार के कौशल कार्यक्रमों को पढ़ाई से जोड़कर रोजगार उन्मुखी शिक्षा के लिए यह नीति पूरी तरह समर्पित है।

इस नीति का मुख्य लक्ष्य उच्च शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात जो वर्तमान में 27 प्रतिशत है उसे 2035 तक 50% तक करने का लक्ष्य है। अनुसंधान कार्यो को बढ़ावा देने के लिए 4 वर्षीय स्नातक कार्यक्रम के बाद शोध पर विशेष बल दिया गया है। शिक्षा नीति 2020 उच्च शिक्षा में बदलाव करते हुए वर्तमान पीढ़ी को AI युग से प्रतिस्पर्धा करने वाली पीढ़ी बनाने का कार्य कर रही है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इस बात को स्वीकार करती है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता नहीं बल्कि एक जागरूक, संवेदनशील और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध नागरिकों को तैयार करना है।

अध्ययन का उद्देश्य :-

इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के क्रियान्वयन का कॉलेज विद्यार्थियों में स्वीकृति का अध्ययन करना है।

इसकी अतिरिक्त सहायक उद्देश्य निम्न है :

1) NEP के प्रावधानों के संबंध में विद्यार्थियों की जागरूकता की जांच करना।
2) NEP के सुचारू क्रियान्वयन का मूल्यांकन करना।
3) NEP के प्रावधानों के अनुसार विद्यार्थियों के अध्ययन के लिए महाविद्यालयो में उपयोगी संसाधनो की पर्याप्तता जानना।

साहित्य की समीक्षा :-

NEP 2020 पर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखी गई लेखों का अध्ययन किया गया, जिसमें मनोरमा सिंह : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 "शिक्षकों का प्रशिक्षण एवं मूल्यांकन का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" शामिल है। इसमें शिक्षा नीति 2020 और विशेष रूप से उच्च शिक्षा से संबंधित अध्ययनों पर किए गए कार्यों की झलक देखने को मिलती है।

पूजा एवं डॉक्टर एस. एस. कुशवाहा 2025 "राष्ट्रीय शिक्षा नीति का उच्च शिक्षा के संदर्भ में" इस लेख में मुख्य रूप से शिक्षा नीति और उच्च शिक्षा पर उसके प्रभाव को केंद्रित किया है। प्रोफेसर शर्मा के. एल. 2020 ने अपने लेख पत्र में लिखा है कि शिक्षा से एक सशक्त समाज का निर्माण किया जा सकता है, लेकिन उसके लिए शिक्षा पद्धति इतनी सशक्त व गुणवान हो कि मनुष्य खुद को नैतिक दृष्टि से दृढ़ समझ सके।

कोठारी आयोग 1964, शिक्षा नीति 1968, शिक्षा नीति 1986 उपर्युक्त सभी नीतियों में देश की कुल जीडीपी का कम से कम 6% शिक्षा पर खर्च करने की बात बार-बार दोहराई गई है, परन्तु 60 वर्ष से भी अधिक साल गुजर चुके हैं लेकिन सरकार अपने ही लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रही है। शायद इसकी वजह सरकार की प्राथमिकता शिक्षा के बजाय अन्य क्षेत्र हैं तो फिर आखिर कैसे भारत की शिक्षा प्रणाली सशक्त और वैश्विक स्तर की हो पाएगी? यह प्रश्न तो अब भी बना हुआ है क्योंकि वर्ष 2024- 25 मे कुल जीडीपी का 4.41% शिक्षा पर खर्च हुआ है (आंकड़े अंतरिम बजट 2024)

शोध पद्धति :-

इस शोध पत्र में आंकड़ों को एकत्रित करने के लिए प्राथमिक व द्वितीय आंकड़ा एकत्र करने की पद्धति का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों के संग्रहण के लिए हमने 17 प्रश्नों की एक प्रश्नावली गूगल फॉर्म से तैयार करके रायगढ़ व

कोरबा जिले के चार- पांच सरकारी व निजी महाविद्यालय के विद्यार्थियों को व्हाट्सएप व मेल की सहायता से भेजा गया, जिसमें लगभग 127 विद्यार्थियों से भरी हुई प्रश्नावली से संबंधित आंकड़ों का संग्रहण किया गया।

इसके अलावा साक्षात्कार विधि के अंतर्गत हमने नवीन शासकीय महाविद्यालय कुसमरा व शासकीय पी. डी. वाणिज्य एवं कला महाविद्यालय रायगढ़ के विद्यार्थियों से बातचीत करके NEP 2020 के बारे में आंकड़े एकत्र किया।

द्वितीयक आंकड़ों में मैंने NEP डॉक्यूमेंट का अध्ययन किया है। नई शिक्षा नीति 2020 पर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखे गए आर्टिकल से भी जानकारी इकट्ठा की गई है। इन सभी के अतिरिक्त ई-न्यूज़पेपर, AI, मैगजीन आदि के आंकड़ों का भी उपयोग किया गया है। महाविद्यालयों के चयन के लिए हमने व्यवस्थित नमूनाकरण पद्धति का प्रयोग किया हैं.

डेटा विश्लेषण :-

अ.) 130 विद्यार्थियों को भेजी गई प्रश्नावली में 125 प्रश्नावली के जवाब प्राप्त हुए इसके अलावा साक्षात्कार विधि से लगभग 110 विद्यार्थियों से एनईपी के संबंध में जो जानकारी प्राप्त हुई वह निम्नानुसार है :

~ निदर्शन पद्धति के अनुसार जिस कॉलेज के विद्यार्थियों का चयन किया गया है उनमें 80% विद्यार्थी शासकीय महाविद्यालय के हैं, वहीं 18% निजी महाविद्यालय के विद्यार्थी हैं। 2% के आसपास बच्चों ने प्रश्नावली का जवाब ही नहीं दिया है।

~ प्राप्त प्रश्नावलियों में बी. ए., बी. एस. सी. व बी. कॉम. के 97% छात्र-छात्राएं इन तीनों कोर्स में से किसी एक में अध्यनरत है, वहीं 3 % विद्यार्थी अन्य पाठ्यक्रम वाले हैं।

~ प्रश्नावली के विश्लेषण से यह महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है कि 60% विद्यार्थी ही ऐसे हैं जिन्हें एनईपी के विषय में विस्तृत जानकारी है, जबकि 40% विद्यार्थियों ने NEP 2020 को थोड़ा बहुत ही समझने की कोशिश की है। सोचने का विषय यह है कि यह 40% बच्चे महाविद्यालय में वर्तमान में एनईपी के अंतर्गत अध्यनरत हैं फिर भी इन्हें नई शिक्षा नीति के संबंध में पूरी जानकारी नहीं है।

ब) प्रश्नावली से सामान्य जानकारी एकत्र करने के बाद NEP 2020 से जुड़े हुए कुछ मुख्य प्रश्न शामिल किए गए थे जिनमें पांच प्रकार के विकल्प दिए गए उनके जवाब के आधार पर नीचे दी गई विश्लेषण तालिका को तैयार किया गया है :

NEP के मुख्य बिन्दु	**असहमत**	**सामान्य**	**सकारात्मक प्रभाव**	**परिणाम**
सेमेस्टर परीक्षा	47%	24%	29%	नापसंद
असाइनमेंट वर्क	44%	29%	27%	नापसंद
मल्टीपल एंट्री-एग्जिट सिस्टम	39%	12%	49%	पसंद
विषय चयन की स्वतंत्रता	29%	32%	39%	पसंद
नया सिलेबस	28%	38%	34%	पसंद
ABC क्रेडिट बैंक	26%	36%	27%	पसंद

विश्लेषण तालिका

परिणाम :-

1. उपरोक्त तालिका से यह परिणाम निकलता है की 88% विद्यार्थी ऐसे हैं जिन्हें एनईपी की जानकारी है, परन्तु उनमें से 35% विद्यार्थियों को ही एनईपी की संपूर्ण जानकारी है, वहीं 12% विद्यार्थी जिन्होंने सिर्फ एनईपी 2020 का नाम बस सुना है।
2. वर्ष में दो बार होने वाली सेमेस्टर परीक्षा के संबंध में 50% विद्यार्थियों के जवाब मे नकारात्मकता हैं, 45% बच्चे इस परीक्षा पद्धति से सहमत हैं और इस पद्धति को पसंद भी कर रहे हैं। उनका कहना है कि इसी परीक्षा पद्धति से उनके परीक्षा परिणाम में सुधार हुआ है।
3. वर्ष में दो बार विद्यार्थियों को दिया जाने वाला असाइनमेंट वर्क ने बच्चों के प्रैक्टिकल वर्क को अधिक कर दिया है, शायद इस वजह से असाइनमेंट वर्क के लिए अधिकांश विद्यार्थियों ने नापसंद के विकल्प का चयन किया है।
4. मल्टीप्ल एंट्री एग्जिट सिस्टम के विषय में भी आधे से अधिक बच्चों का चयन किया हुआ विकल्प नकारात्मक है। मेरे अनुभव से इस नकारात्मकता की वजह अधिकांश विद्यार्थियों को इस सिस्टम की संपूर्ण जानकारी नहीं होना है।
5. एनईपी 2020 मे विषय बंधन को खत्म कर दिया गया है, अब विद्यार्थी कला संकाय का हो या गणित का उसे अन्य विषयों के चयन की स्वतंत्रता है। नई शिक्षा नीति का इस बिंदु के लिए विद्यार्थियों का जवाब सकारात्मक रहा है।
6. बी ए., बी. एस. सी. व बी. कॉम. सभी कक्षाओं के सभी विषयों का पाठ्यक्रम लगभग नई शिक्षा नीति के तहत 60 से 70% तक परिवर्तित किया गया है, इस परिवर्तन को भी विद्यार्थियों ने स्वीकार किया है। इसकी मुख्य वजह यह है कि पाठ्यक्रम कम होने से पढ़ाई का प्रेशर भी कम हुआ है।
7. एबीसी क्रेडिट बैंक सिस्टम विद्यार्थियों के लिए पूरी तरह नया है। क्रेडिट बैंक की सुविधा विद्यार्थियों के भविष्य के लिए भी बेहद सुविधाजनक है, इस विशेषता को भी विद्यार्थियों ने बहुत पसंद किया है।

चर्चा :-

1. प्रश्नावली एवं साक्षात्कार के माध्यम से किए गए सर्वे में 90% बच्चे सरकारी महाविद्यालय से हैं, जहां कई तरह के संसाधनों जैसे- आधारभूत अवसंरचना, लाइब्रेरी व प्रयोगशाला नहीं होना, शिक्षकों की कमी आदि होती है, इन सभी का प्रभाव विद्यार्थियों के अध्ययन कार्य पर पड़ता है। शायद इस वजह से सरकारी महाविद्यालय में NEP के सफल व अच्छे क्रियान्वयन के लिए इंफ्रास्ट्रक्चर, लैब प्रयोगशाला सामग्री, ई लाइब्रेरी की सुविधा आदि संसाधनों की पर्याप्त आवश्यकता है।
2. सर्वे में शामिल बहुत से बच्चे ऐसे हैं जो वर्तमान में कॉलेज में Enrolled तो हैं परन्तु अभी भी उन्हें NEP की पूरी जानकारी नहीं है। इसलिए NEP पर अभी भी ओरियंटेशन, वर्कशॉप व सेमिनार अधिक से अधिक करवाने की आवश्यकता है, जिससे सभी विद्यार्थियों को अच्छे से NEP की पूरी जानकारी हो सके। आवश्यकता होने पर महाविद्यालय स्तर पर नई शिक्षा नीति के संबंध में विद्यार्थियों से बहुविकल्पीय प्रश्नों के माध्यम से उनके द्वारा ग्रहण की गई जानकारी की प्रति जांच भी की जा सकती है।
3. वर्ष में दो बार आयोजित होने वाली सेमेस्टर परीक्षा शायद विद्यार्थियों को अधिक तनावपूर्ण लग रहा है, इसके लिए ऐसे बच्चों को विशेष कक्षाओं के द्वारा उनके तनाव को कम करने के लिए तनाव रहित परीक्षा पद्धति के बारे में समझाने की आवश्यकता है।
4. असाइनमेंट वर्क का कार्य विद्यार्थियों पर बहुत अधिक है, इसके लिए महाविद्यालय स्तर पर बच्चों की सुविधा व रुचि अनुसार असाइनमेंट की जगह पर कुछ अलग कौशल विकास कार्य करवाया जा सकता है, जैसे- कि फील्ड वर्क, इंडस्ट्रियल विजिट आदि। इन सभी का भी नई शिक्षा नीति में प्रावधान किया गया है, इससे बच्चों का असाइनमेंट भी पूरा हो जाएगा और उन्हें वह कार्य को पूरा करने में ऊब भी नहीं लगेगी।
5. कॉलेज में पर्याप्त स्टाफ होने से विद्यार्थियों के लिए नई शिक्षा नीति के तहत जो विषय चयन की स्वतंत्रता है, वह बहुत अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकती है।

निष्कर्ष

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 बहुत ही प्रभावी व दूरदर्शी नीति है। भले ही वर्तमान में स्वीकृति कम है लेकिन इसका मुख्य कारण नीति में किसी प्रकार की कमी होना नहीं है। कमी है तो प्रशिक्षण, आधारभूत अवसंरचना, आवश्यक संसाधनों की पर्याप्तता, वह आधारभूत सुविधाओं का अभाव इसके सुचारू क्रियान्वयन में बाधा डाल रहा है।

यदि व्यवस्थित तरीके से महाविद्यालय में प्रशिक्षण कार्यक्रम व आवश्यक संसाधनों का वितरण हो, तो आने वाले वर्षों में नई शिक्षा नीति के प्रति छात्रों की स्वीकृति बढ़ेगी। यह नीति तभी सफल हो पाएगी जब कॉलेज हो या स्कूल का क्लासरूम हर बच्चे तक इसे सही तरीके से पहुंचाया जाए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के उद्देश्यों को बड़े स्तर पर सफल बनाने के लिए प्रभावी बजट योजना और समय-समय पर संसाधनों का आबंटन बेहद आवश्यक है।

संदर्भ :-

1. Ministry of Education. *National Education Policy 2020*. Government of India, 2020.
2. Aithal, P. S., and S. Aithal. “Analysis of NEP 2020.” *International Journal of Management, Technology, and Social Sciences*, vol. 5, no. 2, 2020, pp. 1–15.
3. सिंह, रमन. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. प्रभात प्रकाशन.
4. पालीवाल, एम. एम. *नई शिक्षा नीति 2020 एवं उच्च शिक्षा*. साहित्य भवन, 2023.
5. NUEPA. *NEP 2020: Implementation Challenges*. Government Publication.
6. बसु, अपर्णा. *भारत में शिक्षा का विकास और राजनीतिक विकास: 1893-1920*. Oxford University Press, 1974.
7. अग्रवाल, जे. सी. *आधुनिक भारतीय शिक्षा के इतिहास में महत्वपूर्ण घटनाएँ*. विकास पब्लिशिंग हाउस, 1993.
8. घोष, सुरेश सी. *भारत में शिक्षा का इतिहास*. रावत प्रकाशन, 2007.
9. Keay, F. E. *Indian Education in Ancient and Later Times*. Oxford University Press, 1972.
10. Qamar, Furqan. *Higher Education in India: NEP 2020*. AIU House, 2020.
11. बसु, अपर्णा. *भारतीय शिक्षा की नीतियों पर निबंध*. Concept Publishing Company, 1982.

Received: 14.04.2026 | Accepted: 20.04.2026 | Published: 30.04.2026

राजस्थानी लोकगीतों में स्त्री-विमर्श : श्रम, पीड़ा और प्रतिरोध का स्वर

रनिका शेखावत* **डॉ. सुरेश सिंह राठौड़†**

ranikacsk1999@gmail.com **srathore@curaj.ac.in**

शोध सारांश –

लोकगीत राजस्थान की लोकसंस्कृति, सामाजिक परंपराओं और जनजीवन की संवेदनाओं के सजीव दस्तावेज हैं। ये लोकगीत समाज के भीतर विद्यमान संबंधों, मान्यताओं, संघर्षों और भावनात्मक अनुभवों को भी अत्यंत स्वाभाविक रूप में सामने लाते हैं। राजस्थानी लोकगीतों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनमें स्त्री स्वयं अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करती हुई दिखाई देती है। राजस्थानी लोकगीतों में विवाह संस्था, ससुराल, मायके से बिछोह, सामाजिक मर्यादाएँ और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रभावों का भी गहरा चित्रण मिलता है। समकालीन संदर्भ में लोकगीतों का स्वरूप और अर्थ दोनों परिवर्तित हो रहे हैं। नई पीढ़ी इन लोकगीतों को केवल परंपरा के रूप में नहीं देखती, बल्कि उनमें स्त्री-अस्मिता, समानता और स्वतंत्रता की चेतना को भी पहचानती है। इन लोकगीतों में कहीं स्त्री अपने कठोर श्रम और उससे उत्पन्न शारीरिक पीड़ा को व्यक्त करती है, तो कहीं वह विवाह, ससुराल और सामाजिक बंधनों से जुड़ी मानसिक असुरक्षा और भावनात्मक संघर्ष को स्वर देती है।

बीज शब्द-

लोकगीत, स्त्री विमर्श, श्रम, पीड़ा, प्रतिरोध, समकालीन, स्त्री अस्मिता

राजस्थानी लोकगीत राजस्थान की लोकसंस्कृति, सामाजिक परंपराओं और जनजीवन की संवेदनाओं के सजीव दस्तावेज हैं। लोक-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डॉ. मदनलाल शर्मा के अनुसार "जब उद्‌गार स्वतः स्फुरणा से उद्भूत होते हैं, तभी लोकगीतों का जन्म होता है।"[1] इस प्रकार लोकगीतों का मूलाधार मनुष्य की सुखात्मक – दुखात्मक अनुभूतियाँ होती हैं । "लोक का सामान्य अर्थ संसार से है और वर्थ में पौराणिक ग्रंथों में कई लोकों का वर्णन है, लेकिन साहित्य और कला के प्रसंग में लोक का अर्थ उस पर्याय में है जिस 'आलोक' शब्द बना है। इस तरह लोकगीतों में लोक (समाज) की सामूहिक चेतना की रागात्मक अभिव्यक्ति है।[2] ये लोकगीत केवल मनोरंजन या लोक-अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं हैं, अपितु समाज के भीतर विद्यमान संबंधों, मान्यताओं, संघर्षों और भावनात्मक अनुभवों को भी अत्यंत स्वाभाविक रूप में सामने लाते हैं। विशेष रूप से स्त्री-संबंधी लोकगीतों में स्त्री जीवन का वह यथार्थ चित्रित हुआ है, जिसे सामान्य सामाजिक इतिहास प्रायः अनदेखा कर देता है। राजस्थानी लोक-साहित्य के मनीषी और महोपाध्याय नानूराम संस्कर्ता के अनुसार "प्राचीन भारतीय ग्रंथों में अनेक स्थानों पर गीतों के गाए जाने के उल्लेख मिलते हैं, किंतु इनकी उत्पत्ति का समय और स्थान उपलब्ध नहीं होता।"[3] इन गीतों में स्त्री के सुख-दुःख, प्रेम-विरह, श्रम, त्याग, मानसिक पीड़ा, सामाजिक बंधन तथा उसके भीतर छिपी प्रतिरोध चेतना की गहरी अभिव्यक्ति मिलती है।

राजस्थानी लोकगीतों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनमें स्त्री स्वयं अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करती हुई दिखाई देती है। वह कहीं अपने कठोर श्रम और थकान की व्यथा कहती है, कहीं विवाह और ससुराल से जुड़ी आशंकाओं को व्यक्त करती है तो कहीं संबंधों में अपने सम्मान और समानता की अपेक्षा को स्पष्ट रूप से सामने रखती है। इन गीतों में स्त्री

* **शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, किशनगढ़,** जिला अजमेर, राजस्थान

† **सह आचार्य, हिंदी विभाग, राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, किशनगढ़,** जिला अजमेर, राजस्थान

केवल करुणा और सहनशीलता की प्रतीक नहीं है, बल्कि वह अपने अस्तित्व, आत्मसम्मान और इच्छाओं के प्रति सजग चेतना के रूप में भी उभरती है।

ग्रामीण जीवन की कठिन परिस्थितियों में स्त्री परिवार और समाज की अनेक जिम्मेदारियों का निर्वहन करती रही है। घर-गृहस्थी, खेत-खलिहान, पानी भरना, पशुपालन तथा पारिवारिक दायित्वों के बीच उसका जीवन निरंतर श्रम और संघर्ष से जुड़ा रहता है। लोकगीतों में यह श्रम केवल बाहरी गतिविधियों के रूप में नहीं, बल्कि स्त्री के भावनात्मक और मानसिक अनुभवों के साथ चित्रित हुआ है। यही कारण है कि इन गीतों में उसकी पीड़ा, थकान और असहायता के साथ-साथ उसकी सहनशीलता और जीवन-शक्ति भी दिखाई देती है।[4]

राजस्थानी लोकगीतों में विवाह संस्था, ससुराल, मायके से बिछोह, सामाजिक मर्यादाएँ और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रभावों का भी गहरा चित्रण मिलता है। अनेक गीतों में स्त्री अपने मन की इच्छाओं और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच संघर्ष करती दिखाई देती है। वह अपनी पीड़ा को मूक बनाकर सहने के बजाय गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। यही अभिव्यक्ति स्त्री-विमर्श की दृष्टि से महत्वपूर्ण बन जाती है, क्योंकि यह स्त्री के आत्मबोध और उसके मौन प्रतिरोध को स्वर प्रदान करती है।

समकालीन संदर्भ में लोकगीतों का स्वरूप और अर्थ दोनों परिवर्तित हो रहे हैं। नई पीढ़ी इन लोकगीतों को केवल परंपरा के रूप में नहीं देखती, बल्कि उनमें स्त्री-अस्मिता, समानता और स्वतंत्रता की चेतना को भी पहचानती है। आधुनिक दृष्टि से देखने पर ये लोकगीत स्त्री के अनुभवों, संघर्षों और सामाजिक स्थिति को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम बन जाते हैं। इस प्रकार राजस्थानी लोकगीतों में स्त्री-विमर्श केवल अतीत का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि बदलते सामाजिक संदर्भों में विकसित होती हुई एक जीवंत और गतिशील चेतना है।

उपर्युक्त संदर्भों के पश्चात प्रस्तुत लोकगीतों में स्त्री जीवन के विविध आयाम अत्यंत प्रभावशाली रूप में उभरकर सामने आते हैं। इन लोकगीतों में कहीं स्त्री अपने कठोर श्रम और उससे उत्पन्न शारीरिक पीड़ा को व्यक्त करती है, तो कहीं वह विवाह, ससुराल और सामाजिक बंधनों से जुड़ी मानसिक असुरक्षा और भावनात्मक संघर्ष को स्वर देती है। साथ ही कुछ गीतों में नई पीढ़ी की स्त्री चेतना भी दिखाई देती है, जो संबंधों में समानता, आत्मसम्मान और स्वतंत्र निर्णय की अपेक्षा रखती है। इन लोकगीतों का महत्व केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं है, बल्कि ये स्त्री के अंतर्मन, उसकी संवेदनाओं, संघर्षशीलता और मौन प्रतिरोध को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम भी हैं। इस प्रकार राजस्थानी लोकगीत स्त्री-विमर्श की दृष्टि से स्त्री जीवन के सामाजिक, आर्थिक और भावनात्मक यथार्थ का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करते है

जद देखु बना री लाल पीली अखियां
मैं कोनी चालू सा भले ही काडो अखियां
जद देखु बना री लाल पीली अखियां
मैं कोनी चालू सा भले ही काडो अखियां
जोधाणी शहर से बना मोजड़ी मोलाई दो
मैं कोनी पेरू सा भले ही काडो अखियां......

इसी संदर्भ में यह लोकगीत नई पीढ़ी की स्त्री-दृष्टि को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करता है। इस गीत में नायिका का स्वर केवल असहमति तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह संबंधों में समानता की अपेक्षा को भी रेखांकित करता है। वह किसी भी प्रकार के दबाव, अधिकार-बोध या प्रलोभन के आधार पर निर्णय लेने को स्वीकार नहीं करती, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वह स्वयं को संबंधों में एक स्वतंत्र और समान भागीदार के रूप में स्थापित करना चाहती है।

यहाँ स्त्री का व्यवहार पारंपरिक निष्क्रियता से भिन्न है। वह केवल प्रतिक्रिया नहीं देती, बल्कि अपने निर्णय को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती है और उस पर दृढ़ रहती है। यह दृढ़ता इस बात का संकेत है कि नई पीढ़ी की स्त्री अपने अस्तित्व, सम्मान और चयन के अधिकार को लेकर सजग है। इस प्रकार लोकगीतों में उभरता स्त्री-स्वर यह दर्शाता है कि संबंधों की संरचना अब एकतरफा नहीं रही, बल्कि उसमें पारस्परिक सम्मान और समानता की अपेक्षा निहित है।

नई पीढ़ी इस गीत को इसी दृष्टि से ग्रहण करती है कि इसमें स्त्री केवल भावनात्मक पात्र नहीं, बल्कि निर्णय लेने वाली सक्रिय इकाई के रूप में उपस्थित है। वह परंपरा के भीतर रहते हुए भी अपनी शर्तों पर संबंधों को स्वीकार करने की

चेतना विकसित कर रही है। इस प्रकार यह लोकगीत न केवल स्त्री के प्रतिरोध का संकेत देता है, बल्कि स्त्री-पुरुष समानता की उस उभरती हुई धारणा को भी अभिव्यक्त करता है, जो आधुनिक सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

डिजिटल युग ने भी इस प्रक्रिया को अत्यधिक प्रभावित किया है। आज लोकगीत केवल ग्रामीण परिवेश तक सीमित नहीं रह गए हैं, बल्कि वे सोशल मीडिया और विभिन्न डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से व्यापक स्तर पर प्रसारित हो रहे हैं। इन गीतों को नए संगीत, नए वाद्य यंत्रों और आधुनिक तकनीकों के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे वे नई पीढ़ी के लिए अधिक आकर्षक और प्रासंगिक बन गए हैं। इस प्रक्रिया में लोकगीतों का स्वरूप बदल रहा है, लेकिन उनकी मूल भावना अभी भी सुरक्षित है।

नई पीढ़ी के लिए लोकगीत केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पहचान का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है। वह अपनी जड़ों से जुड़े रहने के लिए इन गीतों को अपनाती है, भले ही उनका दृष्टिकोण आधुनिक हो। इस प्रकार, लोकगीतों के माध्यम से परंपरा और आधुनिकता के बीच एक सेतु स्थापित होता है, जो सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने में सहायक होता है।

इस पूरे परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट होता है कि राजस्थानी लोकगीतों में स्त्री-अनुभव केवल अतीत का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि एक जीवंत और गतिशील प्रक्रिया का हिस्सा है। नई पीढ़ी इन अनुभवों को नए संदर्भों में समझती है और उन्हें अपने समय के अनुरूप पुनर्परिभाषित करती है। यह प्रक्रिया न केवल लोकगीतों को जीवित रखती है, बल्कि उन्हें निरंतर विकसित भी करती है।

म्हारी हथेळ्या रे बीच छाळा पड़ गया म्हारा मारुजी
पड़ गया म्हारा मारुजी, मैं पालो कईयाँ काटुली
म्हारी हथेळ्या रे बीच छाळा पड़ गया म्हारा मारुजी
पड़ गया म्हारा मारुजी, मैं पालो कईयाँ काटुली

ए ए ए ए डेरा रो काट्यो ने, खेताँ रो काट्यो
डेरा रो काट्यो ने, खेताँ रो काट्यो, माँसू बाळा रा
माँसू बाळा रा काट्यो नहीं जावे म्हारा मारुजी
जावे म्हारा मारुजी, मैं पालो कईयाँ काटुली [5]

यह राजस्थानी लोकगीत ग्रामीण स्त्री के कठिन श्रम, उसकी शारीरिक पीड़ा और जीवन-संघर्ष का अत्यंत यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। गीत में स्त्री अपने दैनिक जीवन की उन परिस्थितियों को व्यक्त करती है जिनमें वह निरंतर मेहनत करती हुई दिखाई देती है। खेतों और घरेलू कार्यों का भार उसके जीवन को अत्यंत कठिन बना देता है। लगातार श्रम करने के कारण उसके शरीर पर कष्ट के चिह्न दिखाई देने लगते हैं, फिर भी उससे कार्य की अपेक्षा समाप्त नहीं होती।

इस लोकगीत में ग्रामीण स्त्री के श्रमशील जीवन की वास्तविकता सामने आती है। वह केवल घर की जिम्मेदारियाँ ही नहीं निभाती, बल्कि कृषि कार्यों में भी बराबर की भागीदारी करती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाज की आर्थिक संरचना में स्त्री की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। इसके बावजूद उसके श्रम को प्रायः पर्याप्त मान्यता नहीं मिलती।

आलोच्य लोक गीत में स्त्री की असहायता और थकान का भाव भी दिखाई देता है। वह अपने कष्ट को व्यक्त करते हुए यह संकेत देती है कि निरंतर श्रम के कारण उसका शरीर अब जवाब देने लगा है। यहाँ स्त्री की पीड़ा केवल व्यक्तिगत नहीं है, बल्कि यह समस्त ग्रामीण श्रमिक स्त्रियों की सामूहिक वेदना का प्रतीक बन जाती है।

स्त्री-विमर्श के संदर्भ में यह लोकगीत विशेष महत्व रखता है क्योंकि इसमें स्त्री के श्रम और उसके संघर्ष को केंद्र में रखा गया है। यह गीत उस सामाजिक व्यवस्था को भी उजागर करता है जहाँ स्त्री के त्याग और परिश्रम को सामान्य मान लिया जाता है। लोकगीत के माध्यम से स्त्री अपने दुख, थकान और मानसिक पीड़ा को अभिव्यक्ति देती है। यह उसकी मौन संवेदना के साथ-साथ एक प्रकार का सूक्ष्म प्रतिरोध भी है। इस प्रकार यह लोकगीत ग्रामीण स्त्री के जीवन-संघर्ष, श्रमशीलता, सहनशीलता और सामाजिक उपेक्षा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करता है।

राजस्थानी लोकगीतों में ग्रामीण स्त्री के श्रमपूर्ण जीवन, उसकी शारीरिक पीड़ा और दैनंदिन संघर्ष का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है। इसमें स्त्री अपने जीवन की उन परिस्थितियों को व्यक्त करती है, जहाँ परिवार और सामाजिक दायित्वों के बीच उसका श्रम निरंतर बना रहता है। गीत केवल एक स्त्री के व्यक्तिगत अनुभव को नहीं दर्शाता, बल्कि ग्रामीण समाज की उन असंख्य स्त्रियों की सामूहिक स्थिति को सामने लाता है, जो कठिन परिश्रम के बावजूद अपने कष्टों को मौन रूप से सहन करती रहती हैं। लोकगीत के माध्यम से स्त्री के श्रम, उसकी संवेदना और जीवन-संघर्ष की मार्मिक अभिव्यक्ति दिखाई देती है उसी का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए यह गीत हैं -

मत बाओ म्हारा परण्या जीरो
मत बाओ म्हारा परण्या जीरो
यो जीरो जीव रौ बैरी रे
मत बाओ म्हारा परण्या जीरो
पाणत करती रा पगल्या रैह ग्या
म्हारा कड़ला घिस ग्या चांदी रा
मत बाओ म्हारा परण्या जीरो [6]

इस लोकगीत में पानी भरने जैसे दैनिक कार्यों का उल्लेख ग्रामीण स्त्री के जीवन की कठोर वास्तविकता को सामने लाता है। गाँवों में स्त्रियों को दूर-दूर से पानी लाना पड़ता था, जिसके कारण उन्हें अत्यधिक शारीरिक श्रम करना पड़ता था। लगातार चलने, भारी भार उठाने और घरेलू जिम्मेदारियों को निभाने से उनका शरीर थकान और पीड़ा से भर जाता था। गीत में पैरों के दुखने और चाँदी के कड़े घिस जाने का उल्लेख केवल बाहरी स्थिति का वर्णन नहीं है, बल्कि यह स्त्री के निरंतर संघर्ष और श्रमशील जीवन का प्रतीक है।

यह लोकगीत ग्रामीण समाज में स्त्री की भूमिका को भी स्पष्ट करता है। स्त्री केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि परिवार की संपूर्ण व्यवस्था को संभालने में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वह घर के काम, पशुओं की देखभाल, पानी लाना, खेतों में सहयोग करना तथा परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने जैसे अनेक कार्य करती है। इसके बावजूद उसके श्रम को सामान्य मान लिया जाता है और उसकी पीड़ा को पर्याप्त महत्व नहीं दिया जाता।

लोकगीत में स्त्री की भावनात्मक स्थिति भी अत्यंत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त हुई है। वह अपने कष्ट को सीधे शब्दों में प्रकट कर रही है, जिससे उसके भीतर की थकान, असहायता और संवेदनात्मक पीड़ा सामने आती है। यह केवल शारीरिक कठिनाई का वर्णन नहीं, बल्कि उस मानसिक बोझ का भी संकेत है जो निरंतर जिम्मेदारियों के कारण स्त्री के जीवन में उत्पन्न होता है।

स्त्री-विमर्श की दृष्टि से यह लोकगीत विशेष महत्व रखता है क्योंकि इसमें स्त्री की आवाज दबाई हुई नहीं है, बल्कि वह अपने दुख और श्रम को अभिव्यक्ति देती दिखाई देती है। लोकगीत उसके लिए एक ऐसा माध्यम बन जाता है जिसके द्वारा वह अपने मन की वेदना और सामाजिक स्थिति को व्यक्त कर सकती है। यह गीत पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की उस स्थिति को उजागर करता है जहाँ उससे निरंतर त्याग और श्रम की अपेक्षा की जाती है, लेकिन उसके कष्टों को सामान्य समझ लिया जाता है।

इसके साथ ही यह लोकगीत स्त्री की सहनशीलता और जीवन-संघर्ष को भी दर्शाता है। कठिन परिस्थितियों के बावजूद वह अपने दायित्वों का निर्वाह करती रहती है। यही कारण है कि लोकगीतों में स्त्री केवल करुणा की प्रतीक नहीं, बल्कि धैर्य, सहनशीलता और संघर्षशील चेतना की प्रतीक के रूप में भी सामने आती है। इस प्रकार यह लोकगीत ग्रामीण स्त्री के जीवन के सामाजिक, आर्थिक और भावनात्मक यथार्थ का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करता है। इसमें स्त्री के श्रम, उसकी उपेक्षा, उसकी पीड़ा और उसके मौन प्रतिरोध की गहरी अभिव्यक्ति दिखाई देती है, जो स्त्री-विमर्श की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। S

मायड़ो नी म्हाने भेजो सासरिये, म्हारो जी घबरावे।
बाबुल रा आंगण सूं दूर जावां, नैणा नीर बहावे।।

म्हे तो खेलूं गुड़िया संग-संग, म्हाने काई समझ न आवे।
सासू रा बोल कठोरा लागे, मन रो धीरज जावे।।

पीहर री गलियां प्यारी लागे, सासर परदेस समान।
बाबुल थारी छांव छोड़ूं,क्यूँ कर जियरो मान।।[7]

यह राजस्थानी लोकगीत स्त्री की उस मानसिक अवस्था का अत्यंत संवेदनशील चित्रण करता है जिसमें वह ससुराल जाने के प्रति भय, असुरक्षा और अनिच्छा अनुभव करती है। गीत में एक नवविवाहिता अथवा कम आयु की लड़की अपनी माँ और पिता से निवेदन करती है कि उसे ससुराल न भेजा जाए, क्योंकि उसका मन वहाँ जाने के लिए तैयार नहीं है। यह लोकगीत स्त्री के अंतर्मन की भावनाओं को अत्यंत सहज और मार्मिक रूप में अभिव्यक्त करता है। गीत में मायका केवल एक घर नहीं, बल्कि प्रेम, सुरक्षा, अपनापन और स्वतंत्रता का प्रतीक है। लड़की ने अपना पूरा बचपन वहीं बिताया है, इसलिए उससे दूर जाने का विचार ही उसे भयभीत कर देता है। मायके की गलियाँ, माता-पिता का स्नेह और बचपन की स्मृतियाँ उसके मन में गहरे भावनात्मक जुड़ाव का निर्माण करती हैं। इसके विपरीत ससुराल उसके लिए एक अपरिचित संसार है, जहाँ नए लोग, नए नियम और नई जिम्मेदारियाँ उसका इंतजार कर रही हैं।

लोकगीत में लड़की की कम आयु और मानसिक अपरिपक्वता भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वह अभी खेल-कूद और बचपन की दुनिया से पूरी तरह बाहर नहीं आई है, लेकिन समाज की परंपराएँ उसे अचानक विवाह और वैवाहिक जीवन की जिम्मेदारियों में धकेल देती हैं। इससे उसके भीतर असुरक्षा और भय उत्पन्न होता है। वह ससुराल के कठोर वातावरण और वहाँ मिलने वाले व्यवहार को लेकर चिंतित है। गीत में सास के कठोर व्यवहार का उल्लेख उस सामाजिक वास्तविकता को सामने लाता है जिसमें नवविवाहिता को ससुराल में अनेक मानसिक और सामाजिक दबावों का सामना करना पड़ता था। लड़की को यह महसूस होता है कि वहाँ उसे अपने मन की स्वतंत्रता नहीं मिलेगी। यही कारण है कि उसका मन मायके को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता।

स्त्री-विमर्श की दृष्टि से यह लोकगीत अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें स्त्री अपनी इच्छा और भावनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करती दिखाई देती है। वह केवल सामाजिक परंपराओं को मौन रूप से स्वीकार नहीं करती, बल्कि अपने भय और दुख को शब्द देती है। यह उसकी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ एक प्रकार का मौन प्रतिरोध भी है। यह लोकगीत पितृसत्तात्मक समाज की उस व्यवस्था को भी उजागर करता है जहाँ विवाह के निर्णय में स्त्री की इच्छा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था। लड़की का मन अभी मायके में ही रमा हुआ है, लेकिन समाज की मर्यादाएँ उसे ससुराल जाने के लिए बाध्य करती हैं। इस प्रकार गीत स्त्री की भावनात्मक स्थिति और सामाजिक विवशता दोनों को सामने लाता है।

इसके अतिरिक्त गीत में स्त्री की संवेदनशीलता, कोमलता और पारिवारिक जुड़ाव का भी सुंदर चित्रण मिलता है। वह अपने माता-पिता के स्नेह से अलग होने की कल्पना मात्र से दुखी हो उठती है। उसकी आँखों के आँसू केवल विदाई के नहीं, बल्कि उस मानसिक पीड़ा के प्रतीक हैं जो उसे अपने परिचित संसार को छोड़ने के कारण अनुभव होती है।

इस प्रकार यह लोकगीत स्त्री के मनोविज्ञान, उसके भय, उसकी भावनात्मक पीड़ा और सामाजिक बंधनों का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण प्रस्तुत करता है। साथ ही यह स्त्री-विमर्श की दृष्टि से उस चेतना को उजागर करता है जिसमें स्त्री अपनी इच्छा, असुरक्षा और मानसिक संघर्ष को अभिव्यक्ति देती है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि राजस्थानी लोकगीत केवल लोकमनोरंजन की परंपरा नहीं हैं, बल्कि वे स्त्री जीवन के यथार्थ, उसकी संवेदनाओं, संघर्षों और सामाजिक स्थिति के महत्वपूर्ण दस्तावेज भी हैं। इन गीतों में स्त्री के श्रम, त्याग, विरह, मानसिक पीड़ा, सामाजिक बंधनों तथा आत्मसम्मान की चेतना का अत्यंत मार्मिक और स्वाभाविक चित्रण मिलता है। साथ ही लोकगीतों में उभरता स्त्री-स्वर यह संकेत देता है कि स्त्री केवल सहनशीलता की प्रतीक नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व और अधिकारों के प्रति सजग चेतना भी है। नई पीढ़ी इन लोकगीतों को आधुनिक दृष्टि से पुनर्परिभाषित कर रही है, जिससे उनमें

निहित समानता, आत्म-अभिव्यक्ति और प्रतिरोध के स्वर अधिक स्पष्ट होकर सामने आ रहे हैं। इस प्रकार राजस्थानी लोकगीत भारतीय लोकसंस्कृति की अमूल्य धरोहर होने के साथ-साथ स्त्री-विमर्श के अध्ययन के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत सिद्ध होते हैं।

संदर्भ :-

1. शर्मा, बाबूलाल. *राजस्थानी लोकगीत*. पृ. 5.
2. संस्कर्ता, सा. म. नानूराम. *राजस्थानी लोक साहित्य*. पृ. 43.
3. नाहटा, किरणचन्द. संपादकीय. *राजस्थानी गंगा* (त्रैमासिक). पृ. 3.
4. शर्मा, कन्हैयालाल. *राजस्थानी लोक साहित्य का इतिहास*. पृ. 85–110.
5. *वीणा घूमर*. वॉल्यूम 2.
6. *वीणा घूमर*. वॉल्यूम 3.
7. भानवत, महेंद्र. *राजस्थान के लोकगीत*. पृ. 120.
8. विभिन्न शोध पत्र एवं ऑनलाइन स्रोत.
9. राजस्थान साहित्य अकादमी. http://rajasthanacademyliterature.in

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

Received: 15.04.2026 | Accepted: 20.04.2026 | Published: 30.04.2026

मालती जोशी की कहानियों का विमर्शपरक अध्ययन*

योगिता कोठावदे†
yogitapate55@gmail.com

डॉ. दादासाहेब नारायण डांगे‡
शोध निर्देशक

प्रस्तावना -

बढ़ते हुए औद्योगिकरण और शहरीकरण ने मनुष्य को बाहर से ही नहीं अंदर से भी बदल दिया है। साहित्य सामाजिक परिवर्तन का जीता जागता दस्तावेज़ होता है। इक्कीसवीं सदी में समाज, परिवार और मनुष्य के जीवन में जो तीव्रता से बदलाव आया है उसका असर साहित्य में भी व्यापक रूप से वर्णित होता है। स्त्री जैसे शिक्षित होने लगी वैसे उसकी मानसिक और बौद्धिक स्थिति में काफ़ी बदलाव आया है। उन्होंने पीढ़ियों से चलती आई हुई मान्यताओं को तोड़कर व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मार्ग को स्वीकार किया है।

मालती जोशी जी ने उनकी कहानियों में स्त्री, पुरुष, वृद्ध जीवन, आर्थिक विषमता, गरीब-अमीर आदि विभिन्न प्रश्नों को उजागर करने का प्रयास किया है। वे एक मध्यम वर्गीय परिवार में पली-बढ़ी होने के कारण उनकी कहानियों में मध्यम वर्गीय जीवन अधिक मात्रा में उभरा हुआ दिखाई देता है। आधुनिक दौर में शिक्षित स्त्री समाज में अपनी अस्मिता की तलाश में कैसे संघर्ष करती है, यह उनकी कहानियों में प्रतिबिंबित होता है। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों की पारिवारिक स्थिति के कारण उत्पन्न मानसिक संवेदना और प्रतिरोध के स्वर को व्यक्त किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में केवल पारिवारिक ही नहीं बल्कि सामाजिक, आर्थिक, वैयक्तिक, यौनपरक आदि स्त्री समस्याओं को पाठकों के सामने रखा हैं। उन्होंने परिवार को प्राथमिक महत्व तो दिया पर उसके साथ-साथ रिश्तों के खोखलेपन पर भी प्रकाश डाला है रिश्तेदारों की स्वार्थ वृत्ति पर व्यंग्य कसा है।

बीज शब्द :-

समस्या, विमर्श, कुंठा एवं घुटन, दांपत्य जीवन, स्त्री अस्मिता आदि।

स्त्री विमर्श:-

स्त्री विमर्श एक सामाजिक और साहित्यिक आंदोलन है, जिसका उद्देश्य समाज में स्त्रियों की स्थिति और उनके अधिकारों को सुधारने के लिए जागरूकता फैलाना है। इस विमर्श में स्त्रियों के शारीरिक, मानसिक, और सामाजिक स्वतंत्रता, समानता, और न्याय के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। इन्हीं मुद्दों को ध्यान में रखते हुए मालती जी ने अपने लेखन के जरिए उजागर किया हैं। उनकी 'प्रतिरोध' कहानी की नायिका मीरा अपने नंदोई के खिलाफ़ आवाज़ उठाती हुई नज़र आती है। मीरा को नंदोई का कामलोलुप दृष्टि से किया गया स्पर्श और किसी को न बताने की धमकी से घृणा आती है। मीरा का ननदोई उसके पति सुयश के कान भरता है, मीरा के चरित्र पर सवाल उठाता है, उसके बारे में गलत-सलत बाते करता है। यह सब सुनकर मीरा झुँझला उठती है और पति को कहती है ...... "उस आदमी को उसकी औकात तो दिखा दूँ। वैसे यह काम आपको

---

* **सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे की विद्यावाचस्पति (पीएच.डी.) हिंदी उपाधि हेतु प्रस्तावित शोध आलेख**

† **शोधार्थी, अनुसंधान केंद्र :- के.जे.सोमय्या कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय कोपरगाव - 423601**

‡ **सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग, कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, राहाता**

करना चाहिए था, पर जब आपको अपनी कुंठाएँ सहलाने से ही फुर्सत नहीं है तो अपनी लड़ाई मुझे ही लड़नी होगी।" 1 यह देखकर मीरा की ननंद छाया भी उसके ऊपर हुए अत्याचार के खिलाफ़ आवाज उठाती है और उसके पति को छोड़कर अकेला रहने का निर्णय लेती है। मीरा का यह साहस और आत्मविश्वास उसके स्वाभिमान को दर्शाता है। वह किसी भी प्रकार के अन्याय को सहने के लिए तैयार नहीं होती और अंततः अपने पति को छोड़कर अकेले रहने का निर्णय ले लेती है। यह निर्णय उसके आत्मसम्मान और स्वतंत्र व्यक्तित्व का प्रतीक है। प्रस्तुत कहानी में स्त्री के आत्मसम्मान, साहस और अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने की चेतना को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कहानी की नायिका मीरा और छाया के माध्यम से यह दिखाया गया है कि जब किसी स्त्री के चरित्र पर झूठे आरोप लगाए जाते हैं और उसे डराकर चुप कराने का प्रयास किया जाता है, तब वह किस प्रकार अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए खड़ी होती है। मीरा का यह साहस और आत्मविश्वास उसके स्वाभिमान को दर्शाता है।

'मेरे कत्ल में तुम्हारा हाथ था' प्रस्तुत कहानी में 'बीना' कहानी की नायिका की पीड़ा दिखाई देती है। प्रस्तुत कहानी में 'बीना' कहानी की नायिका की पीड़ा और उसके जीवन में घटित घटनाओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया गया है। इस कहानी के माध्यम से लेखिका ने स्त्री जीवन की उन सच्चाइयों को सामने लाने का प्रयास किया है, जिनका सामना अनेक स्त्रियों को अपने ही घर में करना पड़ता है। बीना एक संवेदनशील और सहनशील स्त्री है, किंतु उसे अपने ही परिवार में सास, ननद और पति द्वारा मानसिक तथा भावनात्मक रूप से प्रताड़ित किया जाता है। एक स्त्री होकर भी कैसे उसे घर की स्त्रियों द्वारा प्रताड़ित किया जाता है और उसका असर उसे अपने मन मस्तिष्क पर होकर कितने सारे दुखों का सामना करना पड़ता है इसका वास्तव चित्रण दिखाई देता है। सास, ननंद और पतिद्वारा जब स्त्री को प्रताड़ित किया जाता है, तो वह टूटती-बिखरती जाती हैं। जब किसी स्त्री को अपने ही घर में अपमान और अत्याचार सहना पड़ता है, तो उसका आत्मविश्वास टूटने लगता है। वह भीतर से बिखरने लगती है और मानसिक रूप से कमजोर हो जाती है। बीना के साथ भी यही होता है। परिवार के लोगों का कठोर व्यवहार और उपेक्षा उसे निरंतर पीड़ा देते रहते हैं।

जब बीना कैंसर से पीड़ित होकर हॉस्पिटल में भर्ती होती है, तब उसे अपने जीवन में सहा हुआ अत्याचार याद आता है और वह दुखी होती है। उस समय उसे अपने पूरे जीवन की वे सारी घटनाएँ याद आने लगती हैं, जिनमें उसने अन्याय, अपमान और पीड़ा को सहा था। इन स्मृतियों को याद करके वह अत्यंत दुखी हो जाती है और उसके मन में गहरी वेदना उत्पन्न होती है। प्रस्तुत कहानियों की नायिकाओं द्वारा उनपर होने वाले अत्याचारों के खिलाफ़ आवाज उठाती हुई नारी उभरकर सामने आती है। वह अपने अधिकारों को जानती है तथा अपने निर्णय खुद ले सकती है यह मार्मिकता से दिखाने की कोशिश लेखिका ने की है।

वृद्ध विमर्शः-

वृद्ध विमर्श का संबंध वृद्धों के जीवन और उनकी समस्याओं से और समाज में उनकी स्थिति से है। आधुनिक समय में यह विषय अत्यंत महत्वपूर्ण बन गया है। पहले भारतीय समाज में संयुक्त परिवार व्यवस्था प्रचलित थी, जहाँ परिवार के बुजुर्गों को सम्मान, सुरक्षा और स्नेह मिलता था। वे परिवार के मार्गदर्शक माने जाते थे और उनके अनुभवों को बहुत महत्व दिया जाता था। किन्तु समय के साथ सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन आया है। आज संयुक्त परिवार टूटकर एकल परिवारों में बदलते जा रहे हैं। बुढ़ापे में व्यक्ति शारीरिक कमजोरी, आर्थिक असुरक्षा और अकेलेपन से जूझता है। संयुक्त परिवार के टूटने से वृद्धों की स्थिति और कठिन हो गई है। वृद्धावस्था में व्यक्ति शारीरिक रूप से कमजोर हो जाता है, साथ ही मानसिक और भावनात्मक समस्याओं का भी सामना करता है। ऐसे समय में उसे परिवार के सहारे, प्रेम और देखभाल की आवश्यकता होती है, लेकिन कई बार उसे उपेक्षा और अकेलेपन का अनुभव करना पड़ता है।

साहित्य में भी वृद्धों की पीड़ा, अकेलापन और संघर्ष को संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया गया है। कई कहानियों और उपन्यासों में यह दिखाया गया है कि वृद्ध लोग सम्मान और प्रेम के भूखे होते हैं। यदि उन्हें परिवार का साथ और सहारा मिले, तो उनका जीवन अधिक सुखद और संतोषपूर्ण बन सकता है। वृद्धों की सेवा और सम्मान करना न केवल

हमारा नैतिक कर्तव्य है, बल्कि यह हमारी संस्कृति और परंपरा का भी महत्वपूर्ण हिस्सा है।वास्तव में वृद्ध लोग अनुभव और ज्ञान का भंडार होते हैं। उनका सम्मान और देखभाल करना परिवार और समाज का कर्तव्य है।

'साँझ की बेला, पंछी अकेला' कहानी में नायक सचिन के विदेश जाने से उसके माता-पिता पर अकेलेपन की नौबत आती है और उदास होकर वह कहते है- अगर बेटे को बाहर ही जाना था तो हमने रहने के लिए इतना बड़ा बँगला क्यों बनवाया? हमारे लिए तो दो कमरों वाला मकान ही काफ़ी था। विदेश जाते हुए बेटे को उन्होंने अपनी ममता का वास्ता दिया था, पर उसका एक ही ज़वाब था कि पढ़-लिखकर यहाँ रहूँगा तो मेरा दम घुट जाएगा। जब उसके पिताजी कहते है कि विदेश में जितना चाहे उतना रह लो पर एक दिन वापस आ जाओ। इसपर उसका वक्तव्य था कि अगर नौकरी से समाधान नहीं मिला तो वापस विदेश लौट जाएगा। सचिन के पिताजी को यह सुनकर एहसास होता है कि उनके माता-पिता को भी इस अकेलेपन की कितनी पीड़ा होती होगी।..... 'हाँ, यह भी तुम ठीक ही कह रहे हो। मैं ही पागलों की तरह सोच बैठा था कि यह घर हमेशा इसी तरह गुलजार रहेगा। भूल ही गया था कि, लड़कियों को एक दिन ससुराल जाना है। लड़कों को रोजगार के लिए बाहर निकलना है। और एक बार उड़ना सीख जाते हैं तो पखेरू घोंसले में कहाँ लौटते हैं। अब मुझे अम्मा-बाबूजी की पीड़ा समझ में आ रही हैं।"[2]

'कबाड' कहानी में एक वृद्ध महिला की किस तरह से दुर्दशा होती है, यह दिखाई देता है। दो लडके और लड़की होते हुए भी उन्हें अंधेरे कमरे में रहना पडता है। उनकी आँखे चली गई थी, उनको कपडे के तौर पर आधी कटी हुई साडी पहननी पडती थी। बहु और पोता-पोती की कडवी बाते सुननी पडती थी। बेटी ने जब उसे अपने घर पे लाने को कहा तो वहाँ पर उनके बेटे और पती ने असहजता दिखाई; और माँ जहाँ है वहाँपर ठीक है कहा। घर में तनाव ना बढे इसलिए वह मान जाती है। और खुदको समझाती है कि, माँ को जैसे है वैसे ही भाई के यहाँपर ही रहना ठीक है। 'कबाड' के जैसे एक अंधेरे कमरे में माँ का पडे रहना ही उसकी जिंदगी है। इस कहानी के जरिए लेखिका ने समाज की वृद्धावस्था का दयनीय दर्शन दिखाने का प्रयास किया है। 'कबाड' कहानी में शादीशुदा लडकियों की मर्यादाओं को भी उजागर किया है कि लडकी अपनी माँ को संभालना चाहती है पर अपने घर मे क्लेश ना हो इसलिए वह परिवार वालों के इनकार को मान लेती है। इस कहानी के जरी लेखिका ने लडका और लडकी की जिम्मेदारीओं में क्या अंतर है यह बताने की कोशिश की है ।

स्त्री-पुरुष विमर्श:-

स्त्री–पुरुष विमर्श का तात्पर्य समाज में स्त्री और पुरुष की समानता, अधिकारों तथा उनके बीच के संबंधों पर चर्चा से है। यह विमर्श केवल स्त्री की समस्या नहीं, बल्कि पुरुष–स्त्री दोनों के बीच संतुलन और समान अधिकार स्थापित करने का प्रयास है। स्त्री–पुरुष विमर्श हमें यह सिखाता है कि समाज की प्रगति तभी संभव है जब दोनों को समान अवसर और सम्मान मिले।'मनीऑर्डर' कहानी में गीता 17 -18 साल की लड़की जो 12 वी में पढ़ती है । उसके मन में अपने पिता और चाचा इन दोनों में कितना अंतर है यह समझ में आता है। वह अपनी माँ की बड़ी मम्मी के साथ तुलना करती है। चाची कैसे आराम से जीवन जीती है पर मेरी माँ दादा-दादी की सेवा में हमेशा जुटी रहती है। फिर भी उसकी कोई प्रशंसा नहीं करता। उनके बच्चों के पुराने कपड़े, बड़ी मम्मी की पुरानी साड़ियाँ बड़े चाचा-चाची भेजते है तो गीता को गुस्सा आता है और वह मन ही मन सोचती है - चलो अच्छा है, उन्हें कोई लड़की नहीं है। नहीं तो मुझे भी उनकी उतरन-पुतरन पहननी पड़ती। दादा-दादी को बड़ाही आनंद होता है। जब भी मनीऑर्डर आती है। पर मेरे मम्मी-पापा हमेशा इनकी सेवा में डटे रहते है, पर उनकी इन्हें कोई कीमत नहीं। यह सोचकर गीता चिढ़ती है। हर महिने केवल हज़ार रुपये भेजने से अपने कर्त्तव्य पुरे नहीं होते। इतने से पैसों से दवाइयाँ भी नहीं आती। गीता को यह सब देखकर चिढ़ आती है और उसके पिताजी उसे समझाते है; तब वह समझती है और उसे यह दुनिया बहुत सुंदर लगने लगती है। प्रस्तुत कहानी में मालती जी ने मानवीय संवेदना को कहानी के जरिये व्यक्त किया है।

पुरुष विमर्श :-

पुरुष विमर्श समाज में पुरुषों की स्थिति, उसकी भूमिका, उसकी समस्याओं और उससे जुड़ी धारणाओं पर आधारित चर्चा है। पुरुष भी भावुक, संवेदनशील और सहयोगी हो सकते हैं यह दिखाने की कोशिश है। साहित्य और समाजशास्त्र में अब

यह चर्चा बढ़ रही है कि स्त्री और पुरुष दोनों को समान अवसर और स्वतंत्रता मिले। पुरुष विमर्श हमें यह समझाता है कि जैसे स्त्रियों को रूढ़ियों से मुक्त करना ज़रूरी है, वैसे ही पुरुषों को भी पुराने बंधनों और अपेक्षाओं से मुक्त कर समान, मानवीय दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है।'वो तेरा घर ये मेरा घर' कहानी में बूढ़े पिताजी की वजह से असुविधाएँ निर्माण हो रही हैं, यह दिखाई देता है। तीन बेडरूम वाले कमरों के घर में भी बूढ़े पिताजी के लिए कोई जगह नहीं, उनके कारन कही बाहर घूमने नहीं जा सकते यह पत्नी और बच्चों की शिकायत से कहानी का नायक प्रसाद कुंठित होता है। अपने पिता के प्रति प्यार और कर्तव्य को निभाने के लिए उसके परिवार के साथ कुछ अलगाव दिखाई देता है। माँ के मरने के बाद प्रसाद पिताजी को उसके साथ लेकर आता है पर परिवार वाले उन्हें एडजस्ट नहीं कर पाते। बच्चोंने प्रसाद के पिताजी के लिए 'अझेल' शब्द का उपयोग किया था जो प्रसाद को बहुत चुभा। फिर उसने कुछ दिनों के लिए पिताजी को अपने बहन के पास भेज दिया। वहाँ भी वो ज़्यादा दिन तक नहीं रहे वहींसे अपने गाँव चले गए, जिसकी प्रसाद को भनक तक नहीं थी। प्रसाद को पता चला तो वह उन्हें लेने के लिए गया पर पिताजीने मना कर दिया। यहाँ पर बेटा बुढ़ापे में अपने पिताजी का सहारा बनना तो चाहता है पर अपने परिवार में होनेवाली असुविधा के कारन वो ऐसा नहीं कर पाता यह सल उसके मन में अंदर ही अंदर परेशान करती है। प्रस्तुत कहानीद्वारा प्रसाद के पिताजी की निराशा, अनास्था और अकेलेपन की पीड़ा दिखाई देती हैं। प्रसाद अपने पिताजी की देखभाल करना चाहता है, पर परिवार वालों की वज़ह से कर नहीं पाता जिससे उसकी कुंठा तथा घुटन दिखाई देती है। प्रस्तुत कहानी द्वारा मानवीय असंवेदनशीलता का आभास होता हैं परिवार मे एक दूसरे के प्रति प्यार और आदर की अनास्था का वास्तव चित्रण कहानी मे लेखिका ने बखुबी चित्रित किया है।

'अतृप्त आत्माओं का देश' कहानी में स्वार्थ और गलतफ़हमी की शिकार डॉ. कुमार उनके बेटे और पत्नी की वज़ह से उनका अकेलापन दिखाई देता है। जब डॉ. कुमार अपना घर छोड़कर दूसरे शहर में बस जाते है, वहाँपर उन्होंने दूसरी स्त्री के साथ शादी की। पर उनकी पहली पत्नी ने उन्हें तलाक नहीं दिया। जब वह कैंसर से बीमार हुए, तब उनकी आखरी समय में उनकी बेटा और बेटी को मिलने की चाहत थी, पर वो नहीं आए। उनकी अंतिम समय में मिलने की इच्छा अधूरी रह गई और वह चल बसे। पर उनके प्रॉपर्टी पर हक़ जताने आ गए। जब वह आए तो ऐसा लग रहा था कि, बेटा अपने पिता से मिलना चाहता था, लेकिन माँ के कारन मिल नहीं पाया। यहाँ पर डॉ. कुमार और बेटे की घुटन दिखाई देती है। अपने ही परिवार वालों की सोच की वज़ह से इंसान कितना हतबल होता है यह सामाजिक व्यथा प्रस्तुत कहानीद्वारा दिखाई देती है। मन का रिश्ता न मानते हुए लोग केवल संपत्ती के लिए रिश्ते नातों को संभालते है उन पर हक जमाते है इसका वास्तव दर्शन कहानी द्वारा होता है।

'हमको हैं प्यारी हमारी गलियाँ' कहानी की नायिका निधी शुक्ला एक गरीब घर की लड़की थी। उसे अपनी सहेली मिनी के यहाँ जन्मदिन की पार्टी पर निमंत्रित किया जाता है। वहाँ पर निधी को गाना गाने के लिए कहा जाता है। वो पुराने गाने गाती है, तो वहाँ पर उपस्थित शहरी चकाचौंध में रहने वाले लोग उसे गाता देख उसपर हँसने लगे। वह अपमानित होकर वहाँ से निकलती है उसी समय विशाल नामक युवक उसे ऑटो रिक्शा में छोड़ने घर तक आता है। निधी को उसका साथ अच्छा लगता है। यह विशाल भाँप लेता है, और उसे कहता है कि आधी रात को तुम्हें अकेले आने के लिए मेहफ़ूज़ नहीं था। इसलिए इनसानियत के नाते मैने आपकी मदत की। आप अपना यह सफर यही भूल जाइए। असलियत यही है कि टी.व्ही पिक्चर की तरह अपना सफर नहीं है; आज रात को मेरी सगाई है। यह सुनकर वह चौंक जाती है, और मन ही मन में खुदको कोसती है। वह कहती है, कि यही मेरी जिंदगी है, कहा बड़े लोग, उनकी रहन-सहन, सोच-विचार और कहाँ मैं ? यही मेरी जिंदगी है। प्रस्तुत कहानी से गरीब-अमीर ये सामाजिक और आर्थिक विषमता के साथ-साथ लोगों की मानसिकता का दर्शन दिखाती है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि मालती जोशी जी ने मध्यमवर्गीय परिवारों में दिखाई देनेवाली समस्याओं को अपनी कहानियों में उजागर किया हैं। जिसमें बढ़ते शहरीकरण की वज़ह से लोग उसकी तरफ़ आकर्षित हो रहे है। कोई भी गाँव में रहना नहीं चाहता है। रोज़गार की खोज में या उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपना घर, देश, परिवार, छोड़कर लोग

शहरों या विदेशों में चले जाते है । इसके परिणाम स्वरुप बुजुर्गों पर बुढ़ापे में आनेवाला अकेलापन, घुटन को उन्होंने अपनी कहानियों में चित्रित किया हैं। दांपत्य जीवन में अगर विश्वास नहीं हुआ तो उसके कारन निर्माण होनेवाली समस्या कितना बड़ा रौद्र रूप धारण कर सकती है ; यह समाज का वास्तववादी चित्रण उनकी कहानियों में स्पष्ट दिखाई देता है । परिवार में ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा, अलगाव, जुड़ते-बिखरते रिश्ते आदि को उन्होंने अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। उनकी कहानियों को पढ़कर यही लगता है कि उनका समाज एवं परिवारों में स्थित समस्याओं को उठाना और मार्मिकता से परिचय करना ही मुख्य उद्देश्य हैं।

संदर्भ :-

आधारग्रंथसूची

1. जोशी, मालती. (2013). *वो तेरा घर ये मेरा घर* (कहानी संग्रह). नयी दिल्ली : परमेश्वरी प्रकाशन. पृष्ठ 13

2. जोशी, मालती. (2013). *वो तेरा घर ये मेरा घर* (कहानी संग्रह). नयी दिल्ली : परमेश्वरी प्रकाशन. पृष्ठ 21

सहाय्यक ग्रंथसूची

1. वर्मा, कल्पना. *स्त्री विमर्श विविध पहलू*.
2. उपाध्याय, करुणाशंकर. *कथासाहित्य का पुनर्पाठ*.
3. कामले, संतोष, & शर्मा, पूनम. *21 वीं सदी के हिंदी साहित्य में चित्रित विविध विमर्श*.

Received: 16.04.2026 | Accepted: 20.04.2026 | Published: 30.04.2026

संथाली साहित्य : एक विश्लेषण

Dr. Manoj Kumar Tudu[*]
manojkumartudu6300@gmail.com

प्रस्तावना:-

संतालो की मान्यता है कि संथाली भाषा लिटा गोडेत तथा मारांङ बुरू द्वारा पिलचु हाड़ाम बुढ़ी के माध्यम से खेरवाल आडांङ भाषा की उत्पत्ति हुई है। इसलिए संताली भाषा को दैवी भाषा मानी जाती है। संताली भाषा की उत्पत्ति कब हुई इसे रेखांकित करना निश्चित रूप से काफी कठिन है, लेकिन इतना निश्चित है कि यह भाषा अत्यंत प्राचीन है(**हेम्ब्रम, 2005**)।

भारतीय इतिहास में संथाल यहां की मूल निवासी है। इन्हें संताल, संथाल, साँवताल, संतार, मांझी, आदिवासी जैसे अनेक नाम से इन्हें विभिन्न क्षेत्रों और अनेक राज्यों में अनेक नाम से जाना जाता है। परंतु संताल खासकर अपनी परिचय के विवरण होड़ के रूप में देने का प्रयास करते हैं। इसी प्रकार के इन्होंने अपनी मुख्य भाषा होड़ भाषा अर्था होड़ रोड़ से ही देते हैं। परंतु वर्तमान समय में स्थिति यह है कि इस भाषा को संताली भाषा के रूप में उन्हें अब मान्यता दी जा रही है। यदि जिनमिन दृष्टि से देखे तो पता चलता है कि भाषा वैज्ञानिकों के अध्ययन एवं विश्लेषण के आधार पर संताली भाषा मुख्य रूप सेऑस्ट्रिक भाषा परिवार का ही एक प्रमुख भाषा है। लोक कथा, लोकगीत, मुहावरा, लोकोक्तियां तथा शब्द भंडार, शब्दकोश, व्याकरण और शब्द रचनाओं को बारीक की दृष्टि से देखकर के सहज ही यह अनुभव लगाया जा सकता है कि संताली भाषा में पहले भी कभी संताली शिष्ट साहित्य की रचना हुई होगी। भारत में आए आर्य लोगों के भाषाओं का स्रोत तो उनका खुद का संस्कृत है। परंतु संताली संस्कृत भाषा का व्याकरण एक जैसा लगता है। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन समय में दोनों भाषाओं के लोग उत्पत्ति एक समय और एक ही कल में हुआ होगा। इन दो भाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि इन दो समुदायों की बीच आपसी कोई न कोई किसी प्रकार के संबंध जरूर रहा होगा।

कुंजी शब्द:-

संथाल, भाषा, जनजाति के इतिहास , शिक्षा का अभाव, और संस्कृति

किंतु **परिमल मित्र** के अनुसार संथाली भाषा को विश्व के सभी भाषाओं के स्रोत का आधार माना जाता है। इसकी उन्होंने विस्तृत व्याख्या अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **द संताली ईस द बेस ऑफ वर्ल्ड लैंग्वेज** मे किया है। यदि इस पर पैनी नजर से देखा जाए और इस पर अवलोकन किया जाए तो पता चलता है कि यह एक खासकर प्राचीन भाषा है। जिसमें मुख्य रूप से प्राचीन कथा और लोकगीत की प्रखरता है। भले ही इस भाषा का विकास बड़े पैमाने पर न हुआ हो लेकिन यह भाषा ऐसा लगता है की बहुत पुरानी भाषा है।

अनेक अध्ययनों से यह पता चलता है कि संताली आस्ट्रिकभाषा परिवार की एक मुख्य भाषा है और साथ में यह जनजातीय भाषाओं में सबसे अत्यधिक उत्पन्न और अग्र मुखी प्रगतिशील भाषा भी है। **डॉ धीरेंद्र नाथ वास्को** ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **पश्चिम बंगेर आदिवासी समाज** में आस्ट्रो एशियाटिक भाषा परिवार को सोच समझकर उन्होंने इस प्रकार दर्शाने का प्रयास किया है कि उन्होंने सबसे पहले आस्ट्रो एशियाटिक भाषा परिवार को सामान्य तौर पर दो भागों में बांटने का प्रयास किया है। पहला **मोन खोमेर शाखा** दूसरा **मुंडा शाखा(मुर्मू, 2016)**।

[*] **Head, Department of Santhali, Degree College Mahagama Godda, Jharkhand 814154**

इसके बाद अनेक भाषाओं के अध्ययन करने के बाद और उसके बारे में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के बाद **डॉ रतन हेंब्रम** ने अपने शोध में भाषाओं के बारे में गहन प्रस्तुतीकरण का प्रयास किया है। उन्होंने भाषा परिवार में ऑस्ट्रिक भाषा परिवार को ही सामान्य तौर पर सबसे बड़ा भाषा परिवार माना है। उन्होंने इस भाषा परिवार को इस प्रकार के दर्शाने का प्रयास किया है। ताकि भाषाओं के बारे में लोगों को विस्तृत समझ हो। उस भाषा के माध्यम से लोग भाषाओं के बारे में तथा उसकी संपूर्ण जानकारी के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सके। इस दृष्टि के देखते हुए इन्होंने भाषा परिवार को दर्शाने के लिए और लोगों को समझने के लिए उन्होंने इस प्रकार इस भाषा के दर्शाया है जो निम्नवत है।

भाषा परिवार का संक्षिप्त विवरण

आर्य:-

A. इन्दोनेशियन, कनवरीखेरवारी, संथाली, हो, करमालीमाहली B. मोनखोमेर, कुर्कू , मुंडारी भूमिज C. मुंडा, खड़िया ज आंग एंव अनार्या भाषा परिवार-**: A.** सबर B. गदवा

यह भाषा परिवार को प्रदर्शित करने के बाद स्पष्ट रूप से यह पता चलता है की हमें क्षेत्र अनुसार यह ज्ञान प्राप्त होता है कि अनुसूचित जनजाति की अंतर्गत आने वाली जितने भी प्रकार की भाषा या बोली है। उनमें सबसे ऊपर प्रमुख स्थान रखने वाला एकमात्र भाषा है और वह भाषा है संथाली। संथाली भाषा आदिवासी समाज में सबसे अधिक लोकप्रिय है। यह भाषा इतना प्रगतिशील है की यह जनजातीय समाज में अपनी एक अलग पहचान बनाने जा रहा है। इस भाषा की लोकप्रियता दिन प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहा है। संथाली भाषा की अनेक सहोदर भाषा भी है, जिसके अंतर्गत मुख्य तौर पर मुंडा, हो, कुरूक, माहली, खड़िया, बिरहोर जैसे अनेक उपभाषाय भी है। लेकिन शाब्दिक दृष्टि से अगर इन सभी भाषाओं पर नजर डालें तो स्पष्ट रूप से यह पता चलता है कि अभी तक यह भाषाओं को खासकर मानकीकरण नहीं किया गया है। इसलिए इन सभी भाषाओं को एक दूसरे के या एक दूसरे के समक्ष से पृथक करना बहुत बड़ा कठिन कार्य है। संथाली भाषा एक ऐसी भाषा है जो भारत के पूर्वी क्षेत्र में खास प्रचलित है। यह भाषा जनजातीय समुदाय में अपने आप को महत्व को बनाए रखा है। आदिवासी समाज के लोग इस भाषा को अपनी भाषा मानते हुए इसको समानित दृष्टि से देखते हैं और अपने जीवनचार्य में इस भाषा का अत्यधिक उपयोग करते हैं। स्थिति यह है कि शिक्षण संस्थानों जैसे जगह पर भी इस भाषा को काफी लोकप्रिय मिला है। यह भाषा दिन प्रतिदिन आगे बढ़ता ही जा रहा है। इस भाषा खासकर झारखंड, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा असम, बिहार, मणिपुर, त्रिपुरा जैसे भारत के अनेक क्षेत्रों में प्रसिद्ध है। क्षेत्रीय स्थान में यह भाषा बोली जाती है लेकिन यह संथाली भाषा सिर्फ भारत में ही परिचित नहीं है, बल्कि विदेश में भी इस भाषा की प्रसिद्ध दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहा है। विदेश में भी अनेक वर्गों के लोग इस भाषा को बोलते हैं। जैसे भारत के पड़ोसी देश नेपाल, बांग्लादेश, मॉरीशस, आदि जैसे अनेक देश है जहां यह भाषा का लोक उपयोग करते हैं। यह एक अंतरराष्ट्रीय भाषा के तौर पर भी अपने आप को पहचान बनाते हुए नजर आ रहा है। आधुनिकता में यह भाषा की प्रकृति अत्यधिक बढ़ गया है क्योंकि अब शिक्षित लोग इस भाषा को एक स्थान से दूसरे स्थान आसानी से ले जा रहे हैं। यह भाषा खुद एक क्षेत्र के अंतर्गत से अब बाहर के लोगों में भी यह फैलता जा रहा है। अब स्थिति यह है कि संथाल ने अपने संथाली साहित्य को उस राज्य की विकसित भाषा की लिपि में लिखने का आरंभ किया है। जैसे बिहार और झारखंड जैसे राज्यों में यह संथाली भाषा को अब देवनागरी लिपि में लिखा जा रहा है। वहीं यदि पश्चिम बंगाल पर नजर डालें तो संथाली भाषा को पश्चिम बंगाल में बांग्ला लिपि में लिखा जा रहा है। मणिपुर और त्रिपुरा में भी बांग्ला लिपि में लिखा जा रहा है और असम में वगला लिपि ओडिशा में ओड़िया लिपि और देश के हर एक स्थानीय क्षेत्र में पहले रोमन लिपि में लिखा जा रहा है।

यदि संथाल समाज की पृष्ठभूमि पर नजर डाले तो यह पता चलता है कि संथाल समाज की शताब्दी से संचित विशाल ज्ञान राशि मौखिक रूप में अनेक लोकगीत, लोक कथा, कहानी, विनती, वाखेड़, झरनी। इत्यादि जैसे अनेक साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में अभी भी जिंदा है। शिक्षा के बिना साहित्य नहीं और साहित्य के बिना लिपि का विकास करना बहुत मुश्किल काम है। इसलिए अब अपनी लिपि **अलचिक** प्राप्त हो जाने के करण सबसे बड़ा समस्याओं का अब पूर्णता समाधान हो गया है।

भारतीय दृष्टि में यदि संथाल समाज के ऊपर नजर डालें तो यह पता चलता है की जनजातियों को शिक्षा से कोसों दूर रखा गया था। संताली को विकसित होने के लिए और अपनी लिपि भाषा को विकसित करने के लिए समाज की मुख्य धारा में आने के लिए जिस वातावरण की आवश्यकता था वह जनजातियों के अनुकूल बिल्कुल नहीं था। जनजातियों को जीवन के अवसर बहुत कम प्राप्त होते थे, क्योंकि ब्रिटिश काल में संथाली की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक धार्मिक दशा अत्यंत दैनिए थी। जनजातीय समाज के बीच राजनीतिक वातावरण का प्रभाव बिल्कुल नहीं था जिसके कारण जनजातीय समाज की भाषा और साहित्य का विकास नहीं हो सका। यहां तक की संथाल जनजाति तो निरंतर युद्ध की स्थिति में थी और वह एक योद्धा के रूप में भी कार्य करती थी। वह अपने दुश्मनों से बदला लेने के लिए हमेशा तत्पर रहती थी क्योंकि संथाली लोगों का इतिहास बताता है कि संथाली लोग कभी भी किसी भी मोड़ पर झुकने का प्रयास नहीं किया है। उन्होंने प्राचीन समय से ही अपने वीरता का पहचान दिया फिर भी बदलते परिवेश और वातावरण के साथ साहित्य का उतना विकास नहीं हो सका इसलिए साहित्य को समाज का दर्पण भी कहा जाता है।

संथाली भाषा प्राचीन काल से ही यह भाषा प्रचलित है और यह भाषा खासकर जनजातीय समाज में अशिक्षित लोगों में प्रचलित है। लेकिन युगों-युगों तक यह भाषा जीवित है और अब इस भाषा के विकास में तीव्रता आ रहा है। क्योंकि यह भाषा के ऊपर अब सबको ध्यान बढ़ता जा रहा है। सरकार भी इस भाषा को मुख्य भाषा के श्रेणी में शामिल कर लिया है।

साहित्य पुनरावलोकन:-

भारतीय इतिहास और सभ्यता के दौर में आदिवासियों ने बहुत पुराने समय से ही एक अहम भूमिका निभाई है। इसके बावजूद आज भी अपेक्षित ही रहे हैं। संथाली की आबादी 50 लाख से ज्यादा है और उनके जीवन शैली के मूल्य हिंदुओं से अलग है। संथाली बहुत ही सदा और अलग तरह का जीवन जीते हैं जो मुख्य रूप से गुजारे लायक खेती पर निर्भर करता है(Mondal, 2022)। 02 भारत में कई आदिवासी समुदायों की भाषा और साहित्य के विकास में कमी रहा है। उनमें से अधिकांश के लिए यह स्थिति आज भी बनी हुई है। संथाली भाषा और साहित्य भी इन्हीं में से एक था। 19 वीं सदी की शुरुआत में संथाल क्षेत्र में कई मिशनरियों का प्रवेश एक युगांतरकारी घटना थी। अपने धार्मिक कार्यों के अलावा ईसाई मिशनरियों ने संथाल जनजाति पर शोध और लेखन के कार्यों में खुद को शामिल किया। उन्होंने संथाल को भी इसी कार्य में लगाया और उन्हें अपनी परंपरा और संस्कृति की सुंदरता का एहसास कराया। दूसरी ओर ईसाई मिशनरियों को अपने धार्मिक कार्य और लेखन को सुचारू रूप से चलाने के लिए संथाल जनजाति के कुछ सदस्यों से भारी सहायता मिली। 03. भारत की आबादी का एक बड़ा हिस्सा मूल निवासी लोग है। यह जनजातीय भी मुख्य रूप से खेती बाड़ी पर निर्भर है। वह आमतौर पर जंगलों और पहाड़ी इलाकों में अर्ध स्वतंत्र जमीनों पर खेती करते हैं और जंगल की लकड़ी फल जड आदि का उपयोग करते थे। जब ब्रिटिश शासन स्थापित हुआ तो कंपनी ने अपनी योजना के अनुसार इन सभी क्षेत्रों में भूमि बंदोबस्त और राष्ट्र प्राणी लागू कर दी इस काम के लिए उन्हें जमींदारों का सहारा लिया है। जब जनजाति क्षेत्र में कंपनी की भूमि राजस्व प्रणाली और जमींदारी व्यवस्था लागू की गई तो सीधे-साधे जनजाति लोगों का जमींदारों का शोषण बढ़ गया। 04. संथाल भारतीय उपमहाद्वीप में रहने वाले आर्य पूर्व काल के सबसे बड़े आदिवासी समूह में से एक है। अनेक मानव शास्त्रियों के अनुसार वे प्रोटो ऑस्ट्रेलियड नस्ल से संबंधित है। वह मुख्य रूप से झारखंड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, असम और बिहार के क्षेत्र में पाए जाते हैं। उनकी अपनी विशिष्ट कला संस्कृति रीति-रिवाज और परंपराएं हैं जिनका वे प्राचीन काल से पालन करते आ रहे हैं। 05. संथाली भाषा आस्ट्री भाषा ग्रुप का एक जरूरी हिस्सा है। यह बहुत पुरानी भारतीय भाषा है अभी इस भाषा को बोलने वाले लोगों की संख्या 70 लाख से ज्यादा है। इस भाषा का महत्व अपने आप में बहुत बड़ा है। इस भाषा की प्रासंगिकता दिन पर दिन बढ़ते जा रहा है और इसकी अनुयाई लोग की संख्या में भी वृद्धि होते जा रहा है। खासकर जनजातीय समाज में यह भाषा अपने आप को महत्व को बनाए रखा है।

शोध अंतराल:-

उपर्युक्त साहित्य समीक्षा से यह पता चलता है की जनजातीय समुदाय का इतिहास बहुत पुराना है। जनजातीय समुदाय के लोग बिहार, बंगाल, उड़ीसा, झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश जैसे स्थानों में निवास करते हैं। क्षेत्रवार के अनुसार सभी जनजाति भाषाएं अलग-अलग बोलते हैं, फिर भी इनमें काफी हद तक समानताओं देखने को मिलता है। संथाली समुदाय की अपनी एक अलग पहचान है और संथाली भाषा इन समुदाय में सबसे ज्यादा बोली जाती है। यह

संथाली भाषा का विकास कैसे हुआ और क्या महत्व है इस पर बहुत शोध अध्ययन बहुत कम हुआ है इसलिए यह अध्ययन अपेक्षनीय है।

शोध का उद्देश्य:-

संथाल के ऐतिहासिक विरासत को समझना।

आंकड़े संकलन की विधि:-

यह प्रस्तुत शोध संथाल जनजाति पर आधारित है और यह शोध कार्य को पूर्ण करने के लिए मात्रात्मक शोध प्रविधियां का प्रयोग करके वास्तविक तथ्य को ज्ञात किया गया है। इस प्रविधि के अंतर्गत सर्वेक्षण, अवलोकन, रिकॉर्ड्स, रिपोर्ट किताब, इंटरनेट पत्र-पत्रिकाएं आदि के माध्यम से वास्तविक तथ्यों का संकलन किया गया है। इस विधि के माध्यम से संथाल जनजाति समुदाय की क्या इतिहास है उनकी संस्कृति और भाषा क्या है। वह किस प्रकार अपनी संस्कृति और भाषा को बचाए हुए हैं, इससे संबंधित यह विधि के माध्यम से वास्तविक ज्ञान को प्राप्त किया गया है।

विश्लेषण:-

संथाल समाज पर नजर डाले तो पता चलता है कि यह समाज की इतिहास बहुत पुराना है। क्योंकि प्राचीन समय से ही संथाल समुदाय के लोग अपने भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाज खान-पान जीवन शैली को अभी भी बचाए हुए हैं। क्योंकि संथाल लोग भारत के अनेक राज्यों में निवास करते हैं और अभी भी कुछ स्थान ऐसा है जहां पारंपरिक तरीकों से जीवन यापन कर रहे हैं। लेकिन इनमें कुछ लोगो में परिवर्तन आया है, जो शिक्षित लोग हैं वह विकास के मुख्य धारा में शामिल हो रहे है। लेकिन अभी भी यह समुदाय के लोग अपने संस्कृति के तो बचाए हुए हैं लेकिन वह अभी भी विकास की मुख्य धारा से कोशों दूर है।

शोध का महत्व:-

- संथाल जनजाति के संस्कृति और भाषाओं को समझने की आवश्यकता है।
- संथाल जनजाति को उनको अपनी स्थिति सुधारने के लिए और शिक्षा के क्षेत्र में विशेष प्रोत्साहन की आवश्यकता है।
- संथाल जनजाति के लोग किस प्रकार अपनी भाषा संस्कृति को रक्षा करते हैं उसको जानना अति आवश्यक है।

निष्कर्ष:-

भारतीय इतिहास में संथाली भाषा और संस्कृति एक समृद्ध प्राचीन और जीवंत जनजातीय विरासत है। यह भाषा खास तौर पर झारखंड, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और असम के संथाली समुदाय में प्रचलित है। क्योंकि संथाली समुदाय इस भाषा को अत्यधिक महत्व देते हैं। वह इस भाषा की बोलचाल में अत्यधिक प्रयोग करते हैं यही कारण है कि इस भाषा का विकास प्रतिदिन होता जा रहा है। झारखंड के संथाल परगाना में संथाली लोग संथाली भाषा क उपयोग करते हैं और यह भाषा की प्रधानता इस क्षेत्र में अत्यधिक है। यह संथलीय भाषा का झारखंड में दिन प्रतिदिन महत्व बढ़ते जा रहा है। इस भाषा की प्रासंगिकता इतना है कि दूसरे जनजाति समुदाय के लोग भी अपना रहे हैं। यानी यह संथाली जनजाति के अतिरिक्त दूसरे जनजाति समुदाय भी इसकी प्रासंगिकता को समझ रहे हैं। अपने जीवन शैली में अपना रहे हैं इस प्रकार संथाली भाषा का विकास दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

संदर्भ सूची:-

Hansda, J. (2024). Christian Missionaries' Accounts and Interpretations on Santal Tribe: A Groundwork for Santali Grammar and Literature Development- A Historical Review. *Review of History and Political Science*. Page. 52-53. DOI: https://doi.org/10.15640/rhps.v11p6

Kumari, R., (2024). From Oral To Written: The Role Of Missionaries In Development Of Santhali Language And Literature. International Journal of Creative Research Thoughts. 12(8). 342-345. Retrieved from https://ijcrt.org/papers/IJCRT2408816.pdf

Mondal, j., k. (2024). the santal rebellion and other tribal movements: a historical review. International Education & Research Journal. *International Education & Research* Journal. 10(10). 222-223. Retrieved from https://ierj.in/journal/index.php/ierj/article/view/4373/5154

Mondal, S. (2022). Historical Analysis Of Santals Tribe In India. *International Journal of Early Childhood Special Education*. 4 (4). 3249-3252. Retrieved from https://www.int-jecse.net/article/Historical+Analysis+Of+Santals+Tribe+In+India_5786/?download=true&format=pdf

Murmu, G.(2022). A brief History of Santali Language and Literature. *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research*. 9 (12). 653-655. Retrieved from https://www.jetir.org/papers/JETIR2212493.pdf

डॉ. हेम्ब्रम, र. (2005). संताली लोकगीतों में साहित्य और संस्कृति. मानमी-मार्शल इन्फोर्मेटिक्स दुखुटोला, जमशेदपुर

मुर्मू, र., न. (2016). विश्वभारती पत्रिका. हिन्दिभावान, शान्तिनिकेतन. पश्चिमबंगाल.

Received: 17.04.2026 | Accepted: 20.04.2026 | Published: 30.04.2026

साइबर सुरक्षा व डिजिटल गवर्नेंस: सीमित फोकस (UPA) बनाम डिजिटल इंडिया का अंतर्राष्ट्रीय प्रचार (NDA)

डॉ. नीतू कुमारी*

singhneetu920@gmail.com

सार (Abstract)

यह शोध-लेख भारत में दो प्रमुख शासन अवधियों – संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA, 2004-2014) और राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA, 2014-वर्तमान) – के दौरान साइबर सुरक्षा और डिजिटल गवर्नेंस के दृष्टिकोणों की तुलनात्मक व्याख्या करता है। UPA काल में साइबर सुरक्षा को एक सीमित, प्रतिक्रियाशील और आंतरिक प्रशासनिक मुद्दे के रूप में देखा गया, जहाँ ध्यान मुख्यतः IT अधिनियम 2000 के संशोधनों और 2013 में आई राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति पर केंद्रित रहा। अंतर्राष्ट्रीय साइबर सहयोग और डिजिटल गवर्नेंस के वैश्विक प्रचार की दृष्टि से यह काल अपेक्षाकृत निष्क्रिय रहा।

इसके विपरीत, NDA सरकार ने 2015 में 'डिजिटल इंडिया' अभियान को प्रारंभ किया, जिसने डिजिटल गवर्नेंस को केवल एक घरेलू नीति के बजाय एक राष्ट्रीय आंदोलन और अंतर्राष्ट्रीय सॉफ्ट पावर के रूप में स्थापित किया। NDA काल में राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा समन्वय केंद्र (NCCC), साइबर स्वच्छता केंद्र, और डिजिटल पर्सनल डेटा प्रोटेक्शन अधिनियम 2023 जैसे ऐतिहासिक कदम उठाए गए। साथ ही, G20, BRICS, SCO और द्विपक्षीय समझौतों के माध्यम से डिजिटल इंडिया का अभूतपूर्व अंतर्राष्ट्रीय प्रचार किया गया। यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि NDA ने साइबर सुरक्षा और डिजिटल गवर्नेंस को रणनीतिक प्राथमिकता देते हुए भारत को वैश्विक डिजिटल नेता के रूप में स्थापित किया, हालाँकि डेटा गोपनीयता, साइबर अपराधों में वृद्धि और डिजिटल विभाजन की चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं।

कीवर्ड*: साइबर सुरक्षा, डिजिटल गवर्नेंस, डिजिटल इंडिया, UPA, NDA, अंतर्राष्ट्रीय प्रचार*

परिचय (Introduction)

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में डिजिटल शासन :-बीसवीं सदी के अंत और इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ ने मानव सभ्यता को सूचना क्रांति के उस दौर में पहुँचा दिया, जहाँ डेटा तेल से भी अधिक मूल्यवान संसाधन बन गया है। साइबर स्थान (cyberspace) अब केवल संचार का माध्यम नहीं रह गया है, बल्कि यह अर्थव्यवस्था, राष्ट्रीय सुरक्षा, सामाजिक संपर्क और शासन का केंद्रीय आधार बन चुका है। ऐसे में 'साइबर सुरक्षा' और 'डिजिटल गवर्नेंस' किसी भी देश के लिए दो अनिवार्य स्तंभ बन गए हैं। साइबर सुरक्षा का तात्पर्य डिजिटल प्रणालियों, नेटवर्कों और आंकड़ों को अनधिकृत पहुँच, हैकिंग, मालवेयर और साइबर आतंकवाद से बचाने से है। वहीं, डिजिटल गवर्नेंस का अर्थ है सरकारी सेवाओं, सूचनाओं और जन-सरकार संवाद को डिजिटल माध्यमों से संचालित करना।

भारत का डिजिटल परिदृश्य :-भारत, जो विश्व की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है और जहाँ इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 800 मिलियन से अधिक हो चुकी है, इस डिजिटल परिवर्तन का एक विशाल प्रयोगशाला है। यहाँ

* **राजनीतिशास्त्र विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना**

डिजिटल गवर्नेंस न केवल प्रशासनिक सुविधा का प्रश्न है, बल्कि यह गरीबी उन्मूलन, वित्तीय समावेशन (जैसे जन धन-आधार-मोबाइल त्रिमूर्ति), शिक्षा (डीआईकेशा, स्वयं) और स्वास्थ्य (कोविन, आयुष्मान) जैसे क्षेत्रों में क्रांति ला सकता है। लेकिन इस विस्तार के साथ ही साइबर अपराध, डेटा उल्लंघन, रैंसमवेयर हमले और स्टेट-स्पॉन्सर्ड हैकिंग जैसे खतरे भी तेजी से बढ़े हैं।

UPA काल (2004-2014): एक प्रारंभिक चरण :- भारत में डिजिटल गवर्नेंस और साइबर सुरक्षा की नीतियों का ऐतिहासिक अवलोकन करें तो संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA) के कार्यकाल (2004-2014) को प्रारंभिक या 'नींव रखने वाला' काल कहा जा सकता है। इस अवधि में सरकार का ध्यान मुख्यतः सूचना प्रौद्योगिकी (IT) उद्योग को प्रोत्साहन देने और ई-गवर्नेंस की बुनियादी परियोजनाओं (जैसे नेशनल ई-गवर्नेंस प्लान) पर था। 2000 में अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली एनडीए सरकार ने IT अधिनियम पारित किया था, जिसे UPA सरकार ने 2008 में संशोधित किया। ये संशोधन मुख्यतः साइबर अपराधों को परिभाषित करने और उनके लिए दंडात्मक प्रावधानों से संबंधित थे। हालाँकि, UPA काल में साइबर सुरक्षा को कभी भी एक राष्ट्रीय सुरक्षा प्राथमिकता के रूप में नहीं देखा गया। इसकी राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति 2013 में आई, जब UPA अपने अंतिम वर्ष में थी। इसमें महत्वाकांक्षी घोषणाएँ तो थीं, लेकिन उनके कार्यान्वयन के लिए न तो पर्याप्त बजट था और न ही एक मजबूत संस्थागत संरचना। अंतर्राष्ट्रीय साइबर कूटनीति के क्षेत्र में UPA का योगदान नगण्य था। इस काल में न तो कोई महत्वपूर्ण द्विपक्षीय साइबर समझौता हुआ और न ही किसी वैश्विक मंच पर भारत ने डिजिटल शासन के मॉडल को सक्रिय रूप से प्रचारित किया। सीमित डिजिटल पैठ, साइबर सुरक्षा के प्रति कम जागरूकता और सरकार के प्रतिक्रियाशील रवैये ने इस काल को 'सीमित फोकस' का काल बना दिया।

NDA काल (2014-वर्तमान): डिजिटल इंडिया और उसका वैश्विक विस्तार

मई 2014 में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) की सरकार बनने के बाद देश के डिजिटल एजेंडे में एक स्पष्ट बदलाव आया। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 1 जुलाई 2015 को 'डिजिटल इंडिया' अभियान लॉन्च किया। यह केवल एक योजना नहीं थी, बल्कि एक दृष्टि थी – 'पॉवर्ड बाय डिजिटल' भारत की। इस अभियान ने तीन मुख्य घटकों पर काम किया: (i) डिजिटल अवसंरचना (भारतनेट, सामान्य सेवा केंद्र, साइबर सुरक्षा ढाँचा), (ii) डिजिटल सेवाएँ (उमंग ऐप, डीबीटी, ई-हॉस्पिटल, ई-कोर्ट), और (iii) डिजिटल साक्षरता (प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान)।

NDA सरकार ने साइबर सुरक्षा को राष्ट्रीय सुरक्षा का एक अनिवार्य हिस्सा बनाया। राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा समन्वय केंद्र (NCCC) जैसी संस्थाएँ बनाई गईं जो वास्तविक समय में खतरों का पता लगाती हैं। साइबर स्वच्छता केंद्र, राष्ट्रीय साइबर फोरेंसिक प्रयोगशाला, और इंडियन साइबर क्राइम कोऑर्डिनेशन सेंटर (I4C) की स्थापना हुई। कानूनी ढाँचे में भी बड़े बदलाव हुए – सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 66A को निरस्त किया, और 2023 में डिजिटल पर्सनल डेटा प्रोटेक्शन अधिनियम पारित किया गया।

अंतर्राष्ट्रीय प्रचार: एक रणनीतिक बदलाव :- NDA सरकार की सबसे उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उसने डिजिटल इंडिया और साइबर सुरक्षा के भारतीय मॉडल को वैश्विक मंचों पर सक्रिय रूप से प्रचारित किया। G20 सम्मेलनों, BRICS बैठकों, शंघाई सहयोग संगठन (SCO) और संयुक्त राष्ट्र (UN) में भारत ने बार-बार डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना (DPI) के अपने मॉडल को रेखांकित किया। भारत की G20 अध्यक्षता (2023) के दौरान 'डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर' को वैश्विक एजेंडे में शामिल करवाना एक बड़ी कूटनीतिक सफलता थी। भारत ने 30 से अधिक देशों के साथ द्विपक्षीय साइबर सुरक्षा समझौतों पर हस्ताक्षर किए, जिनमें अमेरिका, जापान, यूके, ऑस्ट्रेलिया और फ्रांस शामिल हैं। इस प्रकार, डिजिटल इंडिया केवल एक घरेलू कार्यक्रम नहीं रहा, बल्कि यह एक वैश्विक ब्रांड और सॉफ्ट पावर का साधन बन गया।

शोध प्रश्न और तुलनात्मक प्रासंगिकता

यह अध्ययन निम्नलिखित केंद्रीय प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास है: UPA काल के 'सीमित फोकस' और NDA काल के 'डिजिटल इंडिया के अंतर्राष्ट्रीय प्रचार' के बीच साइबर सुरक्षा व डिजिटल गवर्नेंस के नीतिगत दर्शन, संस्थागत संरचना और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के क्षेत्र में क्या अंतर है? दोनों शासन अवधियों की तुलना इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि वे भारत के डिजिटल विकास के दो अलग-अलग चरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं – पहला, साइबर सुरक्षा को एक तकनीकी मसले के रूप में देखने वाला, और दूसरा, इसे भू-राजनीतिक और रणनीतिक प्राथमिकता बनाने वाला।

अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study)

इस शोध अध्ययन के निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्य हैं:

1. UPA (2004-2014) और NDA (2014-वर्तमान) के कार्यकालों में साइबर सुरक्षा नीतियों, कानूनी ढाँचे और संस्थागत संरचना का तुलनात्मक विश्लेषण करना।
2. 'डिजिटल इंडिया' अभियान के विभिन्न घटकों (डिजिटल अवसंरचना, सेवाएँ, साक्षरता) और उसके अंतर्राष्ट्रीय प्रचार-प्रसार रणनीति का विस्तृत अध्ययन करना।
3. UPA काल के 'सीमित फोकस' के कारणों – संरचनात्मक, वैचारिक और संसाधन-आधारित – की पहचान करना।
4. NDA काल में भारत द्वारा किए गए अंतर्राष्ट्रीय साइबर सहयोग, द्विपक्षीय समझौतों और वैश्विक मंचों (G20, BRICS, UN) पर डिजिटल शासन को लेकर की गई पहलों का मूल्यांकन करना।
5. तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर भारत के लिए एक संतुलित, सतत और भविष्योन्मुखी साइबर सुरक्षा व डिजिटल गवर्नेंस ढाँचे के लिए नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना।

साहित्य समीक्षा (Literature Review)

1 साइबर सुरक्षा का सैद्धांतिक ढाँचा :-साइबर सुरक्षा को समझने के लिए दो प्रमुख सैद्धांतिक धाराएँ हैं। पहली, तकनीकी-प्रशासनिक दृष्टिकोण, जो साइबर सुरक्षा को मुख्यतः आईटी प्रणालियों और डेटा की सुरक्षा तक सीमित रखता है (बिशप, 2003)। दूसरी, रणनीतिक-राष्ट्रीय सुरक्षा दृष्टिकोण, जिसे Nye (2011) ने विस्तार से समझाया है। उनके अनुसार, साइबर स्पेस में अब राज्य-प्रायोजित हमले, साइबर आतंकवाद और आर्थिक जासूसी एक साथ मिलते हैं। यह दूसरा दृष्टिकोण NDA काल में अधिक प्रमुखता से देखा गया, जबकि UPA पहले दृष्टिकोण के करीब था।

2. **भारत में डिजिटल गवर्नेंस: एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :-**भारत में ई-गवर्नेंस का आरंभ 1970 के दशक में NIC (National Informatics Centre) की स्थापना से माना जाता है। लेकिन डिजिटल गवर्नेंस की व्यापक अवधारणा 2000 के दशक में आई। राव (2016) के अनुसार, UPA सरकार ने राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना (NeGP, 2006) प्रारंभ की, जिसमें 31 मिशन मोड परियोजनाएँ थीं। हालाँकि, इस योजना में साइबर सुरक्षा को एक अलग स्तंभ नहीं बनाया गया था। इसके विपरीत, शर्मा (2018) लिखते हैं कि डिजिटल इंडिया (2015) ने इन सभी परियोजनाओं को एक छत्रछाया में लाकर साइबर सुरक्षा को हर परियोजना का अभिन्न अंग बनाया।

3.UPA काल की सीमाएँ (2004-2014) :-UPA काल में साइबर सुरक्षा के प्रति दृष्टिकोण का मूल्यांकन करते हुए मेहता (2021) का तर्क है कि यह एक 'प्रतिक्रियाशील' मॉडल था। IT अधिनियम 2000 के 2008 के संशोधनों (जिनमें धारा 66A, 66B, 66C, 66D जैसे प्रावधान जोड़े गए) का उद्देश्य बढ़ती साइबर अपराध घटनाओं का त्वरित दंडात्मक जवाब देना था, न कि एक व्यापक रोकथाम ढाँचा तैयार करना। धारा 66A को बाद में सुप्रीम कोर्ट ने 'मौलिक अधिकारों का उल्लंघन' ठहराते हुए श्रेय कुमार बनाम भारत सरकार (2015) मामले में निरस्त कर दिया। राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति (2013) आने में देरी हुई और उसके पास बाध्यकारी शक्तियाँ नहीं थीं। अंतर्राष्ट्रीय साइबर सहयोग के मोर्चे पर चटर्जी (2020) बताते हैं कि UPA काल में कोई सक्रिय साइबर कूटनीति नहीं थी। भारत ने 2010 में 'साइबर अपराध पर बुडापेस्ट कन्वेंशन' पर हस्ताक्षर तक नहीं किए।

4. NDA काल और डिजिटल इंडिया का उदय :- शर्मा (2018) डिजिटल इंडिया को एक 'परिवर्तनकारी नीति' के रूप में चिन्हित करते हैं। इसके तहत:

- डिजिटल अवसंरचना: भारतनेट (2.5 लाख से अधिक ग्राम पंचायतों को फाइबर ऑप्टिक से जोड़ना), सामान्य सेवा केंद्र (CSC, 5 लाख से अधिक), और राष्ट्रीय क्लाउड (MeghRaj)।
- डिजिटल सेवाएँ: उमंग (एकीकृत मोबाइल एप्लिकेशन), डीबीटी (प्रत्यक्ष लाभ अंतरण – जिससे 2.5 लाख करोड़ रुपये की बचत हुई), ई-अस्पताल, ई-कोर्ट, डिजिलॉकर।
- डिजिटल साक्षरता: पीएम जीडीआईपी (6 करोड़ से अधिक ग्रामीण नागरिकों को डिजिटल साक्षर बनाया)।

साइबर सुरक्षा के लिए NDA ने NCCC (2017) की स्थापना की, जो 7 प्रमुख ISP से वास्तविक समय डेटा प्राप्त करता है। साइबर स्वच्छता केंद्र मालवेयर और बॉटनेट को साफ करने के लिए एक मुफ्त सेवा है। I4C (2020) राज्यों के पुलिस बलों को साइबर अपराधों की जाँच में समन्वय करता है।

5 अंतर्राष्ट्रीय प्रचार और डिजिटल सॉफ्ट पावर :-चटर्जी (2020) के अनुसार, NDA सरकार ने डिजिटल गवर्नेंस को एक 'सॉफ्ट पावर' के रूप में इस्तेमाल किया। उदाहरण के लिए, कोविड महामारी के दौरान कोविन प्लेटफॉर्म को कई विकासशील देशों ने देखा। भारत ने 2021 में 'साइबर सुरक्षा पर वैश्विक सम्मेलन' का आयोजन किया। G20 नई दिल्ली घोषणा (2023) में 'डिजिटल पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर' को एक विशेष स्थान दिया गया। बंसल (2021) हालाँकि एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं – उनका कहना है कि प्रचार के बावजूद, आधार डेटा लीक (2018), 2021 में स्पाइवेयर (पेगासस) विवाद और रैंसमवेयर (जैसे नेशनल इंफॉर्मेटिक्स सेंटर पर हमले) जैसी घटनाओं ने साइबर सुरक्षा की तात्विक कमियों को उजागर किया।

6. अंतर्राष्ट्रीय सहयोग: द्विपक्षीय और बहुपक्षीय समझौते :- विदेश मंत्रालय (2023) के प्रकाशित दस्तावेज़ों के अनुसार, NDA काल में भारत ने साइबर सुरक्षा पर अमेरिका (2016, 2020), जापान (2017), यूके (2021), ऑस्ट्रेलिया (2022), फ्रांस (2022), जर्मनी (2023) और कई अन्य देशों के साथ द्विपक्षीय समझौते किए। ये समझौते खुफिया जानकारी साझा करना, क्षमता निर्माण और साइबर अपराधियों के प्रत्यर्पण से संबंधित हैं। इसके अलावा, भारत 'संयुक्त राष्ट्र साइबर अपराध सम्मेलन' और 'संयुक्त राष्ट्र ओपन-एंडेड वर्किंग ग्रुप (OEWG) ऑन साइबर सिक्योरिटी' में सक्रिय सदस्य है। UPA काल में इस प्रकार के 5 से भी कम समझौते थे, जबकि NDA में 30 से अधिक।

7 शोध अंतराल (Research Gap)

उपरोक्त साहित्य समीक्षा से कुछ महत्वपूर्ण अंतराल पता चलते हैं:

1. अधिकांश अध्ययन या तो UPA की आलोचना करते हैं या NDA की प्रशंसा; एक संतुलित तुलनात्मक अध्ययन का अभाव है।
2. 'सीमित फोकस' और 'अंतर्राष्ट्रीय प्रचार' को साइबर सुरक्षा डेटा, संस्थागत संरचना और कूटनीति के त्रिकोणीय मॉडल में कम ही देखा गया है।
3. प्रचार के प्रभाव को मापने के लिए कोई मात्रात्मक सूचकांक उपलब्ध नहीं है। यह अध्ययन उन अंतरालों को भरने का प्रयास करता है।

अध्ययन की पद्धति (Methodology)

शोध प्रकार और डिजाइन :-यह अध्ययन तुलनात्मक केस स्टडी डिजाइन पर आधारित है। यह गुणात्मक (qualitative) प्रकृति का है, लेकिन इसमें सहायक के रूप में सरल सांख्यिकीय आँकड़ों (CERT-In रिपोर्ट) का भी प्रयोग किया गया है। तुलनात्मक डिजाइन दो अलग-अलग शासन कालों – UPA (2004-2014) और NDA (2014-2024) – के बीच अंतर स्पष्ट करने में सहायक है।

आंकड़ों (डेटा) के स्रोत :- प्राथमिक स्रोत:· सरकारी नीति दस्तावेज़: IT अधिनियम (2000, 2008 संशोधन), राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति (2013), डिजिटल इंडिया: विजन एंड मिशन (2015), राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा रणनीति का मसौदा (2020), डिजिटल पर्सनल डेटा प्रोटेक्शन बिल (2023)।

- CERT-In की वार्षिक रिपोर्टें (2008 से 2023 तक)।
- Ministry of Electronics and Information Technology (MeitY) की वार्षिक रिपोर्टें।
- विदेश मंत्रालय (MEA) द्वारा प्रकाशित द्विपक्षीय और बहुपक्षीय समझौते।
- संसदीय प्रश्न और राज्यसभा/लोकसभा स्थायी समिति की रिपोर्टें।

द्वितीयक स्रोत:· NITI Aayog की रिपोर्टें: 'डिजिटल अर्थव्यवस्था पर रिपोर्ट' (2018, 2022)।

- अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की रिपोर्टें: World Bank (Digital India report 2022), International Telecommunication Union (ITU Global Cybersecurity Index), United Nations Conference on Trade and Development (UNCTAD)।
- राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय थिंक-टैंक के पेपर: ORF (Observer Research Foundation), Carnegie India, IDSA (Institute for Defence Studies and Analyses), तथा NASSCOM (साइबर सुरक्षा पर उद्योग रिपोर्ट)।
- प्रतिष्ठित अकादमिक जर्नल (जैसे जर्नल ऑफ साइबर सिक्योरिटी, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, स्ट्रैटेजिक एनालिसिस) के लेख।
- विश्वसनीय समाचार पत्रों और डिजिटल मीडिया (The Hindu, Indian Express, Hindustan Times, Times of India) के विश्लेषणात्मक लेख।

डेटा विश्लेषण तकनीक

सामग्री विश्लेषण (Content Analysis): सभी नीति दस्तावेज़ों, कानूनों और अंतर्राष्ट्रीय वक्तव्यों का गुणात्मक पाठ-विश्लेषण किया गया है। विशेष ध्यान उन शब्दों पर दिया गया है जो साइबर सुरक्षा को प्राथमिकता के रूप में दर्शाते हैं (जैसे 'राष्ट्रीय सुरक्षा', 'सक्रिय उपाय')।

तुलनात्मक मैट्रिक्स: निम्नलिखित 8 मापदंडों पर एक तालिका तैयार की गई है, जिसमें दोनों कालों को उच्च, मध्यम या निम्न के रूप में अंकित किया गया है:

1. नीतिगत दृष्टिकोण (प्रतिक्रियाशील बनाम सक्रिय)
2. संस्थागत संरचना की जटिलता और प्रभावशीलता
3. कानूनी ढाँचे की पर्याप्तता (डेटा सुरक्षा पर विशेष ध्यान)
4. साइबर अपराध नियंत्रण तंत्र (CERT-In, I4C)
5. डिजिटल बुनियादी ढाँचे का विस्तार (ग्रामीण कनेक्टिविटी)
6. अंतर्राष्ट्रीय साइबर कूटनीति और सहयोग समझौतों की संख्या
7. अंतर्राष्ट्रीय प्रचार की तीव्रता (वैश्विक मंचों पर उपस्थिति)
8. साइबर सुरक्षा जागरूकता अभियान (नागरिक स्तर पर)

सांख्यिकीय प्रस्तुतीकरण: CERT-In के आँकड़ों (साइबर घटनाओं की संख्या, फ़िशिंग, रैंसमवेयर) का सरल स्तंभ-आरेख और तालिका के रूप में प्रस्तुतीकरण किया गया है। यह मात्रात्मक डेटा गुणात्मक विश्लेषण का समर्थन करता है।

नैतिकता संबंधी विचार· सभी प्रयुक्त स्रोतों का उचित उद्धरण दिया गया है।

- किसी भी वर्गीकृत (classified) सरकारी दस्तावेज़ का उपयोग नहीं किया गया है।
- राय व्यक्त करते समय तथ्यों और विश्लेषण के बीच स्पष्ट अंतर रखा गया है।

अध्ययन की सीमाएँ (Limitations)

1. डेटा की पूर्णता: साइबर सुरक्षा घटनाओं की वास्तविक संख्या रिपोर्ट की गई संख्या से कहीं अधिक हो सकती है, क्योंकि निजी क्षेत्र की कई घटनाएँ रिपोर्ट नहीं की जातीं।
2. वर्गीकृत जानकारी: कई राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़ी साइबर घटनाएँ (जैसे रक्षा क्षेत्र पर हमले) सार्वजनिक नहीं होतीं, इसलिए विश्लेषण अधूरा हो सकता है।
3. भाषाई सीमा: मुख्यतः अंग्रेजी और हिंदी भाषा के स्रोतों पर निर्भरता, हालाँकि ये दोनों भाषाएँ भारतीय नीति-निर्माण की मुख्य भाषाएँ हैं।
4. समय-सीमा: यह अध्ययन 2024 तक उपलब्ध सार्वजनिक आँकड़ों पर आधारित है; भविष्य में कुछ नीतियों का प्रभाव बदल सकता है।.

निष्कर्ष

साइबर सुरक्षा और डिजिटल गवर्नेंस के क्षेत्र में UPA और NDA सरकारों के दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन स्पष्ट करता है कि दोनों कालखंडों में नीतिगत प्राथमिकताएँ मौलिक रूप से भिन्न रहीं। UPA शासन (2004-2014) ने साइबर कानूनों की आधारशिला रखी, जैसे सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2000 में संशोधन, राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा नीति 2013, और CERT-In को सक्रिय किया। हालाँकि, ये प्रयास सीमित दायरे वाले, प्रतिक्रियात्मक और मुख्यतः घरेलू चिंताओं तक सीमित रहे। डिजिटल गवर्नेंस में राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना (NeGP) के तहत आंशिक सफलताएँ मिलीं, परंतु व्यापक दूरदर्शिता का अभाव था।

इसके विपरीत, NDA सरकार (2014 से) ने 'डिजिटल इंडिया' को वैश्विक ब्रांड के रूप में स्थापित किया। साइबर सुरक्षा को राष्ट्रीय सुरक्षा का अभिन्न अंग मानते हुए, राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा रणनीति, साइबर स्वच्छता केंद्र, और UPI जैसे डिजिटल बुनियादी ढाँचे का निर्माण किया गया। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, भारत ने G20, संयुक्त राष्ट्र, और ITU जैसे मंचों पर डिजिटल सार्वजनिक अवसंरचना (DPI) के मॉडल का प्रचार किया। 'एक सूरत, एक देश' जैसी पहलों ने डिजिटल गवर्नेंस को स्केलेबल, समावेशी और पारदर्शी बनाया। UPA के सीमित दृष्टिकोण के विपरीत, NDA ने साइबर सुरक्षा को डिजिटल अर्थव्यवस्था के सक्षमकर्ता के रूप में प्रस्तुत किया और भारत को डिजिटल लोकतंत्र के वैश्विक नेता के रूप में स्थापित किया। अतः, यह कहना उचित होगा कि UPA ने नींव रखी, किंतु NDA ने उसे अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और व्यापक सुरक्षा ढाँचे में बदल दिया।

संदर्भ सूची (References)

Bansal, R. (2021). Digital India and Its Discontents: Surveillance and Privacy in the New Age. Economic and Political Weekly, 56(12), 45–52.

Bishop, M. (2003). Computer Security: Art and Science. Addison-Wesley.

CERT-In. (2013, 2018, 2023). Annual Report on Cyber Security Incidents in India. Ministry of Electronics & Information Technology, Government of India.

Chatterjee, S. (2020). Cyber Diplomacy and India’s Soft Power Strategy in the Digital Age. Journal of International Relations, 18(2), 112–131.

Government of India. (2000). Information Technology Act, 2000 (Amended 2008).

Government of India. (2013). National Cyber Security Policy, 2013. Ministry of Communications and Information Technology.

Government of India. (2015). Digital India: A Programme to Transform India into a Digitally Empowered Society. Department of Electronics and Information Technology.

Government of India. (2023). The Digital Personal Data Protection Act, 2023. Gazette of India.

Mehta, P. (2021). From Reactive to Proactive: India's Cyber Security Journey (2000-2020). Observer Research Foundation (ORF) Occasional Paper No. 312.

Ministry of External Affairs, India. (2023). G20 New Delhi Leaders' Declaration: Digital Public Infrastructure and Cyber Security. MEA Publications.

NITI Aayog. (2018, 2022). India's Digital Economy: Report of the Task Force. Government of India.

Nye, J. S. (2011). The Future of Power. Public Affairs.

Rao, N. (2016). From the IT Act to the Digital India Programme: A Critical Review of India’s Cyber Policy Journey. Indian Journal of Law and Technology, 12(1), 88–106.

Sharma, A. (2018). Digital Governance in India: A Comparative Analysis of UPA and NDA Regimes. Sage Publications.

Supreme Court of India. (2015). Shreya Singhal v. Union of India. Writ Petition (Criminal) No. 167 of 2012.

World Bank. (2022). Digital India: Enabling Digital Transformation – A Country Report. World Bank Document No. 178924-IN.

Received: 18.04.2026 | Accepted: 20.04.2026 | Published: 30.04.2026

Harmony with Nature as an Aspect of Sustainable Development in Hindu Tradition and Culture

DR. SIBKANTA DAS[1]
sibkantadas@gmail.com

Abstract

Hinduism, commonly referred to as 'Sanatan Sanskriti,' is the oldest religion in the world and the third largest. Respect for nature lies at the heart of the Hindu value system. The earth is respected as a mother goddess, and maintaining the purity of the five elements like space, air, fire, water, and earth to take care of mother goddess is considered a moral duty. Hinduism emphasizes environmental protection which is considered as a spiritual responsibility, aiming to get maximum human well-being without producing any harmful impact to nature. Hindu scriptures emphasize that the earth supports all creatures not only human beings. This worldview establishes moral equality among species and asserts that all life forms have an inherent right to exist. Consequently, harm to nature or other living beings is seen as unjustifiable unless absolutely necessary. So, the concept of Sustainable development also speaks about the same. The paper shall deal with various practices in Hinduism to promote the concept of Sustainable development, successful environmental movements that progress on the basis of teachings of Hinduism and gain popularity. In the present time of race for industrialization, the paper shall also deal with suggestions to promote the practices of Hinduism to achieve sustainable development.

***Key words**:*

Earth, Environment, Hinduism, Sustainable development and Value System.

Introduction

All religions believe that, the exploitation of nature for short-term human benefit is considered morally wrong and ethically unjustifiable. In ancient societies, particularly among Hindus and Buddhists, moral guidelines governed human interaction with nature. These ethical principles were followed not only by common people but also by rulers, who set examples through their conduct. However, in the modern era, increasing materialism and industrialization have affected both Eastern and Western cultures alike, leading to widespread disregard for nature.

Religion can play an important role for transforming human approach toward the environment, unlike scientific or technological reasoning. Religions cultivate moral awareness to human beings by reminding their limits of power over the animate and inanimate world. It emphasizes that their unnecessary domination and exploitation of natural resources can lead to

[1] **Assistant Professor, Dept. of Philosophy, Govt. Degree College, Santirbazar, Tripura (S)**

harmful consequences. Religion also teaches that human life cannot be measured by material possessions, the end of life go beyond material accumulation and consumerism.

Hinduism, commonly known as 'Sanatan Sanskriti,' is the oldest religion in the world and the world's third largest religion. The great features of Hinduism are wide variety of Hindu traditions, freedom of belief and practice. Respect for nature is central to Hindu value system. The earth is respected as a mother goddess, and maintaining the purity of the five elements like space, air, fire, water, and earth to take care of mother goddess is considered a moral duty. Hinduism emphasizes environmental protection which is considered as a spiritual responsibility, aiming to get maximum human well-being without producing any harmful impact to nature. These principles are closely related with the modern concept of sustainable development. The paper shall deal with various practices in Hinduism to promote the concept of sustainable development, successful environmental movements that progress on the basis of teachings of Hinduism and gain popularity. In the present time of race for industrialization, the paper shall also deal with suggestions to promote the practices of Hinduism to achieve sustainable development.

The Sanctity of Life in Hinduism

The sanctity of life is a fundamental principle in Hindu philosophy. Life, whether human or non-human, is considered sacred because ultimate authority over all existence belongs to the divine. Humans are therefore not entitled to dominate or assign lesser value to other species. All living beings are part of a unified cosmic reality, and none exist solely for human exploitation.

"The loving sage beholds that Being, hidden in mystery,
wherein the universe comes to have one home;
Therein unites and therefrom emanates the whole;
The Omnipresent One pervades souls and matter like warp
and weft in created beings."[2]

Hindu scriptures emphasize that the earth supports all creatures not only human beings. This worldview establishes moral equality among species and asserts that all life forms have an inherent right to exist. Consequently, harm to nature or other living beings is seen as unjustifiable unless absolutely necessary. The Atharvaveda states that-

"Born of Thee, on Thee move mortal creatures;
Thou barest them - the biped and the quadruped;
Thine, O earth, are the five races of men, for whom
Surya (Sun), as he rises spreads with his rays
the light that is immortal."[3]

Flora in Hindu Religious Tradition

Tree worship has been an integral part of Hindu culture since the Vedic period. In early Hindu thought, trees were regarded as living entities capable of experiencing joy and sorrow. Plants were believed to possess divine and healing powers, and specific deities were associated with

[2] *The Yajurveda*, Chapter2, Verse 8.

[3] *The Atharvaveda,* Chapter 12, Hymn 1,Verse 15

individual trees. Trees worshipped with prayers and offerings of water, flowers, sweets, and enclosed by threads and believed that every tree has a Vriksa-devata. Planting and protecting trees is considered a religious duty in Hinduism. While the usefulness of trees was recognized, their preservation was primarily motivated by spiritual beliefs. By attributing sacred value to trees, Hindu society ensured their protection and conservation over generations.

***Pancha Mahabhuta*: The Five Great Elements**

Hindu philosophy explains the physical universe through the concept of the Pancha Mahabhutas, or five basic elements- water, earth, fire, air, and space. These are the basis of all material existence and are interconnected with human sensory experience. The Pancha Mahabhutas are:

1. ***Prithvi* (Earth):** The solid state of matter and is connected to the sense of smell.
2. ***Ap* (water):** The liquid state of matter and is connected to the sense of taste.
3. ***Tejas* orAgni(Fire):** Associated with the sense of sight, it represents the energy and transfoemation.
4. ***Vayu* (Air):** The gaseous state of matter and is connected the sense of touch.
5. ***Akasha* (Ether or Space):** The space and connected to the sense of hearing.

The notion of Pancha Mahabhutas is intensely ingrained in Hindu thought and is frequently used to describe how all living and non-living things in the universe are interrelated. For the welfare of the globe and its inhabitants the balance and harmony of these five elements are indispensable. The Pancha Mahabhutas can offer valuable insights on sustainable development. Sustainable development emphasizes the necessity of a peaceful and balanced relationship between humans and nature, just as the five elements are interconnected and in balance. The Pancha Mahabhutas highlights the purity of each element. A similar respect for nature is encouraged by Sustainable development that highlight promoting environmental protection, conservation activities, and responsible resource use. This is consistent with the Hindu culture which considered the natural elements as divine. The well-being of both individuals and the earth depends on the Pancha Mahabhutas. Similarly, Sustainable development also emphasizes holistic well-being for the present and future generations. It promotes moral practices that protect the society and the environment in the long run. Hinduism highlights the spiritual bond between the nature and humans. When practice with mindfulness and a sense of responsibility, Sustainable development respects our spiritual connection with nature by recognizing the inherent worth of all living beings and the environment.

For sustaining life on earth depends on the balance and harmony among these elements. From the perspective of sustainability, this idea highlights how humans and nature are interdependence. Ecological stability threatened by irresponsible human activity, just as imbalance among the elements upsets the natural order. Each and every element is sacred in Hinduism. It promotes respect conservation, and wise use of natural resources. These principles are closely related with the modern concept of sustainable development aiming for long-term social and environmental well-being.

Karmavada and Environmental Responsibility

Human action towards nature creates consequences. According to Karmavada, all of our action whether it is good or bad shape one's destiny and influences rebirth in the next life. Moral and

responsible action contributes to positive consequences, on the other hand immoral and destructive actions lead to negative consequences. Because we have freedom of will. Even though we may have injured the environment in the past life, we have the capacity to correct it to protect the nature in the future. By adopting environmentally conscious actions we can break destructive behavior towards the nature, thereby creating positive or good karma.

Rebirth and Interconnectedness

The belief in rebirth reinforces the idea that all forms of life are interconnected. According to Hinduism, each person undergoes millions of birth cycles and reincarnation in various forms based on their karma of past life. Therefore, a human may reincarnate as animals, birds, or another member of the greater community of life. Reincarnation fosters a sense of unity between humans and all other living things because it is believed that all people experience multiple lives on their journey to ultimate emancipation. Hinduism says that all species and all regions of the world are part of a vast web of relationships that have been interwoven over millennia, with each component of this. Hinduism believes that all species of the world are part of a vast network of associations that have been connected throughout millennia through the belief in reincarnation, and that each component of this network deserves respect and care.

Enjoy through Renunciation

Hindu philosophy promotes moderation and contentment as essential values. True happiness is believed to arise from satisfaction rather than excessive desire. Individuals are encouraged to consume resources according to their needs and avoid greed. This principle supports sustainable living by discouraging overconsumption and encouraging responsible use of natural resources. According to Manusmirti, "Happiness is rooted in contentment; its opposite is rooted in misery."[4] According to the Isa Upanishad, we should only eat what we need. The Upanishad's opening verse is:

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्"[5]

Literal translation: Supreme Devine pervades everything in the universe whether living or non-living. By renunciation protect the Self and do not covet anybody's wealth. Knowing this truth, one can safeguard oneself by renunciation and practice detachment, and refrain from coveting the wealth of others.

Universal Brotherhood and Sustainability

The whole world is a single family shows the Hindu belief in unity among all people. This belief teaches us to care for the entire world not only for our surrounding. This perspective supports sustainable development. It encourages working together for protecting the environmental challenges. According to Maha Upanishad,

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्"[6]

[4]Cited in KL Seshagiri Rao "*The five great Elements (Pancamahabhuta): An Ecological Perspective" in Hinduism and Ecology,* edited by Chapple and Tucker, 2000, p. 36

[5] *Isa Upanishad,* Verse 1.

The wise people believe that the entire world is a family, but the narrow-minded people think that this is mine and that is his. This premise reflects concept of a global community and connectedness. It fosters a sense of responsibility for the welfare of the global community not only one's local community. This perspective is consistent with global focus of sustainable development.

Ahimsa, Vegetarianism, and Ecology

Ahimsa is the fundamental principle of Hinduism. It encourages kindness and non-violence toward all living beings. This principle pertains to environmental ethics promoting sustainable activities that protects the environment. In Hindu culture practices vegetarianism which support the principle of ahimsa (non-Violence). It may be considered as an eco-friendly decision. By adopting vegetarianism, people can protect animal and environment. Hence vegetarianism promotes a healthy world with the idea of caring for the betterment of coming generation.

Environmental Movements Inspired by Hinduism

There are some environmental movements inspired and rooted by Hindu belief system. The most successful environmental movement in India is Chipko Movement. The movement has its roots in religious faith and the economic and ecological perspective. It aims to protect the environment from human greed. It was a feminist movement. They were most worry about the nature and its protection to ensure its resources are available for sustaining their family. They also believed that the goddess or Van Devi protect their family welfare. Almighty God Hari exists in all green trees. Trees are sacred and necessary for ecological balance. The Chipko movement emerged as a reaction to deforestation and on the based on ecological awareness and religious belief that every tree has a Vriksadevata.

Like Chipko Movement, another environmental movements such as the Appiko Movement in Karnataka flowing the Hindu belief system. In this movement villagers hugged trees for stooping them cut down. Their aims were to protect forest from deforestation and to use forest resources in a sustainable way. It encourages us to plant new trees, protect forests that are essential for clean air protection of soil and wildlife. These environmental movements show how the ethical value system of Hindu can be applied in practical life. They encourage the conservation of nature and natural resources in a peaceful and sustainable way.

Conclusion

Meaning full change in how people treat nature should be start from within instead of external forces. People are more able to voluntarily protect it when they truly understand and value nature in their heart. In Hinduism, it is believed that real change comes through self-realisation, moral insight and inner-growth. Hindu value system encourages ethical living with consciousness and responsibility. Men are guided to make the right decision being aware of the effect of their action instead of forcing them to act in a particular way. This approach encourages moral principles, discipline and self-control while respecting freedom of thought.

[6] *Maha Upanishad* , Chapter 4, Verse 71.

Respect for living beings is a fundamental principle of Hinduism. Nature is sacrosanct man are considered a part of it. This belief promotes moderation in consumption, to living in harmony with the nature, and avoiding unnecessary use of natural resources. By encouraging moral values like ahimsa, respect for the nature Hinduism provides a strong moral foundation for achieving sustainable development "Hinduism is more a way of life than a form of thought. While it gives absolute liberty in the world of thought it enjoins a strict code of practice. The theist and the atheist, the sceptic and the agnostic may all be Hindus if they accept the Hindu system of culture and life. Hinduism insists not on religious conformity but on a spiritual and ethical outlook in life".[7]

References

1. Chand. Devi., 1982, *The Yajurveda* (with "Sanskrit text with English translation" as the full title), Munsiram Manoharlal Publishers, New Delhi, India
2. Chand. Devi., 1982,*The Atharvaveda* (with "Sanskrit text with English translation" as the full title), Munsiram Manoharlal Publishers, New Delhi, India
3. Chaudhary, Richa and Mishra, Arunima., 2023, *Indian Tradition, Culture and Society*, S.K. Kataria & Sons, New Delhi, India
4. Dhaliwal. Kuldeep Kumar., 2016, *Gandhian Philosophy of Ethics*: *A Study of Relationship between his Presupposition and Precepts,* Writer Choice, New Delhi, India
5. Gandhi. M.K., 2013, *Hinduism According to Gandhi*,Orient Publishing, New Delhi, India
6. Mishra.A.D., 2010, *Matatma Gandhi on Ethics*, Concept Publishihing Company Pvt. Ltd. New Delhi, India
7. Rao. KL Seshagiri., The five great Elements (Panchamahabhuta): An Ecological Perspective in Hinduism and Ecology, Edited by Chapple and Tucker 2000, Harvard University Press.
8. S. RadhaKrishnan., 1927, *The Hindu View of Life,* Oxford University Press.
9. Sahay. Yamini& Tater. Sohan Raj., 2012, Applied *Ethics & Social Responsibility*, Deepak Publishers & Distributors, Jaipur, India
10. Saiqal, Krishan., 2008, *Sustainable Development: The Spiritual Dimension*, Kalpaz Publications, New Delhi, India
11. Singer Peter., 2006, *Applied Ethics*, Oxford University Press, England
12. Sinha, Amit Kishore.& Tripathi. Veeresh., 2021,*Ancient Indian Wisdom: For Sustainable Well-Being,* Bharati Prakashan, Varanasi.
13. Trivedi. B.C., 2019,*Indian Culture: Tradition and Continuity*, World Heritage Inc,Delhi, India

[7] Radhakrishnan, S., *The Hindu View of Life*. p 53

Received: 19.04.2026 | Accepted: 20.04.2026 | Published: 30.04.2026

Spatial Plan to Connect Patna Division with the Purvanchal and Nepal Tourism Circuits

JAY SHANKAR[1]
jay.affable@gmail.com

Abstract

Patna Division, the administrative and cultural heart of Bihar, occupies a strategic geographical position between the rapidly developing Purvanchal region of Eastern Uttar Pradesh and the international tourism circuits of Nepal, including Lumbini (the birthplace of Buddha). Despite immense cultural and historical linkages—embodied by the Buddhist Circuit and Ramayana Circuit—fragmented transportation infrastructure and poor last-mile connectivity have prevented the realization of an integrated tourism destination. This research paper proposes a comprehensive spatial plan to establish seamless, multimodal connectivity leveraging recent infrastructure developments: the Purvanchal Expressway (terminating 18 km from the Bihar border), the NH-139W greenfield corridor (Patna to Bettiah, connecting to Nepal), the Patna Metro, the Patna Water Metro on National Waterway-1 (Ganga River), and proposed helicopter tourism services. Using GIS-based network analysis, stakeholder consultations, and secondary data from government project documents, the study identifies three primary tourist corridors: (1) the Western Corridor (Patna-Ayodhya-Varanasi) via the Purvanchal Expressway, (2) the Northern Buddhist Corridor (Patna-Lumbini) via NH-139W, and (3) the Eastern Heritage Water Corridor (Patna-Bhagalpur) via NW-1. Key findings indicate that completing the missing 18 km link, establishing an Integrated Check Post at Bettiah, and implementing a unified mobility card could reduce travel times by 40-50% and increase tourist footfall by an estimated 40% within three years. The study concludes that an integrated spatial strategy—combining road, rail, metro, inland waterway, and air connectivity—can transform Patna Division into a premier tourism gateway, generating substantial economic benefits and positioning Eastern India as a cohesive tourist destination.

Keywords:

Spatial Plan, Patna Division, Purvanchal Expressway, Nepal Tourism Circuit, Multimodal Connectivity, Buddhist Circuit.

Introduction

The concept of tourism circuits has emerged as a transformative strategy for regional development in the 21st century. Unlike isolated destination management, circuit-based tourism enables travelers to experience multiple culturally or geographically linked sites within a single, cohesive itinerary.

[1] **UGC NET Qualified (GEOGRAPHY); Alumni, Nalanda Open University Badgaon, Bihar**

This approach not only enriches the tourist experience but also distributes economic benefits across a wider geographical area, stimulating infrastructure development and employment generation in secondary and tertiary destinations. India’s National Tourism Policy (2022) and the Swadesh Darshan scheme, now in its 2.0 version, explicitly prioritize the development of thematic circuits, including the Buddhist Circuit, Ramayana Circuit, and Heritage Circuit. However, the effectiveness of these circuits depends critically on seamless spatial connectivity between nodes—a condition that remains unfulfilled in Eastern India despite significant cultural assets.

Patna Division, comprising the districts of Patna, Nalanda, Bhojpur, Buxar, Rohtas, and Saran (partially), occupies a position of extraordinary strategic importance. It lies at the geographical confluence of three distinct yet interrelated cultural and pilgrimage regions. To the west lies the Purvanchal region of Eastern Uttar Pradesh, home to Ayodhya (the birthplace of Lord Rama, undergoing massive redevelopment following the Ram Mandir construction), Varanasi (one of the world’s oldest living cities and a UNESCO World Heritage Site), and Sarnath (where Buddha delivered his first sermon). To the north, across an open but administratively complex border, lies Nepal’s Terai region, containing Lumbini (Buddha’s birthplace, another UNESCO site), Kapilavastu (the ancient capital of the Shakya kingdom), and Janakpur (the birthplace of Goddess Sita). To the south and east, Patna Division itself contains Nalanda (the ancient university), Rajgir (with its hot springs and World Peace Stupa), Bodh Gaya (the site of Buddha’s enlightenment, just outside the division but closely linked), Vaishali (one of the first republics and a Buddhist pilgrimage site), and the Kesariya Stupa (the largest Buddhist stupa in the world).

Historically, these regions were not separate. Ancient trade routes and Buddhist pilgrimage trails—used by monks like Faxian and Xuanzang—connected Bodh Gaya to Nalanda, Vaishali, Kesariya, Lumbini, Sarnath, and onward to Kushinagar. The region was an integrated cultural and spiritual landscape. However, modern political boundaries (state borders between Bihar and Uttar Pradesh, and the international border with Nepal), combined with fragmented infrastructure planning focused on administrative convenience rather than tourist flows, have severed these natural linkages.

The Problem of Fragmented Connectivity:- Today, a tourist wishing to visit Ayodhya, Varanasi, Patna’s heritage sites, Nalanda, Bodh Gaya, and Lumbini faces a disjointed and time-consuming journey. The Purvanchal Expressway, a 341-km, six-lane, access-controlled expressway, has revolutionized travel within Uttar Pradesh, connecting Lucknow to Ghazipur near the Bihar border in approximately five hours. However, it terminates 18 km east of the Bihar border, leaving the remaining connectivity to Patna via the congested, two-lane sections of National Highway 31. Similarly, the newly approved NH-139W greenfield corridor from Sahebganj to Bettiah—specifically designed to “strengthen the Buddhist circuit”—promises high-speed connectivity from Patna to the Indo-Nepal border, but lacks integrated border facilitation infrastructure, last-mile connectivity to Lumbini (approximately 40 km from the border), and coordination with Nepal’s tourism authorities. Within Patna city, the newly operational Patna Metro and the approved Water Metro project have not yet been integrated with long-distance tourist transport hubs or with each other.

The consequences of this fragmentation are measurable. Current travel time from Patna to Ayodhya is approximately eight hours via mixed roads, discouraging day trips or short-stay circuits. Travel

from Patna to Lumbini involves a five-to-six-hour road journey to the border, followed by an uncertain border crossing (varying from 30 minutes to two hours) and onward transport arrangements. International tourists, who form the high-spending segment for the Buddhist Circuit, often bypass Patna entirely, flying directly to Gaya for Bodh Gaya and then to Varanasi or Kathmandu, missing the rich heritage of Patna Division.

Recent Infrastructure Developments as a Game Changer

The period 2021-2025 has witnessed an unprecedented convergence of infrastructure investments in this region, creating a historic opportunity for spatial reorganization. These include:

1. Purvanchal Expressway (2021): A 341-km, 6-lane expressway reducing Lucknow-Bihar border travel time to 5 hours.

2. Patna Metro (First phase operational 2025): Connecting Patna Junction, Patliputra ISBT, Bhoodanath, Zero Mile, and other key city nodes.

3. Patna Water Metro (Approved 2025): A ₹908 crore project utilizing National Waterway-1 with 16 jetties and hybrid electric catamaran vessels.

4. NH-139W Greenfield Corridor (Approved 2025): A 78.94 km, four-lane corridor from Sahebganj to Bettiah, costing ₹3,822 crore, designed for Buddhist circuit connectivity.

5. Helicopter Tourism Network (Proposed 2025): Connecting Patna to Gaya, Bodh Gaya, Rajgir, and Valmiki Tiger Reserve.

The convergence of these projects represents a once-in-a-generation opportunity to reimagine Patna Division's role—not as a collection of separate tourist sites, but as the central hub of an integrated transnational tourism network.

Research Rationale and Structure:- This paper addresses the critical gap between existing infrastructure and integrated tourism planning. While individual projects have been studied in technical isolation, no comprehensive spatial plan connects them into a tourist-centric network. This research proposes such a plan, identifying optimal corridors, missing links, institutional mechanisms, and implementation phasing. The paper proceeds with objectives, hypotheses, literature review, methodology, analysis, and concluding recommendations.

Objectives of the Study

Based on the identified problems and opportunities, this study establishes the following four objectives:

1. To map and analyze the existing transportation network connecting Patna Division with the Purvanchal region (Uttar Pradesh) and the Nepal tourism circuit, identifying critical infrastructure gaps, bottlenecks, and missing links—particularly the connectivity between the Purvanchal Expressway terminus and Patna, and between the NH-139W corridor and Lumbini.

2. To propose a multimodal spatial framework integrating road (Purvanchal Expressway, NH-139W, NH-31), rail (the Bakhtiyarpur-Rajgir-Tilaiya doubling), metro (Patna Metro), inland waterway (National Waterway-1/Patna Water Metro), and air (helicopter tourism) assets for seamless tourist movement, including last-mile connectivity solutions for key tourist nodes.

3. To design three specific tourist corridors (Western, Northern, and Eastern) based on thematic coherence (Buddhist Circuit, Ramayana Circuit, and Heritage Circuit), travel time optimization, and infrastructure readiness, with detailed route alignments, estimated travel times, and proposed amenities.

4. To formulate implementable policy recommendations including institutional coordination mechanisms between Bihar, Uttar Pradesh, and Nepal; phased investment priorities (2026-2032); financing strategies (public-private partnership models); and governance frameworks for cross-border tourism facilitation.

Hypotheses

The following two hypotheses guide the research and will be tested through spatial analysis and stakeholder validation:

H1 (Travel Time Reduction Hypothesis): The completion of missing links—specifically the 45-km Ghazipur (Purvanchal Expressway terminus) to Buxar connector and the border facilitation infrastructure at Bettiah—will reduce travel time between Patna and Ayodhya by at least 40% (from 8 hours to under 4.5 hours) and between Patna and Lumbini by at least 45% (from 5.5 hours to under 3 hours), making integrated circuit tourism commercially viable for day trips and short-stay packages.

H2 (Tourist Footfall Increase Hypothesis): The implementation of the proposed spatial plan, including multimodal integration (road + metro + waterway) and cross-border coordination with Nepal, will result in a statistically significant increase (minimum 40% within three years of full operationalization) in tourist footfall to Patna Division's heritage sites (Nalanda, Rajgir, Vaishali, Kesariya) and will extend average tourist stay duration from the current 1.2 days to at least 2.5 days.

Literature Review

1 **Theoretical Foundations: Tourism Circuits and Spatial Connectivity :-** The theoretical framework for this study draws from three interconnected bodies of literature: tourism systems theory, network geography, and infrastructure-led regional development.

Tourism Systems Theory: Gunn (1988), in his seminal work Tourism Planning, introduced the concept of the "tourism functional space," arguing that successful destinations require five interdependent elements: tourist attractions, transportation, services, information, and promotion. He emphasized that the "transit route region"—the corridors connecting attractions—is often the weakest link, where tourist satisfaction is lost due to poor infrastructure. Leiper (1990) extended this with his Tourism System Model, identifying three geographical elements: the traveller-generating region, the transit route region, and the tourist destination region. For Patna Division to serve as a hub connecting Purvanchal (generating region for domestic tourists) and Nepal (destination region for international Buddhist pilgrims), the transit route must be optimized for both efficiency and experiential quality.

Network Geography and Multi-Destination Travel: Lew and McKercher (2006) conducted pioneering research on tourist movement patterns, demonstrating that modern tourists increasingly prefer "multi-destination travel" over single-destination visits. Their analysis of tourist itineraries

revealed that destinations within 2-3 hours of travel time form natural clusters. Patna, Ayodhya, Varanasi, and Lumbini fall within this threshold—but only if the spatial plan achieves travel time reductions. Pagliara et al. (2015) found that every 10% reduction in inter-city travel time generates approximately 6-8% increase in tourist flows between those cities, a relationship this study adopts for hypothesis testing.

2 Infrastructure-Led Tourism Development: National and International Evidence:- The relationship between transportation infrastructure investment and tourism growth is well-established in the literature.

International Evidence: Chen and Haynes (2017) analyzed the impact of China's high-speed rail (HSR) network on regional tourism, using a difference-in-differences methodology. They found that HSR connections between cities reduced travel time by an average of 52% and increased tourist arrivals by 37% within two years of operation, with the effect more pronounced for cultural/heritage destinations than for natural attractions. Similarly, Albalate and Bel (2010) studied the impact of highways on tourism in Spain, concluding that expressway access reduced overnight stay costs and encouraged shorter, more frequent trips—a pattern relevant to the Ayodhya-Patna day-trip potential.

Indian Evidence: Dhingra and Singh (2015) examined the Golden Quadrilateral (GQ) highway project's impact on domestic tourism in India. Using pre-post construction data from 2000-2012, they found that districts located on the GQ experienced a 35% higher growth rate in domestic tourist visits compared to control districts. Kumar and Sharma (2019) focused specifically on the Yamuna Expressway connecting Delhi to Agra. Their study found that travel time reduction from 4.5 hours to 2 hours led to a 60% increase in day-trip tourism to the Taj Mahal, with a corresponding 45% increase in restaurant and souvenir expenditures in Agra. The Purvanchal Expressway—with superior design standards and lower congestion—presents potential for even larger impacts.

3 **The Buddhist Circuit: Transboundary Integration Challenges:-** The Buddhist Circuit is arguably South Asia's most significant thematic tourism product, yet it remains underdeveloped due to fragmentation. The Asian Development Bank (2019) conducted a comprehensive study titled Buddhist Circuit in South Asia, mapping sites across India, Nepal, and Bangladesh. Key findings included: (a) international Buddhist tourist arrivals to the circuit were only 4.2 million annually (compared to 35 million to the Christian pilgrimage circuit in Europe), (b) connectivity deficits—particularly between Lumbini (Nepal) and Bodh Gaya (India), and between Sarnath (UP) and Nalanda (Bihar)—were the primary constraint, and (c) seamless integration could increase arrivals by 150,000 within five years, generating an estimated $450 million in additional revenue.

More recent work by Bandyopadhyay (2020) on "India-Nepal Cross-Border Tourism Cooperation" identified specific barriers: lack of coordinated visa policies (Nepal offers visa-on-arrival to many nationalities, but India requires e-visas, creating confusion), non-recognition of transport permits (Indian tourist vehicles cannot enter Nepal without complex carnets), and absence of joint marketing. The World Bank (2022) subsequently published India-Nepal Tourism Corridors, prioritizing five border crossings, with Sunauli

Bhairahawa (for Lumbini) and Raxaul-Birgunj (for Janakpur) as top priorities. This study builds on that work by proposing specific infrastructure at the Bettiah border crossing, which connects directly to NH-139W.

4 Inland Waterways for Heritage Tourism :- The potential of inland waterways for tourism has been underexploited in India compared to Europe (Rhine, Danube), Egypt (Nile), or Southeast Asia (Mekong). However, the development of National Waterway-1 (NW-1) on the Ganga from Varanasi to Haldia has created new possibilities.

Tripathi and Sinha (2021) studied the "Tourism Potential of NW-1 in Bihar," identifying heritage sites along the Ganga including Chausa (Buxar), Patna's historic ghats (including the Takht Sri Patna Sahib and Golghar), Munger Fort, and Bhagalpur's Vikramshila ruins. They estimated that a river cruise circuit could attract 200,000 high-spending tourists annually, generating ₹500 crore in revenue. The Patna Water Metro project—with its 16 jetties and hybrid electric vessels—represents the first phase of this vision, but its integration with road and metro networks remains unplanned. This study addresses that gap.

Identified Research Gap

Despite this rich literature, no existing study has: (a) integrated all three components (Patna Division-Purvanchal-Nepal) into a single spatial plan, (b) utilized recent infrastructure data (post-2025) including the Purvanchal Expressway, NH-139W approval, and Patna Metro's operationalization, or (c) proposed specific institutional mechanisms for Bihar-UP-Nepal coordination. This study fills that gap.

Research Methodology

Research Design :- This study employs a mixed-methods, multi-stage research design combining quantitative spatial analysis, qualitative stakeholder consultation, and secondary data analysis. The design is iterative, allowing findings from spatial analysis to inform stakeholder interviews and vice versa.

The study area spans three administrative jurisdictions:

· Patna Division (Bihar): Patna, Nalanda, Bhojpur, Buxar, Rohtas districts. Key nodes: Patna City, Nalanda ruins, Rajgir, Vaishali, Kesariya Stupa.

· Purvanchal Region (Uttar Pradesh): Districts along Purvanchal Expressway. Key nodes: Ayodhya, Varanasi, Sarnath.

· Nepal Terai: Rupandehi district (Lumbini), Kapilavastu, Dhanusa district (Janakpur).

Data Source

Primary Data:- · GPS tracking of three tourist routes (Patna-Ayodhya, Patna-Lumbini, Patna-Varanasi) conducted December 2025-January 2026 (n=5 trips per route).

· Semi-structured interviews with stakeholders (n=25): BSTDC officials (n=5), UP Tourism officials (n=3), Nepal Tourism Board representatives (n=2), hoteliers in Patna (n=8), travel agents (n=4), border officials at Raxaul and Sunauli (n=3).

· Focus Group Discussion in Bettiah (n=8 participants) on cross-border tourism potential.

Secondary Data: · Government reports: Bihar Tourism Policy (2022), UP Tourism Policy (2022), Nepal Tourism Statistics (2023/24).

· Project DPRs: Purvanchal Expressway (UPEIDA), NH-139W (MoRTH), Patna Metro, Patna Water Metro.

· Published literature: 35 peer-reviewed articles (2010-2025).

Spatial Analysis Methods (GIS)

Using ArcGIS 10.8, the study performed:

1. Network creation: Digital representation of existing roads (based on Google Maps and government data), railway lines, metro alignment, and NW-1 waterway.

2. Travel time estimation: Applying speed assumptions (expressway: 100 km/hr, NH: 70 km/hr, SH: 50 km/hr, water: 15 knots). Border crossing time: 30 min (Indian tourists), 60 min (international).

3. Optimal route identification: Shortest path algorithm (time-weighted).

4. Service area analysis: 1-hour, 2-hour, 3-hour isochrones from Patna as origin.

5. Overlay analysis: Tourist attractions (point data from ASI and state tourism departments), amenities (hotels, fuel stations, restrooms from Google Places API).

Stakeholder Analysis

Thematic coding of interview transcripts identified recurring themes: barriers (perceived and actual), opportunities, infrastructure priorities, and institutional coordination needs.

SWOT and MCDA :- A SWOT (Strengths, Weaknesses, Opportunities, Threats) matrix was developed for each corridor. Multi-Criteria Decision Analysis (MCDA) weighted five factors for corridor prioritization: tourist attraction density (0.30), infrastructure readiness (0.25), implementation cost (0.20), economic benefit potential (0.15), environmental sustainability (0.10).

Results and Proposed Spatial Plan

Gap Analysis Findings:- GIS analysis revealed three critical infrastructure gaps:

1. The Missing Link (Western Corridor): Purvanchal Expressway terminates 18 km east of the UP-Bihar border (near Ghazipur), but the remaining 27 km from border to Buxar and onward 118 km from Buxar to Patna via NH-31 is congested, with average speeds of 35 km/hr during peak hours.

2. Border Facilitation Gap (Northern Corridor): NH-139W terminates at Bettiah (78.94 km from Sahebganj), but the Indo-Nepal border crossing at Sunauli (via a 40-km connecting road from Bettiah to Sunauli) lacks an Integrated Check Post with tourist facilitation, visa-on-arrival, and onward transport to Lumbini.

3. Modal Integration Gap (Patna Hub): Patna Metro stations, Water Metro jetties, and long-distance bus/rail terminals are not physically or ticketing-integrated.

2 **Proposed Spatial Plan Components**

Component 1: Western Corridor (Patna-Ayodhya-Varanasi) – 340 km

· Action: Construct 45-km, 4-lane connector from Purvanchal Expressway terminus (Ghazipur) to Buxar, with spur to NH-31; upgrade NH-31 Buxar-Ara-Patna to 4 lanes.

· Travel time reduction: 8 hours ⟶ 4.5 hours (44% reduction).

· Amenities: Tourist wayside amenities at Buxar (Chausa battle site interpretation center) and Ara (Veer Kunwar Singh memorial).

· Estimated cost: ₹1,200 crore.

Component 2: Northern Buddhist Corridor (Patna-Lumbini) – 220 km

· Action: Complete NH-139W (already approved); establish Integrated Check Post (ICP) at Bettiah with tourist facilitation center, visa-on-arrival counters, currency exchange, and shuttle bus service to Lumbini (40 km, 45 minutes).

· Travel time reduction: Patna to Lumbini: 5.5 hours ⟶ 3 hours (45% reduction).

· Amenities: Rest areas at Vaishali (Ashokan Pillar interpretation) and Kesariya (viewing platform for stupa).

· Estimated cost: ₹3,822 crore (already approved for NH-139W) + ₹150 crore for ICP.

Component 3: Eastern Heritage Water Corridor (Patna-Bhagalpur) – 350 km

· Action: Expand Water Metro from initial 16 jetties to include stops at Munger Fort and Vikramshila (Bhagalpur); coordinate with IWAI for Varanasi-Patna cruise services.

· Travel time: 2-day cruise (overnight on vessel with heritage interpretation).

· Amenities: Floating interpretation centers, local craft markets at jetties.

· Estimated cost: ₹908 crore (Water Metro approved) + ₹200 crore for expansion.

Component 4: Patna Multimodal Hub Integration

· Action: Physical integration of Patna Junction (rail), Patliputra ISBT (bus), Patna Metro stations (Blue Line), and Digha/Kangan Ghat jetties; unified mobility card (metro + bus + water); tourist info kiosks.

· Estimated cost: ₹300 crore.

Component 5: Heli-Tourism Network (High-Value Segment)

· Action: Operationalize proposed Patna-Gaya-Rajgir helicopter service; extend to Ayodhya and Lumbini under bilateral agreements.

· Target: High-spending international tourists (4-6 pax per flight).

Implementation Phasing

· Phase 1 (2026-2027): Sign MOUs (Bihar-UP-Nepal); tourist signage; Water Metro initial route; unified mobility card pilot.

· Phase 2 (2027-2029): Construct Ghazipur-Buxar connector; complete NH-139W and Bettiah ICP; launch heli-tourism.

· Phase 3 (2030-2032): International cruise services; full mobility card rollout; target 5 million annual tourists.

CONCLUSION

Summary of Findings

This research demonstrates that Patna Division possesses the geographical assets, cultural heritage, and—critically—the emerging infrastructure to serve as the central hub connecting the Purvanchal and Nepal tourism circuits. The spatial plan identifies three viable corridors (Western, Northern, Eastern) that, if implemented with the proposed missing links and institutional coordination, could reduce travel times by 40-50%, increase tourist footfall by an estimated 40% within three years, and extend average stay duration from 1.2 to 2.5 days.

The most urgent priorities are the 45-km Ghazipur-Buxar connector (to unlock the Purvanchal Expressway's full potential) and the Bettiah Integrated Check Post (to transform NH-139W from a domestic highway into an international tourism corridor). Equally important is the integration of Patna's transport modes—metro, water metro, rail, and bus—into a unified mobility system with a single payment mechanism.

Policy Recommendations

1. Institutional Coordination: Establish a Trilateral Tourism Task Force (Bihar, Uttar Pradesh, Nepal) with quarterly meetings and a joint secretariat in Patna.

2. Cross-Border Facilitation: Implement visa-on-arrival for Buddhist circuit tourists at Bettiah ICP; mutual recognition of tourist vehicle permits.

3. Financing: Utilize 50% from central government schemes (Swadesh Darshan 2.0, PRASHAD), 30% from state budgets, 20% from PPP for amenities.

4. Marketing: Joint branding as "The Eastern Himalayan Circuit – Buddha's Land" with shared digital platform.

Limitations and Future Research

Limitations include reliance on projected rather than actual post-completion traffic data, and limited primary data from Nepal due to access constraints. Future research should conduct post-implementation evaluation (2030 onwards) and explore climate resilience of river-based tourism.

REFERENCES

Asian Development Bank. (2019). Buddhist Circuit in South Asia: Connectivity and Tourism Potential. Manila: ADB Publications.

Bandyopadhyay, R. (2020). India-Nepal cross-border tourism cooperation: Barriers and opportunities. South Asian Journal of Tourism and Heritage, 13(2), 45-67.

Chen, Z., & Haynes, K. E. (2017). Impact of high-speed rail on regional tourism: A case study of China. Journal of Transport Geography, 62, 43-52.

Dhingra, T., & Singh, A. (2015). Golden Quadrilateral Highway Project and its impact on domestic tourism in India. Tourism Management Perspectives, 16, 187-195.

Gunn, C. A. (1988). Tourism Planning (2nd ed.). New York: Taylor & Francis.

Kumar, R., & Sharma, P. (2019). Expressways and tourism development: A case study of Yamuna Expressway corridor. Journal of Infrastructure Development, 11(2), 125-142.

Leiper, N. (1990). Tourism Systems: An Interdisciplinary Perspective. Palmerston North: Massey University.

Lew, A. A., & McKercher, B. (2006). Modeling tourist movements: A local destination analysis. Annals of Tourism Research, 33(2), 403-423.

Pagliara, F., La Pietra, A., Gomez, J., & Vassallo, J. M. (2015). High-speed rail and tourism: Empirical evidence from Spain. Transportation Research Procedia, 9, 238-249.

Tripathi, S., & Sinha, A. (2021). Tourism potential of National Waterway-1 in Bihar: A geographic assessment. Indian Journal of Regional Development, 43(1), 78-95.

World Bank. (2022). India-Nepal Tourism Corridors: Opportunities for Regional Integration. Washington, DC: World Bank Group.

Received: 20.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

India's Soft Power Approach to Afghanistan: Dimensions and Challenges

DR. JOGINDER SAKLANI* **jogindersinghsaklani@gmail.com**

RITESH KUMAR† **riteshdilwan142@gmail.com**

Abstract

This paper examines India's approach of soft power in Afghanistan in strengthening bilateral relations and advancing India's strategic interests in the region. It highlights, how India has employed humanitarian aid, infrastructural development, cultural diplomacy, education, capacity building, and sports cooperation as key instruments of soft power, particularly after 2001. Through initiatives such as reconstruction projects, healthcare assistance, scholarships, cultural exchanges, and cricket diplomacy, India succeeded in generating goodwill among the Afghan people and enhancing its regional influence. The study also analyses the major challenges to India's soft power strategy in Afghanistan, especially after the return of the Taliban in 2021. Political instability, security threats, regional geopolitical competition, and economic and logistical constraints have significantly affected India's developmental engagement in Afghanistan. Despite these obstacles, India continues to maintain a positive image in Afghan society through its people-centric and development-oriented approach to diplomacy.

Keywords:

Geopolitics, Power, Interests, Politics, Security and Assistance

Introduction

The modern state of Afghanistan was founded in 1747 by Ahmad Shah Durrani, who established the Durrani Empire, which at its height extended into parts of northern India and eastern Iran. Afghanistan gained full independence from British control over its foreign affairs in 1919 through the Treaty of Rawalpindi, which formally recognized the country's sovereignty (BBC, 2025).

Afghanistan, a landlocked country strategically located at the crossroads of South Asia, Central Asia, and West Asia, holds significant geopolitical importance in the regional politics of South Asia, particularly for India. The country covers an area of approximately 652,864 square kilometers and is administratively divided into 34 provinces, with Kabul serving as its capital city. Afghanistan has an estimated population of around 28.6 million people. The Constitution of Afghanistan officially

* **Associate professor, Himachal Pradesh University Shimla (HPU)**

† **Assistant professor, Govt. College Karsog (Mandi)**

recognizes 14 ethnic groups, among which Pashtuns, Tajiks, Hazaras, Uzbeks, and Baluch are the major communities. Pashto and Dari are recognized as the official languages of the country (Embassy of the Islamic Republic of Afghanistan, 2026).

What is Soft Power

The concept of power is fundamental to the study of international relations, politics, society, the economy, and human interactions. It can be considered the driving force of social and political systems. Since power is multidimensional in nature, it is difficult to measure in precise quantitative terms. Broadly, power is categorized into two forms: hard power and soft power. Nearly three decades ago, American political scientist Joseph Nye introduced the concept of soft power, which became highly influential in shaping the post-Cold War discourse. (Shahriar, 2022, p. 1).

Soft power, a term coined in 20th century by political scientist Joseph Nye, refers to a country's ability to influence others through culture, ideological, and institutional means. According to Nye, soft power refers to the "ability to influence others through attraction and persuasion rather than coercion or payment". Furthermore, soft power is the ability to shape the preferences of others through charm, persuasion and shared values. Soft power can be manifested through many means including: Cultural diplomacy, political ideology and values, diplomatic engagement and public diplomacy. Soft power is increasingly being used to build relationship and trust and promote one's values through culture exchanges, educational programs and humanitarian aid (Kumari, 2025, p. 213).

Soft power in Indian context

In the contemporary world, India regards soft power as an important instrument in its engagement with the international community. Several factors contribute to enhancing India's reputation as a soft-power nation. As the world's largest democracy, India's democratic traditions, political ideals, and institutional structure reflect a stable and well-established political system. Additionally, the Indian government has launched various initiatives to strengthen the country's global image, such as improving the ease of doing business, promoting the "Incredible India" tourism campaign, securing United Nations recognition for International Day of Yoga, and advancing Buddhist diplomacy. These initiatives have enabled India to achieve significant international influence without relying on hard power strategies (Jaishankar, 2018).

India possesses one of the world's oldest and most diverse cultural traditions and has been home to several ancient civilizations. It is the birthplace of Hinduism and Buddhism, as well as the origin of Yoga and various systems of alternative medicine. India has also contributed important concepts to mathematics, including the invention of zero and the decimal system, alongside notable achievements in fields such as astronomy. Although these contributions remained underutilized for many years, India's soft power resources have expanded considerably, especially since the beginning of the twenty-first century. People of Indian origin have gained global recognition by winning prestigious literary awards, leading multinational corporations, and contributing to major scientific innovations (Mullen, 2015, p. 3).

In the modern era, India's rich cultural heritage is reflected in the global appreciation of Indian festivals, art forms, and traditions. Media and popular culture have also emerged as key dimensions of India's soft power. The worldwide reach of Indian cinema and entertainment industries has significantly shaped international perceptions of Indian society and culture. Moreover, digital diplomacy has become an increasingly influential tool in expanding India's global outreach. Through digital platforms, India can directly connect with international audiences, influence global narratives, and promote its cultural and political values more effectively (Patani, 2026, p. 2).

India's soft power to Afghanistan

Over the years, India has projected its soft power in Afghanistan through various means in order to safeguard its regional interests and achieve its strategic objectives. Particularly after 2001, India employed several instruments of soft power in Afghanistan, including humanitarian assistance, infrastructural development, people-to-people connections, cultural exchanges, and sports cooperation.

Humanitarian aid to Afghanistan

Since 2001, India has utilized soft power as one of its most effective strategies to secure strategic influence in Afghanistan, rather than relying on traditional hard power or military intervention. India has focused on deepening its relations with Afghanistan through investments, developmental assistance, and the promotion of cultural connections. Over the past decade, India has emerged as one of the few countries that has generated considerable goodwill among the Afghan people through the effective use of soft power. A significant aspect of this approach is that India's contributions in Afghanistan are appreciated not only by the Afghan population but are also acknowledged internationally (Shah et al., 2025, p. 3).

After 2001, India has launched a broad assistance programme in Afghanistan and pledged over 2 billion dollars for reconstruction efforts. The reconstruction aid has covered many humanitarian and infrastructure projects, including health and rural development. For example, under humanitarian assistance, India has been able to reopen the Indira Gandhi Children's Hospital in Kabul and send medical missions to support humanitarian work in other parts of Afghanistan. Post-2001, India revamped the hospital, added modern medical equipment, and trained Afghan doctors and paramedical staff. In addition to this, India is well known in Afghanistan for its modern hospitals and availability of medicines. Thousands of Afghans have availed the opportunity, constituting almost half of all those travelling to India. It has been a symbol of goodwill between the two countries and has helped both countries to promote cultural and political proximity with each other (Ahmad, 2022, p. 640).

India has provided high protein biscuits to 2 million Afghan school children since 2003 through the World Food Programme's school-feeding programme. One such example is a programme which has been in operation since 2008 and involves India in supplying high protein and vitamin-fortified biscuits for school feeding, which are then distributed by the World Food Program (WFP) in 32 out of 34 provinces in Afghanistan. Later on in 2014-15, this programme reached to the majority of enrolled students in Afghan schools at a cost of USD 87 million. The aim of such an initiative was to boost school attendance and engagement by addressing short-term hunger (Paczynska, 2017).

After the Taliban’s return to power in Kabul, India continued to extend humanitarian assistance to Afghanistan. As part of these efforts, India dispatched multiple consignments of aid, including 20,000 metric tons of wheat, 13 tons of medicines, 500,000 doses of COVID-19 vaccines, and winter clothing. These supplies were delivered to the Indira Gandhi Children Hospital in Kabul as well as to United Nations agencies such as the WHO and WFP. In addition, India has been preparing further shipments of medical supplies and food grains for Afghanistan. India also contributed one million doses of the India-manufactured COVAXIN vaccine to Iran for Afghan refugees residing there and supported UNICEF by providing nearly 60 million doses of polio vaccines along with two tons of essential medicines. Hence, India’s humanitarian and developmental initiatives have been widely appreciated by different sections of Afghan society (Government of India, Ministry of External Affairs, 2022).

Economic Assistance to Afghanistan

India’s relationship with Afghanistan has enjoyed relatively greater bonhomie. However, relations were reduced to their lowest level under the rule of the Taliban in Kabul but were later reinstated. Since the commencement of a civilian government in Afghanistan, India has played an active role in Afghanistan’s reconstruction, based on the understanding that social and economic development are the key to ensuring that Afghanistan becomes a source of regional stability. India has invested more than US$ 1.5 billion in Afghanistan’s reconstruction since 2001. Through the partnership with the local Afghan government, Indian projects cover the entire country, which also helped Indian government in building ties (Upadhyay, 2018, p. 7).

The Strategic Partnership Agreement2011, were signed between two countries, which promised a deepening of bilateral relations in politics, security, trade and economics. It also covers Indian assistance in Afghanistan’s capacity development and education, signals India’s intent to stay engaged in the reconstruction of Afghanistan despite the challenges it faced from several quarters. Under the SPA, India is to also assist in the training, equipping and capacity building. Since the beginning of 2011, New Delhi has attempted to shift from its predominantly development assistance role to becoming a country that aims to use Afghanistan’s resource potential to build its economic viability, sustainability and independence. While much of this shift has been influenced by the business houses in India who view Afghanistan as an attractive investment destination (Routray, 2013, p. 24).

Over the years, India has invested more than $3 billion in over 500 projects throughout Afghanistan, including the construction of roads, power lines, dams, hospitals, and clinics. India has also trained Afghan military personnel, provided thousands of scholarships to Afghan students, and constructed a new parliament building. Despite the Taliban's attempts to diminish India's presence, they cannot erase the enduring goodwill and affection that Afghans hold for India. Furthermore, the Taliban recognise the value of the projects funded by India during the Karzai and Ghani administrations and are keen to see these initiatives continued (Stobdan, 2025, p. 7).

Bollywood and Cultural influence on Afghanistan

India and Afghanistan share deep-rooted historical and cultural ties, which have been strengthened through the Agreement on Cultural Relations signed in 1963 and the Strategic Partnership

Agreement concluded in 2011. Although governments play a central role in implementing cultural policies, non-state actors also contribute significantly to promoting cultural exchanges in line with broader national objectives. Afghanistan's proposal to broaden its engagement with India through the establishment of a new consulate in Hyderabad further reflects the growing cooperation between the two countries. India has actively projected its culture in Afghanistan through various forms of soft power, including art, music, cinema, and cuisine (Gupta, 2017, p. 11).

India's cultural export will be crucial in Indo-Afghan relations in the future to channel India's cultural influence in a more positive direction; an Indian Cultural Centre was set up in the Indian Embassy in Kabul, with the support of the ICCR in 2007. The main activities of the centre included the screening of films, and organizing concerts of Afghan and Indian musicians. Moreover, the India-Afghanistan foundation was set up in 2008 to foster educational, cultural, scientific and technical cooperation between the two countries. The activities of the centre include, seminars and conferences, the translations and publications of several books into Afghan languages, exchanges of scholars and historians, and to revive a quarterly literary magazine 'Hindi'. Thus, one can see that India has left no stone unturned to establish a cordial and friendly relationship with Afghanistan by exploiting the intangible elements which constitute soft power attributes in a country's foreign policy (Bhatti, 2018, p. 47).

India and Afghanistan being neighbouring countries, have always shared a great bond through movies and songs. Bollywood films have been very popular among the Afghan audiences, and have portrayed Afghan characters in their best and worst avatars, which were most readily accepted but sometimes criticized by the Afghan audiences for the incorrect portrayal of real-life characters. Apart from the love for Bollywood in Afghanistan, Pathans too emerged in the Indian cinema from the cusp of the transition from silent films to the talkies. They quickly gained an edge, since they were fluent in Urdu and Hindi. The Hindi Film Industry has welcomed the Pathan talent, since its early years, from the veteran actor Dilip Kumar, scriptwriter Salim Khan, musician Adnan Sami Khan, to actors Feroz and Sanjay Khan etc. (Mathur, 2021).

Education, Training and Capacity Development

Afghanistan's education system has been significantly impacted by decades of conflict, leading to a lack of resources, trained educators, and infrastructure. Since 2001, India's efforts in Afghanistan's education sector have played a crucial role in human capital development, fostering goodwill and strengthening bilateral ties. India has contributed heavily to education sector of Afghanistan through various means, such as constructing Habibia High School in Kabul and the Afghanistan National Agriculture Science and Technology University (ANASTU) in Kandahar. The Indian Council for Cultural Relations (ICCR) and the Indian Technical and Economic Cooperation (ITEC) programmes provided thousands of scholarships for Afghan students to study in India along with vocational training centres to equip Afghan youth with skills. The 'e-Vidya Bharati' and 'e-Arogya Bharati' programmes have provided online education opportunities to Afghan students (Deepak & Bidhuri, 2024, p. 15500).

India has consistently invested in Afghanistan's education sector through initiatives such as capacity building for civil servants, training programs for Afghan diplomats, and vocational education opportunities for women, all of which demonstrate India's soft power strategy. In the field of

education, the Indian Ministry of External Affairs (MEA), in collaboration with the Indian Council for Cultural Relations (ICCR), offers annual long-term scholarships to Afghan students for higher studies at Indian universities. These scholarships are administered in coordination with the Indian Embassy in Kabul and the four Indian consulates, ensuring accessibility for students from all provinces of Afghanistan (Bhatti, 2018, p. 45).

To enhance capacity building in Afghanistan India has taken many initiatives in this context. For Afghanistan's national integration and for access to public radio and television all over Afghanistan, India executed a project to uplink Radio and Television Afghanistan (RTA) and provided down link facilities in all provinces. RTA signals are now being transmitted to the provinces via the Indian satellite INSAT 3A. India's support includes initiatives to enhance digital connectivity, ICT infrastructure development, and technology transfer in Afghanistan. These efforts facilitated access to information, promoted digital literacy, and supported innovation and entrepreneurship. By bridging digital divides and promoting technological advancement, India contributed to economic growth, job creation, and socio-economic inclusion in Afghanistan (Mangu, 2024, p. 329).

Sports and soft power

One of the most popular means of soft power that India has employed to strengthen its ties with Afghanistan is Cricket. Though cricket came to Afghanistan from Pakistan's refugee camps in 1980s, but it was India that extended its hand in the further development of the cricket in Afghanistan particularly by providing financial support and facilities to Afghan players. Furthermore, Afghanistan players are very often seen playing in the Indian Premier League which also promote bonhomie between two countries (Pol, 2023, p. 2).

India has used cricket not only as a means of nation building in Afghanistan but also to widen its own relationship with the nation. Pakistan, being Afghanistan's immediate neighbour and the originator of Afghan cricket, could have built a strong relationship with the nation but instead has watched India take over this position. The Afghanistan Cricket Board (ACB) was also seeking technical support from the Board of Control for Cricket in India (BCCI) to implement a substantial multilevel project designed to develop the technical capacity of national and junior cricket teams in Afghanistan. The aim was to provide technical support to enhance skills, build capacity, train, imbibe professionalism, and improve the performance of Afghanistan's National, National A, Under 19 and 16 cricket teams. The ACB seeks to make cricket an essential and effective tool that can contribute to peace, national unity and development in the country. Moreover, this partnership could unite both nations and strengthen their relationship (Ahmad, 2022, p. 641).

The Afghanistan Cricket Board (ACB) has been allotted three cricket home grounds in India (Noida, Dehradun and Lucknow). India is also involved in construction of cricket stadiums in various provinces of Afghanistan under the aegis of the HICDP. Indian FMCG, Amul was the sponsor for Afghan National Cricket Team for the ICC Cricket World Cup in 2019, which marked cordial relationship between two country's civil society. In addition to cricket, football has also been a means of diplomacy between two countries. India and Afghanistan have robust relations in the field of sports. Since 2011, Afghanistan Under-14 & Under-17 Boys and Under-17 girls football teams have been participating in the Subroto Cup International Tournament organised every year by the India Air Force (Mansuri, 2021, p. 33).

Challenges to India's Soft power in Afghanistan

Several challenges are being posed to Indian soft power diplomacy in Afghanistan especially after the re-emergence of Taliban which are as follow:

Return of the Taliban and Political Instability in Afghanistan

Political instability in Afghanistan has posed a major challenge to India's efforts to sustain its soft power in the country. Afghanistan has endured decades of political upheaval, including the collapse of the Taliban regime, the formation of a new government, and continuing internal conflicts. The country has also experienced frequent political transitions, rivalries among political actors, and governance-related issues. Such conditions have disrupted the coordination of aid, weakened policy continuity, and created uncertainties that have limited Afghanistan's ability to effectively respond to and reciprocate external assistance, including that provided by India (Raja & Rani, 2023, p. 12).

The re-emergence of the Taliban in Kabul, along with the growing influence of Islamabad in Afghanistan, has compelled India to reassess both its bilateral and multilateral engagement with the conflict-ridden country. The swift and unexpected collapse of Kabul to the Islamist Taliban, reportedly supported both covertly and overtly by Pakistan's intelligence establishment, significantly narrowed New Delhi's strategic space in a region long considered part of Islamabad's quest for 'strategic depth'. The Taliban's return to power weakened India-Afghanistan bilateral relations and consequently disrupted several of India's soft power initiatives in Afghanistan (Kumar & Kumar, 2022, p. 49).

Regional Geopolitical Competition

The presence of multiple countries and international actors with competing geopolitical interests has greatly influenced aid policies and the expectations of reciprocity from Afghanistan. The participation of numerous donor states has led to rivalry and fragmentation within Afghanistan's aid sector. Regional powers such as Pakistan, Iran, and China have provided assistance to Afghanistan while simultaneously advancing their own strategic interests. As a result, these actors have played a major role in shaping the distribution of aid and Afghanistan's ability to respond according to their diverse political and economic priorities. Consequently, India faces increasing challenges in maintaining its influence and effectiveness in Afghanistan through aid and development initiatives (Raja & Rani, 2023, p. 12).

In the sphere of aid and economic assistance, India has encountered strong competition from China, whose vast financial resources and strategic ambitions often overshadow Indian efforts. Afghanistan's geographical position as a gateway to the resource-rich regions of Central Asia and European markets makes it strategically significant for both India and China. Consequently, both countries have intensified their efforts to emerge as key stakeholders in Afghanistan's infrastructure and economic development. Moreover, China has successfully expanded its influence through strategic initiatives such as the "Sino-Afghan Special Railway Transportation" project, which connects Afghanistan to China through Uzbekistan and Kazakhstan. This initiative has further integrated Afghanistan into the USD 62 billion China-Pakistan Economic Corridor (CPEC), while India's developmental and economic efforts in Afghanistan have increasingly been overshadowed (Jindal, 2020).

Security Threats

The return of the Taliban to power in August 2021 brought a major transformation in South Asia and significantly affected Afghanistan's relations with regional powers, especially India. This political change altered Afghanistan's security and political landscape while creating new challenges for Indo-Afghan relations. From India's strategic viewpoint, Afghanistan continues to hold considerable importance for regional security. Both countries have previously cooperated in addressing issues such as terrorism, narcotics trafficking, and other security-related threats. However, the current political situation in Afghanistan has created serious obstacles to the implementation of India's soft power strategy in the country (Acxir, 2025, p. 83).

India's foreign policy towards Afghanistan is largely shaped by concerns that a Taliban-controlled Afghanistan could strengthen Pakistan's geopolitical influence and generate new security challenges for India in the region. Although the Taliban itself is not viewed as a direct threat to India, its close links with Pakistan and extremist groups such as Lashkar-e-Tayyiba and Jaish-e-Mohammad remain a major concern. India's assistance and investments in Afghanistan have therefore been influenced not only by developmental objectives but also by the country's strategic and security significance for India. Furthermore, the return of the Taliban has disrupted and constrained India's soft power engagement in Afghanistan due to growing security concerns (Joshi, 2022).

Economic and Logistical Constraints

Currently, economic and infrastructure development initiatives in Afghanistan face serious challenges. Earlier Indian projects, such as the construction of schools, hospitals, and roads, have been negatively impacted by persistent insecurity, corruption within administrative systems, and continuing political instability. In addition, international sanctions and the lack of formal recognition of the Taliban government by much of the international community have further constrained financial aid and global cooperation in Afghanistan. These circumstances have reduced India's capacity to participate effectively in Afghanistan's economic and social rebuilding, thereby limiting the effectiveness of India's soft power strategy (Acxir, 2025, p. 85).

India has also invested more than $3 billion in key infrastructure projects in Afghanistan, including the Delaram–Zaranj Highway, the Salma Dam, and the Afghan Parliament building. Nevertheless, the future and security of these investments remain uncertain under Taliban rule. Trade relations between India and Afghanistan have weakened due to restrictions on transit routes, disruptions in banking systems, and the impact of international sanctions. Furthermore, ongoing instability and strategic competition from regional powers such as China have restricted India's access to Afghanistan's valuable natural resources, particularly lithium and rare earth elements. Consequently, India's earlier soft power investments, especially in the economic domain, continue to face significant risks, contributing to the gradual weakening and disruption of India's soft power influence in Afghanistan (Amin & Ganie, 2026, p. 65).

Conclusion

India's engagement with Afghanistan demonstrates the significant role of soft power in shaping bilateral relations and advancing regional influence. Over the years, India has relied on humanitarian assistance, infrastructural development, cultural diplomacy, education, capacity building, and sports

cooperation to strengthen its relationship with Afghanistan. Through these initiatives, India succeeded in generating considerable goodwill among the Afghan people while also promoting regional stability and safeguarding its strategic interests. Projects such as the Salma Dam, the Afghan Parliament building, educational scholarships, healthcare assistance, and cricket diplomacy reflect India's multidimensional soft power approach in Afghanistan.

At the same time, India's soft power strategy in Afghanistan has faced several serious challenges, particularly after the return of the Taliban in 2021. Political instability, insecurity, terrorism, and governance-related issues have disrupted India's developmental projects and reduced the effectiveness of its engagement. The growing influence of regional actors such as Pakistan and China has further complicated India's position in Afghanistan. China's increasing economic and infrastructural presence, combined with Pakistan's strategic influence over the Taliban regime, has intensified geopolitical competition in the region. Additionally, sanctions, banking restrictions, and uncertainties surrounding the Taliban government have created economic and logistical obstacles for India's continued involvement in Afghanistan.

Despite these challenges, India continues to retain a positive image among large sections of Afghan society because of its long-standing developmental and humanitarian contributions. India's approach has largely been based on partnership, mutual goodwill, and people-centric development rather than military intervention.

References

Acxir, A. S. (2025). An Analysis of New Diplomatic Opportunities and Challenges in India-Afghanistan Relations. *International Journal of Social Science Research and Review, 8*(12), 78-90.

Ahmad, P. T. (2022). An Analysis of India's Soft Power Policy in Afghanistan. *India Quarterly*, *78*(4), 634-653.

Amin, S. & Ganie, A. H. (2026). India's Strategic Role in Afghanistan: Challenges and Opportunities in a post-Us Withdrawal Era. *International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends, 3*(1), 56-69.

BBC News. (2025, March 10). *Afghanistan country profile*. Retrieved from https://www.bbc.com/news/world-south-asia-12011352.

Bhatti, M. U. (2018). Mapping Indo-Afghan Relations in Post-Taliban Period: A Reflection of Soft Power. *Indian Journal of Politics and International Relations*, *11*(1&2), 38-52.

Deepak, D., & Bidhuri, S. (2024). Role of India in Strengthening Afghanistan's Educational Infrastructure. *Educational Administration: Theory and Practice*, *30*(5), 1-8.

Embassy of the Islamic Republic of Afghanistan, 2026). *Afghanistan Brief Country Profile.* Embassy of the Islamic Republic of Afghanistan in Ottawa - Canada. Retrieved from https://www.afghanembassy.ca/about-afghanistan/brief-country-profile.html.

Government of India, Ministry of External Affairs. (2022, June 2). *India's humanitarian assistance to Afghanistan,* retrieved from https://www.mea.gov.in/pressreleases.htm?dtl/35381/Indias+humanitarian+assistance+to+Afghanistan.

Gupta, A. (2017). *Soft power and strategic interests: India's relations with Pakistan and Afghanistan* (Doctoral dissertation, Master thesis).

Jaishankar, D. (2018, September 17). India rising: Soft power and the world's largest democracy. *Brookings.* Retrieved from https://www.brookings.edu/articles/india-rising-soft-power-and-the-worlds-largest-democracy/.

Jindal, D. (2020 November 6). Rising Barriers to Indian Soft Power in Afghanistan. *Modern diplomacy*. Retrieved from https://moderndiplomacy.eu/2020/11/06/rising-barriers-to-indian-soft-power-in-afghanistan/.

Joshi, M. (2022, July 20). India's cautious return to Afghanistan. *East Asia Forum.* Retrieved from https://eastasiaforum.org/2022/07/20/indias-cautious-return-to-afghanistan/.

Kumar, N., & Kumar, A. (2022). Re-emergence of the Taliban: Challenges to India's Multilateralism Policy toward Afghanistan. *Indian Journal of Asian Affairs*, *35*(2), 38–56. https://www.jstor.org/stable/27207734.

Kumari, M. (2025). The role of soft power in international diplomacy. *International Journal of Political Science and Governance,* (7)5, 213-216.

Mangu, V. P. (2024). India's Role in Afghanistan's Reconstruction: A Comprehensive Analysis. *International Journal of Trend in Scientific Research and Development, 8*(4), 325-333.

Mansuri, H. A. (2021). India-Afghanistan Relations During Pandemic. In *Impact of Pandemic on India's International Relations*. (27-43). Lunawada: Redshine Publication Pvt. Ltd.

Mullen, R. D. (2015). India's soft power. *The Oxford handbook of Indian foreign policy*, 188-201.

Paczynska, A. (2017, September 25). *India in Afghanistan: Understanding Development Assistance by Emerging Donors to Conflict-Affected Countries*. Stimson Center. http://www.jstor.org/stable/resrep10798.

Patani, P. (2026). India's Soft Power: An Analytical Study. *International Journal of Social Impact, 11*(2), 1-6.

Pol, T. J. (2023). Exploring Potential of India's Soft Power in Post-2021 Afghanistan. *Social Science Journal. 13*(1), 1-5.

Raja, W. & Rani, N. (2023). Soft Power in Action: India's Diplomatic Approach in Afghanistan for Strategic Space. *Social Science Journal, 13*(4), 1-19.

Routray, B. P. (2013). India's Afghanistan policy In *national security decision-making in India* (pp. 13–27). S. Rajaratnam School of International Studies.

Shah, S. F. M., et al (2025). Pakistan & India Utilising Soft Power Within Afghanistan: Towards Radical Foreign Policy Perspective. *Journal of Political Stability Archive*, *3*(4), 545-555.

Shahriar, S. (2022). Hendrik W. Ohnesorge, Soft Power: The Forces of Attraction in International Relations. *Chinese Political Science Review,* 595-598.

Stobdan, P. (2025). India Forges Ties with the Taliban. *Delhi policy group, 10*(17), 1-38.

Upadhyay, S. (2018). India's Response to Disasters and Humanitarian Assistance in South Asia. *Indian Foreign Affairs Journal*, *13*(4), 316–334.

Received: 21.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र की जनजातीय छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन

महिमा पटेल* **mahimap629@gmail.com**

डॉ. नाजिया कौसर† **najiyakaushar002@gamil.com**

सारांशः-

प्रस्तुत शोध बिलासपुर जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र की जनजातीय छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा के तुलनात्मक अध्ययन पर आधारित है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शहरी क्षेत्रों की जनजातीय छात्र एवं छात्राओं की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों की जनजातीय छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा कम पाई जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि शहरी क्षेत्रों में शिक्षा से संबंधित सुविधाएँ अपेक्षाकृत अधिक विकसित होती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्धि अभिप्रेरणा में वृद्धि हेतु अत्याधुनिक शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार, योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

शब्द कुंजीः- *जनजातीय क्षेत्र, उपलब्धि अभिप्रेरण, जनजातीय छात्र, जनजातीय छात्रा।*

प्रस्तावना-

शिक्षा किसी भी समाज के विकास का मूल आधार होती है। यह न केवल व्यक्ति के बौद्धिक एवं मानसिक विकास में सहायक होती है, बल्कि उसे सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से सशक्त भी बनाती है। विशेष रूप से छात्र एवं छात्राओं की शिक्षा को समाज के समग्र विकास की कुंजी माना जाता है। एक शिक्षित छात्र/छात्रा परिवार की स्वास्थ्य, पोषण एवं शिक्षा संबंधी स्थिति को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके बावजूद, अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक स्थिति अभी भी चिंताजनक बनी हुई है।

अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं को शिक्षा प्राप्त करने में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इनमें आर्थिक अभाव, सामाजिक कुरीतियाँ, लैंगिक भेदभाव, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, विद्यालयों की दूरी, शिक्षकों की कमी तथा शिक्षा के प्रति जागरूकता का अभाव प्रमुख हैं। ये समस्याएँ ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक गंभीर रूप में देखने को मिलती हैं, जबकि शहरी क्षेत्रों में इनकी तीव्रता अपेक्षाकृत कम होती है। यही कारण है कि शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजातीय छात्र एवं छात्राओं के शैक्षिक स्तर, उपलब्धि एवं प्रेरणा में स्पष्ट अंतर पाया जाता है।

इस प्रकार, यह अध्ययन न केवल शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक समानता एवं सशक्तिकरण की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम है। अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं की शिक्षा को सुदृढ़ करना न केवल उनके व्यक्तिगत विकास के लिए आवश्यक है, बल्कि यह समाज एवं राष्ट्र के समग्र विकास के लिए भी अनिवार्य है।

समस्या कथन-

1. क्या शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र की जनजातीय छात्र एवं छात्राओं को समान शैक्षणिक सुविधाएं उपलब्ध हैं ?

2. क्या शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र की जनजातीय छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा समान पाई जाती है ?

* **शोधार्थी (शिक्षा विभाग), डॉ. सी.व्ही.रमन विश्वविद्यालय करगीरोड़ कोटा जिला-बिलासपुर (छ.ग.) भारत**

† **सहायक प्राध्यापक, डॉ. सी.व्ही.रमन विश्वविद्यालय करगीरोड़ कोटा जिला-बिलासपुर (छ.ग.) भारत**

उद्देश्यः-

1. ग्रामीण क्षेत्र की अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा के स्तर का अध्ययन करना।

2. शहरी क्षेत्र की अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं में शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा के स्तर का अध्ययन करना।

परिकल्पना-

1. H_01 शहरी क्षेत्रों के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

2. H_02 ग्रामीण क्षेत्रों की शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

3. H_03 शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध की परिसीमाएं-

प्रस्तुत शोध बिलासपुर जिले के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय तक सीमित है। कुछ छात्र/छात्राओं के द्वारा प्रश्नावली के उत्तर देते समय पूरी तरह सच्चाई या गंभीरता नहीं दिखा सकतीं, जिससे परिणाम प्रभावित हो सकते हैं। शोधकर्ता के अनुभव, दृष्टिकोण एवं संसाधनों की सीमाएँ भी अध्ययन को प्रभावित कर सकती हैं। इन सीमाओं के बावजूद, यह अध्ययन शहरी एवं ग्रामीण अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा के स्तर को समझने में महत्वपूर्ण योगदान देगा।

शोध प्रविधि-

प्रस्तुत अध्ययन "शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा का तुलनात्मक अध्ययन" हेतु वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि (Descriptive Survey Method) एवं मात्रात्मक विधि (Quantitative Research) का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श-

बिलासपुर जिले के समस्त शासकीय/अशासकीय विद्यालयों को शहरी(नगर निगम, नगरपालिका, नगर पंचायत क्षेत्र) एवं ग्रामीण क्षेत्र (पंचायत क्षेत्र)के रूप में चिन्हांकित कर शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के 2-2 शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय प्रत्येक विद्यालय से 25-25 जनजातीय छात्र/छात्राओं कुल 200 का यादृच्छिक नमूना विधि से न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया। उपरोक्त सभी न्यादर्श हायर सेकेण्डरी स्तर के थे तथा हिन्दी माध्यम के थे।

उपकरण -

प्रस्तुत शोध में उपलब्धि अभिप्रेरणा मापनी को उपयोग किया गया है।

सांख्यिकीय प्रविधि- प्रस्तुत शोध में शहरी एवं ग्रामीण क्षत्र की जनजातीय छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा में तुलना करने के लिए माध्यमान, मानक विचलन एवं ''ज'' टेस्ट का उपयोग किया गया है। शोध को आकर्षक एवं सरल प्रस्तुतीकरण के लिए आवश्यकतानुसार चित्र निरूपण भी किया गया है।

चर- प्रस्तुत शोध में चरों का वर्गीकरण निम्नानुसार किया गया है-

स्वतंत्र चर- स्वतंत्र चर वह होता है जिसे शोधकर्ता नियंत्रित या विभाजित करता है और जिसका प्रभाव अन्य चरों पर पड़ता है। इस अध्ययन में "क्षेत्र (Area)" स्वतंत्र चर है। इसके अंतर्गत दो स्तर (Levels) हैं- 1. शहरी क्षेत्र (Rural Area) 2. ग्रामीण क्षेत्र (Urban Area)

आश्रित चर- आश्रित चर वे होते हैं जो स्वतंत्र चर के प्रभाव से प्रभावित होते हैं।

इस अध्ययन में शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा आश्रित चर हैं।

परिणाम एवं विवेचना-

परिकल्पना क्रमांक-1

निम्न तालिका में शहरी क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के अनुसूचित जनजाति छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा तुलनात्मक विश्लेषण कर शून्य परिकल्पना ($H_0$1) का परीक्षण किया गया है-

सारणी क्रमांक-1

शहरी क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के अनुसूचित जनजाति छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा

तुलनात्मक समूह	प्रदत्तों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	't' का मूल्य	df	सार्थकता का स्तर
अशासकीय विद्यालय की छात्र एवं छात्राएँ	50	79.8	20.49	4.124	98	0.05 = 1.984, 0.01 = 2.626 अस्वीकृत
शासकीय विद्यालय की छात्र एवं छात्राएँ	50	65	14.97			

उपरोक्त सारणी क्रमांक 1 से स्पष्ट है कि "शहरी क्षेत्र के अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जनताति की छात्र एवं छात्राओं का (M = 79.8, SD = 20.49) एवं शासकीय विद्यालयों में अध्ययरत अनुसूचित जनताति की छात्र एवं छात्राओं का (M = 65, SD = 14.97) के बीच t-test किया गया। प्राप्त t-value (4.124), df= 98 पर 0.05 स्तर के तालिका मान (1.98) से अधिक पाई गई, अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। इससे स्पष्ट है कि दोनों समूहों में उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अंतर है।"

अतः $H_0$1 "शहरी क्षेत्रों के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है, अस्वीकृत किया जाता है।

आरेख क्रमांक-1

शहरी क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के अनुसूचित जनजाति छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा

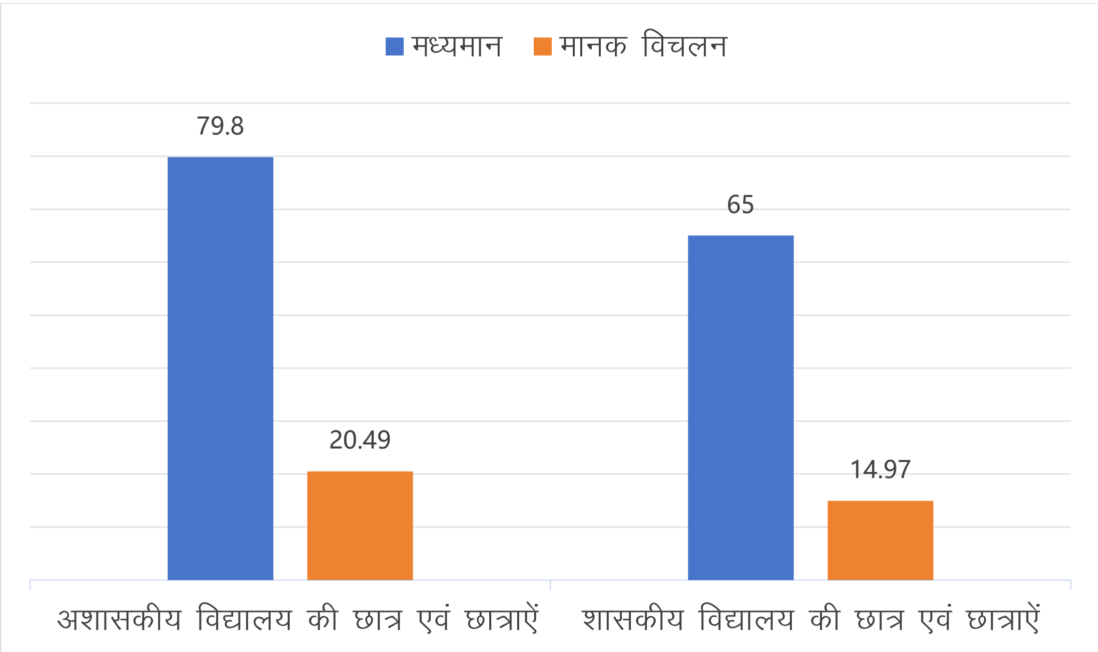

परिकल्पना क्रमांक-2

निम्न तालिका में ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के अनुसूचित जनजाति छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा तुलनात्मक विश्लेषण कर शून्य परिकल्पना ($H_0$2) का परीक्षण किया गया है-

सारणी क्रमांक-2

ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के अनुसूचित जनजाति छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा

तुलनात्मक समूह	प्रदत्तों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	't' का मूल्य	df	सार्थकता का स्तर
शासकीय विद्यालय की छात्र एवं छात्राएँ	50	63.8	11.14	4.851	98	0.05 = 1.984, 0.01 = 2.626 अस्वीकृत
अशासकीय विद्यालय की छात्र एवं छात्राएँ	50	67	11.83			

उपरोक्त सारणी क्रमांक 2 से स्पष्ट है कि"ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जनताति की छात्र एवं छात्राओं का (M =63.8, SD =11.14) एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययरत अनुसूचित जनताति की छात्र एवं छात्राओं का (M =67, SD =11.83) के बीच t-test किया गया। प्राप्त t-value (4.851), df= 98 पर 0.05 स्तर के तालिका मान (1.98) से अधिक पाई गई, अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। इससे स्पष्ट है कि दोनों समूहों में उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अंतर है।"

अतः $H_0$2 ग्रामीण क्षेत्रों की शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा स्तर में कोई सार्थक अंतर नहीं है, अस्वीकृत किया जाता है।

आरेख क्रमांक-2

ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के अनुसूचित जनजाति छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा

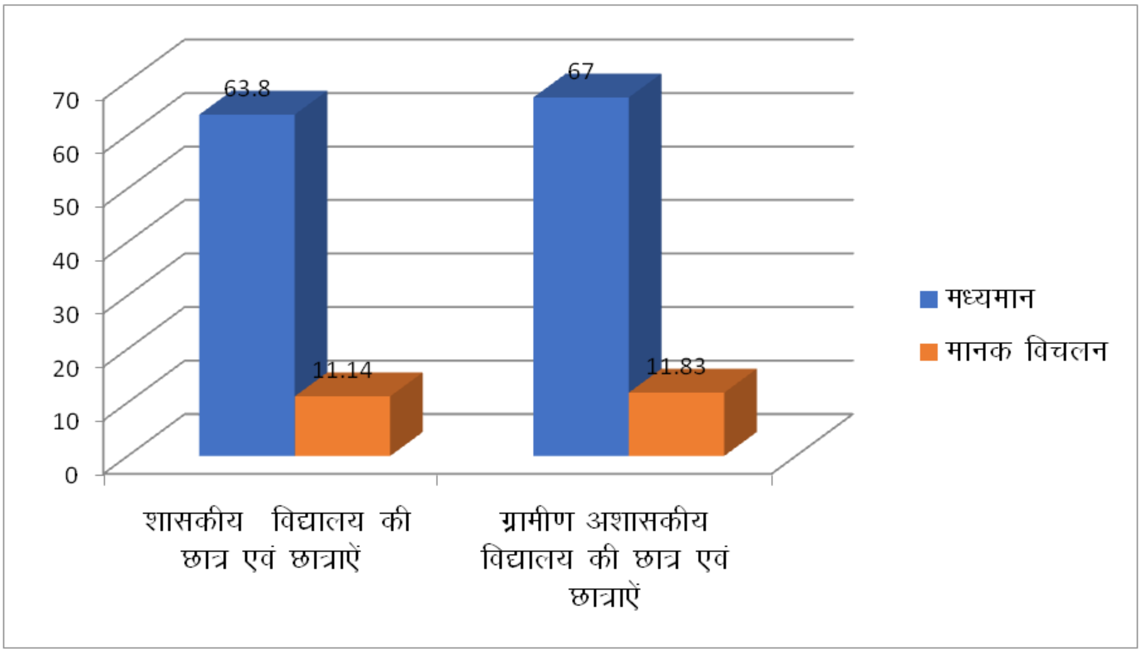

परिकल्पना क्रमांक-3

निम्न तालिका 03 में शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के शासकीय एवं अशासकीय विद्यालय के अनुसूचित जनजाति छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा तुलनात्मक विश्लेषण कर शून्य परिकल्पना ($H_0$3) का परीक्षण किया गया है-

सारणी क्रमांक-3

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों के अनुसूचित जनजाति छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा

तुलनात्मक समूह	प्रदत्तों की संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	't' का मूल्य	df	सार्थकता का स्तर
शहरी क्षेत्र की छात्र एवं छात्राएँ	100	72.4	17.94	3.186	198	0.05 = 1.962, 0.01 = 2.581 अस्वीकृत
ग्रामीण क्षेत्र की छात्र एवं छात्राएँ	100	65.4	11.49			

उपरोक्त सारणी क्रमांक 3 से स्पष्ट है कि "शहरी क्षेत्र के विद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं का (M =72.44, SD =17.74) एवं ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययरत अनुसूचित जनताति की छात्र एवं छात्राओं का (M = 65.4, SD =11.49) के बीच t-test किया गया। प्राप्त t-value (3.186), df= 198 पर 0.05 स्तर के तालिका मान (1.96) से अधिक पाई गई, अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। इससे स्पष्ट है कि दोनों समूहों में उपलब्धि अभिप्रेरणा में सार्थक अंतर है।"

अतः H3 शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि उपलब्धि अभिप्रेरणा में कोई सार्थक अंतर नहीं है, अस्वीकृत किया जाता है।

आरेख क्रमांक-3

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों के अनुसूचित जनजाति छात्र एवं छात्राओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा

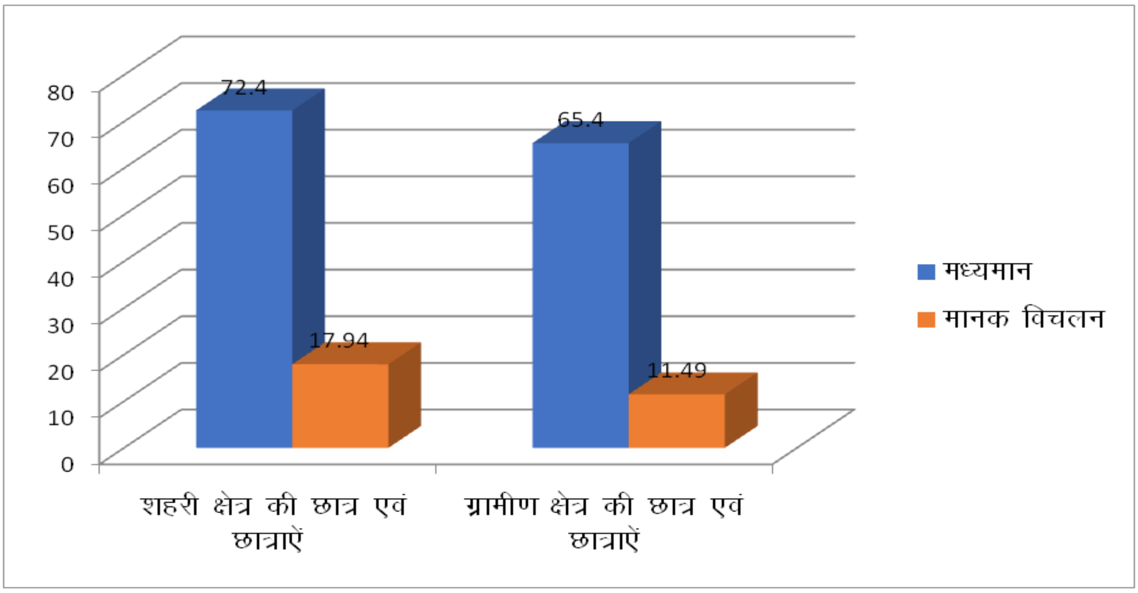

निष्कर्ष -

अध्ययन से ज्ञात हुआ कि शहरी क्षेत्रों की जनजातीय छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि ग्रामीण क्षेत्रों की छात्र एवं छात्राओं की तुलना में अधिक है। इसका प्रमुख कारण यह है कि शहरी क्षेत्रों में शिक्षा से संबंधित सुविधाएँ अपेक्षाकृत अधिक विकसित होती हैं। यहाँ गुणवत्तापूर्ण विद्यालय, प्रशिक्षित शिक्षक, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ, तकनीकी साधन तथा अनुकूल शैक्षिक वातावरण उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त शहरी परिवारों में शिक्षा के प्रति जागरूकता भी अधिक पाई जाती है, जिसके कारण छात्र एवं छात्राओं को अध्ययन हेतु प्रोत्साहन प्राप्त होता है। अभिभावकों द्वारा नियमित निगरानी, मार्गदर्शन एवं सहयोग मिलने से छात्र एवं छात्राओं का आत्मविश्वास तथा अध्ययन के प्रति रुचि बढ़ती है, जिससे उनकी शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होती है।

इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्रों की अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राएं अनेक समस्याओं एवं बाधाओं का सामना करती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों की दूरी, परिवहन की कमी, आर्थिक अभाव, अशिक्षा, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ तथा सामाजिक रूढ़ियाँ छात्र एवं छात्राओं की शिक्षा में प्रमुख बाधा बनती हैं। कई जनजातीय परिवारों में आज भी छात्र एवं छात्राओं की शिक्षा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता, जिसके कारण वे नियमित रूप से विद्यालय नहीं जा पातीं। कई बार घरेलू कार्यों एवं पारिवारिक दायित्वों के कारण उनकी पढ़ाई प्रभावित होती है। इन परिस्थितियों का सीधा प्रभाव उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्धि अभिप्रेरणा में वृद्धि हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार, योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति, शिक्षा के प्रति जागरूकता अभियान, आर्थिक सहायता एवं छात्रवृत्ति, प्रेरणात्मक कार्यक्रमों का आयोजन, डिजिटल एवं तकनीकी शिक्षा का विकास, सुरक्षित एवं अनुकूल विद्यालयीय वातावरण, अभिभावक-शिक्षक सहयोग, सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन, सरकारी योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन, आवासीय विद्यालयों की स्थापना, मनोवैज्ञानिक परामर्श सेवाएँ, स्थानीय भाषा में शिक्षण, नियमित मूल्यांकन एवं निगरानी आदि प्रयास किये जा सकते हैं।

सुझाव-

छात्र एवं छात्राओं की उपलब्धि अभिप्रेरणा को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों पर विशेष ध्यान देकर नीतियाँ बनाई जाएँ। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक सुविधाओं का विस्तार, योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति, शिक्षा के प्रति जागरूकता अभियान, आर्थिक सहायता एवं छात्रवृत्ति, प्रेरणात्मक कार्यक्रमों का आयोजन, डिजिटल एवं तकनीकी शिक्षा का विकास कर ग्रामीण क्षेत्र की अनुसूचित जनजाति की छात्र एवं छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि अभिप्रेरणा स्तर में सुधार लाया जा सकता है तथा उन्हें मुख्यधारा की शिक्षा से जोड़ने में सहायता मिल सकती है।

संदर्भ :-

1. शर्मा, विरेन्द्र प्रकाश. (2013). *रिसर्च मेथडॉलॉजी*. जयपुर: पंचशील प्रकाशन.
2. व्यास, भगवतीलाल. (2016). *समकालीन भारत और शिक्षा*. आगरा: राधा प्रकाशन प्रा. लि..
3. कपिल, एच. के. (2010). *अनुसंधान विधियाँ*. आगरा: एच. पी. भार्गव बुक हाउस.
4. कपिल, एच. के. (2010). *सांख्यिकी के मूल तत्व*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.
5. पारीक, मथुरेश्वर, एवं शर्मा, रजनी. (2007). *उदीयमान भारतीय समाज एवं शिक्षा*. जयपुर: शिक्षा प्रकाशन.
6. McInerney, Dennis M. (1995). *Achievement Motivation of Indigenous Students*. Thousand Oaks, CA: Sage Publications.

Received: 22.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

गुप्त साम्राज्य में आयुर्वेद और चिकित्सा ग्रंथों के विकास का अध्ययन

जितेंद्र कुमार मीना*
jitendramina5799@gmail.com

प्रो. (डॉ.) संजीव कुमार†
शोध-निर्देशक

सारांश

गुप्तकाल (चौथी से छठी शताब्दी ईस्वी) भारतीय इतिहास का एक स्वर्णिम युग माना जाता है, जिसने भारतीय संस्कृति, साहित्य, विज्ञान, दर्शन तथा चिकित्सा विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस काल में राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक समृद्धि और सांस्कृतिक उत्कर्ष के कारण ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों को अभूतपूर्व प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। चिकित्सा विज्ञान और विशेष रूप से आयुर्वेद के क्षेत्र में भी इस युग ने उल्लेखनीय प्रगति का साक्षी बनने का गौरव प्राप्त किया। आयुर्वेद, जिसे भारतीय चिकित्सा पद्धति का आधारभूत विज्ञान माना जाता है, गुप्तकाल में अपने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों रूपों में विकसित हुआ। इस काल में पूर्ववर्ती आयुर्वेदिक परंपराओं का संरक्षण, संशोधन तथा पुनर्व्याख्या की गई, जिससे चिकित्सा ज्ञान अधिक व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक स्वरूप में सामने आया।

गुप्तकालीन चिकित्सा व्यवस्था का आधार प्राचीन आयुर्वेदिक सिद्धांतों पर आधारित था, जिनमें त्रिदोष सिद्धांत, धातु सिद्धांत, रोग निदान पद्धति तथा स्वास्थ्य संरक्षण संबंधी अवधारणाएँ प्रमुख थीं। इस युग में चिकित्सा केवल रोगों के उपचार तक सीमित नहीं रही, बल्कि स्वस्थ जीवन शैली, संतुलित आहार, स्वच्छता तथा रोग-निवारण को भी समान महत्व दिया गया। परिणामस्वरूप चिकित्सा विज्ञान समाज के दैनिक जीवन और जनकल्याण का अभिन्न अंग बन गया।

इस काल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में आयुर्वेदिक ग्रंथों का पुनर्संपादन और विकास शामिल है। चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता जैसे प्राचीन चिकित्सा ग्रंथों को नए संदर्भों में व्यवस्थित किया गया तथा उनके अध्ययन और शिक्षण को बढ़ावा मिला। चरक संहिता ने कायचिकित्सा (आंतरिक चिकित्सा) के सिद्धांतों को व्यवस्थित रूप प्रदान किया, जबकि सुश्रुत संहिता ने शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया। इसके अतिरिक्त वाग्भट्ट द्वारा रचित अष्टांग संग्रह तथा अष्टांग हृदयम् जैसे ग्रंथों ने आयुर्वेद के विभिन्न अंगों का समन्वित और व्यवस्थित विवेचन प्रस्तुत किया। इन ग्रंथों ने चिकित्सा ज्ञान को अधिक सरल, व्यावहारिक और व्यापक बनाया, जिससे आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार में सहायता मिली। गुप्तकाल में औषध विज्ञान (Pharmacology) का भी उल्लेखनीय विकास हुआ। औषधियों के निर्माण में वनस्पतियों, खनिजों तथा पशु-उत्पादों का व्यापक उपयोग किया जाता था। विभिन्न प्रकार के चूर्ण, क्वाथ, घृत, तेल, अवलेह तथा अन्य औषधीय तैयारियों का निर्माण वैज्ञानिक विधियों के अनुसार किया जाता था। चिकित्सा ग्रंथों में औषधियों के गुण, उपयोग तथा मात्रा का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो उस समय के चिकित्सीय ज्ञान की उन्नत अवस्था को प्रदर्शित करता है।

शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में भी गुप्तकाल ने महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ अर्जित कीं। सुश्रुत परंपरा के आधार पर विभिन्न प्रकार की शल्य प्रक्रियाएँ विकसित हुई, जिनमें अस्थि चिकित्सा, नेत्र चिकित्सा, घावों का उपचार, प्रसूति संबंधी शल्य क्रियाएँ तथा अंगों के पुनर्निर्माण जैसी प्रक्रियाएँ शामिल थीं। शल्य उपकरणों का व्यवस्थित वर्गीकरण तथा उनके प्रयोग की तकनीकों का वर्णन चिकित्सा विज्ञान की प्रगतिशील अवस्था का प्रमाण प्रस्तुत करता है। गुप्तकाल में चिकित्सा शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था भी सुविकसित थी। गुरुकुलों, आश्रमों, बौद्ध विहारों तथा उच्च शिक्षा केंद्रों में चिकित्सा का अध्ययन कराया जाता था। चिकित्सकों को सैद्धांतिक ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता था। विदेशी यात्रियों के विवरणों से ज्ञात होता है कि इस काल में चिकित्सालयों और धर्मार्थ अस्पतालों की स्थापना की गई थी, जहाँ रोगियों को निःशुल्क चिकित्सा सेवाएँ उपलब्ध कराई जाती थीं। इससे स्पष्ट होता है कि चिकित्सा को सामाजिक कल्याण और जनसेवा का महत्वपूर्ण माध्यम माना जाता था।

* **शोधार्थी, इतिहास विभाग,पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर, राज**

† **प्रोफेसर, इतिहास विभाग,पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर, राज**

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य गुप्त साम्राज्य में आयुर्वेद और चिकित्सा ग्रंथों के विकास का ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा बौद्धिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करना है। इसमें गुप्तकालीन चिकित्सा व्यवस्था, प्रमुख आयुर्वेदिक ग्रंथों, चिकित्सकों के योगदान, औषध विज्ञान, शल्य चिकित्सा तथा चिकित्सा शिक्षा की संस्थागत संरचना का अध्ययन किया गया है। साथ ही यह शोध यह भी स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि गुप्तकाल में विकसित आयुर्वेदिक ज्ञान ने न केवल भारतीय चिकित्सा परंपरा को समृद्ध किया, बल्कि आगे चलकर एशिया और विश्व की चिकित्सा प्रणालियों को भी प्रभावित किया। इस प्रकार गुप्तकाल भारतीय चिकित्सा इतिहास में एक ऐसे युग के रूप में स्थापित होता है जिसने आयुर्वेद को एक व्यवस्थित, वैज्ञानिक और व्यापक चिकित्सा प्रणाली के रूप में विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मुख्य शब्द:
गुप्तकाल, आयुर्वेद, चिकित्सा विज्ञान, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, वाग्भट्ट, चिकित्सा ग्रंथ, भारतीय चिकित्सा परंपरा।

प्रस्तावना:

भारतीय सभ्यता विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध सभ्यताओं में से एक है, जिसने मानव जीवन के विविध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दर्शन, धर्म, साहित्य, गणित, खगोल विज्ञान तथा चिकित्सा विज्ञान जैसे क्षेत्रों में भारत की उपलब्धियाँ न केवल उसके बौद्धिक वैभव को दर्शाती हैं, बल्कि मानव कल्याण के प्रति उसकी गहन प्रतिबद्धता को भी अभिव्यक्त करती हैं। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में भारत की सबसे महत्वपूर्ण देन आयुर्वेद है, जिसे विश्व की सबसे प्राचीन चिकित्सा प्रणालियों में से एक माना जाता है। आयुर्वेद केवल रोगों के उपचार का विज्ञान नहीं है, बल्कि यह स्वस्थ जीवन, दीर्घायु, मानसिक संतुलन तथा शारीरिक और आध्यात्मिक कल्याण का समग्र ज्ञान प्रदान करता है।

आयुर्वेद शब्द संस्कृत के दो शब्दों -'**आयु**:' (जीवन) और **'वेद'** (ज्ञान) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है "जीवन का विज्ञान"। आयुर्वेद का मूल उद्देश्य व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा रोगग्रस्त व्यक्ति का उपचार करना है। आयुर्वेदिक परंपरा का प्रारंभ वैदिक काल से माना जाता है। विशेष रूप से अथर्ववेद में रोगों, औषधियों, चिकित्सा विधियों तथा स्वास्थ्य संरक्षण संबंधी अनेक संदर्भ प्राप्त होते हैं। वैदिक युग के पश्चात् आयुर्वेद का क्रमिक विकास हुआ और चरक, सुश्रुत तथा अन्य आचार्यों ने इसे एक व्यवस्थित चिकित्सा विज्ञान के रूप में स्थापित किया।

प्राचीन भारत के इतिहास में गुप्तकाल (लगभग 320 ईस्वी से 550 ईस्वी) को "**स्वर्ण युग**" की संज्ञा दी जाती है। इस काल में राजनीतिक स्थिरता, सुदृढ़ प्रशासन, आर्थिक समृद्धि तथा सांस्कृतिक उन्नति के कारण ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में उल्लेखनीय विकास हुआ। गुप्त शासकों ने शिक्षा, साहित्य, धर्म और विज्ञान को संरक्षण प्रदान किया, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय ज्ञान परंपरा का व्यापक विस्तार हुआ। इस काल में संस्कृत भाषा और साहित्य का उत्कर्ष हुआ, विश्वविद्यालयों एवं शिक्षा केंद्रों का विकास हुआ तथा वैज्ञानिक चिंतन को नई दिशा प्राप्त हुई। गणित, ज्योतिष, खगोल विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान जैसे विषयों में भी महत्वपूर्ण प्रगति देखने को मिलती है।

गुप्तकाल में आयुर्वेद और चिकित्सा विज्ञान के विकास को विशेष महत्व प्राप्त हुआ। यह वह काल था जब पूर्ववर्ती चिकित्सा ज्ञान का संरक्षण, पुनर्संपादन तथा व्यवस्थित संकलन किया गया। चिकित्सा संबंधी सिद्धांतों को अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया तथा चिकित्सा पद्धतियों को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया गया। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों का अध्ययन एवं पुनर्प्रचार हुआ, जबकि वाग्भट्ट जैसे विद्वानों ने आयुर्वेद के विभिन्न अंगों को संगठित रूप में प्रस्तुत कर चिकित्सा साहित्य को नई दिशा प्रदान की। इस प्रकार गुप्तकाल आयुर्वेदिक साहित्य के विकास और चिकित्सा ज्ञान के संस्थागत विस्तार का एक महत्वपूर्ण चरण सिद्ध हुआ।

गुप्तकालीन समाज में चिकित्सा को केवल रोग निवारण का साधन नहीं माना जाता था, बल्कि इसे सामाजिक कल्याण और मानव सेवा का महत्वपूर्ण माध्यम समझा जाता था। चिकित्सकों को समाज में सम्मान प्राप्त था तथा चिकित्सा शिक्षा के लिए व्यवस्थित प्रशिक्षण की व्यवस्था उपलब्ध थी। इस काल में औषध विज्ञान, रोग निदान, शल्य चिकित्सा तथा स्वास्थ्य संरक्षण संबंधी अवधारणाओं का व्यापक विकास हुआ। विभिन्न प्रकार की औषधियों का निर्माण, उनके गुणों का अध्ययन तथा चिकित्सा में उनके प्रयोग की विधियों का भी विस्तार हुआ। चिकित्सा ग्रंथों में रोगों के वर्गीकरण, उनके कारणों तथा उपचार विधियों का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो उस समय की वैज्ञानिक सोच और व्यावहारिक अनुभव का परिचायक है।

शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में भी गुप्तकाल की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय थीं। सुश्रुत परंपरा के आधार पर अनेक प्रकार की शल्य प्रक्रियाओं का अभ्यास किया जाता था। अस्थि चिकित्सा, नेत्र चिकित्सा, प्रसूति विज्ञान तथा अंगों के पुनर्निर्माण जैसी प्रक्रियाएँ उस समय की चिकित्सा प्रणाली की उन्नत अवस्था को दर्शाती हैं। इसके अतिरिक्त औषध निर्माण, आहार-विहार संबंधी नियम, रोग-प्रतिरोधक उपाय तथा स्वास्थ्य संरक्षण की पद्धतियाँ भी आयुर्वेद के महत्वपूर्ण अंग बन चुकी थीं।

गुप्तकाल में चिकित्सा शिक्षा और ज्ञान के प्रसार के लिए विभिन्न शिक्षण केंद्रों, आश्रमों तथा बौद्ध विहारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इन संस्थानों में विद्यार्थियों को चिकित्सा विज्ञान का सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था। विदेशी यात्रियों के विवरणों से यह भी ज्ञात होता है कि इस काल में चिकित्सालयों और धर्मार्थ चिकित्सा केंद्रों की व्यवस्था विद्यमान थी, जहाँ रोगियों को उपचार उपलब्ध कराया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि चिकित्सा व्यवस्था केवल अभिजात वर्ग तक सीमित न होकर समाज के व्यापक वर्गों के लिए भी उपयोगी थी।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य गुप्त साम्राज्य में आयुर्वेद और चिकित्सा ग्रंथों के विकास का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक विश्लेषण करना है। इस अध्ययन के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि गुप्तकाल में आयुर्वेदिक ज्ञान किस प्रकार विकसित हुआ, प्रमुख चिकित्सा ग्रंथों ने चिकित्सा विज्ञान को किस प्रकार समृद्ध किया तथा उस काल की चिकित्सा व्यवस्था ने भारतीय समाज और विश्व चिकित्सा परंपरा को किस प्रकार प्रभावित किया। साथ ही, यह शोध गुप्तकालीन चिकित्सा उपलब्धियों के महत्व और उनके दीर्घकालिक प्रभावों का भी मूल्यांकन करेगा। इस दृष्टि से गुप्तकाल भारतीय चिकित्सा इतिहास में एक ऐसे युग के रूप में उभरकर सामने आता है, जिसने आयुर्वेद को सुदृढ़, व्यवस्थित और व्यापक स्वरूप प्रदान किया तथा उसे भावी पीढ़ियों के लिए एक समृद्ध ज्ञान-संपदा के रूप में संरक्षित किया।

1. गुप्तकाल: भारतीय चिकित्सा विज्ञान और आयुर्वेद के स्वर्णिम विकास का युग

भारतीय इतिहास में गुप्तकाल (लगभग 320 ईस्वी से 550 ईस्वी) को सांस्कृतिक, बौद्धिक, वैज्ञानिक तथा सामाजिक विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण काल माना जाता है। इतिहासकारों ने इसे "भारत का स्वर्ण युग" (Golden Age of India) कहा है, क्योंकि इस काल में साहित्य, कला, स्थापत्य, दर्शन, गणित, खगोल विज्ञान तथा चिकित्सा विज्ञान जैसे अनेक क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति हुई। गुप्त साम्राज्य की स्थापना चंद्रगुप्त प्रथम ने की थी, जिसे आगे चलकर समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य), कुमारगुप्त तथा स्कंदगुप्त जैसे शक्तिशाली शासकों ने विस्तार और सुदृढ़ता प्रदान की। राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक समृद्धि तथा प्रभावी प्रशासन ने ज्ञान और विज्ञान के विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया।

गुप्तकाल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इस समय भारतीय ज्ञान परंपरा को व्यवस्थित रूप से संरक्षित और विकसित किया गया। संस्कृत भाषा को राजकीय संरक्षण प्राप्त था और विद्वानों को विभिन्न प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की जाती थीं। परिणामस्वरूप शिक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में उल्लेखनीय उन्नति हुई। इसी बौद्धिक वातावरण का प्रभाव चिकित्सा विज्ञान और आयुर्वेद के विकास पर भी पड़ा। चिकित्सा को केवल रोगोपचार का साधन न मानकर सामाजिक कल्याण और मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार का माध्यम समझा जाने लगा। गुप्तकाल में आयुर्वेद का अध्ययन और शिक्षण व्यापक रूप से प्रचलित था। इस समय पूर्ववर्ती चिकित्सा ज्ञान को व्यवस्थित रूप से संकलित किया गया तथा चिकित्सा ग्रंथों का पुनर्संपादन किया गया। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों का अध्ययन चिकित्सा शिक्षा का आधार बना। साथ ही वाग्भट्ट जैसे विद्वानों ने चिकित्सा ज्ञान को अधिक सरल, व्यवस्थित और व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया। इससे चिकित्सा विज्ञान के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों को मजबूती मिली।

गुप्तकालीन समाज में स्वास्थ्य को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। आयुर्वेदिक सिद्धांतों के अनुसार स्वस्थ शरीर को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का आधार माना गया। इसलिए स्वास्थ्य संरक्षण, रोग-निवारण तथा संतुलित जीवनशैली को सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग समझा जाता था। चिकित्सा व्यवस्था का उद्देश्य केवल रोगों का उपचार करना नहीं था, बल्कि लोगों को स्वस्थ जीवन जीने के लिए प्रेरित करना भी था। इस कारण आहार, विहार, दिनचर्या, ऋतुचर्या तथा मानसिक स्वास्थ्य पर विशेष बल दिया गया।

विदेशी यात्री फाह्यान, जिसने चंद्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत की यात्रा की थी, अपने यात्रा-वृत्तांत में उल्लेख करता है कि भारतीय नगरों में निर्धनों और रोगियों के लिए चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध थीं। धर्मार्थ चिकित्सालयों और

औषधालयों में रोगियों को निःशुल्क उपचार तथा औषधियाँ प्रदान की जाती थीं। यह तथ्य दर्शाता है कि गुप्तकाल में सार्वजनिक स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण के प्रति गंभीर दृष्टिकोण अपनाया गया था। चिकित्सा व्यवस्था केवल अभिजात वर्ग तक सीमित नहीं थी, बल्कि समाज के अन्य वर्गों को भी चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रयास किया जाता था।

गुप्तकाल में औषध विज्ञान का भी उल्लेखनीय विकास हुआ। विभिन्न वनस्पतियों, खनिजों और पशु-आधारित पदार्थों का उपयोग औषध निर्माण में किया जाता था। चिकित्सकों को जड़ी-बूटियों के गुणों, उनके संग्रह, संरक्षण तथा उपयोग का विस्तृत ज्ञान था। औषधियों को चूर्ण, क्वाथ, अवलेह, घृत, तैल और लेप जैसे विभिन्न रूपों में तैयार किया जाता था। यह औषधीय ज्ञान न केवल अनुभव पर आधारित था, बल्कि व्यवस्थित चिकित्सा सिद्धांतों द्वारा भी निर्देशित था।

शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में भी गुप्तकाल की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय थीं। सुश्रुत परंपरा के आधार पर विभिन्न प्रकार की शल्य प्रक्रियाओं का अभ्यास किया जाता था। अस्थिभंग, घाव चिकित्सा, नेत्र रोगों का उपचार तथा अंगों के पुनर्निर्माण जैसी प्रक्रियाएँ चिकित्सा विज्ञान की उन्नत अवस्था को प्रदर्शित करती हैं। शल्य चिकित्सा में प्रयुक्त उपकरणों का वर्गीकरण तथा उनके प्रयोग की विधियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि गुप्तकालीन चिकित्सक व्यावहारिक और तकनीकी ज्ञान से भी संपन्न थे।

शिक्षा और प्रशिक्षण की दृष्टि से भी गुप्तकाल महत्वपूर्ण था। चिकित्सा शिक्षा गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से प्रदान की जाती थी। विद्यार्थियों को शरीर रचना विज्ञान, रोग विज्ञान, औषध विज्ञान तथा शल्य चिकित्सा का सैद्धांतिक और व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता था। इस प्रकार योग्य चिकित्सकों की एक सशक्त परंपरा विकसित हुई, जिसने चिकित्सा विज्ञान को निरंतर समृद्ध किया। गुप्तकाल भारतीय चिकित्सा विज्ञान और आयुर्वेद के इतिहास में एक निर्णायक युग था। इस काल में चिकित्सा ज्ञान का संरक्षण, विकास और संस्थागत विस्तार हुआ। चिकित्सा ग्रंथों का पुनर्संपादन, औषध विज्ञान की प्रगति, शल्य चिकित्सा का विकास तथा चिकित्सा शिक्षा का विस्तार गुप्तकाल की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं। इन उपलब्धियों ने न केवल तत्कालीन समाज के स्वास्थ्य स्तर को उन्नत किया, बल्कि भारतीय चिकित्सा परंपरा की ऐसी मजबूत नींव रखी, जिसका प्रभाव आने वाली अनेक शताब्दियों तक बना रहा।

2. आयुर्वेद: गुप्तकाल में विकास, स्वरूप और महत्व

आयुर्वेद भारतीय चिकित्सा परंपरा का आधारभूत स्तंभ है, जिसका इतिहास वैदिक काल तक पहुँचता है। "आयुर्वेद" शब्द संस्कृत के दो शब्दों "**आयुः**" (जीवन) और **"वेद"** (ज्ञान) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है "जीवन का विज्ञान"। आयुर्वेद केवल रोगों के उपचार की पद्धति नहीं है, बल्कि यह स्वस्थ जीवन, दीर्घायु, मानसिक संतुलन और आध्यात्मिक कल्याण का समग्र विज्ञान है। गुप्तकाल में आयुर्वेद अपने विकास के एक महत्वपूर्ण चरण पर पहुँचा, जहाँ इसे व्यवस्थित, वैज्ञानिक और व्यापक स्वरूप प्राप्त हुआ। इस काल में आयुर्वेदिक सिद्धांतों का पुनर्गठन, चिकित्सा ग्रंथों का पुनर्संपादन तथा चिकित्सा शिक्षा का विस्तार हुआ, जिसके कारण आयुर्वेद भारतीय समाज में और अधिक प्रभावशाली बन गया।

गुप्तकाल में आयुर्वेद का विकास राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक समृद्धि और सांस्कृतिक उन्नति के अनुकूल वातावरण में हुआ। गुप्त शासकों ने शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान को संरक्षण प्रदान किया, जिससे चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन और अनुसंधान को प्रोत्साहन मिला। इस काल में आयुर्वेदिक चिकित्सक समाज में सम्मानित स्थान रखते थे तथा उन्हें राजकीय संरक्षण भी प्राप्त था। परिणामस्वरूप चिकित्सा ज्ञान के संरक्षण और प्रसार की प्रक्रिया अधिक संगठित रूप से विकसित हुई।

आयुर्वेद का मूल आधार पंचमहाभूत, त्रिदोष, सप्तधातु, त्रिमल और अग्नि के सिद्धांत हैं। गुप्तकाल में इन सिद्धांतों को अधिक व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया गया और चिकित्सा व्यवहार में उनका व्यापक उपयोग किया गया। पंचमहाभूत सिद्धांत के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि और मानव शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश नामक पाँच तत्वों से निर्मित हैं। इसी प्रकार त्रिदोष सिद्धांत के अनुसार वात, पित्त और कफ शरीर की मूल जैविक शक्तियाँ हैं, जिनका संतुलन स्वास्थ्य का आधार है। यदि इन दोषों में असंतुलन उत्पन्न हो जाए तो विभिन्न प्रकार के रोग विकसित होते हैं। गुप्तकालीन चिकित्सक रोगों के निदान और उपचार में इन सिद्धांतों का प्रयोग करते थे।

गुप्तकालीन आयुर्वेद की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसका निवारक दृष्टिकोण (Preventive Approach) था। आयुर्वेद का उद्देश्य केवल रोगों का उपचार करना नहीं था, बल्कि रोगों को उत्पन्न होने से रोकना भी था। इस दृष्टि से उचित आहार, नियमित दिनचर्या, ऋतुचर्या, व्यायाम, स्वच्छता और मानसिक संतुलन पर विशेष बल दिया गया। चिकित्सकों का मानना था कि यदि व्यक्ति प्रकृति के नियमों के अनुरूप जीवन व्यतीत करे तो अधिकांश रोगों से बचा जा सकता है। यह विचार आधुनिक निवारक चिकित्सा और सार्वजनिक स्वास्थ्य की अवधारणाओं से भी साम्य रखता है।

गुप्तकाल में आयुर्वेद के विभिन्न अंगों का भी विकास हुआ। कायचिकित्सा (आंतरिक चिकित्सा), शल्य तंत्र (सर्जरी), शालाक्य तंत्र (नेत्र, नाक, कान एवं गले के रोग), कौमारभृत्य (बाल चिकित्सा), अगद तंत्र (विष चिकित्सा), भूत विद्या (मानसिक रोग), रसायन (पुनर्यौवन एवं स्वास्थ्य संवर्धन) तथा वाजीकरण (प्रजनन स्वास्थ्य) जैसे विषय चिकित्सा शिक्षा का अभिन्न भाग थे। इससे स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद केवल सामान्य चिकित्सा तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें विभिन्न विशिष्ट चिकित्सा शाखाओं का भी विकास हो चुका था।

औषध विज्ञान के क्षेत्र में भी गुप्तकालीन आयुर्वेद अत्यंत समृद्ध था। चिकित्सक विभिन्न वनस्पतियों, खनिजों और पशु-आधारित पदार्थों का उपयोग औषध निर्माण में करते थे। तुलसी, हरितकी, आंवला, नीम, अश्वगंधा, गिलोय तथा ब्राह्मी जैसी औषधीय वनस्पतियों का व्यापक उपयोग किया जाता था। औषधियों को चूर्ण, क्वाथ, अवलेह, घृत और तैल के रूप में तैयार किया जाता था। इन औषधियों का चयन रोगी की प्रकृति, रोग की अवस्था और मौसम के अनुसार किया जाता था, जो आयुर्वेद की व्यक्तिगत चिकित्सा (Individualized Treatment) की अवधारणा को दर्शाता है।

गुप्तकालीन आयुर्वेद में मानसिक स्वास्थ्य को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। यह माना जाता था कि शरीर और मन एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। मानसिक तनाव, भय, क्रोध और असंतुलित भावनाएँ शारीरिक रोगों का कारण बन सकती हैं। इसलिए ध्यान, संयम, नैतिक आचरण और सकारात्मक जीवन-दृष्टि को स्वास्थ्य संरक्षण के लिए आवश्यक माना गया। यह दृष्टिकोण आधुनिक मनोदैहिक चिकित्सा (Psychosomatic Medicine) की अवधारणा से मेल खाता है।

गुप्तकाल में आयुर्वेदिक ज्ञान के संरक्षण और प्रसार में चिकित्सा ग्रंथों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता तथा वाग्भट्ट के अष्टांग संग्रह और अष्टांग हृदयम् जैसे ग्रंथों का अध्ययन चिकित्सा शिक्षा का आधार था। इन ग्रंथों ने आयुर्वेदिक सिद्धांतों को व्यवस्थित रूप प्रदान किया और चिकित्सकों को रोगों के निदान तथा उपचार की वैज्ञानिक पद्धतियाँ उपलब्ध कराई।

3. चिकित्सा विज्ञान:

गुप्तकाल (चौथी से छठी शताब्दी ईस्वी) भारतीय इतिहास का एक ऐसा युग था जिसमें ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई। साहित्य, दर्शन, गणित, खगोलशास्त्र और कला के साथ-साथ चिकित्सा विज्ञान (Medical Science) भी इस काल में विकास के उच्च स्तर पर पहुँचा। गुप्तकालीन चिकित्सा विज्ञान भारतीय आयुर्वेदिक परंपरा पर आधारित था, किंतु यह केवल पारंपरिक ज्ञान तक सीमित नहीं था। इसमें रोगों के निदान, औषध निर्माण, शल्य चिकित्सा, स्वास्थ्य संरक्षण तथा चिकित्सा शिक्षा के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति देखने को मिलती है। यही कारण है कि गुप्तकाल को भारतीय चिकित्सा विज्ञान के इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय माना जाता है।

चिकित्सा विज्ञान का मूल उद्देश्य मानव स्वास्थ्य की रक्षा करना, रोगों का निदान करना तथा उनके प्रभावी उपचार की व्यवस्था करना है। गुप्तकाल में चिकित्सा विज्ञान को केवल रोगोपचार का साधन नहीं माना जाता था, बल्कि इसे मानव जीवन के समग्र विकास और कल्याण से जोड़कर देखा जाता था। भारतीय चिंतन परंपरा के अनुसार स्वस्थ शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का आधार है। इसलिए चिकित्सा विज्ञान को समाज और राज्य दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

गुप्तकाल में चिकित्सा विज्ञान का विकास मुख्य रूप से आयुर्वेद के सिद्धांतों पर आधारित था। चिकित्सकों का विश्वास था कि मानव शरीर पंचमहाभूतों **पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु** और **आकाश** से निर्मित है तथा शरीर में वात, पित्त और कफ नामक त्रिदोषों का संतुलन स्वास्थ्य का आधार है। जब इन दोषों में असंतुलन उत्पन्न होता है, तब विभिन्न प्रकार के रोग विकसित होते हैं। इस सिद्धांत के आधार पर रोगों की उत्पत्ति, निदान और उपचार की प्रक्रिया निर्धारित की जाती थी।

गुप्तकालीन चिकित्सा विज्ञान की एक प्रमुख विशेषता रोग निदान (Diagnosis) की विकसित पद्धति थी। चिकित्सक रोगी की संपूर्ण शारीरिक और मानसिक अवस्था का अध्ययन करते थे। रोग की पहचान के लिए नाड़ी परीक्षण, मूत्र परीक्षण, मल परीक्षण, नेत्र निरीक्षण तथा रोगी के व्यवहार और मानसिक स्थिति का विश्लेषण किया जाता था। चिकित्सकों का मानना था कि केवल रोग के लक्षणों का अध्ययन पर्याप्त नहीं है, बल्कि रोगी की प्रकृति, आयु, जीवनशैली तथा मानसिक स्थिति को भी समझना आवश्यक है। यह दृष्टिकोण आधुनिक समग्र चिकित्सा (Holistic Medicine) की अवधारणा के निकट दिखाई देता है।

गुप्तकाल में चिकित्सा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं का उल्लेखनीय विकास हुआ। कायचिकित्सा (Internal Medicine) का उद्देश्य शरीर के आंतरिक रोगों का उपचार करना था। चरक संहिता में विभिन्न प्रकार के ज्वर, पाचन संबंधी रोग, श्वसन संबंधी विकार तथा अन्य आंतरिक रोगों के निदान और उपचार का विस्तृत वर्णन मिलता है। चिकित्सक रोगी की प्रकृति और रोग की अवस्था के अनुसार औषधियों तथा आहार-विहार का निर्धारण करते थे।

शल्य चिकित्सा (Surgery) भी गुप्तकालीन चिकित्सा विज्ञान का अत्यंत विकसित क्षेत्र था। सुश्रुत परंपरा के आधार पर विभिन्न प्रकार की शल्य क्रियाओं का अभ्यास किया जाता था। घावों का उपचार, अस्थिभंग (Fracture) की चिकित्सा, मूत्राशय संबंधी शल्य क्रियाएँ, नेत्र रोगों का उपचार तथा नाक पुनर्निर्माण जैसी जटिल प्रक्रियाएँ उस समय की चिकित्सा दक्षता को प्रदर्शित करती हैं। सुश्रुत संहिता में वर्णित शल्य उपकरणों और प्रक्रियाओं का अध्ययन गुप्तकाल में भी व्यापक रूप से किया जाता था।

नेत्र चिकित्सा, कान-नाक-गला चिकित्सा तथा दंत चिकित्सा के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। शालाक्य तंत्र के अंतर्गत नेत्र रोगों, कर्ण रोगों तथा मुख संबंधी विकारों के उपचार की विशेष विधियाँ विकसित की गईं। मोतियाबिंद जैसी जटिल नेत्र समस्याओं की शल्य चिकित्सा का ज्ञान भारतीय चिकित्सकों को प्राप्त था। यह उस समय के चिकित्सा विज्ञान की उन्नत अवस्था को दर्शाता है।

बाल चिकित्सा और स्त्री रोग चिकित्सा का भी विकास हुआ। कौमारभृत्य शाखा के अंतर्गत बच्चों के स्वास्थ्य, पोषण और रोगों के उपचार का अध्ययन किया जाता था। गर्भावस्था, प्रसव तथा प्रसवोत्तर देखभाल संबंधी ज्ञान भी विकसित था। इससे स्पष्ट होता है कि गुप्तकालीन चिकित्सा विज्ञान जीवन के प्रत्येक चरण की स्वास्थ्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखता था।

विष विज्ञान चिकित्सा विज्ञान की एक अन्य महत्वपूर्ण शाखा थी। विभिन्न प्रकार के विषैले पदार्थों, सर्पदंश तथा अन्य विषाक्त स्थितियों के उपचार की विधियाँ विकसित की गई थीं। चिकित्सकों को विषों के प्रभाव तथा उनके प्रतिकार के उपायों का विस्तृत ज्ञान था। यह ज्ञान तत्कालीन सामाजिक और प्राकृतिक परिस्थितियों के संदर्भ में अत्यंत उपयोगी था।

गुप्तकालीन चिकित्सा विज्ञान में मानसिक स्वास्थ्य को भी विशेष महत्व दिया गया। भूत विद्या के अंतर्गत मानसिक और मनोवैज्ञानिक विकारों का अध्ययन किया जाता था। यह माना जाता था कि मानसिक असंतुलन शरीर के स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है। इसलिए ध्यान, योग, नैतिक आचरण तथा मानसिक संयम को स्वास्थ्य संरक्षण का महत्वपूर्ण साधन माना गया। यह दृष्टिकोण आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की अवधारणाओं से काफी हद तक मेल खाता है।

औषध विज्ञान के विकास ने भी चिकित्सा विज्ञान को नई दिशा प्रदान की। वनस्पतियों, खनिजों तथा पशु-आधारित पदार्थों से औषधियों का निर्माण किया जाता था। चिकित्सकों को जड़ी-बूटियों के गुणों तथा उनके चिकित्सीय उपयोग का व्यापक ज्ञान था। औषधियों को चूर्ण, क्वाथ, अवलेह, घृत, तैल और लेप जैसे विभिन्न रूपों में तैयार किया जाता था। औषध निर्माण की इन विकसित विधियों ने चिकित्सा विज्ञान को अधिक प्रभावी बनाया।

गुप्तकाल में चिकित्सा शिक्षा भी व्यवस्थित रूप से विकसित हुई। शिक्षा मुख्यतः गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से प्रदान की जाती थी। विद्यार्थियों को चिकित्सा के सैद्धांतिक ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जाता था। शरीर रचना, रोग विज्ञान, औषध विज्ञान तथा शल्य चिकित्सा का अध्ययन चिकित्सा शिक्षा का प्रमुख भाग था। इस प्रकार प्रशिक्षित चिकित्सक समाज को गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा सेवाएँ प्रदान करते थे।

विदेशी यात्री फाह्यान के विवरणों से यह भी ज्ञात होता है कि गुप्तकाल में सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था विकसित थी। नगरों में धर्मार्थ चिकित्सालयों और औषधालयों की व्यवस्था थी जहाँ निर्धनों और रोगियों को निःशुल्क उपचार उपलब्ध कराया जाता था। यह तथ्य दर्शाता है कि चिकित्सा विज्ञान केवल विद्वानों के अध्ययन का विषय नहीं था, बल्कि जनकल्याण से भी प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ था।

4. चरक संहिता: गुप्तकालीन चिकित्सा विज्ञान का आधारभूत ग्रंथ

भारतीय चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में **चरक संहिता** का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट है। यह आयुर्वेद का एक प्रमुख एवं प्रामाणिक ग्रंथ है, जिसने भारतीय चिकित्सा परंपरा को सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों स्तरों पर सुदृढ़ आधार प्रदान किया। यद्यपि चरक संहिता की मूल रचना गुप्तकाल से पूर्व हुई थी, तथापि गुप्तकाल में इसका पुनर्संपादन, संरक्षण, अध्ययन और व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इसी कारण गुप्तकालीन चिकित्सा विज्ञान के विकास में चरक संहिता की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस ग्रंथ ने चिकित्सा विज्ञान को एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया तथा चिकित्सकों के लिए मार्गदर्शक ग्रंथ के रूप में कार्य किया।

चरक संहिता के रचयिता के रूप में आचार्य चरक का नाम प्रसिद्ध है, जिन्होंने पूर्ववर्ती आयुर्वेदाचार्य अग्निवेश द्वारा रचित ग्रंथ का पुनर्गठन और विस्तार किया। बाद में कश्मीर के विद्वान दृढबल ने इसके कुछ अपूर्ण अध्यायों को पुनः संपादित किया। गुप्तकाल तक आते-आते यह ग्रंथ आयुर्वेदिक चिकित्सा शिक्षा का प्रमुख आधार बन चुका था। चिकित्सा संस्थानों और गुरु-शिष्य परंपरा में इसका अध्ययन अनिवार्य माना जाता था।

चरक संहिता मुख्यतः **कायचिकित्सा (Internal Medicine)** का ग्रंथ है। इसका प्रमुख उद्देश्य शरीर के आंतरिक रोगों की पहचान, उनके कारणों का विश्लेषण तथा उनके उपचार की वैज्ञानिक पद्धतियों का वर्णन करना है। यह ग्रंथ केवल रोगों के उपचार तक सीमित नहीं है, बल्कि स्वास्थ्य संरक्षण, रोग-निवारण, जीवनशैली, नैतिक आचरण और मानसिक स्वास्थ्य पर भी विशेष बल देता है। यही कारण है कि इसे चिकित्सा विज्ञान के साथ-साथ जीवन-विज्ञान का भी महत्वपूर्ण ग्रंथ माना जाता है।

गुप्तकाल में चरक संहिता की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण इसका व्यापक और व्यवस्थित विषय-वस्तु था। इस ग्रंथ को आठ प्रमुख भागों (स्थानों) में विभाजित किया गया है –

1. **सूत्र स्थान**
2. **निदान स्थान**
3. **विमान स्थान**
4. **शरीर स्थान**
5. **इन्द्रिय स्थान**
6. **चिकित्सा स्थान**
7. **कल्प स्थान**
8. **सिद्धि स्थान**

इन सभी भागों में चिकित्सा विज्ञान के विभिन्न पक्षों का विस्तार से वर्णन किया गया है। सूत्र स्थान में आयुर्वेद के मूल सिद्धांतों का विवेचन मिलता है, जबकि निदान स्थान में रोगों के कारणों और लक्षणों का विश्लेषण किया गया है। चिकित्सा स्थान में रोगों के उपचार तथा औषधियों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

चरक संहिता का दार्शनिक आधार आयुर्वेद के मूल सिद्धांतों पर आधारित है। इसमें पंचमहाभूत, त्रिदोष, सप्तधातु, त्रिमल तथा अग्नि की अवधारणाओं को स्वास्थ्य और रोग के आधार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। चरक के अनुसार मानव शरीर वात, पित्त और कफ नामक तीन दोषों द्वारा संचालित होता है। जब ये दोष संतुलित अवस्था में रहते हैं, तब व्यक्ति स्वस्थ रहता है; किंतु इनके असंतुलन से रोग उत्पन्न होते हैं। गुप्तकालीन चिकित्सक रोगों के निदान और उपचार में इन सिद्धांतों का व्यापक उपयोग करते थे।

चरक संहिता की एक महत्वपूर्ण विशेषता इसका **समग्र स्वास्थ्य दृष्टिकोण (Holistic Approach)** है। चरक ने स्वास्थ्य को केवल शारीरिक स्थिति नहीं माना, बल्कि शरीर, मन, इंद्रियों और आत्मा के संतुलन को वास्तविक स्वास्थ्य की अवस्था बताया। उनके अनुसार मानसिक तनाव, क्रोध, भय, चिंता और असंयमित जीवनशैली भी रोगों के प्रमुख कारण हो

सकते हैं। इसलिए उन्होंने मानसिक स्वास्थ्य और नैतिक जीवन को चिकित्सा का अभिन्न अंग माना। यह विचार आधुनिक समग्र चिकित्सा और मनोदैहिक चिकित्सा की अवधारणाओं के अत्यंत निकट है।

गुप्तकालीन चिकित्सा विज्ञान में रोग निदान की जो विकसित पद्धति दिखाई देती है, उसका आधार भी चरक संहिता में निहित है। चरक ने चिकित्सकों को रोगी के संपूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन करने की सलाह दी। रोग की पहचान करते समय रोगी की आयु, प्रकृति, भोजन, जीवनशैली, मानसिक स्थिति तथा पर्यावरणीय परिस्थितियों का ध्यान रखने पर बल दिया गया। यह दृष्टिकोण आधुनिक व्यक्तिगत चिकित्सा (Personalized Medicine) की अवधारणा से मेल खाता है।

चरक संहिता में औषध विज्ञान का भी अत्यंत विस्तृत वर्णन मिलता है। गुप्तकालीन चिकित्सक इस ग्रंथ में वर्णित औषधीय सिद्धांतों का पालन करते थे। विभिन्न वनस्पतियों, खनिजों और पशु-आधारित पदार्थों के औषधीय गुणों का वर्णन इसमें किया गया है। औषधियों को चूर्ण, क्वाथ, घृत, अवलेह तथा तैल के रूप में तैयार करने की विधियाँ भी वर्णित हैं। चरक ने औषधि के चयन में रोगी की प्रकृति तथा रोग की अवस्था को विशेष महत्व दिया है।

इस ग्रंथ में आहार-विहार को भी चिकित्सा का महत्वपूर्ण अंग माना गया है। चरक के अनुसार अनुचित आहार और असंयमित जीवनशैली अधिकांश रोगों के मूल कारण हैं। इसलिए उन्होंने संतुलित भोजन, नियमित दिनचर्या, ऋतुचर्या, स्वच्छता तथा संयमित जीवन पर विशेष बल दिया। गुप्तकालीन समाज में स्वास्थ्य संरक्षण के लिए इन सिद्धांतों का व्यापक रूप से पालन किया जाता था।

चरक संहिता की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता चिकित्सक की भूमिका पर दिया गया बल है। चरक ने आदर्श चिकित्सक के गुणों का विस्तृत वर्णन किया है। उनके अनुसार चिकित्सक को विद्वान, अनुभवी, नैतिक, करुणामय तथा रोगी के प्रति समर्पित होना चाहिए। चिकित्सा को केवल व्यवसाय नहीं, बल्कि मानव सेवा का माध्यम माना गया। यह दृष्टिकोण गुप्तकालीन चिकित्सा व्यवस्था के मानवीय स्वरूप को दर्शाता है।

गुप्तकाल में चिकित्सा शिक्षा के क्षेत्र में भी चरक संहिता का विशेष महत्व था। यह ग्रंथ विद्यार्थियों के लिए मानक पाठ्यपुस्तक के रूप में प्रयुक्त होता था। गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से चिकित्सा का प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को चरक संहिता के सिद्धांतों का गहन अध्ययन कराया जाता था। इसके माध्यम से चिकित्सा ज्ञान का संरक्षण और प्रसार सुनिश्चित हुआ।

चरक संहिता का प्रभाव केवल गुप्तकाल तक सीमित नहीं रहा। इसके सिद्धांतों ने भारतीय चिकित्सा परंपरा को शताब्दियों तक प्रभावित किया। मध्यकालीन आयुर्वेदिक ग्रंथों तथा चिकित्सा पद्धतियों में इसके प्रभाव के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। आधुनिक आयुर्वेदिक चिकित्सा में भी चरक संहिता को आधारभूत ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया जाता है।

5. सुश्रुत संहिता: गुप्तकालीन शल्य चिकित्सा और चिकित्सा विज्ञान की महान उपलब्धि

भारतीय चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में **सुश्रुत संहिता** का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण और गौरवपूर्ण है। यह ग्रंथ आयुर्वेद की शल्य चिकित्सा (Surgery) शाखा का आधारभूत और सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। इसके रचयिता **आचार्य सुश्रुत** थे, जिन्हें विश्व चिकित्सा इतिहास में "शल्य चिकित्सा का जनक" (Father of Surgery) कहा जाता है। यद्यपि सुश्रुत संहिता की मूल रचना गुप्तकाल से पूर्व हुई थी, तथापि गुप्तकाल में इस ग्रंथ का पुनर्संपादन, अध्ययन और व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इस काल में चिकित्सा विज्ञान के विकास के साथ-साथ शल्य चिकित्सा की परंपरा को भी नई गति मिली, जिसके कारण सुश्रुत संहिता गुप्तकालीन चिकित्सा व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार बन गई।

गुप्तकाल भारतीय चिकित्सा विज्ञान के विकास का स्वर्णिम युग था। इस काल में चिकित्सा संबंधी प्राचीन ज्ञान को संरक्षित करने तथा उसे अधिक व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने का कार्य किया गया। सुश्रुत संहिता के पुनर्संपादन और अध्ययन ने शल्य चिकित्सा को एक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। इस ग्रंथ के माध्यम से चिकित्सकों को शरीर रचना, शल्य उपकरणों, शल्य प्रक्रियाओं तथा रोगों के उपचार संबंधी विस्तृत ज्ञान प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप शल्य चिकित्सा का क्षेत्र अधिक विकसित और प्रभावी बन सका।

सुश्रुत संहिता केवल शल्य चिकित्सा का ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह चिकित्सा विज्ञान के अनेक आयामों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करती है। इसमें शरीर **रचना विज्ञान** (Anatomy), **शरीर क्रिया विज्ञान** (Physiology), **रोग विज्ञान**

(Pathology), **औषध विज्ञान** (Pharmacology), **प्रसूति विज्ञान** (Obstetrics), **अस्थि चिकित्सा** (Orthopedics), **नेत्र चिकित्सा** (Ophthalmology) तथा **विष विज्ञान** (Toxicology) जैसे विषयों का भी विस्तृत विवेचन मिलता है। इस व्यापक विषय-वस्तु के कारण यह ग्रंथ चिकित्सा विज्ञान का एक महत्वपूर्ण विश्वकोश माना जाता है।

गुप्तकाल में सुश्रुत संहिता का महत्व विशेष रूप से इसलिए बढ़ गया क्योंकि इसमें शरीर रचना विज्ञान का अत्यंत विस्तृत और वैज्ञानिक वर्णन मिलता है। सुश्रुत ने मानव शरीर के विभिन्न अंगों, मांसपेशियों, अस्थियों, धमनियों, शिराओं तथा स्नायुओं का व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत किया। शरीर की संरचना को समझे बिना शल्य चिकित्सा संभव नहीं है, इसलिए उन्होंने शरीर रचना विज्ञान को चिकित्सा शिक्षा का आधार माना। यह तथ्य उस समय की वैज्ञानिक सोच और अवलोकन क्षमता को दर्शाता है।

सुश्रुत संहिता की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि शल्य चिकित्सा का व्यवस्थित वर्गीकरण है। आचार्य सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा की विभिन्न प्रक्रियाओं को वैज्ञानिक रूप से वर्गीकृत किया और उनके संचालन की विधियों का विस्तार से वर्णन किया। उन्होंने **छेदन** (Incision), **भेदन** (Puncturing), **लेखन** (Scarification), **वेधन** (Probing), **आहरण** (Extraction), **विस्रावण** (Drainage) तथा **सीवन** (Suturing) जैसी अनेक शल्य प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है। गुप्तकालीन चिकित्सक इन प्रक्रियाओं का अध्ययन और अभ्यास करते थे, जिससे शल्य चिकित्सा का स्तर अत्यंत उन्नत हो गया था। इस ग्रंथ की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता शल्य उपकरणों का विस्तृत विवरण है। सुश्रुत ने लगभग 125 प्रकार के शल्य उपकरणों का वर्णन किया है, जिनमें चाकू, सुई, कैंची, चिमटी, नलिकाएँ और अन्य विशेष उपकरण शामिल हैं। इन उपकरणों का निर्माण विभिन्न धातुओं से किया जाता था तथा उनके उपयोग की स्पष्ट विधियाँ निर्धारित थीं। गुप्तकाल में इन उपकरणों का प्रयोग विभिन्न प्रकार की शल्य क्रियाओं में किया जाता था। यह तथ्य स्पष्ट करता है कि भारतीय चिकित्सा विज्ञान तकनीकी दृष्टि से भी अत्यंत विकसित था।

सुश्रुत संहिता का सबसे प्रसिद्ध योगदान **प्लास्टिक सर्जरी (Plastic Surgery)** के क्षेत्र में है। विशेष रूप से नाक पुनर्निर्माण (Rhinoplasty) की विधि का विस्तृत वर्णन इस ग्रंथ में मिलता है। प्राचीन भारत में दंडस्वरूप नाक काटे जाने की प्रथा प्रचलित थी, इसलिए नाक के पुनर्निर्माण की आवश्यकता उत्पन्न हुई। सुश्रुत ने त्वचा प्रत्यारोपण (Skin Grafting) की तकनीक के माध्यम से नाक को पुनः निर्मित करने की प्रक्रिया का वर्णन किया। आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी के इतिहास में इसे एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जाता है। गुप्तकाल में इस ज्ञान का संरक्षण और उपयोग भारतीय चिकित्सा विज्ञान की उन्नत अवस्था का प्रमाण है।

नेत्र चिकित्सा के क्षेत्र में भी सुश्रुत संहिता का महत्वपूर्ण योगदान है। इसमें मोतियाबिंद (Cataract) के शल्य उपचार का वर्णन मिलता है। सुश्रुत ने नेत्र रोगों की पहचान और उनके उपचार के लिए विशेष तकनीकों का विकास किया। यह उस समय की चिकित्सा दक्षता और वैज्ञानिक ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण है। गुप्तकालीन चिकित्सक नेत्र रोगों के उपचार में इन विधियों का उपयोग करते थे।

अस्थि चिकित्सा (Orthopedics) के क्षेत्र में भी सुश्रुत संहिता अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें अस्थियों के प्रकार, अस्थिभंग (Fracture), अव्यवस्था (Dislocation) तथा उनके उपचार की विस्तृत जानकारी दी गई है। टूटी हुई हड्डियों को जोड़ने, उन्हें स्थिर रखने और रोगी के पुनर्वास की विधियों का वर्णन मिलता है। यह ज्ञान गुप्तकालीन चिकित्सा व्यवस्था में व्यापक रूप से प्रयुक्त होता था। प्रसूति एवं स्त्री रोग चिकित्सा का भी सुश्रुत संहिता में उल्लेख मिलता है। गर्भावस्था, प्रसव तथा प्रसव संबंधी जटिलताओं के उपचार के लिए विभिन्न विधियों का वर्णन किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि चिकित्सा विज्ञान केवल शल्य चिकित्सा तक सीमित नहीं था, बल्कि मानव जीवन के विभिन्न पक्षों को समाहित करता था।

सुश्रुत संहिता की एक महत्वपूर्ण विशेषता चिकित्सा शिक्षा के प्रति उसका व्यावहारिक दृष्टिकोण है। आचार्य सुश्रुत का मत था कि केवल सैद्धांतिक ज्ञान पर्याप्त नहीं है; चिकित्सक को व्यावहारिक प्रशिक्षण भी प्राप्त होना चाहिए। उन्होंने विद्यार्थियों को वास्तविक शल्य चिकित्सा से पूर्व फलों, सब्जियों, मोम की प्रतिमाओं तथा मृत शरीरों पर अभ्यास करने की सलाह दी। यह आधुनिक चिकित्सा शिक्षा में प्रयोग होने वाली प्रायोगिक प्रशिक्षण पद्धति का प्रारंभिक रूप माना जा सकता है। गुप्तकाल में चिकित्सा शिक्षा के विकास में इस विचार का महत्वपूर्ण योगदान रहा।

गुप्तकालीन समाज में चिकित्सकों को सम्मानित स्थान प्राप्त था और शल्य चिकित्सकों को विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त थी। सुश्रुत संहिता ने चिकित्सकों के नैतिक कर्तव्यों का भी वर्णन किया है। चिकित्सक को विद्वान, अनुशासित, करुणामय और रोगी के प्रति समर्पित होना चाहिए। यह चिकित्सा को केवल एक पेशा नहीं, बल्कि मानव सेवा का माध्यम मानने की भारतीय परंपरा को दर्शाता है।

गुप्तकाल में सुश्रुत संहिता का प्रभाव केवल चिकित्सा शिक्षा तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसने चिकित्सा व्यवहार को भी प्रभावित किया। विभिन्न रोगों के उपचार में शल्य चिकित्सा का प्रयोग अधिक व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप से किया जाने लगा। इस प्रकार यह ग्रंथ चिकित्सा विज्ञान के विकास में एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शक सिद्ध हुआ।

6. वाग्भट्ट

वाग्भट्ट गुप्तकाल के उत्तरार्ध और उसके पश्चात् आयुर्वेद के सबसे प्रभावशाली विद्वानों में से एक थे। उन्होंने चरक और सुश्रुत की चिकित्सा परंपराओं का समन्वय कर आयुर्वेद को अधिक व्यवस्थित और सरल स्वरूप प्रदान किया। उनकी प्रमुख कृतियाँ *अष्टांग संग्रह* और *अष्टांग हृदयम्* हैं, जो आयुर्वेदिक साहित्य की महत्वपूर्ण धरोहर मानी जाती हैं। वाग्भट्ट ने आयुर्वेद को आठ प्रमुख अंगों कायचिकित्सा, शल्य तंत्र, शालाक्य तंत्र, कौमारभृत्य, अगद तंत्र, भूत विद्या, रसायन और वाजीकरण में विभाजित कर उसका व्यवस्थित वर्गीकरण प्रस्तुत किया। उनकी रचनाएँ चिकित्सा शिक्षा के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुईं क्योंकि इनमें जटिल चिकित्सा सिद्धांतों को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया था। गुप्तकालीन चिकित्सा परंपरा को आगे बढ़ाने और आयुर्वेद को जनसुलभ बनाने में वाग्भट्ट का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

7. चिकित्सा ग्रंथ

गुप्तकाल चिकित्सा ग्रंथों के संरक्षण, पुनर्संपादन और विकास का स्वर्णिम काल था। इस युग में चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांग संग्रह तथा अष्टांग हृदयम् जैसे ग्रंथों का व्यापक अध्ययन किया गया। इन ग्रंथों में रोगों के कारण, निदान, उपचार, औषध निर्माण, शल्य चिकित्सा तथा स्वास्थ्य संरक्षण संबंधी सिद्धांतों का व्यवस्थित वर्णन मिलता है। चिकित्सा ग्रंथों ने न केवल चिकित्सा ज्ञान को सुरक्षित रखा, बल्कि चिकित्सा शिक्षा और चिकित्सकीय व्यवहार को भी दिशा प्रदान की। गुप्तकालीन विद्वानों ने इन ग्रंथों का पुनर्संपादन कर उन्हें अधिक व्यवस्थित और उपयोगी बनाया। यही कारण है कि ये ग्रंथ आज भी आयुर्वेदिक चिकित्सा के महत्वपूर्ण स्रोत माने जाते हैं। चिकित्सा ग्रंथों के माध्यम से गुप्तकालीन चिकित्सा ज्ञान आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचा और भारतीय चिकित्सा परंपरा निरंतर विकसित होती रही।

8. भारतीय चिकित्सा परंपरा

भारतीय चिकित्सा परंपरा विश्व की सबसे प्राचीन, समृद्ध और व्यवस्थित चिकित्सा परंपराओं में से एक है। इसका विकास हजारों वर्षों की बौद्धिक साधना, अनुभवजन्य ज्ञान, वैज्ञानिक अवलोकन तथा दार्शनिक चिंतन का परिणाम है। इसकी जड़ें वैदिक काल में निहित हैं, जहाँ स्वास्थ्य, रोग और उपचार संबंधी प्रारंभिक अवधारणाएँ विकसित हुईं। कालांतर में यह परंपरा आयुर्वेद के रूप में संगठित हुई और विभिन्न चिकित्सा ग्रंथों तथा विद्वानों के योगदान से निरंतर समृद्ध होती गई। यद्यपि भारतीय चिकित्सा परंपरा का विकास एक दीर्घकालीन प्रक्रिया थी, तथापि गुप्तकाल (चौथी से छठी शताब्दी ईस्वी) ने इसके विकास, संरक्षण और प्रसार में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यही कारण है कि गुप्तकाल को भारतीय चिकित्सा विज्ञान और आयुर्वेद के इतिहास का स्वर्णिम काल माना जाता है।

गुप्तकाल में राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक समृद्धि और सांस्कृतिक उन्नति ने ज्ञान-विज्ञान के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया। इस काल में आयुर्वेदिक सिद्धांतों को अधिक व्यवस्थित और वैज्ञानिक स्वरूप प्राप्त हुआ। चरक संहिता, सुश्रुत संहिता तथा वाग्भट्ट कृत *अष्टांग संग्रह* और *अष्टांग हृदयम्* जैसे चिकित्सा ग्रंथों का अध्ययन, पुनर्संपादन और प्रचार-प्रसार व्यापक स्तर पर हुआ। इन ग्रंथों ने चिकित्सा विज्ञान के विभिन्न पक्षों रोग विज्ञान, औषध विज्ञान, शल्य चिकित्सा, शरीर रचना विज्ञान तथा स्वास्थ्य संरक्षण को सुव्यवस्थित आधार प्रदान किया। परिणामस्वरूप चिकित्सा ज्ञान का संरक्षण हुआ और यह आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित रूप से पहुँच सका।

भारतीय चिकित्सा परंपरा की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसका समग्र (Holistic) दृष्टिकोण है। यह परंपरा मानव स्वास्थ्य को केवल शारीरिक अवस्था के रूप में नहीं देखती, बल्कि शरीर, मन, इंद्रियों और आत्मा के संतुलित विकास को

वास्तविक स्वास्थ्य का आधार मानती है। आयुर्वेद के अनुसार स्वास्थ्य तभी संभव है जब व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से संतुलित हो। गुप्तकालीन चिकित्सकों ने इसी सिद्धांत को अपनाते हुए रोगों के उपचार के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य, नैतिक आचरण, संयमित जीवनशैली तथा आध्यात्मिक संतुलन पर भी बल दिया। इस प्रकार चिकित्सा केवल रोग निवारण का साधन न होकर संपूर्ण जीवन के कल्याण का माध्यम बन गई।

गुप्तकालीन चिकित्सा व्यवस्था की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता रोग-निवारण (Prevention) पर दिया गया विशेष बल था। आयुर्वेदिक चिकित्सकों का मानना था कि स्वस्थ जीवनशैली अपनाकर अनेक रोगों से बचा जा सकता है। इसलिए उचित आहार, नियमित दिनचर्या, ऋतुचर्या, योग, व्यायाम, स्वच्छता तथा मानसिक संतुलन को स्वास्थ्य संरक्षण का आधार माना गया। यह दृष्टिकोण आधुनिक निवारक चिकित्सा (Preventive Medicine) और सार्वजनिक स्वास्थ्य (Public Health) की अवधारणाओं से अत्यंत निकटता रखता है।

औषध विज्ञान के क्षेत्र में भी भारतीय चिकित्सा परंपरा ने गुप्तकाल में उल्लेखनीय प्रगति की। वनस्पतियों, खनिजों तथा पशु-आधारित पदार्थों से औषधियों का निर्माण किया जाता था। औषधीय पौधों के गुणों, उनके संग्रह, संरक्षण तथा उपयोग की वैज्ञानिक विधियाँ विकसित की गईं। चूर्ण, क्वाथ, अवलेह, घृत, तैल और लेप जैसी औषधीय तैयारियाँ चिकित्सा व्यवस्था का अभिन्न अंग थीं। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय चिकित्सा परंपरा अनुभवजन्य ज्ञान और व्यावहारिक चिकित्सा दोनों पर समान रूप से आधारित थी।

शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में भारतीय चिकित्सा परंपरा की उपलब्धियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सुश्रुत संहिता में वर्णित शल्य प्रक्रियाएँ, नाक पुनर्निर्माण (Rhinoplasty), मोतियाबिंद की शल्य चिकित्सा तथा अस्थिभंग उपचार जैसी तकनीकें उस समय के चिकित्सा विज्ञान की उन्नत अवस्था को प्रदर्शित करती हैं। गुप्तकाल में इन विधियों का अध्ययन और प्रयोग चिकित्सा शिक्षा का महत्वपूर्ण भाग था। इससे भारतीय चिकित्सा परंपरा को विश्व चिकित्सा इतिहास में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ।

चिकित्सा शिक्षा के क्षेत्र में भी गुप्तकाल का योगदान महत्वपूर्ण था। गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से विद्यार्थियों को चिकित्सा विज्ञान का सैद्धांतिक और व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता था। चिकित्सा ग्रंथों के अध्ययन के साथ-साथ रोगों के निरीक्षण, औषध निर्माण तथा शल्य चिकित्सा का व्यावहारिक ज्ञान भी दिया जाता था। इससे प्रशिक्षित चिकित्सकों की एक सुदृढ़ परंपरा विकसित हुई, जिसने चिकित्सा विज्ञान के संरक्षण और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भारतीय चिकित्सा परंपरा का प्रभाव केवल भारत तक सीमित नहीं रहा। गुप्तकाल में विकसित चिकित्सा ज्ञान और आयुर्वेदिक सिद्धांतों का प्रसार व्यापारिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक संपर्कों के माध्यम से अन्य देशों तक हुआ। चीन, तिब्बत, श्रीलंका, नेपाल, दक्षिण-पूर्व एशिया तथा अरब देशों ने भारतीय चिकित्सा ज्ञान से प्रेरणा प्राप्त की। अनेक आयुर्वेदिक अवधारणाएँ और औषधीय ज्ञान इन क्षेत्रों की चिकित्सा प्रणालियों में समाहित हुए। इस प्रकार भारतीय चिकित्सा परंपरा ने वैश्विक चिकित्सा इतिहास को भी महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया।

निष्कर्ष:

गुप्तकाल भारतीय इतिहास का एक ऐसा युग था जिसने न केवल राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भारत को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया, बल्कि विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल भारतीय चिकित्सा विज्ञान और आयुर्वेद के विकास का एक महत्वपूर्ण तथा निर्णायक कालखंड था। इस युग में चिकित्सा ज्ञान को व्यवस्थित रूप प्रदान किया गया, प्राचीन चिकित्सा परंपराओं का संरक्षण किया गया तथा उन्हें अधिक वैज्ञानिक और व्यावहारिक स्वरूप में विकसित किया गया। राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक समृद्धि, शैक्षिक उन्नति और राजकीय संरक्षण ने चिकित्सा विज्ञान के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान कीं, जिसके परिणामस्वरूप आयुर्वेद और चिकित्सा साहित्य ने उल्लेखनीय प्रगति की।

गुप्तकालीन समाज में स्वास्थ्य को मानव जीवन का आधार माना जाता था। आयुर्वेदिक चिंतन के अनुसार स्वस्थ शरीर ही व्यक्ति को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति में सक्षम बनाता है। इसी कारण चिकित्सा विज्ञान को केवल रोगों के उपचार तक सीमित न रखकर स्वास्थ्य संरक्षण और रोग-निवारण का भी महत्वपूर्ण साधन माना गया। गुप्तकालीन चिकित्सकों

ने स्वास्थ्य को शरीर, मन और आत्मा के संतुलन से जोड़कर देखा तथा समग्र स्वास्थ्य (Holistic Health) की अवधारणा को व्यवहारिक रूप प्रदान किया। यह दृष्टिकोण आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की समग्र स्वास्थ्य संबंधी अवधारणाओं के साथ भी सामंजस्य स्थापित करता है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल में आयुर्वेद की मूल अवधारणाओं **पंचमहाभूत**, **त्रिदोष, सप्तधातु** और **त्रिमल** को अधिक व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किया गया। रोगों के निदान, उपचार तथा निवारण संबंधी सिद्धांतों का विस्तार हुआ तथा चिकित्सा विज्ञान को एक संगठित स्वरूप प्राप्त हुआ। **नाड़ी परीक्षण, मूत्र परीक्षण, मल परीक्षण, रोगी की प्रकृति का अध्ययन** तथा **मानसिक स्थिति के विश्लेषण** जैसी निदान पद्धतियाँ उस समय के चिकित्सा ज्ञान की उन्नत अवस्था को दर्शाती हैं। साथ ही आहार-विहार, दिनचर्या, ऋतुचर्या और मानसिक संतुलन पर दिया गया बल यह सिद्ध करता है कि गुप्तकालीन चिकित्सा विज्ञान केवल रोगोपचार नहीं, बल्कि स्वस्थ जीवनशैली के निर्माण पर भी केंद्रित था।

गुप्तकाल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में चिकित्सा ग्रंथों का संरक्षण, पुनर्संपादन और विकास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे महान आयुर्वेदिक ग्रंथों का अध्ययन और प्रचार-प्रसार इस काल में व्यापक रूप से हुआ। चरक संहिता ने कायचिकित्सा, रोग विज्ञान, औषध विज्ञान तथा स्वास्थ्य संरक्षण के सिद्धांतों को व्यवस्थित आधार प्रदान किया, जबकि सुश्रुत संहिता ने शल्य चिकित्सा, शरीर रचना विज्ञान, नेत्र चिकित्सा तथा अस्थि चिकित्सा के क्षेत्र में अद्वितीय योगदान दिया। इन ग्रंथों ने भारतीय चिकित्सा विज्ञान को सुदृढ़ सैद्धांतिक आधार प्रदान किया और चिकित्सा शिक्षा को एक व्यवस्थित दिशा दी।

गुप्तकाल में वाग्भट्ट जैसे विद्वानों का योगदान भी अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। उनकी कृतियाँ *अष्टांग संग्रह* और *अष्टांग हृदयम्* ने आयुर्वेद के विभिन्न अंगों को सरल, व्यवस्थित और व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने चरक और सुश्रुत की परंपराओं का समन्वय कर आयुर्वेदिक ज्ञान को अधिक व्यापक और उपयोगी बनाया। उनके ग्रंथों ने चिकित्सा शिक्षा तथा चिकित्सा व्यवहार दोनों को गहराई से प्रभावित किया और आयुर्वेद के विकास को नई दिशा प्रदान की।

औषध विज्ञान के क्षेत्र में भी गुप्तकाल उल्लेखनीय उपलब्धियों का साक्षी रहा। विभिन्न वनस्पतियों, खनिजों और पशु-आधारित पदार्थों से औषधियों का निर्माण किया जाता था। औषधीय पौधों के गुणों का वैज्ञानिक अध्ययन तथा औषध निर्माण की विकसित पद्धतियाँ चिकित्सा विज्ञान की उन्नत अवस्था को दर्शाती हैं। चूर्ण, क्वाथ, अवलेह, घृत, तैल और लेप जैसे औषधीय रूपों का उपयोग उस समय की चिकित्सा व्यवस्था में व्यापक रूप से किया जाता था। यह तथ्य स्पष्ट करता है कि गुप्तकालीन चिकित्सकों को औषध विज्ञान का गहन व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त था।

शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में गुप्तकालीन उपलब्धियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सुश्रुत परंपरा के आधार पर विकसित शल्य चिकित्सा ने भारतीय चिकित्सा विज्ञान को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठा प्रदान की। नाक पुनर्निर्माण (Rhinoplasty), मोतियाबिंद शल्यक्रिया, अस्थिभंग उपचार तथा घाव चिकित्सा जैसी प्रक्रियाएँ उस समय के चिकित्सा विज्ञान की वैज्ञानिकता और प्रायोगिक दक्षता का प्रमाण हैं। शल्य उपकरणों का वर्गीकरण, शरीर रचना विज्ञान का अध्ययन तथा व्यावहारिक प्रशिक्षण पर बल इस बात को सिद्ध करता है कि भारतीय चिकित्सा परंपरा केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं थी, बल्कि प्रयोगात्मक और तकनीकी दृष्टि से भी अत्यंत विकसित थी।

इस अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि गुप्तकाल में चिकित्सा शिक्षा का व्यापक विकास हुआ। गुरु-शिष्य परंपरा के माध्यम से चिकित्सा ज्ञान का संरक्षण और प्रसार किया गया। विद्यार्थियों को चिकित्सा के सैद्धांतिक ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता था। इस प्रकार प्रशिक्षित चिकित्सकों की एक सुदृढ़ परंपरा विकसित हुई, जिसने चिकित्सा विज्ञान के निरंतर विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। विदेशी यात्री फाह्यान के विवरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि उस समय समाज में चिकित्सालयों और धर्मार्थ चिकित्सा संस्थाओं की व्यवस्था थी, जहाँ निर्धनों और रोगियों को निःशुल्क उपचार उपलब्ध कराया जाता था। यह तथ्य गुप्तकालीन समाज की मानवीय संवेदनशीलता तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य के प्रति उसकी जागरूकता को दर्शाता है।

भारतीय चिकित्सा परंपरा की सबसे बड़ी विशेषता उसका समग्र दृष्टिकोण है, जिसमें शरीर, मन और आत्मा को एक-दूसरे से अविभाज्य माना गया है। गुप्तकाल में इस दृष्टिकोण को और अधिक सुदृढ़ता मिली। स्वास्थ्य संरक्षण, रोग-

निवारण, मानसिक संतुलन, नैतिक जीवन और प्राकृतिक जीवनशैली पर बल देकर चिकित्सा विज्ञान को केवल उपचार की प्रणाली न मानकर जीवन-दर्शन के रूप में विकसित किया गया। यही कारण है कि आयुर्वेद आज भी विश्वभर में एक समग्र चिकित्सा प्रणाली के रूप में स्वीकार किया जा रहा है।

गुप्तकाल में विकसित चिकित्सा ज्ञान का प्रभाव केवल भारत तक सीमित नहीं रहा। व्यापारिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संपर्कों के माध्यम से भारतीय चिकित्सा परंपरा का प्रसार चीन, तिब्बत, श्रीलंका, दक्षिण-पूर्व एशिया तथा अरब देशों तक हुआ। इन क्षेत्रों की चिकित्सा प्रणालियों पर भारतीय आयुर्वेदिक ज्ञान का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इस प्रकार गुप्तकालीन चिकित्सा उपलब्धियों ने न केवल भारतीय समाज को लाभान्वित किया, बल्कि वैश्विक चिकित्सा इतिहास को भी समृद्ध किया।

अंततः कहा जा सकता है कि गुप्तकाल भारतीय आयुर्वेद और चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में एक स्वर्णिम युग था। इस काल में चिकित्सा ग्रंथों का संरक्षण, चिकित्सा शिक्षा का विकास, औषध विज्ञान की प्रगति, शल्य चिकित्सा की उन्नति तथा स्वास्थ्य संरक्षण संबंधी सिद्धांतों का विस्तार हुआ। इन उपलब्धियों ने भारतीय चिकित्सा परंपरा को एक मजबूत बौद्धिक और वैज्ञानिक आधार प्रदान किया, जिसका प्रभाव सदियों तक बना रहा। इसलिए गुप्तकाल को भारतीय चिकित्सा विज्ञान और आयुर्वेद के विकास का एक महत्वपूर्ण, गौरवपूर्ण और ऐतिहासिक युग माना जाना चाहिए। यह काल न केवल भारत की वैज्ञानिक उपलब्धियों का प्रतीक है, बल्कि मानव स्वास्थ्य और कल्याण के प्रति भारतीय ज्ञान परंपरा की दूरदर्शिता और वैज्ञानिक चेतना का भी उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ :

उपाध्याय, बलदेव. (2014). *भारतीय दर्शन*. वाराणसी: चौखम्बा ओरिएंटालिया.

गौड़, रामदास. (2016). *आयुर्वेद दर्शन और चिकित्सा विज्ञान*. जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी.

तिवारी, कपिलदेव. (2011). *भारतीय ज्ञान परंपरा और आयुर्वेद*. भोपाल: मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी.

त्रिपाठी, ब्रह्मानंद. (2017). *चरक संहिता (भाग 1 एवं 2)*. वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन.

त्रिपाठी, ब्रह्मानंद. (2018). *सुश्रुत संहिता (हिंदी व्याख्या सहित)*. वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन.

द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (2008). *भारतीय संस्कृति की रूपरेखा*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र. (2004). *प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति*. इलाहाबाद: हिंदी साहित्य सम्मेलन.

पाण्डेय, राजबली. (2010). *हिंदू संस्कार*. वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन.

पाण्डेय, विमलचन्द्र. (2013). *प्राचीन भारत*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.

मित्तल, सतीश चन्द्र. (2012). *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास*. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान.

मिश्र, जयशंकर. (2018). *भारतीय संस्कृति और सभ्यता*. नई दिल्ली: विश्वविद्यालय प्रकाशन.

मिश्र, सत्यनारायण. (2015). *भारतीय चिकित्सा विज्ञान का इतिहास*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

यादव, शिवकुमार. (2015). *आयुर्वेद और भारतीय चिकित्सा परंपरा*. वाराणसी: चौखम्बा प्रकाशन.

विद्यालंकार, सत्यकेतु. (2018). *प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास*. नई दिल्ली: श्री सरस्वती सदन.

शर्मा, ओमप्रकाश. (2017). *गुप्तकालीन भारत*. नई दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय.

शर्मा, प्रियव्रत. (2011). *आयुर्वेद का इतिहास*. वाराणसी: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन.

शर्मा, रामकरण. (2009). *चरक संहिता (हिंदी व्याख्या सहित)*. वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान.

शर्मा, रामविलास. (2001). *भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

शास्त्री, अंबिकादत्त. (2019). *सुश्रुत संहिता*. वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान.

शास्त्री, काशीनाथ, एवं चतुर्वेदी, गोरखनाथ. (2016). *चरक संहिता*. वाराणसी: चौखम्बा भारती अकादमी.

Received: 23.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

'जिंदगी एक जंजीर' उपन्यास में अभिव्यक्त क्वीर की त्रासदी

RESHMA K.R.[*]
reshmakr596@gmail.com

Pro. (Dr.) P. GEETHA[†]
geethavk15@gmail.com

सारांश

हमारे समाज में क्वीर एक ऐसा वर्ग है जो कई वर्षों से अपने मानवाधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है। समाज और परिवार द्वारा उपेक्षित यह वर्ग हाशियाकृत जीवन जीने के लिए मजबूर है। सामाजिक भय के कारण क्वीर समुदाय के अनेक लोग अपने वास्तविक अस्तित्व और पहचान को अपने मन के भीतर ही दबाकर जीवन व्यतीत करते हैं। विषमलैंगिक संबंधों को सामान्य मानने वाला समाज भिन्न लैंगिक रुचि रखने वाले लोगों को मुख्यधारा से अलग कर देता है। 'क्वीर' एक व्यापक शब्द है। इसके अंतर्गत लेस्बियन, गे, बाइसेक्सुअल, ट्रांसजेंडर, इंटरसेक्स आदि समुदाय शामिल हैं। 'जिंदगी एक जंजीर' राकेश शंकर भारती की क्वीर जीवन से जुड़ी एक सशक्त रचना है। इसमें ट्रांसमेन, ट्रांसवुमेन, ट्रांसजेंडर और बाइसेक्सुअल व्यक्तियों की सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस उपन्यास के माध्यम से क्वीर समुदाय के प्रति पाठकों की मानसिकता में सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द *:*

क्वीर, त्रासदी, जंजीर, अल्पसंख्यक, मुख्यधारा समाज, हाशिएकृत जिंदगी, ट्रांसजेंडर, ट्रांसमेन, ट्रांसवुमेन, कानून।

भूमिका

साहित्य के क्षेत्र में इक्कीसवीं सदी बदलाव का युग माना जाता है। उस समय साहित्य में स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, विकलांग विमर्श जैसे अनेक विमर्श उभरकर सामने आये हैं। उनमें प्रमुख है क्वीर विमर्श। क्वीर एक अंग्रेजी शब्द है। इसका मतलब है अजीब, अलग, असाधारण आदि। क्वीर एक छत्र शब्द है। इसके अंतर्गत सारे अल्पसंख्यक आते हैं। जैसे कि लेस्बियन, गे, बाई-सेक्सुअल, ट्रांसजेंडर, इंटरसेक्स, अलैंगिक, पानसेक्सुअल। भारतीय समाज में स्त्री और पुरुष को प्रथम और दूसरी लिंगी के रूप में मान्यता दी गयी है। हमारी सृष्टि के आधार स्तम्भ के रूप में इन दो विपरीत लिंगों को माना जाता है। मुख्यधारा समाज के लोग विषम लैंगिक सम्बन्ध को ही स्वाभाविक मानते हैं। उनसे भिन्न लैंगिक इच्छा रखने वाले लोगों को अस्वाभाविक कहकर समाज से हटाया जाता है। ट्रांसजेंडर एक ऐसा वर्ग है जिनकी जननांग विकलांगता के कारण स्त्री लिंग या पुल्लिंग के कोटि में न आता हो। इस वर्ग को हमारे समाज में हिजड़ा, ट्रांसजेंडर, अरवानी, मंगलमुखी आदि नामों से अभिहित किया जाता है।

ट्रांसजेंडर समुदाय के लोगों को जन्म से लेकर मृत्यु तक मुख्यधारा समाज से कई प्रकार के शोषण को सहना पड़ता है। समाज और परिवार से उपेक्षित वे लोग हाशियेकृत जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। वे तमाम मानवीय अधिकारों से वंचित हैं। ट्रांसजेंडर को मुख्यधारा समाज ने अपनी आवाज़ उठाने का मौका नहीं दिया है। इस तरह समाज में ट्रांसजेंडर की स्थिति बहुत दयनीय है।

'जिंदगी एक जंजीर' राकेश शंकर भारती का ट्रांसमेन पर आधारित हिन्दी का पहला उपन्यास है। ट्रांसजेंडर केन्द्रित उपन्यासों में अधिकतर ट्रांसवुमन को ही चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में ट्रांसमेन की जिंदगी के चित्रण के साथ

---

[*] **Research Scholar, Department of Hindi, Govt. Arts & Science College, Kozhikode, Affiliated To University of Calicut, Kerala, India**

[†] **Research Supervisor & Principal (Retd.), N.S.S. College, Wadakkanchery, Thrissur**

ट्रांसवुमन, ट्रांसजेंडर, उभयलैंगिक का चित्रण भी यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के आरंभ में दलवीर को नायक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। बाद में वह गौण पात्र बन जाता है। उपन्यासकार राकेश शंकर भारती जनकदेव (ट्रांसमेन) को नायक के रूप में इस उपन्यास में प्रस्तुत करते हैं। इस उपन्यास में ट्रांसजेंडर की कथा सीता और रामेश्वरी के वार्तालाप के माध्यम से संस्मरणात्मक रूप में प्रस्तुत की गयी है। उपन्यास के आरंभ में दलवीर और ट्रांसजेंडर सीता की अधूरी प्रेम कथा प्रस्तुत की गयी है। दलवीर पैसा कमाने के लिए जिगोलो का कार्य करता है। उसी समय वह सीता नामक ट्रांसजेंडर के साथ प्रेम और शारीरिक संबंध भी रखता है। कुछ समय के बाद दलवीर हमेशा केलिए सीता को छोडकर विदेश चला जाता है। सीता अपने अधूरे प्रेम के नायक दलवीर के बारे में सोचकर बहुत व्याकुल होती है। वह सोचती है कि- "कब तक मैं अनायास मेरी जिंदगी के आसपास भटकती रहूँगी? दलवीर सैया, तू मुझे छोडकर कितनी दूर जा चुके हो? कब तक तेरी यादों के सहारे यूँ ही जीती रहूँगी? क्या मेरे अधूरे ख्वाब भी मेरे अधूरे जिस्म के साथ इस ज़मीन में दफन हो जायेंगे? ओय दलवीर सैया! जब भी दिल करे, तेरी मर्जी हो तो आ जाना मेरी जिन्दगी में। आज भी मैं तेरे इंतजार में हूँ।"[1] सीता सोचती है कि वह अधूरी देह के साथ इस भूमि में पैदा हुई है लेकिन उसका दिल अधूरा नहीं है। वह सोचती है कि उसका दिल और शरीर पूर्ण रूप से स्त्री के हैं। इस तरह उपन्यास में ट्रांसजेंडर सीता और जिगोलो मर्द दलवीर के अधूरे प्रेम का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया जाता है।

हमारे समाज में ट्रांसजेंडर के लिए सर्वाधिक प्रचलित शब्द है हिजडा। समाज की मुख्यधारा से बहिष्कृत ये लोग सामान्य मनुष्य से अपमान, घृणा, व्यंग्य, उपेक्षा और तिरस्कार सहने को ममज़बूर हैं। उन्हें कभी भी समाज से सम्मान, आदर, सहानुभूति प्राप्त नहीं हुए हैं। इसके कई उदाहरण उपन्यास में हम देख सकते हैं। उपन्यास में रामेश्वरी परिवार में उसके साथ हुए अत्याचार के बारे में ऐसा कहता है कि- "माता पिता मुझे अक्सर मारते-फिरते औ कहते थे कि तुम लड़का हो, लड़के की तरह बर्ताव करो। खाऊँगी, जाऊँगी, आऊँगी करके मत बतियाया करो। उन्हें ऐसा लगता था कि मैं अपनी दोनों बड़ी बहनों की नकल कर रहा हूँ। वे हमारी आँतरिक भावनाओं को रत्ती भर भी समझने की कोशिश नहीं करते थे।"[2]

प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री शरीर में पैदा हुआ जनकदेव अपने स्वत्व के बारे में सोचकर मन को संघर्षमय बनाया है। वह अपने स्वत्व के बारे में ऐसा कहता है- "जब मैं छः साल का था तो मुझे ऐसी अनुभूति होने लगी कि मैं धोखे से गलत शरीर में पैदा हो गया हूँ और मुझे यह जिन्दगी नहीं जीनी है। शुरु से ही मुझे लड़कियों के कपडे पहनना पसंद नहीं था। लड़कियों की तरह बात नहीं करती था।"[3] जनकदेव (जानकी) को कुछ समय के बाद एहसास होने लगा कि वह लड़कों से भी अलग है। उस समय वह सोचता है कि भगवान ने मेरे साथ इस तरह अन्याय क्यों किया? यह सोचकर वह सारे दिन रोता था। कुछ साल के बाद उसको मासिक धर्म शुरु होता है। इस विषय पर वह ऐसा कहता है कि- "जब मासिक धर्म होना शुरु हुआ और स्तन का सर्वांगीण विकास होने शुरु हुआ तो मैं उतना ज़्यादा डिप्रेशन में जाने लगा कि मैं इन तकलीफों को शब्दों में बयान नहीं कर सकता हूँ। ऐसे कि हमारे शरीर की मासिक पुनरावृत्ति होती है, क्योंकि मैं तो शारीरिक रूप से एक लड़की ही था और मुझे लड़के जैसी पूरी अनुभूति होती थी। मैं मानसिक और हार्दिक रूप से एक लड़का था। शरीर और मन का आपस में दूर-दूर तक कोई तालमेल ही नहीं था। मुझे ऐसा लगने लगा कि किसी ने मुझे जबरदस्ती इस शरीर में डाल दिया है।"[4] इस तरह उपन्यास में ट्रांसमेन के आत्मसंघर्ष को चित्रित किया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास में जनकदेव को अपने दोस्तों से कई प्रकार के यौन शोषण सहन करने पड़ते हैं। इस विषय के बारे में जनकदेव गुरु रूपमती माई से ऐसा कहता है कि- "गुरु माई, हम ट्रांसजेंडर भी अभागे होते हैं; इसलिए तो हमारा अतीत कभी भी हमारा पीछा नहीं छोड़ता है। ग्यारहवीं क्लास की बात है, स्कूल के दिनों से जिन्हें अपना भाई मानता था, लंगोटिया यार मानता था इतनी इज्ज़त करता था, उन्हें जब पता चला कि मैं मर्द के भेष में एक औरत हूँ तो मेरे प्रति उनका रवैया ही बदल गया। एक अंधेरी शाम को जब क्लास से घर आ रहा था तो इन्हीं तीन दोस्तों ने मेरे साथ धोखा किया। घूमने के बहाने से पार्क में ले गये और वहीं सुनसान जगह मिलने पर मेरे साथ दुष्कर्म कर दिया।"[5] इस बलात्कार से जानकी जनकदेव को एक संतान भी होती है। उसके बाद जानकी के जीवन की समस्यायें और अधिक बढ़ जाती हैं। वह आपरेशन के द्वारा जानकी से जनकदेव बन जाता है। कई संघर्षों का सामना करते हुए जिन्दगी में आगे जाकर मुख्यधारा समाज में स्थान प्राप्त करता है। इस तरह जनकदेव एक वकील बन जाता है। इस तरह उपन्यास में ट्रांसमेन के संघर्षमय जीवन को चित्रित किया गया है।

स्त्रियों और पुरुषों से समान रूप से शारीरिक और मानसिक आकर्षण रखनेवाले व्यक्ति को बाई-सेक्सुअल अथवा उभयलैंगिक कहते हैं। उभयलैंगिक पात्रों का चित्रण भी उपन्यास में माधव और दलवीर के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। बचपन से जवानी होने तक वे एक दूसरे से बहुत प्रेम करते थे। वे दोनों विवाह करके इस समाज में पति-पत्नी के रूप में रहना भी चाहते थे

लेकिन कुछ साल के बाद बालदेव को फौज में नौकरी मिल जाती है। नौकरी में जाने से पहले बालदेव ने माधव से वादा किया था कि- "मैं ज़रूर वापस आऊँगा और एक दिन इस समाज और इस देश के कायदे कानून से लड़कर तुझे अपनाऊँगा। मैं तुझसे शादी करूँगा। इस समाज से बताऊँगा कि हम दोनों एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते है।"[6] लेकिन बालदेव उसको दिया हुआ वादा भूलकर पिताजी के कहने के अनुसार भागेश्वरी नामक एक युवती से विवाह करता है। विवाह के एक दिन पहले माधव दलवीर के पास आकर ऐसा कहता है कि, "बालदेव तूने झूठा वादा क्यों किया था? जबकि तुझे पता था कि ऐसा नामुमकिन वादा कभी पूरा नहीं हो सकता है। मैं ढ़ाई सालों तक यह सोचकर तड़पता रहा कि गाँव लौटने पर तुम मेरे साथ रहोगे।"[7] बालदेव को समाज और परिवार से लड़कर माधव के साथ विवाह करने का धैर्य नहीं था क्योंकि मुख्यधारा समाज से मिलनेवाले बहिष्कार के डर से वह अपने प्रेम को छोडता है। इस तरह उपन्यास में उभयलैंगिक पात्र बालदेव और माधव की अधूरी प्रेम कहानी को भी चित्रित किया गया है।

हमारे समाज में एक ट्रांसजेंडर बच्चें को सामान्य बच्चे की तरह मुख्यधारा समाज और परिवार में स्थान प्राप्त नहीं होता है। परिवारवाले उस बच्चे के माँ बाप को ही दोषी कहेंगे। इसका परिणाम यह होता है कि सामान्य बच्चे की तरह प्यार और संरक्षण एक ट्रांसजेंडर बच्चे को प्राप्त नहीं होते है। कभी-कभी अपने माँ-बाप से ही एक ट्रांसजेंडर को मानसिक और शारीरिक शोषण सहना पड़ता है। इसका अच्छा उदाहरण सीता की जिंदगी है।

एक दिन सीता अपनी माँ से पूछती है कि क्यों मेरे साथ आप एक सौतेली माँ की तरह बुरे व्यवहार करती हैं? उसका जवाब माँ गुस्से में ऐसा देती है कि- "भगवान ने तुझे ऐसा बनाकर ही भेजा है। तेरी वजह से इस परिवार में मुझे भी गाली पड़ती है, मानो मैंने तुझे जन्म देकर सबसे बड़ा पाप किया है। मेरे सास-ससुर, ननद, देवर सभी मुझे गाली देते हैं कि मेरी कोख अशुभ है, जली हुई है क्योंकि इस कोख से किसी ट्रांसजेंडर की पैदाइश हुई है।"[8] इस तरह उपन्यास में लेखक ने ट्रांसजेंडर के प्रति समाज और परिवार की संकुचित मानसिकता को चित्रित किया है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'जिंदगी एक जंजीर' राकेश शंकर भारती की एक क्वीर जीवन से जुड़ी हुई एक सशक्त रचना है। वर्तमान समय में क्वीर समुदाय के जीवन में धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहे हैं। वे लोग मुख्यधारा समाज में अपने लिए एक स्थान बनाने के लिए प्रयास कर रहे हैं। इसके फलस्वरूप क्वीर समुदाय के लोग समाज के हर एक क्षेत्र में अपने लिए एक स्थान हासिल करके आगे बढ़ रहे हैं। उनकी उन्नति और विकास के लिए कई संघटन मौजूद हैं। फिर भी उनके प्रति आम जनता की मानसिकता में बदलाव आना बहुत ज़रूरी है क्योंकि वे लोग भी हमारी तरह मनुष्य हैं। उन्हें मुख्यधारा समाज से निष्कासित करना गलत है। सामान्य जनता को मिलनेवाली सुख-सुविधाएँ उनको भी ज़रूर मिलनी चाहिए।

सन्दर्भ

1. भारती, राकेश शंकर. (2022). *जिंदगी एक जंजीर*. डायमंड बूक. पृ. 60
2. भारती, राकेश शंकर. (2022). *जिंदगी एक जंजीर*. डायमंड बूक. पृ. 113
3. भारती, राकेश शंकर. (2022). *जिंदगी एक जंजीर*. डायमंड बूक. पृ. 111
4. भारती, राकेश शंकर. (2022). *जिंदगी एक जंजीर*. डायमंड बूक. पृ. 114
5. भारती, राकेश शंकर. (2022). *जिंदगी एक जंजीर*. डायमंड बूक. पृ. 222
6. भारती, राकेश शंकर. (2022). *जिंदगी एक जंजीर*. डायमंड बूक. पृ. 137
7. भारती, राकेश शंकर. (2022). *जिंदगी एक जंजीर*. डायमंड बूक. पृ. 138
8. भारती, राकेश शंकर. (2022). *जिंदगी एक जंजीर*. डायमंड बूक. पृ. 158

सहायक सन्दर्भ

डागा, शीला. (2020). *किन्नर गाथा*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

बिश्नोई, मिलन (सं.). (2018). *किन्नर विमर्श: साहित्य और समाज*. कानपुर: विद्या प्रकाशन.

मेहरा, दिलीप. (2019). *हिंदी साहित्य में किन्नर जीवन*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

वनजा, के. (2021). *क्वीर विमर्श*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

Received: 24.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति प्रवासी अभिभावकों की जागरूकता का अध्ययन

प्रद्युम कुमार*
pradyumk344@gmail.com

सार

प्रस्तुत अध्ययन "शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के प्रति प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों की जागरूकता" विषय पर केंद्रित है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम भारत में 6 से 14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का संवैधानिक अधिकार प्रदान करता है। इस शोध का उद्देश्य "शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के प्रति प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों की जागरूकता" का मूल्यांकन करना है। अध्ययन 20 प्रवासी अभिभावकों के आंकड़ों पर आधारित है। शोध में जागरूकता मापनी(रेटिंग स्केल)का उपयोग करते हुए वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि अपनाई गई। यह अध्ययन मात्रात्मक है, जिसमें अभिभावकों के उत्तरों का स्कोरिंग (सहमत = 2, तटस्थ = 0, असहमत = 1) किया गया। प्रतिशत विश्लेषण से पता चला कि 40.4% अभिभावक तटस्थ श्रेणी में हैं, जो शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रावधानों की जानकारी अपूर्ण या अस्पष्ट होने का संकेत देता है। केवल 35% अभिभावक सहमत/जागरूक पाए गए, जबकि 24.6% अभिभावक अधिनियम के प्रावधानों से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं। लिंग के आधार पर स्वतंत्र टी-परीक्षण लागू करने पर पुरुष अभिभावकों का औसत स्कोर स्त्री अभिभावकों की तुलना में अधिक पाया गया, और अंतर सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण था। साथ ही स्थान (ग्रामीण–शहरी) के आधार पर तुलनात्मक में भी कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अध्ययन यह दर्शाता है कि प्रवासी अभिभावकों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की जागरूकता सीमित है। इसलिए समुदाय-स्तरीय जागरूकता कार्यक्रम और परामर्श सत्र, विशेषकर स्त्री अभिभावकों के लिए, आवश्यक हैं, ताकि सभी बच्चों को अधिकार-आधारित एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित की जा सके।

मुख्य शब्द (Keywords):

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, प्रवासी विद्यार्थी, अभिभावक जागरूकता, वर्णनात्मक सर्वेक्षण, मात्रात्मक अध्ययन, , टी-परीक्षण, स्थान आधारित विश्लेषण, जागरूकता मापनी(रेटिंग स्केल)

प्रस्तावना

हर देश का भविष्य उसके बच्चों के हाथों में होता है और निरक्षरता उनके विकास के मार्ग में एक प्रमुख बाधा है। गुणवत्ता, समानता और सुलभता के साथ सार्वभौमिक शिक्षा, किसी भी राष्ट्र की भावी समृद्धि प्राप्त करने की दिशा में एक बड़ा कदम हो सकती है। शिक्षा इस प्रकार दी जानी चाहिए कि बच्चे उसका वास्तविक लाभ उठा सके।

एतिहासिक परिप्रेक्ष्य

1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति पहला आधिकारिक दस्तावेज था, जिसने प्राथमिक शिक्षा के प्रति भारत सरकार की प्रतिबद्धता को दर्शाया। इसके बाद 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस पर और अधिक जोर दिया गया। राममूर्ति समिति रिपोर्ट – 1990 में शिक्षा के अधिकार पर पहला आधिकारिक दस्तावेज था, जिसमें गुणवत्ता एवं सर्वसुलभ प्राथमिक शिक्षा पर बल दिया गया।1990 में नीति की समीक्षा के दौरान शिक्षा के अधिकार को संविधान में एक मौलिक अधिकार के रूप में शामिल करने की सिफारिश की गई, जिसके आधार पर 1992 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति तैयार की गयी। राममूर्ति समिति रिपोर्ट 1990 में

* **बी.एड.-एम.एड. (एकीकृत), शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतर राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

शिक्षा के अधिकार पर पहला आधिकारिक दस्तावेज था, जिसमें गुणवत्ता एवं सर्वसुलभ प्राथमिक शिक्षा पर बल दिया गया। उन्नीकृष्णन जेपी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य मामला – 1993 सर्वोच्च न्यायालय का ऐतिहासिक निर्णय लिया गया और कहा कि शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 21 के अंतर्गत एक मौलिक अधिकार हैं। तपस मजूमदार समिति 1999 में शिक्षा के अधिकार को संविधान में स्पष्ट रूप से शामिल करने की सिफारिश की। नए अनुच्छेद 21(क) जोड़ने का प्रस्ताव दिया गया। 86वाँ संवैधानिक संशोधन 2002 शिक्षा के अधिकार को संविधान के भाग III (मौलिक अधिकारों) में सम्मिलित किया गया। अनुच्छेद 21(A) जोड़ा गया, जिसके अंतर्गत 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा एक मौलिक अधिकार बना दिया गया। शिक्षा का अधिकार अधिनियम – 2009 के अनुच्छेद 21(A) के अनुपालन हेतु शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 पारित किया गया। इसके अंतर्गत बच्चों के लिए विद्यालय में प्रवेश, नि:शुल्क शिक्षा, मध्यान्ह भोजन, पुस्तकें, समान अवसर, प्रशिक्षित शिक्षक आदि के प्रावधान किए गए। अधिनियम का क्रियान्वयन 1 अप्रैल 2010 को शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 पूरे देश में लागू हो गया। कुमार.(2012) के अनुसार –"शिक्षा का अधिकार अधिनियम एक ऐसा संवैधानिक प्रयास है जिसका उद्देश्य प्रत्येक बच्चे को बिना किसी भेदभाव के समान, गुणवत्तापूर्ण और सुलभ शिक्षा प्रदान करना है।"

साहित्य समीक्षा

अग्रवाल (2010) इन्होंने अपना शोध पत्र में पाया कि विद्यार्थियों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरूकता सामान्य स्तर की है। कुछ विद्यार्थी इस अधिकार को अपने लिए उपयोगी नहीं समझते हैं।

कुमार एवं शर्मा (2011) ने अपने शोध पत्र में पाया कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति अध्यापकों के जागरूकता अभिभावकों से उच्च है।

अंबेडकर (2012) ने निष्कर्ष रूप में पाया कि विधि स्तर के आधार पर दृष्टिकोण एवं जागरूकता में अंतर पाया गया। अतः अध्यापकों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के विधान के प्रति दृष्टिकोण एवं जागरूकता में अंतर है।

गांधी एवं यादव (2013) ने अपने अध्ययन में पाया के पुरुष और महिला का प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के बीच शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर है। साथ ही सरकारी विद्यालयों में कार्यरत पुरुष और महिला शिक्षकों के जागरूकता में भी सार्थक अंतर पाया गया है।

इस्लाम एवं चक्रवर्ती (2013) ने अध्ययन में पाया कि समान और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के प्रति सेवारत शिक्षकों के जागरूकता में लिंग के आधार पर सार्थक अंतर पाया गया।वहीं भौगोलिक स्थान के आधार पर सार्थक अंतर नहीं पाया गया। विषय के आधार पर भी सार्थक अंतर नहीं देखा गया।

मालिक एवं अन्य (2013) इन्होंने निष्कर्ष रूप में पाया कि ग्रामीण पुरुष और महिला भावी शिक्षकों के बीच शिक्षा का अधिकार अधिनियम के प्रति जागरूकता में अंतर सार्थक अंतर नहीं है। साथ ही शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही स्तरों पर लिंग के आधार पर जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं पाया गया।

मालिक एवं सिरोही (2013) ने निष्कर्ष में पाया कि महिला एवं पुरुष तथा शहरी एवं ग्रामीण आधार पर शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के संबंध में भविष्य के अध्यापकों के जागरूकता स्तर में सार्थक अंतर नहीं है।

लाल (2013) ने निष्कर्ष रूप में पाया कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रतिभागी पुरुष अध्यापकों में जागरूकता का अनुकूल स्तर पाया गया। जबकि महिला शिक्षकों में जागरूकता का निम्न स्तर पाया गया। इस अधिनियम के प्रति शहरी एवं ग्रामीण भावी शिक्षकों पुरुष एवं महिला के मध्य जागरूकता में अंतर नहीं प्राप्त हुआ।

ठाकुर (2014) ने निष्कर्ष में प्रारंभिक स्तर के प्रशिक्षित अध्यापकों में जागरूकता स्तर निम्न पाया गया। ग्रामीण तथा शहरी अंचल के प्रशिक्षित अध्यापकों के मध्य थोड़ा अंतर पाया गया,जिसमें शहरी शिक्षक ग्रामीण शिक्षकों की अपेक्षा थोड़े जागरुक हैं।

सिंह (2014) इन्होंने अपने शोध में पाया कि शहरी अंचल के पुरुष शिक्षक ग्रामीण शिक्षकों की अपेक्षा अधिक जागरूक हैं। ग्रामीण अंचल के अध्यापकों तथा अध्यापिकाओं के जागरूकता में अंतर नहीं है। शहरी एवं ग्रामीण पुरुष शिक्षकों के मध्य जागरूकता में अंतर नहीं प्राप्त हुआ,जबकि ग्रामीण अंचल के शिक्षिकाएं शहरी शिक्षकों से अधिक जागरूक हैं।

सिंह एवं सागर (2019) ने पाया कि बेसिक के उच्च प्राथमिक के अध्यापक ज्यादा जागरुक है अपेक्षाकृत माध्यमिक (यू.पी. बोर्ड) के अध्यापकों तथा सीबीएसई के अध्यापकों से। अपर प्राइमरी स्कूल के पुरुष एवं महिला अध्यापकों में जागरूकता स्तर सामान पायी गयी।

शोध क्रिया विधि

शोध प्रश्न:-शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावक कितने जागरूक हैं?

शोध उद्देश्य :- प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों की शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 (RTE Act 2009) के मुख्य प्रावधानों के प्रति जागरूकता के स्तर का मूल्यांकन करना।

शोध परिकल्पना:-

H_0: प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर नहीं है।

H_1: प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरूकता में सार्थक अंतर हैं।

शोध अभिकल्प :

शोध का प्रकार (Type of Research): शोध की प्रकृति मात्रात्मक है, जिसमें वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया हैं। जनसंख्या: प्रस्तुत शोध में शोधार्थी द्वारा महाराष्ट्र राज्य के प्रवासी विद्यार्थियों को लिया जाएगा।

प्रतिदर्श एवं आकर : प्रस्तुत शोध में शोधार्थी द्वारा महाराष्ट्र राज्य के वर्धा जिले के वर्धा तहसील के प्रवासी विद्यार्थियों को लिया जाएगा। शोध उपकरण प्रवासी अभिभावकों जागरूकता मापने हेतु पांच आयामों को आधार मानकर स्वनिर्मित जागरूकता मापनी(रेटिंग स्केल)का निर्माण किया गया हैं।

प्रदत्त विश्लेषण की तकनीकी

प्राप्त प्रदत्त के विश्लेषण हेतु प्रतिशत तकनीकी का उपयोग किया गया –

आयाम के आधार पर कथनों का विभाजन

क्र. सं.	आयाम	कथन की कुल संख्या
1	संवैधानिक	5
2	सार्वभौमिक पहुंच	5
3	नि:शुल्क	6
4	समानता	6
5	गुणवत्ता	3

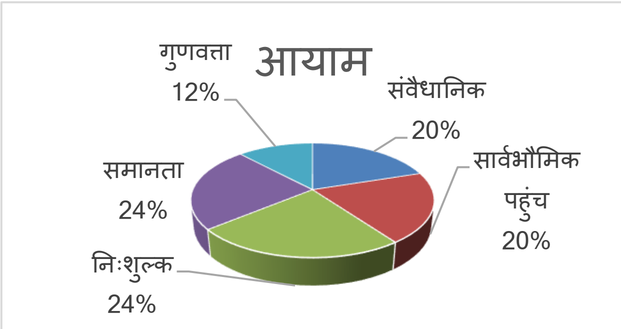

संवैधानिक आयाम

क्र.सं.	सहमत	तटस्थ	असमहत
1	9	11	
2	18	2	
3	14	5	1
4		12	8
5	3	1	16
कुल	44	31	25=100

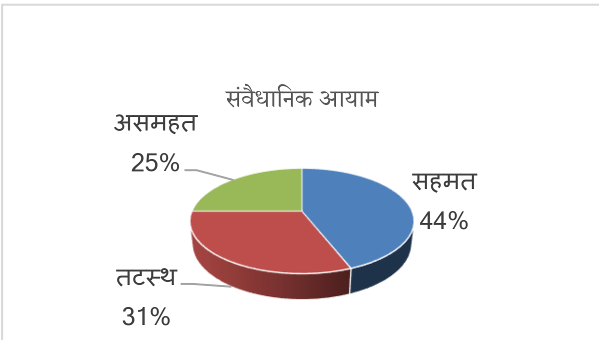

उर्युक्त प्रदत्तों के पाँच कथनों के आधार पर प्रतिशत विश्लेषण

सहमत (44%) लगभग आधे अभिभावक यह मानते हैं कि वे शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रावधानों (मुफ़्त शिक्षा, 6–14 आयु अधिकार आदि) के प्रति जागरूक हैं। यह प्रवासी परिवारों में मध्यम स्तर की जागरूकता को दर्शाता है। 31% तटस्थ प्रतिशत उच्च है, जो दर्शाता है कि या तो अभिभावकों की जानकारी अधूरी है या उन्हें कानून के बारे में स्पष्ट समझ नहीं है। यह अविकसित जागरूकता की निशानी है। वहीं असहमत (25%) अभिभावक स्पष्ट रूप से शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के बारे में अनजान है। कुल जागरूकता स्तर 56.5% है, जो "मध्यम स्तर की जागरूकता" का प्रतिनिधित्व करता है। 31% तटस्थ अभिभावक बताते हैं कि सूचनाओं तक पहुँच, मार्गदर्शन, और शिक्षा विभाग द्वारा जागरूकता अभियान कमज़ोर हैं। 25% असहमत की संख्या यह दर्शाती है कि बड़ी संख्या में प्रवासी परिवारों को मूलभूत अधिकारों की जानकारी भी नहीं हैं। अतः प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की समझ पर्याप्त नहीं है और इसे बढ़ाने की आवश्यकता है।

सार्वभौमिक पहुंच आयाम

क्र.सं.	सहमत	तटस्थ	असमहत
6	14	6	
7		10	10
8	6	14	
9	5	10	5
10	9	11	
कुल	34	51	15=100

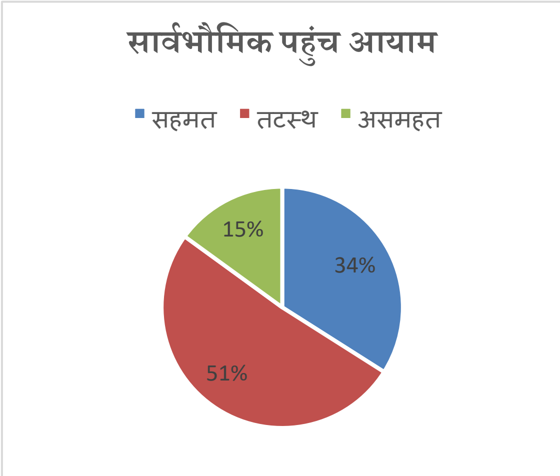

उपर्युक्त प्रदत्तों के पाँच कथनों के आधार पर प्रदत्त विश्लेषण

जागरूकता स्तर 41.5%, जो कि निम्न–मध्यम स्तर की जागरूकता को दर्शाता है। अभिभावकों का बड़ा हिस्सा (51%) तटस्थ है, जो बताता है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के बारे में स्पष्ट और व्यवस्थित जानकारी की कमी है। सहमत 34% और असहमत 15% के आँकड़े मिलकर सिद्ध करते हैं कि प्रवासी समुदाय तक शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की जानकारी प्रभावी ढंग से नहीं पहुँच पाई है। अतः यह शोध संकेत करता है कि जागरूकता अभियान, अभिभावक बैठकें, दस्तावेज़ी सहायता और सामुदायिक शिक्षा कार्यक्रमों की आवश्यकता है।

नि:शुल्क संबंधित आयाम

क्र.सं.	सहमत	तटस्थ	असमहत
11	4	8	8
12	10	7	3
13	4	7	9
14	7	8	5
15	7	13	
16	8	11	1
कुल	40	54	26

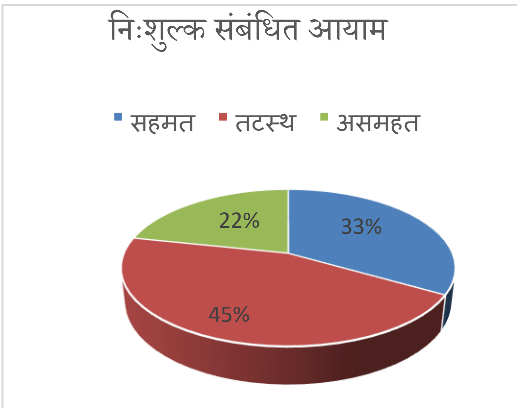

उपर्युक्त प्रदत्तों के छः कथनों के आधार पर जागरूकता स्तर 44.1% है, जो स्पष्ट रूप से बताता है कि प्रवासी अभिभावकों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम—2009 के प्रति जागरूकता कम है। 45% तटस्थ अभिभावक दर्शाते हैं कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के बारे में सूचना का अभाव है। सहमत (33%) और असहमत (22%) के आँकड़े

बताते हैं कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम की जानकारी संतोषजनक स्तर तक नहीं पहुँची है। अतः प्रवासी समुदायों तक शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 जागरूकता कार्यक्रमों की पहुँच अत्यंत सीमित है।

समानता संबंधित आयाम

क्र.सं.	सहमत	तटस्थ	असमहत
17	2	9	9
18	7	9	4
19	6	7	7
20	14	6	
21	1	7	12
22	18	2	
कुल	48	40	32=120

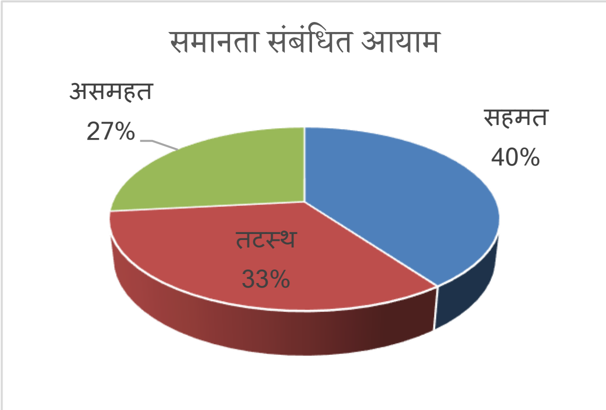

उपर्युक्त प्रदत्तों के छः कथनों के आधार पर प्रतिशत विश्लेषण का जागरूकता स्तर 53.3% दर्शाता है कि प्रवासी अभिभावकों की शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति मध्यम स्तर की जागरूकता है। तटस्थ और असहमत श्रेणी (40%) बताती है कि आधे से अधिक अभिभावकों में अभी भी स्पष्ट जानकारी का अभाव है। प्रवासी परिवारों तक शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 जागरूकता कार्यक्रम पर्याप्त रूप से नहीं पहुँच रहे हैं। अत: विद्यालय, पंचायत और स्थानीय संस्थाओं द्वारा जागरूकता प्रयास बढ़ाने की बेहद आवश्यकता है।

गुणवत्ता संबंधी

क्र.सं.	सहमत	तटस्थ	असमहत
23	2	2	16
24	5	13	2
25	2	11	7
कुल	9	26	25=60

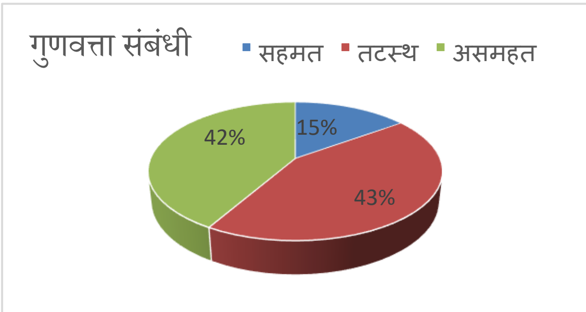

उपर्युक्त तीन कथनों का आधार पर प्रदत्त विश्लेषण में जागरूकता स्तर 35.8%, जो बहुत कम स्तर दर्शाता है। तटस्थ और असहमत कुल मिलाकर 66%, यानी अधिकांश अभिभावक शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 से अनभिज्ञ हैं।

वस्तुतः प्रवासी परिवारों तक सरकारी योजनाओं और शिक्षा के अधिकार कानून की जानकारी पर्याप्त रूप से नहीं पहुँच पाती। अत:तत्काल जागरूकता कार्यक्रमों की बेहद आवश्यकता है।

कुल बीस प्रदत्तों एवं पच्चीस कथनों के आधार पर प्रतिशत विश्लेषण

क्र.सं.	सहमत	तटस्थ	असमहत
1	44	31	25
2	34	51	15
3	40	54	26
4	48	40	32
5	9	26	25
कुल	175	202	123

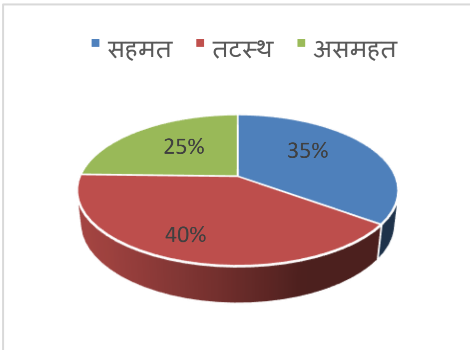

सभी प्रदत्त यानी पच्चीस कथनों एवं बीस प्रदत्तों के आधार पर प्रतिशत विश्लेषण में पाया गया कि 40.4% अभिभावक न तो पूरी तरह जागरूक हैं न अंजान– वे तटस्थ श्रेणी में आते हैं। 35% अभिभावक शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 से

सहमत/जागरूक दिखे। 24.6% अभिभावक जागरूकता की कमी (असहमति) दर्शाते हैं। इससे स्पष्ट है कि जागरूकता का स्तर उच्च नहीं है, लगभग आधे अभिभावक पूर्ण जानकारी नहीं रखते। वस्तुतः प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 को लेकर सम्यक जागरूकता का अभाव है। तटस्थ उत्तरों की संख्या सर्वाधिक होने से पता चलता है कि अधिकांश अभिभावकों को शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की जानकारी या तो अस्पष्ट है या अपूर्ण। सहमत उत्तर 35% होने से यह संकेत मिलता है कि केवल एक तिहाई अभिभावक ही उचित रूप से जागरूक हैं। असहमत उत्तर (24.6%) बताता है कि एक बड़ा समूह शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रावधानों से पूर्णतः अनभिज्ञ है। इससे स्पष्ट है कि जागरूकता का स्तर उच्च नहीं है, लगभग आधे अभिभावक पूर्ण जानकारी नहीं रखते। अतः इन्हें जागरूक करना अति आवश्यक हैं।

स्त्री एवं पुरुष के आधार पर

क्र.सं.	वर्ग	सहमत	तटस्थ	असमहत	कुल
1	स्त्री	77	64	9	150
2	पुरुष	158	144	48	350
कुल		235	208	57	500

स्त्रियों का प्रतिशत विश्लेषण

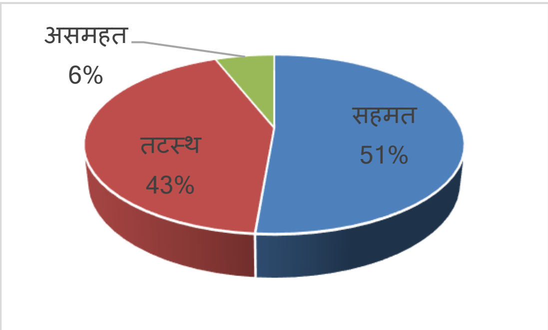

पुरुषों का प्रतिशत विश्लेषण

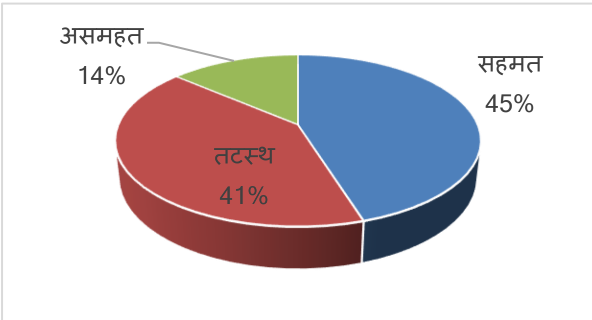

टी परीक्षण

क्रम संख्या	स्कोरिंग	स्त्री	पुरुष
1	सहमत	77	158
2	तटस्थ	64	144
3	असहमत	9	48
4	माध्य	1.08	1.04
5	S.D.	0.964	0.927
6	df	498	
7	T.V.	1.96	
8	C.V.	0.685	

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरूकता के स्कोर निम्नानुसार प्राप्त हुए—

स्त्री अभिभावक Mean = 1.0867

पुरुष अभिभावक Mean = 1.040

t-value = 0.502

df ≈ 498

$p > 0.05$

स्त्री और पुरुष अभिभावकों के जागरूकता स्तर में किसी भी प्रकार का सार्थक अंतर नहीं पाया गया। दोनों समूह शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति लगभग समान रूप से जागरूक हैं।

ग्रामीण एवं शहरी के आधार पर

क्र.सं.	वर्ग	सहमत	तटस्थ	असमहत	कुल
1	ग्रामीण	162	123	40	325
2	शहरी	83	72	20	175
कुल		245	195	60	500

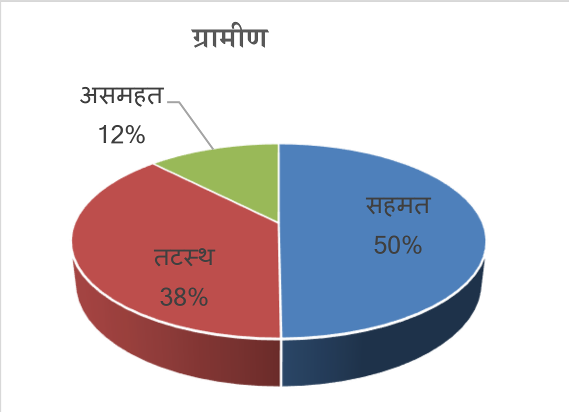

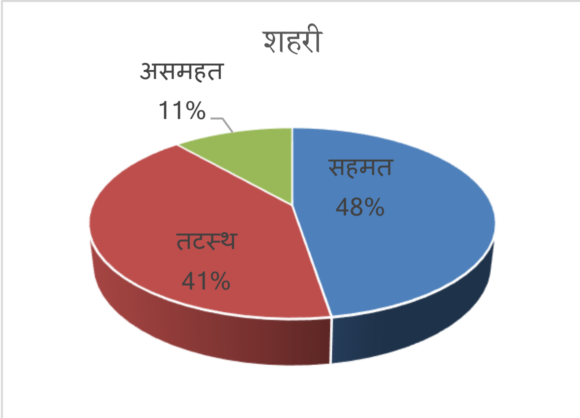

टी.परीक्षण

क्रम संख्या	स्कोरिंग	ग्रामीण	शहरी
1	सहमत	162	83
2	तटस्थ	123	72
3	असहमत	40	20
4	माध्य	1.12	1.06
5	S.D.	0.928	0.938
df		498	
C.V.		685	
T.V.		1.96	

ग्रामीण एवं शहरी अभिभावकों का परिणाम

ग्रामीण और शहरी अभिभावकों के उत्तरों को 3-बिंदु स्कोरिंग प्रणाली
(सहमत = 2, तटस्थ = 0, असहमत = 1) के आधार पर परिवर्तित किया गया।
ग्रामीण समूह का माध्य (Mean) = 1.12
शहरी समूह का माध्य (Mean) = 1.063

t-value = 0.648

df = 498
$p > 0.05$

ग्रामीण और शहरी अभिभावकों के बीच शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरूकता में कोई सांख्यिकीय रूप से सार्थक अंतर नहीं पाया गया। दोनों समुदायों में जागरूकता स्तर लगभग समान है।

परिणाम

40.4% अभिभावक न तो पूरी तरह जागरूक हैं न अंजान– वे तटस्थ श्रेणी में आते हैं।
35% अभिभावक शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 से सहमत/जागरूक दिखे।
24.6% अभिभावक जागरूकता की कमी (असहमति) दर्शाते हैं।

अतःप्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरूकता मध्यम स्तर की पाई गई।

RTE जागरूकता के स्कोर प्राप्त हुए—

स्त्री अभिभावक Mean = 1.0867

पुरुष अभिभावक Mean = 1.040

t-value = 0.502

df $\approx$ 498

$p > 0.05$

स्त्री और पुरुष अभिभावकों के जागरूकता स्तर में किसी भी प्रकार का सार्थक अंतर नहीं पाया गया। दोनों समूह शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति लगभग समान रूप से जागरूक हैं।

ग्रामीण एवं शहरी अभिभावकों का परिणाम

ग्रामीण और शहरी अभिभावकों के उत्तरों को 3-बिंदु स्कोरिंग प्रणाली

(सहमत = 2, तटस्थ = 0, असहमत = 1) के आधार पर परिवर्तित किया गया।

ग्रामीण समूह का माध्य (Mean) = 1.12

शहरी समूह का माध्य (Mean) = 1.063

t-value = 0.648 , df = 498 , $p > 0.05$

ग्रामीण और शहरी अभिभावकों के बीच शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरूकता में कोई सांख्यिकीय रूप से सार्थक अंतर नहीं पाया गया। दोनों समुदायों में जागरूकता स्तर लगभग समान है।

संप्राप्ति एवं चर्चा

प्रतिशत विश्लेषण के आधार पर प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरूकता मध्यम स्तर की पाई गई। क्षेत्र (ग्रामीण–शहरी) जागरूकता स्तर को प्रभावित नहीं करता—दोनों का स्तर लगभग बराबर है। लिंग (स्त्री–पुरुष) के आधार पर भी जागरूकता में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। अर्थात् शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की जानकारी का प्रसार सभी वर्गों तक समान रूप से पहुँच रहा है, परंतु जागरूकता का स्तर अभी भी उच्च नहीं है।

चर्चा; वस्तुतः प्रस्तुत अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट होता है कि प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरूकता का स्तर अपेक्षाकृत बहुत कम है। सभी प्रदत्तों का विश्लेषण दर्शाता है कि

प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम के प्रति जागरूकता निम्न से मध्यम स्तर की है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रवासी समुदाय तक शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की जानकारी पर्याप्त रूप से नहीं पहुँच पायी हैं। सहमत श्रेणी में कम संख्या तथा तटस्थ व असहमत उत्तरों का उच्च प्रतिशत इस बात को दर्शाता है कि अधिकांश अभिभावक शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रावधानों से परिचित नहीं हैं। प्रवासी परिवारों का बार-बार स्थान परिवर्तन, आर्थिक अस्थिरता, कम शैक्षिक स्तर तथा स्थानीय प्रशासन और विद्यालय द्वारा जानकारी का सीमित प्रसार प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं। तटस्थ उत्तरों की अधिकता यह दर्शाती है कि अभिभावकों को आंशिक अथवा अस्पष्ट जानकारी तो है, परंतु स्पष्ट समझ का अभाव है। यह स्थिति पूर्ववर्ती अध्ययनों के अनुरूप है, जिनमें प्रवासी समुदायों में शिक्षा-संबंधी जागरूकता कम पाई गई। अतःअध्ययन यह इंगित करता है कि शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की प्रभावी क्रियान्वयन हेतु जागरूकता कार्यक्रमों, सामुदायिक सहभागिता और विद्यालय स्तर पर सूचना प्रसार को और अधिक सशक्त करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

अतः कहा जा सकता है कि प्रतिशत विश्लेषण के अधर पर पाया गया कि 40.4% अभिभावक न तो पूरी तरह जागरूक हैं न अंजान– वे तटस्थ श्रेणी में आते हैं। 35% अभिभावक शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 से सहमत/जागरूक दिखे। 24.6% अभिभावक जागरूकता की कमी (असहमति) दर्शाते हैं। इससे स्पष्ट है कि जागरूकता का स्तर उच्च नहीं है, लगभग आधे अभिभावक पूर्ण जानकारी नहीं रखते। वस्तुतः प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 को लेकर सम्यक जागरूकता का अभाव है। तटस्थ उत्तरों की संख्या सर्वाधिक होने से पता चलता है कि अधिकांश अभिभावकों को शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 की जानकारी या तो अस्पष्ट है या अपूर्ण। सहमत उत्तर 35% होने से यह संकेत मिलता है कि केवल एक तिहाई अभिभावक ही उचित रूप से जागरूक हैं। असहमत उत्तर (24.6%) बताता है कि एक बड़ा समूह शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रावधानों से पूर्णतः अनभिज्ञ है।

प्रस्तुत अध्ययन "शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के प्रति प्रवासी विद्यार्थियों के अभिभावकों की जागरूकता" का उद्देश्य स्त्री एवं पुरुष अभिभावकों के बीच जागरूकता स्तर का भी तुलनात्मक विश्लेषण करना था। निर्धारित स्कोरिंग पद्धति (सहमत = 2, तटस्थ = 0, असहमत = 1) के आधार पर दोनों समूहों का औसत ज्ञात किया गया तथा स्वतंत्र टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया। प्राप्त आँकड़ों से स्पष्ट हुआ कि पुरुष अभिभावकों का औसत स्कोर स्त्री अभिभावकों की तुलना में अधिक था, जिससे यह संकेत मिलता है कि पुरुषों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के प्रति जागरूकता अपेक्षाकृत अधिक है। टी परीक्षण के माध्यम से दोनों समूहों के बीच जागरूकता स्तर में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण अंतर पाया गया। इसी तरह स्थान के आधार पर ग्रामीण एवं शहरी का तुलनात्मक टी परीक्षण किया गया प्राप्त परिणाम में सार्थक अंतर नहीं पाया गया। अतः प्रस्तुत से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रवासी समुदाय में शिक्षा अधिकारों की पूर्ण जानकारी समान रूप से प्रसारित नहीं है। विशेष रूप से स्त्री तथा ग्रामीण अभिभावकों के लिए जागरूकता कार्यक्रम, परामर्श सत्र और समुदाय स्तरीय पहल आवश्यक हैं, ताकि सभी अभिभावक बच्चों को गुणवत्तापूर्ण एवं अधिकार आधारित शिक्षा प्रदान करने में अधिक सक्षम बन सकें।

संदर्भ :-

अग्रवाल, व. (2010). *उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में शिक्षा का अधिकार के प्रति जागरूकता* (अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध). शिक्षा संकाय, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान.

अंबेडकर, आर. एल. (2012). मुफ्त एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार विधेयक के प्रति अध्यापकों का दृष्टिकोण एवं जागरूकता: एक अध्ययन. *प्राथमिक शिक्षक, 36*(1), 66–71. नई दिल्ली: एनसीईआरटी.

सिंह, आर. (2014). *आरटीई एक्ट 2009 के प्रति प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों की जागरूकता का अध्ययन* (अप्रकाशित लघु शोध प्रबंध). इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद.

Gandhi, V., & Yadav, N. (2013). A study of awareness among primary school teachers towards Right to Education Act, 2009. *International Indexed & Referred Journal, 4*(48), 48–49.

Islam, N., & Chakravarty, A. (2013). A study on awareness of equitable quality in the light of RTE Act 2009 among in-service school teachers. *Indian Journal of Applied Research, 3*(6), 142–143.

Kumar, D., & Sharma, S. (2011). A study of parents' and teachers' awareness towards Right to Education Act, 2009. *E-Journal Research, 2*(October). Bilaspur, Chhattisgarh: Research Organization.

Kumar, R. (2012). *Educational Rights and Child Development in India*. New Delhi: Academic Press.

Lal, K. (2013). Awareness of Right to Education Act among teachers. Retrieved August 20, 2015, from https://iasir.net/AIJRHSS%20papers/AIJRSS14-146.PDF

Malik, S. (2013). Awareness of Right to Education Act among prospective teachers. Retrieved August 26, 2015, from https://www.researchjournal.com/pdf224/pdf

Malik, S., et al. (2013). Awareness of Right to Education among prospective teachers. *Research Journal of Education, 1*(2), 1–6.

Singh, K., & Sagar, P. (2019). A study of awareness of provisions of RTE Act 2009 among basic, secondary and CBSE board upper primary school teachers in relation to their gender. *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research, 6*(4), 520–528.

Thakur, N. (2014). Study the awareness of trained school teachers in relation to RTE Act at elementary level. *American International Journal of Research in Humanities, Arts and Social Sciences, 14*(325), 67–71.

Received: 25.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

Role of Kachargad Yatra in Strengthening Gond Community

Ms. Karuna Ade*

karunaade11@gmail.com

ORCiD : https://orcid.org/0009-0008-8322-5526

Abstract:

The Kachargarh Yatra is an important tradition that is deeply connected to the culture, religion, and way of life of the Gond and other tribal groups. Kachargarh, which is in the Gondia area of Maharashtra, is considered a holy place by these communities. This paper looks at the cultural features of the Kachargarh Yatra and how it helps bring the Gond Tribal Community together. The study covers topics like tribal identity, community bonding, sharing of local knowledge, involvement of youths, and how the Yatra helps keep cultural practices alive.

The paper shows that the Kachargarh Yatra acts as a strong cultural event that brings the Gond community together and helps keep the Gond people's identity and traditions alive. During the Yatra, folk stories, art forms, religious beliefs, and social values are transformed to the younger generation. But there are some challenges that affect the traditional nature of the Yatra, such as the influence of modernization, tourism, commercial activities, and environmental problems.

It is important for the local people to actively take part in the Yatra, along with efforts to protect their culture and the environment, to ensure the Yatra continues to hold its cultural and historical significance.

Introduction:

In Salekasa taluka of Gondia district of Maharashtra there is Kachargadh Located. It is a shrine of Ma Kali Kankali. It is situated in one of the most remote area with dense forest and hills. It is group of natural caves in this hill. This cave is naturally developed. The caves are a part of the Maikal hills and are known as 'Kachargarh', the Gondi word for 'the hill rich in ore'. (Patankar, n.d.) Estimated to be 25,000 years old, these natural formations in the Maikal hills have yielded stone tools, evidence of early human habitation uncovered by archaeologists. (Arya, 2025) Through traditional festivals, pilgrimages, and collective religious events Gond community find expression of their cultural identity, religious beliefs, and social life. Among such significant cultural traditions, the Kachargarh Yatra (pilgrimage) is regarded as a symbol of the Gond tribal community's identity and cultural heritage. The Kachargarh cave considered extremely sacred by the Gond community. Theren is belief that the Gond community originated from these caves. Furthermore, the prehistoric human remains discovered here underscore the site's historical and anthropological significance.

* **Assistant Professor, Matru Sewa Sangh Institute of Social Work, Nagpur**

Kachargarh is not only a religious site but a focal point for the Gond community's faith, traditions, and cultural identity. The meaning of "Kachar" in the Gondi language is associated with mineral-rich hills. In another belief Pahandi Pari Kupar Lingo—the (legendary hero of Gond culture) attempted to unite 750 clans at this location. Consequently, Kachargarh is also recognized as a symbol of unity for the Gond community.

A grand five-day Yatra takes place here annually on the occasion of Maghi Purnima. Lakhs of Gond community members from Maharashtra and various other states across the country attends this Yatra including all age groups. During the Yatra, various cultural programs are organized alongside the worship of deities such as Pari Kupar Lingo, Raytar Jango Dai, and Mata Kali Kankali. Traditional dresses and dances are the main attraction during this. This fosters unity, fraternity, and a sense of collective identity within the Gond community.

This research article examines the sociocultural role of the Kachargarh Yatra and attempts to analyzes contribution of it in strengthening of the Gond community. It specifically highlights the significance of the Kachargarh Yatra in the context of Gond identity, community unity, the transmission of local knowledge, youth participation, and cultural continuity.

Historical Background of Kachargad and Yatra:

According to old people present there during visit to this yatra, In Gond Community's folk traditions Kali Kankali is considered a highly significant goddess. she was the daughter of the King Yadrahud and Queen Sonadai of Chandrapur. She was named 'Kali' due to her close association with the forest. Once, a sage who worshipped *Persapen* gave her a sacred flower and then she conceived after consuming it. Feeling stigmatized by this event, she started living in the forest and there she has given birth to 33 children. These children later came to be known as the *Saga Dev (clan deities)* of the Gond community.

The said forests of Central India where the Kali Kankali's children were growing up. when the deities Shambhu and Gaura spotted them playing. Gaura provided them with food, but Shambhu got angered by their mischievous behavior, and then imprisoned them within the Kachargarh cave. For twelve long year the children remained confined there. A mythical bird supplied them with food through an small opening in the cave, while they obtained water from a pond located inside.

Numerous attempts were made by Kali Kankali to secure her children's release. Eventually, at the behest of Raitar Jungo, Lingo devised a plan for their liberation. Hirasuka Patalir, a Gond bard, played the *Kingri* (a traditional musical instrument). Inspired by the melodies, the children moved the massive stone blocking the cave's entrance and cleared a path to the outside. Subsequently, Lingo educated them about Gond culture, the clan system, and social responsibilities. Consequently, Kachargarh is regarded as the place of origin for the Gond community, and Kali Kankali is revered as the mother goddess of Gond culture.

In a cave in the village of Dhanegaon, Gondia district, Maharashtra, is situated a shrine of the deity Kali Kankali. The caves are a part of the Maikal hills and are known as 'Kachargarh', the Gondi word for 'the hill rich in ore'. The district is situated at the borders of Maharashtra, Chhattisgarh and Madhya Pradesh. An emergence of cultural reformist ideas within the Gond community in the 1980s

led to the initiation of an annual pilgrimage and Yatra to the Kachargarh caves in 1986. Since then, the shrine of Kali Kankali has gained an increased prominence for the Gond community. Every year 20,000–30,000 people from the states of Maharashtra, Chhattisgarh, Madhya Pradesh, and Andhra Pradesh come here on the pilgrimage. The pilgrimage takes place during *Magh Poornima* and lasts four days. (Patankar, n.d.)

Kachargad Yatra is an significant festival and pilgrimage of the Gond tribal community. The place is surrounded by dense forests, full of biodiversity, and the natural caves of Kachargad are a unique attraction. Kachargad is a very sacred, historical, and cultural place for the Gond tribal communities of Central India. It is considered a center of faith for the Gond tribe community. For the Gond tribal community, Kachargad is not just a religious place but also a living symbol of their culture, values, and nature-based way of life. During this yatra, Gond community from different areas come together to pray, celebrate, and remember their ancestors. Tribal community celebrations, festivals, rituals and pilgrimages Gondi religion, also 'Gondi Punem' or 'Gondi Dharm' is being consolidated. There is a shift in beliefs and ritualistic practices. For the Gond community, Gondi Punem is tied to the ideas of reclaiming heritage, language and culture. It simultaneously resists outside interventions in its traditional belief systems. (Patankar, n.d.) This is the place where Pahandi Pari Kupar Lingo, tried to unite 750 clans at this cave.

Kachargad has a deep connection with the Gond and other tribal communities and is an important center of their religious and cultural life. It has been preserved in the oral traditions, stories, and beliefs of the Gond tribe for many generations. For a long time, the exact location of the Kachargad caves was forgotten, but in the 1980s, young tribal students from the Adivasi Vidyarthi Sangh started searching for it based on these traditional stories. Following the descriptions, they explored the hills of Kachargad in Gondia district and rediscovered the site. Around 46 years ago, important personalities like Motiravan Kangali, researcher K.B. Marskole, Gond king Vasudev Shah Tekam, Dada Markam, and Sunhersingh Taram visited this place and helped revive its importance. In 1984, on the occasion of Maghi Purnima, five Gond tribal people started the Kachargad Yatra by hoisting the flag of the Gond religion in the village. Since then, the yatra has grown into a large cultural and religious gathering. Today, around 4 to 5 lakh devotees participate every year, making it one of the biggest tribal gatherings in Central India. The fair also includes traditional dances, which reflect the rich cultural heritage of the Gond community. (Markam, 2021)

Aim & Methodology:

The paper aimed at exploring the Role of Kachargad Yatra in Strengthening Gond Community. The researcher has visited the Yatra in 2026. The unstructured non participant observation method were adopted and various activities were observed and to get the insights about the Yatra and significance of the place various visitors especially old age visitors were interviewed. This was unstructured interview method by which the data has also been collected.

Cultural Significance of Kachargad Yatra:

Kachargad Yatra is Spiritual Heart of the Gond Community. It is considered as a significant cultural, religious and social legacy of Gond Community. It is known as holy place situated in Dhanegaon, Salekasa Tehsil, Gondia District, Maharashtra. Gond Community expresses its devotion

to its ancestors and preserves traditional beliefs, customs, and culture through this pilgrimage. Large number of Gond People visits this place during Yatra. During the visit to this place folk dances & Songs, religious rituals and Traditional costumes can be observed lively. This Yatra plays a significant role in promotting Gond culture, history and mainly strengthening social cohesion and community spirit among Gond Community. Gond communities coming from different parts of the country exhibits and exchange their ancestral culture.

Through this yatra the younger generation gets about their cultural values, traditions and history. This is contributing in preserve and sustenance of the Gond Culture. The modernization has affected the Gond Community entirely on various aspect in such situation Kachargad Yatra becomes significant as an effective cultural movement that preserves Gond identity, cultural heritage, and social integration of Gond Community.

Role of Kachargad Yatra in Strengthening Tribal Community:

1. **Strengthening Tribal Identity**

Visitors from round from 18 different states of India come together for this yatra. It is said to be the largest cave in Asia. Around 5 thousand people can visit this cave at the same time. Lakhs of devotees come from Maharashtra, Madhya Pradesh, Chhattisgarh, Andhra Pradesh, Bihar, Orissa, Jharkhand, Uttar Pradesh, Mizoram for this yatra. They take darshan of their adoring deity i.e. 'Pari Kopar Lingo'.[†] (ETV Bharat)

The Kachargad Yatra is significant cultural tradition that strengthens the identity of the tribal community. Kachargad is worshiping place of the Gond and other tribal communities and it is connected to their history, traditions, and ancestors. This holly pilgrimage instills a sense of pride in the tribal community about their rich cultural heritage.

Traditional clothes, folk dances, folk songs, and religious rituals are performed during the Yatra. This helps in the preserving and promoting of tribal culture at large. Tribal communities especially Gond Community from different areas come together to strengthen social unity and Fraternity. Kachargad Yatra also aids to introduce Gond culture to the younger generation. This Yatra plays vital role in preserving Gond tribal values and traditions even in the era of modernity. Therefore, Kachargad Yatra is an effective medium for strengthening tribal identity, cultural integration and social identity.

2. Transmission of Indigenous Knowledge

Kachargarh Yatra is an significant medium for transforming the traditional and local knowledge of Gond Community. Folk traditions, beliefs, religious rituals, folklore and cultural values transformed from generation to generation in the Gond communities. The upcoming generations are being aware about their identity and culture through this pilgrimage and Yatra.

During the Yatra elders and traditional saints inform the youth about Gond history, stories of ancestors, relationship with nature and way of life. Cultural knowledge is preserved and enhanced through folk songs, dances, traditional instruments and religious rituals.

[†] https://www.etvbharat.com/marathi/maharashtra/state/gondia/kachargad-yatra-started-where-origin-of-tribal-community-at-gondia/mh20200209094004708

Kachargarh Yatra plays vital role in preserving the collective memory of the Gond community. This yatra plays a significant role in maintaining cultural continuity when traditional knowledge is likely to be vanished due to the influence of the modernity. Therefore Kachargarh Yatra becomes a significant and effective platform for imparting local knowledge, cultural heritage and tribal traditions to upcoming generations.

3. Youth Participation and Cultural Continuity

The Kachargarh Yatra plays a fundamental role in conserving cultural continuity by encouraging the participation of Gond youth. Young people participate in this Yatra with great enthusiasm, forging a direct connection with their traditional culture. Through their involvement in folk dances, folk songs, traditional music, religious rituals, and collective activities, they gain a deeper understanding of their cultural heritage.

Elders pass on knowledge regarding Gond tribal history, traditions, beliefs, and social values to the youth or another generation, thereby ensuring the preservation of cultural traditions to the upcoming generations. At a time when the influence of modernity threatens to distance the younger generation from their traditional way of life, the Kachargarh Yatra serves to keep them rooted in their origins.

The Yatra fosters a sense of community, cultural pride, and social responsibility among the youths. Thus, the Kachargarh Yatra stands as an effective socio-cultural tradition that sustains Gond tribal culture and culturally empowers the youth.

4. Community Networking

The Kachargarh Yatra plays a fundamental role in strengthening Gond community networking within the tribal society at large. Gond tribal communities from various districts and regions congregate at this Yatra, pilgrimage, facilitating dialogue, the exchange of ideas, and the strengthening of social bonds among them.

The collective participation of traditional leaders, youth, women, and the elderly nurtures a sense of unity and communal spirit among the Gond Community. Discussions on social, cultural, and traditional matters nurture the spirit of mutual cooperation within the Gond community. The Yatra also facilitates connections that often lead to matrimonial alliances, social events, and collaborative community initiatives.

The Kachargarh Yatra helps to bind Gond tribal groups together through a shared cultural thread. Against the backdrop of increasing social fragmentation in modern times, this pilgrimage and yatra stands as an effective platform for preserving Gond community solidarity and interpersonal relationships.

Challenges and Contemporary Changes:

1. Impact of modernization

It is said “During the Kachargarh pilgrimage, children dressed as Lingo are often seen to be guiding the pilgrims towards the shrine of Kali Kankali.” (Patankar, n.d.) But during the visit nothing such

observed. This could be considered the biggest impact of the modernization on the upcoming generation.

The Kachargarh Yatra is a important tradition linked to the cultural, religious, and historical identity of the Gond community. However the increasing effect of modernization is bringing about noticeable changes in the traditional nature of this Yatra. Factors such as education, urbanization, technology, and the expansion of market systems have transformed the tribal lifestyle, thereby impacting the Yatra as well.

In the past, the Kachargarh Yatra served as a hub of collective faith, traditional rituals, folk dances, and cultural unity which is continued till now but some minute changes can be observed due to modernization. This includes the effects of modern media, commercial stalls, and external cultural influences. In before it uses to be good platform for marketizing Tribal Minor Forest Produces and arts but now, we see more commercial stalls for modern foods, modern clothing and toys and so on. In addition to this growing inclination towards modern lifestyles among the younger generation raises the possibility of a decline in reverence for traditional knowledge, dialects, and religious rituals.

Modernization is not entirely negative, it has enhanced transportation, communication, and social awareness. Nevertheless, striking a balance between cultural preservation and modernity is essential. Otherwise, there is a risk that the original Gond identity and cultural distinctiveness of the Kachargarh Yatra may gradually erode.

2. Tourism influence

Kachargarh Yatra is significant symbol of religious beliefs and cultural traditions of the Gond community. The influence of the tourism on the Kachargadh Yatra is clearly noticeable as the Kachargarh area has gained recognition as a tourist destination in recent times. Roads, transport facilities and social media have increased the participation of outsiders and the yatra has gained wide publicity.

Tourism has created economic opportunities for the local tribal community to sell the Minor Forest Produces or other art products. Increasing sales of local handicrafts, food and traditional goods is generating good employment. Also, awareness is being created in the outside society about tribal culture at large.

But from the point of view of the researcher, the process of commercialization of pilgrimage can be seen due to the increasing influence of tourism. With the increasing influence of external culture, there is a possibility of changing the basic nature of tribal traditions. Also, waste pollution and environmental damage caused by tourists is also a serious problem. Therefore, it is essential to ensure the preservation of Gond tribal culture and participation of the local community while developing tourism.

3. Environmental concerns

The Kachargarh Yatra holds a central place in Gond tribal culture, deeply connected to nature in an inseparable way. The Kachargarh region, hills, forests, and biodiversity, holds unique environmental importance for this pilgrimage. In recent years, however, increasing crowds, tourism, and the expansion of modern facilities during the event have sparked growing environmental concerns.

Plastic waste, noise pollution, and generally unclean conditions in the forests are negatively impacting the surrounding ecosystems. Elsewhere, increasing traffic, and disruptive behaviors are unbalancing nature. The Gond community holds nature in high regard, and thus they equally view protecting nature as preserving a part of their culture. Unfortunately, all kinds of disruptive modern activities harming environment to some extent.

Kachargarh Yatra's cultural legacy can be protected by focusing on environmental conservation. To tackle this, waste-free, green management of the pilgrimage must be a promoted by all stakeholders(the community, the administration, and the visitors). Otherwise, the natural and cultural legacy of the pilgrimage will become an irreplaceable loss.

4. Need for cultural preservation

The Kachargarh Yatra is living symbol for the Gond community because it keeps their culture, and traditions alive. Through this pilgrimage, they've managed to transform their folk ways, including dances, rituals, and art, from one generation to the next. But now, things like modern living, city growth, and outside influences are making it harder for them to hold onto those traditions.

As more youths embrace modern lifestyles, there is a risk that interest in traditional dialects, folk customs, and religious practices may decrease. There is a danger that many cultural elements could be reduced to mere formalities. To a researcher, the yatra means way more than just a religious gathering—it's a vital hub that supports the community's identity.

For that reason, we really need to focus on documenting and sharing these traditions with the youth. Keeping the true spirit of Kachargarh Yatra intact requires help from both the locals and supportive government policies. It's crucial that we all step up and help preserve this incredible piece of cultural heritage.

Conclusion:

The Kachargarh Yatra is an important tradition that plays a big role in the cultural, religious, and social life of the Gond tribal Community. It's not just about religion, it's also a way for the community to stay connected to their identity, build unity, and keep their culture alive. During the Yatra, the Gond people share their folk traditions, arts, knowledge, and values with younger generations. It also brings together different tribal groups from various areas, helping to strengthen relationships and support networks.

Research shows that the Yatra helps young people understand and value their culture, and it helps them feel proud of their heritage. But there are some challenges, like modernization, tourism, commercial activities, and environmental problems, that are changing how the Yatra is experienced. There's also a risk that outside influences might change the real meaning of the tribal culture.

The collaborative involvement of the local tribal community, the administration, and social organizations is essential to preserve the cultural and historical significance of the Kachargarh Yatra. Through cultural preservation, environmental conservation, and the active participation of the youth, the Kachargarh Yatra can continue to stand as a powerful symbol of Gond identity well into the future.

References:

Patankar, M. P. (n.d.). *Kachargarh pilgrimage of the Gond Adivasis*. Sahapedia. https://www.sahapedia.org/kachargarh-pilgrimage-of-the-gond-adivasis-0

Arya, P. (2025, April 17). *Kachargarh caves: Exploring Gondia's ancient history and Gondi culture*. The News Dirt. https://www.thenewsdirt.com/post/kachargarh-caves-exploring-gondia-s-ancient-history-and-gondi-culture

Markam, K. (2021, October 12). *आइए जानते हैं गोंड आदिवासियों के धर्म स्थापना स्थल कचारगढ़ गुफा के बारे में*. Youth Ki Awaaz. https://www.youthkiawaaz.com/2021/10/kachargarh-cave-the-establishment-site-of-the-religion-of-gond-tribals-hindi-article/

ETV Bharat. (2020, February 9). *कचारगड येथे आदिवासी समाजाचे उगमस्थान असलेल्या कचारगड यात्रेला सुरुवात* [Kachargad yatra started at the origin place of the tribal community]. ETV Bharat. https://www.etvbharat.com/marathi/maharashtra/state/gondia/kachargad-yatra-started-where-origin-of-tribal-community-at-gondia/mh20200209094004708

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

Received: 26.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

INTERNATIONAL AND NATIONAL PRACTICES ON SOLID WASTE MANAGEMENT

Dr. Saumya Shanker*

saumyashanker@dsmnru.ac.in

SAUMYA_SHANKER@YAHOO.COM

INTRODUCTION

The problem of Municipal Solid Waste in India has become profound and critical. The main reason behind this problem is India's unchecked growth rate and meteoric urbanization. A Report of the Task Force on Waste to Energy published by the Planning Commission in 2014 shows that about 377 million of urban dwellers generate municipal solid waste of about 62 million tons per annum. If things move at the same speed then it is predicted that the population by 2051 would touch up to 1823 million, leading to a generation of 300 million tons per annum of municipal solid waste. In order to manage and dispose such an enormous quantity almost 1450 square kms of landwould be needed in India.

To accommodate this amount of waste generated by 2031, about 23.5 × 107 cubic meter of landfill space is required and in terms of area it would be 1,175 hectare of land per year. The area required from 2031 to 2050 would be 43,000 hectares for landfills piled in 20 meter height. These projections are based on 0.45 kg/capita/day waste generation. The Status report presented in 2013 by the Central Pollution Control Board on the Solid Waste Management states that the solid waste generated during the last ten years has increased 2.44 times. Various studies reveal that small towns have paid more attention and performed more responsibly regarding generation rate of MSW[1]. The comparative quantity of MSW generated by selected states of India in years 2000 and 2011 is shown in Table 2[2].

Table: Statistics of Municipal Solid Waste MSW generated in different states in India Source: CPCB (2000b, 2013).

SN	States	MSW (TPD) 2000	MSW (TPD) (2009–2011)	Collected (TPD) (2009–2011)	Treated (TPD) (2009– 2011)	Growth (%)
1	Andhra Pradesh	4376	11500	10655	3656	163
2	Assam	285	1146	807	73	302
3	Delhi	4000	7384	6796	1927	85

* ***Assistant Professor, Department of Sociology/Social Sciences***

Dr. Shakuntala Misra National Rehabilitation University, Lucknow

4	Gujarat	NA	7379	6744	873	–
5	Karnataka	3278	6500	2100	2100	98
6	Kerala	1298	8338	1739	4	542
7	Madhya Pradesh	2684	4500	2700	975	68
8	Maharashtra	9099	19204	19204	2080	111
9	Manipur	40	113	93	3	182
10	Meghalaya	35	285	238	100	713
11	Orissa	655	2239	1837	33	242
12	Punjab	1266	2794	NA	Nil	121
13	Puducherry	69	380	NA	Nil	451
14	Rajasthan	1966	5037	NA	Nil	156
15	Tamil Nadu	5403	12504	11626	603	131
16	Tripura	33	360	246	40	991
17	Uttar Pradesh	5960	11585	10563	Nil	94
18	West Bengal	4621	12557	5054	607	172

GOVERNMENT POLICY

The crisis of waste management has led to the enactment of various legislations for regulating waste disposal. Municipal Solid Waste Management in India comes under the Municipal Solid Waste (Management and Handling) Rules, 2000 and the implementation of these rules is an area of great concern for the Urban Local Bodies all over the nation.

The Ministry of Environment and Forests (MoEF) is taking care of the issues related to solid waste management together with Central and State Pollution Control Boards. There are various rules framed under Environment Protection Act - 1986 for improving management of solid waste. SWM falls under state list as it is considered as public health and sanitation as per Indian Constitution. Due to its local nature, SWM is the responsibility of Urban Local Bodies (ULBs) (European Business and Technology Centre).

Legislations for Solid Waste Management in India

- Environment Protection Act – 1986
- Hazardous Waste Management and Handling Rules – 1989
- Manufacturing, Storage and Transportation of Hazardous Waste Rules – 1989
- Bio-Medical Waste Management and Handling Rules – 1998
- Municipal Solid Waste Management and Handling Rules – 2000
- Plastic Waste (Management and Handling) Rules – 2011
- E-Waste (Management and Handling) Rules – 2011

SOLID WASTE MANAGEMENT RULES, 2016 (SALIENT FEATURES)

According to the Press Information Bureau, The Environment Ministry, Government of India, has revised Solid Waste Management Rules after 16 years. Addressing a press conference to announce the revised Rules, Minister of State (Independent Charge) of Environment, Forest and Climate Change, Shri Prakash Javadekar made this announcement[3]

The Salient features of the Solid Waste Management Rules, 2016 are as follows

- The Rules are now applicable beyond Municipal areas and extend to urban agglomerations, census towns, notified industrial townships, areas under the control of Indian Railways, airports, airbase, Port and harbour, defence establishments, special economic zones, State and Central government organizations, places of pilgrims, religious & historical importance.
- The source segregation of waste has been mandated to channelize the waste to wealth by recovery, reuse and recycle.
- Responsibilities of Generators have been introduced to segregate waste in to three streams, Wet (Biodegradable), Dry (Plastic, Paper, metal, wood, etc.) and domestic hazardous wastes (diapers, napkins, empty containers of cleaning agents, mosquito repellents, etc.) and handover segregated wastes to authorized rag-pickers or waste collectors or local bodies.
- Integration of waste pickers/ ragpickers and waste dealers/ Kabadiwalas in the formal system should be done by State Governments, and Self Help Group, or any other group to be formed.
- No person should throw, burn, or bury the solid waste generated by him, on streets, open public spaces outside his premises, or in the drain, or water bodies.
- Generator will have to pay 'User Fee' to waste collector and for 'Spot Fine' for Littering and Non-segregation.
- Used sanitary waste like diapers, sanitary pads should be wrapped securely in pouches provided by manufacturers or brand owners of these products or in a suitable wrapping material and shall place the same in the bin meant for dry waste / non- bio-degradable waste.
- The concept of partnership in Swachh Bharat has been introduced. Bulk and institutional generators, market associations, event organizers and hotels and restaurants have been made directly responsible for segregation and sorting the waste and manage in partnership with local bodies.
- All hotels and restaurants should segregate biodegradable waste and set up a system of collection or follow the system of collection set up by local body to ensure that such food waste is utilized for composting / biomethanation.
- All Resident Welfare and market Associations, Gated communities and institution with an area >5,000 sq. m should segregate waste at source- in to valuable dry waste like plastic,

tin, glass, paper, etc. and handover recyclable material to either the authorized waste pickers or the authorized recyclers, or to the urban local body.

- The bio-degradable waste should be processed, treated and disposed of through composting or bio-methanation within the premises as far as possible. The residual waste shall be given to the waste collectors or agency as directed by the local authority.
- New townships and Group Housing Societies have been made responsible to develop in-house waste handling, and processing arrangements for bio-degradable waste.
- Every street vendor should keep suitable containers for storage of waste generated during the course of his activity such as food waste, disposable plates, cups, cans, wrappers, coconut shells, leftover food, vegetables, fruits etc. and deposit such waste at waste storage depot or container or vehicle as notified by the local authority.
- The developers of Special Economic Zone, industrial estate, industrial park to earmark at least 5% of the total area of the plot or minimum 5 plots/ sheds for recovery and recycling facility.
- All manufacturers of disposable products such as tin, glass, plastics packaging etc. or brand owners who introduce such products in the market shall provide necessary financial assistance to local authorities for the establishment of waste management system.
- All such brand owners who sale or market their products in such packaging material which are non-biodegradable should put in place a system to collect back the packaging waste generated due to their production.
- Manufacturers or Brand Owners or marketing companies of sanitary napkins and diapers should explore the possibility of using all recyclable materials in their products or they shall provide a pouch or wrapper for disposal of each napkin or diapers along with the packet of their sanitary products.
- All such manufacturers, brand owners or marketing companies should educate the masses for wrapping and disposal of their products.
- All industrial units using fuel and located within 100 km from a solid waste based RDF plant shall make arrangements within six months from the date of notification of these rules to replace at least 5 % of their fuel requirement by RDF so produced.
- Non-recyclable waste having calorific value of 1500 K/cal/kg or more shall not be disposed of on landfills and shall only be utilized for generating energy either or through refuse derived fuel or by giving away as feed stock for preparing refuse derived fuel.
- High calorific wastes shall be used for co-processing in cement or thermal power plants.
- Construction and demolition waste should be stored, separately disposed off, as per the Construction and Demolition Waste Management Rules, 2016

- Horticulture waste and garden waste generated from his premises should be disposed as per the directions of local authority.
- An event, or gathering organiser of more than 100 persons at any licensed/ unlicensed place, should ensure segregation of waste at source and handing over of segregated waste to waste collector or agency, as specified by local authority.
- Special provision for management of solid waste in hilly areas:- Construction of landfill on the hill shall be avoided. A transfer station at a suitable enclosed location shall be setup to collect residual waste from the processing facility and inert waste. Suitable land shall be identified in the plain areas, down the hill, within 25 kilometers for setting up sanitary landfill. The residual waste from the transfer station shall be disposed off at this sanitary landfill.
- In case of non-availability of such land, efforts shall be made to set up regional sanitary landfill for the inert and residual waste.
- The Government has also constituted a Central Monitoring Committee under the chairmanship of Secretary, Ministry of Environment, Forest and Climate Change to monitor the overall implementation of the Rules.

WORLDWIDE BEST PRACTICES ON GARBAGE DISPOSAL

Management of Municipal Solid Waste for various cities and towns has been widely studied throughout the world. As the huge quantities of solid waste generated in the urban areas is the major problem, majority of researchers concentrated on this issue. Numbers of researchers have tried to find out new techniques for solid waste management.

Moqsud and Hayashi[4], 2006, said that Rapid industrialization and economic development has caused tremendous increase of solid waste generation in Japan. They evaluated solid waste management practice in Japan and found Japan landfills only 20.3% of its MSW, including the WTE ash, plants and combusts 74.5 % of its MSW in costly waste-to energy facilities that convert solid wastes to electric energy and heat. The "waste management hierarchy" (minimization, recovery, transformation and disposal) has been adopted by Japan in recent times as the menu for developing solid waste management strategies which makes Japan as one of the cleanest countries in the world. Zhu Minghuaet.al*.,* 2008[5] studied the management practices carried out for the solid waste from Pudong New Area, China. They have illustrated important aspects of waste management, such as the current status of waste collection, transport and disposal in Pudong area.

According Asraf et al (2016)[6] in developing countries like Pakistan and India municipal solid waste refers to collection and disposal of waste. The research conducted in Lahore by them shows that even after privatization there has been little interest in adding new components (energy or material recovery) in the system. As far as working of the system is concerned privatization has mixed effect; improvement in some areas and some remain unchanged.

USA. In USA an innovative solid waste management system has been put in place. It is popularly known as 'Mr

Trash Wheel' This solar and water powered trash cleaner collects litter and debris flowing down the Baltimore River. In the last 3 years this wonder machine has removed 1.1 million pounds of garbage from the river. This includes 372,650 plastic bottles and 8.9 million cigarette buds. Baltimore's success with Mr. Trash Wheel is huge. The harbor is cleaner than it has been in decades and the credit goes to this eco-friendly machine that is powered by both, the sun and the strong river current. The river's current provides power to turn the water wheel of this machine that then acts as a robot to pick up trash and debris from the water. Once collected, the trash is deposited into a dumpster barge which is built into this machine. When the water current isn't strong enough to power the machine, an attached solar panel provides solar power. Mr Trash Wheel is the perfect example of a how simplicity can be the key to brilliance.

Australia: Australia has found the perfect solution to the growing waste and litter woes with the Bigbelly Solar compactor bins and SmartBelly bins. These bins automatically create an extra space for garbage when the bin is full and even segregate the waste automatically at the point of collection. Each bin has 600 litres of capacity which means it can hold upto eight times the volume of common street litter bins or five times the volume of your average 120-litre wheelie bin. One of the major advantages of these bins is that they connect individual bins to garbage collectors that results in a more efficient management of waste.

The working of these bins is quite simple. BigBelly works with power from the sun. As garbage fills up, special sensors placed inside these bins are triggered, resulting in up to five times more garbage storage space. More garbage space means fewer collection trips, lower costs and fewer emissions. The SmartBelly Bin separates and monitors the collection levels of your recyclables at the point of collection itself. It also helps in the process of composting. The end result is that most of the waste gets treated. The SmartBelly bin is also Compostable Friendly

Germany. Germany has a company which produces biodegradable leaf plates to curb plastic pollution. Leaf Republic, a company in Germany did 3 years of extensive research and then introduced 'Leaf Plates' in order to deal with the growing issues of plastic pollution. These plates are entirely made of leaves and the company claimed that not a single tree was cut in the production of these plates. The plates cost 50 cents each and are 100 percent biodegradable. The company has sourced the special creeper leaves from India and the packaging is inspired by the Asian tradition of stitching the leaves into plates.

Image Credit: Leaf Republic

There are eco-conscious companies in India too who are trying to make such eco-friendly and biodegradable plates but the trend still needs to catch on.

Brazil. Rosenbaum, a design studio in Brazil is encouraging and helping people to use plastic waste to decorate and beautify their houses

Columbia. Columbia has ECOBOT-vending machines, which give rewards such as movie tickets and vouchers and monetary compensation for every time someone deposits a plastic bottle or bottle caps. Colombia's this idea has completely changed the way citizens managed their garbage. They implemented a scheme where anyone who recycled their plastic was rewarded. The country produces around 28,800 tonnes of solid waste per day, with 10,000 tonnes of this waste being generated in the main cities of Bogotá, Cali, Medellín and Barranquilla. They knew they had a serious garbage problem to deal with, and that's when the authorities came up with the idea of ECOBOT (Reverse Vending Machine) – A recycling initiative that encourage people to recycle their waste. The Vending Machines were installed in popular locations like shopping malls, institutions and public spaces, and every time someone deposits a plastic bottle or the caps, they receive restaurant coupons or movie tickets or simply shopping dollars. All the plastic that the vending machine collects is then sent to recycling plants instead of landfills.

The 'Rewards for Recycling' idea is also being tried in India and Mumbai is the first city to get a 'Swachh Bharat Recycling Machine.' Till now, the machines, installed at a few railway stations, have been hugely successful among the city's commuters.

EU& UK. Deposit-refund scheme for cans and drinking bottles in EU and UK is a commendable scheme for waste management, as it incentivizes the consumer to return the bottle or can for which he/she is compensated, and it reduces pressure on landfills, increasing the life cycle of the product. The deposit refund scheme if applied to all products will greatly increase the rate of recycling, and it is easily replicable across different localities and regions, as the mechanism remains the same.

Japan. Kamikatsu in Japan is one of the role models when it comes to waste management, as they proclaim themselves to be a 'zero-waste' region by 2020. With recycling being the core of most of their operations, the residents segregate their waste into 34 categories. 80% of the waste is recycled in the region, while only 20% goes to landfills. There are no garbage trucks, so each resident has to wash, sort, and bring their trash to the recycling centre—which residents admit took some time getting used to. A worker oversees the sorting process at the centre, making sure trash goes into the right bins. Some used items are taken to businesses to be resold or repurposed into clothing, toys, and accessories.

Sweden. Sweden has set a benchmark when it comes to waste management and recycling. About 99% of the waste in Sweden is recycled and only 1% goes to landfills. In fact, their landfills are so empty that apparently, Sweden has to import waste from other countries. Of the 4.4 million tons of

household waste produced by the nation every year, 2.2 million are converted into energy by a process called waste-to-energy (WTE). Before this process starts, home and business owners filter and separate the waste into hazardous wastes and recyclable material, which are then sent to different waste-management systems, like incinerators and recycling, and a small amount to landfills. The furnaces in WTE plants are loaded with garbage, and then burnt to generate steam which is further used to spin turbines in order to produce electricity. The waste that is recycled is essentially used as a resource, converted into district heating, electricity, biogas, and biofertilizer.

Though the above noted examples of commendable innovations in waste management, all these are very contextual and locality specific. An isomorphic mimicry of these practices may not be successful, unless adapted with indigenous knowledge. While there is a need for diffusion of such technology to all places, it should be easily adaptable to localized scenario.

REVIEW OF SOLID WASTE MANAGEMENT PRACTICES IN INDIA

Important parameters of MSWM practices in India are as below:

Segregation: In India segregation of municipal solid waste both at the household and community level is neither organized nor is it methodically planned. Households seldom practice segregation at home. Most of the sorting and segregation of the waste is done by the unskilled workers of the unorganized sector under extremely risky and hazardous state.

Conditions and the effectiveness of segregation is reasonably low as unorganized sector segregates only valuable discarded constituents from waste stream which can guarantee them comparatively higher economic return in the recycling market[7].

Due to improper handling the segregated constituents often get mixed up again during transportation and disposal. Lack of segregation deprive proper scientific disposal of waste[8].

Collection: Waste produced by houses is usually transferred into communal bins that are fabricated from metal, made from concrete or in combination of both. Street sweepings also find its way to community bins. These community waste bins are also used by other essential commercial sectors in the vicinity of disposal bins along with household waste except where some commercial complexes or industrial units engage municipal authorities for transfer of their waste to disposal site by paying some amount (Kumar et al., 2009)[9].

According to Municipal Waste Management Rules (2000), it is the responsibility of municipalities to prohibit littering of solid waste in cities, towns and in urban areas notified by governments. To facilitate compliance, municipal authority have to organize house to house collection through any of the methods:

- Community bin collection
- House to house collection
- Collection on regular time interval (which must be pre-informed)
- Scheduling by using bell ringing of musical vehicle (without exceeding the noise levels. To increase collection efficiency, the integration of these methods is required[10].

Reuse/recycle: Reuse or recycle means to collect those materials from the waste, which could be usefully utilized for making new products. The problems arises due to the fact that most of waste gets dumped (mostly in community bins) without being segregated making it extremely difficult to optimally recycle it. The rag-pickers however do land up sorting out some of the recyclable stuff like plastics, glass, etc. to sell them further.

Transportation: transportation for municipal solid waste in India is mostly done through hand rickshaws, bullock carts, tractor, compactors, trailers, trucks and dumpers. Stationary compactors, mobile compactors/closed tempos, and tarpaulin-covered vehicles are also used in the transportation of MSW. These vehicles are mostly maintained by the Urban Local Bodies and if these vehicles breakdown then the overall process of garbage collection, its transportation and efficient disposal all gets drastically effected.

Disposal: Disposal of municipal solid waste in India is done in the most unscientific manner. O**pen dumping** of garbage is practiced in India. Unscientific dumping is prone to flooding in monsoons and leads to both surface and ground water contamination. Landfilling is one the most extensively accepted practice in India. Municipal Solid waste is mostly disposed directly in low lying areas which is in complete violation of the practices of sanitary landfilling. According to a report published by TERI SWM disposal is at a critical stage of development in India. More than 90% of waste in India is believed to be dumped in an unsatisfactory manner[11]. It is estimated that approximately 1400 km^2 was occupied by waste dumps in 1997 and this is expected to increase in the future, as shown in the figure below.

Figure 1. Cumulative land required (km^2) for disposal of MSW.

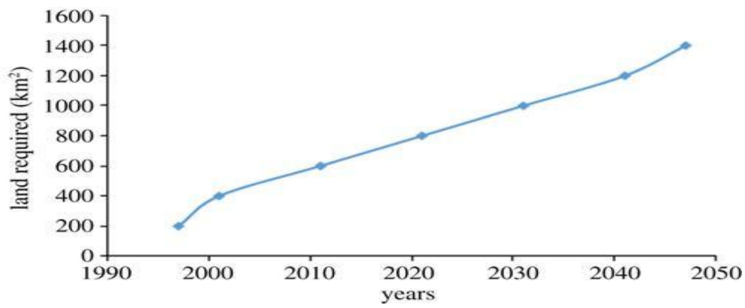

Source: Singhal & Pandey[12]

CONCLUSION

There are many major environmental challenges being faced by India. Current SWM systems are inefficient, with waste having a negative impact on public health, the environment and the economy[13]. The informal sector has a key role in extracting value from waste, with approximately 90% of residual waste currently dumped rather than properly landfilled[14]. We therefore need to shift our focus to those solid waste management practices that are sustainable in nature and which in turn would help us to retain some of our useful resources.

The concept of 3R for SWM[15] can be one of the best models to imp[rove the SWM system in India .
Reduce: The term ‘Reduce’ can be defined as a reduction in the amount and/or toxicity of waste

entering the waste stream. Use of green elements as raw materials, extension of product life cycle, optimum process design, reducing energy and heat losses, replacing raw materials by lighter material can help to reduce the amount of waste generation. 'Reduce' is the top ranking component of solid waste management hierarchy because it represents most effective means of reducing economical costs and environmental impacts associated with handling waste. Life cycle assessment is very important for effective source reduction of waste.

Reuse: The term 'Reuse' means usage (or utilization) of a product in the same application for which it was originally used. For example, a plastic bag can carry groceries home from the market over and over again, a tin can be used as a multi-purpose container. A product can also be reused for some other purpose, such as occurs when glass jars are reused in a workshop to hold small objects such as screws or nails. Remanufacturing is often used in this regard which means restoring a product to like new condition. It involves disassembling the product, cleaning and refurbishing the useful parts and stocking those parts in inventory. While repair means only those parts that have failed are replaced.

Recycling: The recovery of materials for recycling is given second highest priority in the solid waste management hierarchy after source reduction. 'Recycling' simply means use of waste as raw materials for other products. It includes collection and separation of recyclables and processing them to useful raw materials for other products. It can be classified as preconsumer and postconsumer recyclable materials. Preconsumer materials consist of scrap that is recycled back into manufacturing process without having been turned into a useful product. Postconsumer recyclables are products that have been used by consumers, such as newspaper or plastic bottles. Glass, aluminium, heavy metals, construction and demolition debris are another example of recyclables.

Currently in India the solid Waste Mangement System is very poor. The methods used from waste collection to disposal are faulty. The public and service providers both lack awareness and training. Even the availability of qualified waste management professionals is limited[16].

In order to improve the Solid Waste Management System in India there is a need to include attractive and profitable businesses with clear performance requirement. Financial penalties should be levied applied when waste management services are not working effectively. Finance for waste management companies and funding for infrastructure must be raised. There is a need to develop training and capacity building at every level. Each stake holders needs to their understand role and responsibilities in effective SWM. They also need to the importance of SWM and its negative effects on the health of the people in general and the environment in specific.

Reference:

[1]Kansal, A. (2002). Solid waste management strategies for India. Indian Journal of Environmental Protection, Vol.22, pp. 444–448.

[2]Source: CPCB. (2000b). Status of municipal solid waste generation, collection, treatment and disposal in class I cities (Series: ADSORBS/31/1999-2000).

[3]Press Information Bureau, Ministry of Environment, Forest and Climate Change Ministry, Government of India, 05/04/2016

[4]M. Azizul Moqsud and Shigenori Hayashi, (2006), An Evaluation of Solid Waste Management Practice In Japan, Daffodil International University Journal of Science and Technology, Volume 1, Issue 1, July 2006, pg.43

[55] Zhuang, Y., Wu, S.W., Wang, Y.L., Wu, W.Z., Chen, Y.X., (2008). Source separation of household waste: a case study in China. Journal of Waste Management 28, pp: 2022–2030

[6] Usman Ashraf, Isbah Hameed, Muhammad Nawaz Chaudhary, (2016), Solid waste management practices under public and private sector in Lahore, Pakistan, bulletin of environmental studies, October 2016, Volume 1,Issue 4, Pages 98-105

[7]Kaushal, R. K., Varghese, G. K., & Chabukdhara, M. (2012). Municipal solid waste management in India-current state and future challenges: A review. International Journal of Engineering Science and Technology, Vol. 4, pp. 1473–1489

[8]S. Singhal and S. Pandey, "Solid Waste Management India, Status and Future Direction," TERI Information Monitoring on Environment Science, Vol. 6, No. 1, 2001, pp. 1-4

[9]Kumar, S., Bhattacharyya, J. K., Vaidya, A. N., Chakrabarti, T., Devotta, S., & Akolkar, A. B. (2009). Assessment of the status of municipal solid waste management in metro cities, state capitals, class I cities, and class II towns in India: An insight. Waste Management, Vol.29, pp. 883–895.

[10]Talyan, V., Dahiya, R. P. & Sreekrishnan, T. R. 2008.State of municipal solid waste management in Delhi, the capital of India. Waste Management, Vol.28, pp. 1276-1287.

[11]S. Singhal and S. Pandey, "Solid Waste Management India, Status and Future Direction," TERI Information Monitoring on Environment Science, Vol. 6, No. 1, 2001, pp. 1-4.

[12]Ibid.

[13] Biswas AK, Kumar S, Babu SS, Bhattacharyya JK, Chakrabarti T. 2010, Studies on environmental quality in and around municipal solid waste dumpsite. Resources, Conservation and Recycling, Vol.55 No.2 pp.129-134

[14] Narayan T. 2008Municipal solid waste management in India: from waste disposal to recovery of resources?***Waste Manage.*** **29**, 1163–1166.

[15]Nadan A., Yadav B.P.,Baksi S. & Bose D., (2017), Recent Scenario of Solid Waste Management in India, World Scientific News, Vol. 66, pp. 56-74

[16]Khajuria A, Matsui T, Machimura T, Morioka T. 2010, Assessment of the challenge of sustainable recycling of municipal solid waste management in India. International Journal of Engineering Science & Advanced Technology**.** Vol.**13**, pp. 171–187.

Received: 27.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

‘बादलों के घेरे में’: मोहभंग और मानवीय नियति का चित्रण

डॉ. सौम्या सी. एस.*
cs.soumya156@gmail.com

सारांश (Abstract)

कृष्णा सोबती की प्रसिद्ध कहानी ‘बादलों के घेरे में’ आधुनिक हिंदी कहानी साहित्य की एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थवादी कृति है। यह कहानी प्रेम, मोहभंग, बीमारी, सामाजिक रूढ़ियों और मानवीय नियति के जटिल अंतर्संबंधों को अभिव्यक्त करती है। कहानी का केंद्रीय पात्र रवि अपनी पत्नी मन्नो की स्मृतियों में जीता हुआ एक ऐसा व्यक्ति है, जो प्रेम की असफलता और जीवन की विवशताओं से गहरे स्तर पर आहत है। क्षय रोग (टीबी) जैसी गंभीर बीमारी के कारण उत्पन्न सामाजिक दूरी और पारिवारिक भय प्रेम संबंधों को विघटित कर देते हैं। लेखिका ने पूर्वदीप्ति (Flashback) शैली के माध्यम से अतीत और वर्तमान के द्वंद्व को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। कहानी का शीर्षक ‘बादलों के घेरे में’ जीवन की अनिश्चितता, मानसिक घुटन, अकेलेपन तथा नियति की अपरिहार्यता का प्रतीक है। यह कथा केवल एक प्रेम-त्रासदी नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं, सामाजिक यथार्थ और अस्तित्वगत संकट का मार्मिक आख्यान है। कृष्णा सोबती ने संवेदनात्मक भाषा, प्रतीकात्मकता तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के माध्यम से मानव जीवन की विडंबनाओं को अत्यंत प्रभावशाली रूप में चित्रित किया है।

मुख्य शब्द (Keywords)

कृष्णा सोबती, बादलों के घेरे में, मोहभंग, मानवीय नियति, प्रेम-त्रासदी, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, पूर्वदीप्ति शैली, सामाजिक यथार्थ, टीबी, अकेलापन.

प्रस्तावना

कृष्णा सोबती (ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित) हिंदी साहित्य की एक ऐसी लेखिका हैं, जिनकी भाषा-शैली और विषय-वस्तु ने कथा-जगत को एक नई दिशा दी. उनकी कहानी **‘बादलों के घेरे में’** उनके इसी नाम से प्रकाशित कहानी संग्रह (1980) में संकलित है। यह कहानी सिर्फ प्रेम की असफलता की गाथा नहीं है, बल्कि उस समय की सामाजिक परिस्थितियों, बीमारियों के प्रति भय और जीवन की नियतिवादी उदासी का गहन दस्तावेज है, जिसे लेखिका ने **‘पूर्वदीप्ति शैली’ (Flashback)** में प्रस्तुत किया है।

शोध प्रविधि (Research Methodology)

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक (Descriptive), विश्लेषणात्मक (Analytical) तथा व्याख्यात्मक (Interpretative) शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का आधार कृष्णा सोबती की कहानी *‘बादलों के घेरे में’* तथा उससे संबंधित आलोचनात्मक साहित्य है। प्राथमिक स्रोत के रूप में कहानी-संग्रह का उपयोग किया गया है, जबकि द्वितीयक स्रोतों में हिंदी कहानी पर केंद्रित आलोचनात्मक ग्रंथ, शोध आलेख तथा समकालीन हिंदी कथा-साहित्य संबंधी अध्ययन शामिल हैं। कथा-वस्तु, पात्र-चित्रण, मनोवैज्ञानिक पक्ष, प्रतीकात्मकता, सामाजिक यथार्थ तथा शिल्पगत विशेषताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त कहानी में प्रयुक्त पूर्वदीप्ति शैली, शीर्षक की सार्थकता तथा मानवीय नियति के चित्रण का साहित्यिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया गया है।

---

* **एसोसिएट प्रोफ़ेसर, एस एन कॉलेज, आलतूर**

मोहभंग और प्रेम की त्रासदी

कहानी का केंद्रीय पात्र रवि, भुवाली के एक कॉटेज में अकेलापन और टीबी (क्षय रोग) से ग्रस्त होकर जीवन जी रहा है। कहानी फ्लैशबैक में चलती है, जहाँ वह अपनी पत्नी **मन्नो** के साथ अपने प्रेम और गृहस्थी के दिनों को याद करता है।

अपूर्ण प्रेम: रवि और मन्नो का प्रेम देह और मन दोनों स्तरों पर गहरा था, लेकिन मन्नो को लाइलाज बीमारी (टीबी) होने के कारण उनके रिश्ते में एक **अदृश्य फासला** आ गया.

सामाजिक भय: रवि की बुआ मन्नो को परिवार से दूर रखती है, क्योंकि तब टीबी को छुआछूत की बीमारी माना जाता था। यह सामाजिक रूढ़ि और बीमारी का भय प्रेम पर भारी पड़ता है, और मन्नो को भुवाली भेज दिया जाता है, जहाँ वह अंततः अकेली मर जाती है।

निष्फल प्रयास: कहानी बताती है कि प्रेम, देखभाल और प्रयास के बावजूद नियति के सामने मनुष्य कितना विवश है। मन्नो को बचाने के सारे प्रयास "बादलों के घेरे" की तरह **निष्फल** होकर बिखर जाते हैं।

शीर्षक की सार्थकता और प्रतीकात्मकता

कहानी का शीर्षक **'बादलों के घेरे में'** अत्यंत प्रतीकात्मक है:

1. **जीवन की उदासी:** जैसे पहाड़ पर बादल आते हैं, घिरते हैं, और बिना बरसे छँट जाते हैं, वैसे ही रवि और मन्नो के जीवन में भी प्रेम आया, लेकिन बीमारी और नियति के घेरे में फँसकर **अधूरा** रह गया.

2. **अस्पष्ट भविष्य:** 'बादलों का घेरा' उस अस्पष्टता, **घुटन** और अंधेरे को दर्शाता है जो रवि के अकेले जीवन में छाया हुआ है।

3. **मनुष्य की विवशता:** यह घेरा उन तमाम सामाजिक और शारीरिक **बंधनों** को भी दर्शाता है, जिनके कारण दो प्रेम करने वाले एक नहीं हो पाते और अंततः दोनों अकेलेपन में खो जाते हैं।

कृष्णा सोबती की 'बादलों के घेरे में': नियति, प्रेम और मानवीय विवशता का मार्मिक आख्यान

कृष्णा सोबती का नाम आधुनिक हिंदी साहित्य की उन चुनिंदा हस्ताक्षर लेखिकाओं में शामिल है, जिन्होंने साहित्य को एक नई संवेदनशीलता और भाषा का साहस प्रदान किया. उनकी कहानी 'बादलों के घेरे में' केवल एक कथा नहीं है, बल्कि मोहभंग, बीमारी और एकाकीपन के त्रिकोण में फँसे मनुष्य की नियति का एक गहन मनोवैज्ञानिक दस्तावेज है। यह कहानी हमें बताती है कि किस प्रकार जीवन की क्रूरताएँ, प्रेम की पवित्रतम भावनाओं को भी अपने 'घेरे' में कसकर विफल कर देती हैं।

1. कथा-वस्तु और पूर्वदीप्ति (Flashback) का प्रयोग

कहानी का ताना-बाना विभाजन-पूर्व और विभाजन-पश्चात के कालखंड में बुना गया है, जहाँ मुख्य पात्र रवि भुवाली के एक कॉटेज में टीबी के इलाज के लिए अकेले रह रहा है। कहानी का आरंभिक दृश्य उदासी और अकेलेपन से भरा है, जहाँ रवि अपनी पत्नी मन्नो के जाने के बाद जीवन जी रहा है। कहानी का अधिकांश हिस्सा पूर्वदीप्ति (Flashback) में चलता है, जहाँ रवि अपने अतीत के सुखद और दुखद क्षणों को याद करता है। यह शिल्पगत विशेषता कहानी को आंतरिक गहराई देती है।

रवि और मन्नो का विवाह प्रेम और शारीरिक आकर्षण पर आधारित था, लेकिन मन्नो को टीबी की बीमारी हो जाती है। उस समय समाज में इस रोग के प्रति फैले भय और छुआछूत की भावना के चलते रवि की बुआ मन्नो को घर से दूर भुवाली भेजने का निर्णय लेती हैं। यह दूरी, शारीरिक और भावनात्मक दोनों, उनके प्रेम पर अंतिम प्रहार साबित होती है। सोबती जी दिखाती हैं कि कैसे सामाजिक रूढ़ियाँ और चिकित्सीय अक्षमता (उस समय) व्यक्तिगत संबंधों को तोड़ देती हैं।

2. पात्रों का मनोवैज्ञानिक दुविधा

क. रवि: प्रेम और ग्लानि के घेरे में : - रवि का चरित्र विवशता और ग्लानि का प्रतीक है। वह मन्नो से सच्चा प्रेम करता है और उसे बचाने का भरसक प्रयास भी करता है, लेकिन वह सामाजिक दबावों और परिवार की अनिच्छा के सामने हार मान लेता है। मन्नो की मृत्यु के बाद, वह अकेलेपन और असफलता की ग्लानि से ग्रस्त हो जाता है। कहानी के अंत में, जब वह

मन्नो की हमशक्ल **मीरा** को देखता है, तो वह यह स्वीकार नहीं कर पाता कि उसका प्रेम सचमुच ख़त्म हो गया है। वह मीरा में मन्नो की छवि तलाशता है, जो दर्शाता है कि वह अभी भी अतीत के 'बादलों के घेरे' में कैद है।

ख. मन्नो: समर्पण और नियति की शिकार :- मन्नो समर्पण और अटूट प्रेम का प्रतीक है। बीमारी के बावजूद, वह अपने पति के प्रति निष्ठावान रहती है। उसका चरित्र दिखाता है कि एक स्त्री के लिए शारीरिक बीमारी से ज़्यादा, प्रेम का अधूरा रह जाना और अकेले मर जाना कितना कष्टप्रद होता है। वह परिस्थितियों की शिकार है, जहाँ प्रेम, जीवन के आगे घुटने टेक देता है।

3. शीर्षक की प्रतीकात्मकता और वातावरण-सृष्टि

भौगोलिक प्रतीकता: भुवाली और पहाड़ों का वातावरण, जहाँ टीबी के मरीज़ों का इलाज होता था, अक्सर बादलों से घिरा रहता है। यह भौगोलिक घेरा ही पात्रों के मन की घुटन और उदासी का प्रतीक बन जाता है।

मनोवैज्ञानिक प्रतीकता: 'घेरा' उस अंधेरे, अनिश्चितता और विवशता को दर्शाता है जिसने रवि के जीवन को घेर लिया है। यह वह जाल है जिससे वह कभी मुक्त नहीं हो पाता। मन्नो का प्रेम और जीवन, बीमारी और सामाजिक भय के बादलों के बीच फँसकर रह जाता है।

सोबती जी ने संवेदनात्मक और चित्रात्मक भाषा का प्रयोग किया है। चीड़ के पेड़ों का वर्णन, भुवाली की ठंडी हवा और कॉटेज की उदासी, रवि के आंतरिक दुःख को बाहरी परिवेश के माध्यम से गहराई देती है। इस कहानी के विश्लेषण में प्रमुख रूप से विषय वस्तु, मनोविज्ञान, शिल्प और सामाजिक संदर्भ जैसे चार मुख्य पहलू उभरकर सामने आते हैं:

क) विषय-वस्तु और भावनात्मक पहलू (Thematic and Emotional Aspect)

प्रेम की त्रासदी और असफलता: यह कहानी रवि और मन्नो के अधूरे प्रेम की गाथा है। यह दिखाती है कि प्रेम की सघनता के बावजूद, जीवन की क्रूरताएँ (जैसे लाइलाज बीमारी) उसे किस प्रकार असफलता के 'घेरे' में कैद कर देती हैं।

मोहभंग और एकाकीपन: मुख्य पात्र रवि कहानी के अंत तक एकाकीपन और अपनी पत्नी को बचाने में असफल रहने के कारण **ग्लानि (Guilt)** के गहरे मोहभंग से गुजरता है। यह जीवन की नियतिवादी उदासी को व्यक्त करता है।

बीमारी और मृत्यु का भय: कहानी टीबी (क्षय रोग) जैसी गंभीर बीमारी के प्रति उस समय के सामाजिक भय और लाचारी को दर्शाती है, जो व्यक्तिगत जीवन और रिश्तों को बुरी तरह प्रभावित करता है।

ख) मनोवैज्ञानिक पहलू (Psychological Aspect)

स्मृति और अतीत का बोझ: कहानी का अधिकांश भाग रवि की स्मृतियों पर आधारित है। रवि वर्तमान में जी रहा है, लेकिन वह अपने अतीत, विशेषकर मन्नो की यादों और उसके साथ बिताए पलों के मनोवैज्ञानिक घेरे से बाहर नहीं निकल पाता।

पहचान की खोज और भ्रम: रवि, मन्नो की मृत्यु के बाद भी, उसकी हमशक्ल मीरा में अपनी पत्नी को तलाशता है। यह उसके मानसिक भ्रम और अतीत से मुक्ति न पा सकने की असमर्थता को दिखाता है। उसका चेतन मन जानता है कि मन्नो नहीं है, लेकिन अवचेतन मन उसे छोड़ नहीं पाता।

विरह की मार्मिकता: लेखक ने रवि और मन्नो के बीच हुए विरह (Separation) को बहुत संवेदनशीलता से चित्रित किया है। यह विरह भौतिक दूरी के साथ-साथ बीमारी के भय से उपजा था।

3. सामाजिक और यथार्थवादी पहलू (Social and Realistic Aspect)

सामाजिक रूढ़ियाँ और दबाव: कहानी उस समय के समाज को दर्शाती है जहाँ टीबी जैसी बीमारी को छुआछूत माना जाता था। रवि की बुआ का व्यवहार परिवार में सामाजिक दबाव और रूढ़ियों का प्रतिनिधित्व करता है, जो प्रेम को परिवार की स्वीकृति नहीं देता।

यथार्थवादी चित्रण: सोबती जी ने भुवाली (टीबी सैनेटोरियम का क्षेत्र) के वातावरण और बीमारी से जूझते पात्रों का यथार्थवादी चित्रण किया है। उन्होंने जीवन की सच्चाइयों को बिना किसी आदर्शवादी आवरण के प्रस्तुत किया है।

4. कलात्मक और शिल्पगत पहलू (Artistic and Craftsmanship Aspect)

पूर्वदीप्ति (Flashback) तकनीक: यह कहानी का सबसे महत्वपूर्ण शिल्पगत पहलू है। रवि का वर्तमान एकाकीपन और अतीत की यादों के बीच लगातार आवागमन कथा को एक गहराई और भावनात्मक घनत्व प्रदान करता है।

प्रतीकात्मक शीर्षक: 'बादलों के घेरे में' शीर्षक अत्यंत प्रतीकात्मक है। 'बादल' उदासी, अनिश्चितता, घुटन और नियति की विवशता का प्रतीक हैं, जो पात्रों के जीवन को घेर लेते हैं।

संवेदनात्मक भाषा: कृष्णा सोबती की भाषा अतरंग, चित्रात्मक और संवेदनात्मक है। इसमें पंजाबी और उर्दू के शब्दों का सहज मिश्रण मिलता है, जो कहानी के भावनात्मक प्रभाव को बढ़ा देता है।

ये सभी पहलू मिलकर 'बादलों के घेरे में' कहानी को केवल प्रेम कथा नहीं, बल्कि मानव नियति और मनोवैज्ञानिक द्वंद्व की एक महान कृति बनाते हैं।

निष्कर्ष

कृष्णा सोबती की कहानी *'बादलों के घेरे में'* मानवीय संवेदनाओं, प्रेम, विरह, मोहभंग और नियति की विवशताओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है। कहानी में रवि और मन्नो के माध्यम से यह दर्शाया गया है कि प्रेम की गहनता भी कभी-कभी सामाजिक रूढ़ियों, बीमारी और भाग्य के सामने असहाय हो जाती है। पूर्वदीप्ति शैली, प्रतीकात्मक शीर्षक तथा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कहानी को विशेष प्रभावशीलता प्रदान करते हैं। 'बादलों का घेरा' जीवन की अनिश्चितता, अकेलेपन और मानसिक पीड़ा का सशक्त प्रतीक बनकर उभरता है। यह कहानी केवल प्रेम की विफलता नहीं, बल्कि मानवीय अस्तित्व की त्रासदी और जीवन-सत्य का यथार्थवादी दस्तावेज है।

संदर्भ :

कृष्णा सोबती. (2019). *बादलों के घेरे*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

कृष्णा सोबती. (1977). *हम हशमत* (भाग-1). नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

कृष्णा सोबती. (1999). *हम हशमत* (भाग-2). नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

कृष्णा सोबती. (2012). *हम हशमत* (भाग-3). नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

कृष्णा सोबती. (1966). *मित्रो मरजानी*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

कृष्णा सोबती. (1979). *ज़िंदगीनामा*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

कृष्णा सोबती. (1991). *ऐ लड़की*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

कृष्णा सोबती. (1993). *दिलो-दानिश*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

बच्चन सिंह. (2011). *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन.

राजेंद्र यादव (सम्पा.). (2010). *समकालीन हिंदी कहानी*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

मैनेजर पाण्डेय. (2013). *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

शिवकुमार मिश्र. (2014). *हिंदी कहानी : संवेदना और शिल्प*. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन.

निर्मल वर्मा. (2005). *कहानी : नई कहानी*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

नामवर सिंह. (2011). *कहानी : नई कहानी*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

रामस्वरूप चतुर्वेदी. (2012). *हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.

Received: 28.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

पश्चिमबङ्गाल में उच्चशिक्षा के मुद्दे एवं चुनौतियां

अनिमेष देवशर्मा* **प्रो. चन्द्रकान्त†**
animeshdebsarma9@gmail.com **chandrakantgi@gmail.com**

सारांश (Abstract)

उच्च शिक्षा किसी भी राज्य एवं राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक तथा मानवीय विकास का आधार होती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में पश्चिमबंगाल की उच्च शिक्षा व्यवस्था के वर्तमान परिदृश्य, उपलब्धियों, समस्याओं एवं चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में सकल नामांकन अनुपात (GER), लैंगिक समानता, उच्च शिक्षा संस्थानों की वृद्धि तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के संदर्भ में राज्य की स्थिति का मूल्यांकन किया गया है। पश्चिमबंगाल में उच्च शिक्षा संस्थानों की संख्या में वृद्धि हुई है, किंतु शिक्षकों की कमी, आधारभूत संरचना का अभाव, गुणवत्तापूर्ण शिक्षण, रोजगारोन्मुख शिक्षा तथा उद्योग-जगत से समन्वय जैसी समस्याएँ अभी भी विद्यमान हैं। शोध में यह भी स्पष्ट किया गया है कि उच्च शिक्षा की गुणवत्ता राज्य के समग्र विकास, मानव संसाधन निर्माण तथा सामाजिक प्रगति से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई है। अध्ययन उच्च शिक्षा में सुधार हेतु प्रभावी नीतियों, शिक्षक नियुक्तियों, आधारभूत सुविधाओं के विकास तथा रोजगारपरक शिक्षा की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द:

उच्च शिक्षा, पश्चिमबंगाल, GER, NAAC, शिक्षण संस्थान, गुणवत्ता, शिक्षक नियुक्ति, राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020।

“मानवों के अन्तर्निहित शक्तियों का बाहर आना ही शिक्षा है” इस प्रकार स्वामीविवेकानन्दजी शिक्षा को परिभाषित किए हैं। अध्यात्म और आत्मदर्शन के विद्या को स्वामीजी ने अपने में ही सीमित नहीं रखा है, अपितु सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अध्यात्मदर्शन का पाठ पढाये है। साहित्यसम्राट बङ्किमचन्द्रचटर्जी, जिन्होंने इसी बंगाल की भूमि में ही “वन्देमातरम्” “राष्ट्रगान” लिखे हैं। और एक बंगाली कृति सन्तान “विश्वकवि रवीन्द्रनाथठाकुर” हमारे भारतदेश के “राष्ट्रगीत”, “जन-गन-मण” लिखे हैं।

अंग्रेजों के शासनकाल से ही बंगाल के मनीषि और शिक्षाविदों ने भावनात्मक और आध्यात्मिक शिक्षा पर जोर दिया। बंगाल के शिक्षा प्रणाली ऐसे ज्ञान में विश्वास रखती है, जो भौतिक बंधनों से मुक्ति दिलाता है। स्वामी जी कहते थे – उत्तिष्ठत! जाग्रत! प्राप्य! वरान्न निबोधित! वे समझते हैं कि युवा मस्तिष्कों को उचित पोषण की आवश्यकता होती है, जो एक सुव्यवस्थित शिक्षा प्रणाली के माध्यम से ही संभव है। उन्होंने नई पीढ़ी को दिए जाने वाले नैतिक मूल्यों की शिक्षा पर बल दिया, और साथ ही भारत के लिए एक ऐसा सपना देखा जो एक पारदर्शी और सशक्त शिक्षा प्रणाली के जरिए यथार्थ की दुनिया में साकार हो सके।

महर्षि अरविन्दघोष जी का शिक्षा के लिए यह अभिमत रहा, किसी भी देश या राज्य के सामाजिक-आर्थिक विकास में उच्च शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा मानव पूंजी के निर्माण को बढ़ावा देती है, जिसका सीधा प्रभाव उत्पादकता पर पड़ता है। व्यक्तिगत दृष्टिकोण से, यह युवाओं में सर्वांगीण विकास और रोजगार-योग्यता के लिए आवश्यक दक्षता को बढ़ावा देती है; वहीं दूसरी ओर, यह अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के लिए आवश्यक योग्य और कुशल मानव संसाधन भी उपलब्ध कराती है।

* **शोध छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री राजीव गांधी परिसर, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, शृंगेरी, कर्नाटक**

† **मार्गदर्शक, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री राजीव गांधी परिसर, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, शृंगेरी, कर्नाटक**

रायसाहेबठाकुरमनीषिपञ्चाननवर्मा का अभिमत यह है - सभी विकसित अर्थव्यवस्थाओं की सफलता का रहस्य यह है कि उन्होंने बहुत पहले ही शिक्षा जैसे सामाजिक बुनियादी ढांचे में भारी निवेश किया था, और अब वे उसके लाभ- अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों और हर पहलू में हुई प्रगति - को प्राप्त कर रहे हैं। उच्च शिक्षा और मानव संसाधन विकास के बीच एक गहरा और सकारात्मक संबंध मौजूद है। वैश्विक स्तर पर, उच्च शिक्षा के विकास, प्रदर्शन, समृद्धि और प्रतिस्पर्धात्मकता के प्रमुख चालकों में से एक माना जाता है।

UNESCO की रिपोर्ट के अनुसार, उच्च शिक्षा की सामाजिक भूमिका एक ओर विश्वविद्यालयों की बौद्धिक और शैक्षिक भूमिका, तथा दूसरी ओर समाज के विकास के बीच एक सेतु (कड़ी) का काम करती है। 'सकल नामांकन अनुपात' (GER) एक सांख्यिकीय पैमाना है, जिसका उपयोग किसी देश के भीतर स्नातक, स्नातकोत्तर और शोध - स्तर की शिक्षा में नामांकित विद्यार्थियों की संख्या निर्धारित करने के लिए किया जाता है।

भारत का लक्ष्य 30% का GER हासिल करना है, किंतु वह अभी भी चीन (जिसका GER 43.39% है) और अमेरिका (जिसका GER 85.8% है) जैसे देशों से काफी पीछे है। पिछले सात सालों में जेंडर पैरिटी इंडेक्स (GPI) पर इसने अपना सबसे अच्छा प्रदर्शन दर्ज किया है। 2010-11 में 86 से बढ़कर 2016-2017 में 94 हो गया। GPI की गणना महिलाओं की संख्या को पुरुषों की संख्या से भाग देकर की जाती है (जितने पुरुषों ने दाखिला लिया हो)। GPI का मान 1 होने का मतलब है समानता, और 1 से कम होने का मतलब है असमानता। सात राज्यों - गोवा, हिमाचल प्रदेश, मेघालय, जम्मू-कश्मीर, नागालैंड, सिक्किम और केरल - में उच्च शिक्षा में महिलाओं की संख्या पुरुषों से ज़्यादा हो गई है।

कॉलेज डेंसिटी (कॉलेजों की सघनता) को देखें तो, दक्षिण भारत के राज्यों में कॉलेज डेंसिटी सबसे ज़्यादा है। भारत में उच्च शिक्षा पाने वाले छात्रों का कुशल अनुपात 2015-16 से 2016-17 के बीच बहुत ज़्यादा नहीं बढ़ा है। 2013-14 से यह 23 से 25 के बीच रहा है; तमिलनाडु में यह सबसे ज़्यादा 46.91% था, और केवल छह राज्यों ने ही राष्ट्रीय औसत 25.2% से ज़्यादा GER दर्ज किया है। केंद्रीय मंत्रिमंडल ने नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 को मंज़ूरी दे दी है। यह नीति अगले 10 सालों के लिए 2030 तक लक्ष्य भी तय करती है, जिसमें शिक्षा बजट को मौजूदा 3% से बढ़ाकर GDP का 6% करके GER को मौजूदा 25.8% से बढ़ाकर 50% (2030 तक) करना शामिल है। पश्चिमबंगाल राज्य में 18-23 साल के आयु वर्ग में उच्च शिक्षा का सकल नामांकन अनुपात (GER) 35.4 (कुल मिलाकर) है, जिसमें पुरुषों का GER 36.5 और महिलाओं का GER 34.4 है; इसकी तुलना में राष्ट्रीय GER 27.1 (कुल मिलाकर) है, इसलिए यह राष्ट्रीय औसत से ज़्यादा है। इसके अलावा, यह भी देखा गया है कि 2024-25 के आंकड़ों के आधार पर, पश्चिम बंगाल का उच्च शिक्षा परिदृश्य एक संतुलित लेकिन थोड़ा पुरुष-तिरछा सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) दिखाता है, जिसमें थोड़ी कम महिला दर की तुलना में 24.0% का पुरुष जीईआर है। जबकि विद्यालय शिक्षा, विशेष रूप से उच्च माध्यमिक स्तर पर, महत्वपूर्ण लिंग समानता को दर्शाती है, समग्र तृतीयक जीईआर समान पहुंच पर निरंतर ध्यान देने की आवश्यकता को दर्शाता है।

महिला जीईआर: ऐतिहासिक रूप से, हाल के वर्षों में लगभग 26.8% की सूचना मिली थी, लेकिन 2024-25 डेटा पुरुष समकक्षों की तुलना में कुछ मेट्रिक्स में प्रतिस्पर्धी, थोड़ा कम अनुपात दिखाता है। विद्यालयो में लिंग समानता (उच्च एड में संक्रमण): उच्च माध्यमिक (ग्रेड 11-12) लड़कियों का प्रतिधारण और नामांकन मजबूत हैं, 60.9% जीईआर के साथ, जो भविष्य की उच्च शिक्षा भागीदारी को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

संदर्भ: 2024-2025 शैक्षणिक वर्ष के लिए, ओडीएल (ओपन एंड डिस्टेंस लर्निंग) मोड सहित पश्चिम बंगाल की उच्च शिक्षा, सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) में वृद्धि की प्रवृत्ति को दर्शाती है, जो राष्ट्रीय स्तर पर 28.4% तक पहुंच गई है (पश्चिम बंगाल लगातार अपने 2020-21 सत्र 21.3% के जीईआर से अंतर को पाटने की कोशिश कर रहा है)। पश्चिम बंगाल में उच्च शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी अक्सर पुरुषों की तुलना में अधिक जीईआर दिखाती है।

शोधसीमा – (Limitations of the Research)

हालांकि पश्चिमबंगाल के शैक्षिकक्षेत्र के व्यापक वर्णन इस लेख में है, परन्तु कुछ सीमा भी है। इस लेख में मुख्य रूप से पश्चिमबंगाल के उच्चशिक्षा के वर्तमानपरिदृश्य के वर्णन है। मुख्यरूप से छात्र के शिक्षण के प्रभाव के बारे में वर्णन किया गया है।

शोधप्रविधि – (Research Methodology)

इस शोध लेख की प्रविधि वर्णनात्मिका (Descriptive) तथा विश्लेषणात्मिका (Analytical) है। पश्चिमबंगाल राज्य के प्राध्यापक और छात्र के वर्तमान दशा के विषय में विषयवस्तु का स्थापन किया गया है। राज्य के उच्च शिक्षण संस्थान के दशा और दिशा का वर्णन किया गया है।

पश्चिमबंगाल में आधुनिक उच्चशिक्षा का स्थान -

उच्चशिक्षा का मतलब है सभी तरह की शिक्षा- एकेडमिक, प्रोफेशनल, टेक्नोलॉजिकल, वोकेशनल, टीचर एजुकेशन, मेडिकल, लॉ, इंजीनियरिंग और पॉलिटेक्निक। National Education Policy-2020 के आधार पर शिक्षा केवल अक्षरज्ञान के लिए ही नहीं, अपितु जिसे विद्यार्थीयों के समग्रविकास (360 Degree Holistic Development) हो। पश्चिमबंगाल में पिछले एकदशक से उच्चशिक्षणसंस्थान की स्थापना में एक अभिनव क्रान्ति दिखी है, जबकि 2011 में सिर्फ़ 37 उच्चशिक्षणसंस्थान थे, उसके बाद 2026 में 63 उच्चशिक्षणसंस्थान हो गए हैं, जिनमें विश्वविद्यालय और महविद्यालय शामिल हैं, जिनमें सरकारी और निजी संस्थान दोनों शामिल हैं। खास शैक्षीकसंस्थान में राज्य की सबसे पुरानी विश्वविद्यालय कलकाता विश्वविद्यालय के साथ-साथ उत्तरबंगविश्वविद्यालय और "विश्वभारती" जैसे दूसरे शिक्षणसंस्थान शामिल हैं। सरकार द्वारा चलाई जाने वाली खास सुविधाओं में कई सारे सरकारी, निजी मेडिकल कॉलेज R.G. Kar Medical college, Calcutta National Medical College, IQ City Medical College आदि और NIT दुर्गापुर , IIT Kharagpur, जैसे इंजीनियरिंग कॉलेज शामिल हैं। यह अलग-अलग फील्ड में बेहतर मानव संसाधन तैयार करने के मामले में राज्य के विकास के लिए एक अच्छा संकेत है।

पश्चिमबंगाल में उच्चशिक्षणसंस्थान की समस्याएं -

उच्चशिक्षणसंस्थानों में कई समस्याएं हैं, लेकिन सबसे ज़रूरी मुद्दे जिन पर तुरंत ध्यान देने की ज़रूरत है, वे हैं:

१. शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रभाव - फैकल्टी की कमी और छात्र-शिक्षक अनुपात: नई भर्ती न होने के कारण, मौजूदा फैकल्टी सदस्यों पर अक्सर काम का बोझ ज्यादा हो जाता है, जिससे छात्र-शिक्षक अनुपात में गिरावट आती है। इसका छात्रों की भागीदारी, मेंटरिंग और रिसर्च सुपरविज़न पर बुरा असर पड़ता है।

२. सीखने की गुणवत्ता - पुराने जमाने के पढ़ाने के तरीके बने रह सकते हैं, और नए, अच्छी तरह से प्रशिक्षित फैकल्टी सदस्यों के न आने से पढ़ाने के नए तरीके रुक सकते हैं।

३. एक्रेडिटेशन और रैंकिंग - यूनिवर्सिटी की रैंकिंग और एक्रेडिटेशन में फैकल्टी की गुणवत्ता एक मुख्य पैमाना है। लगातार भर्ती न होने से रैंकिंग और एक्रेडिटेशन की स्थिति में गिरावट आ सकती है, जिससे यूनिवर्सिटी के लिए अच्छे छात्रों और फंडिंग को आकर्षित करना और भी मुश्किल हो जाता है।

४. उच्च शिक्षा में समानता और पहुँच पर प्रभाव - शिक्षकों की कमी के कारण अक्सर कार्यक्रमों की संख्या कम हो जाती है, पाठ्यक्रमों के विकल्प सीमित हो जाते हैं, और छात्रों के दाखिले में कमी आ जाती है। इसका विशेष रूप से प्रभाव हाशिए पर पड़े और ग्रामीण आबादी वाले लोग, जिन्हें उच्च शिक्षा तक पहुँचने में पहले से ही बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इससे उच्च शिक्षा तक पहुँच में असमानताएँ और बढ़ सकती हैं।

५. ग्रामीण और दूरदराज के कैंपस - पश्चिमबंगाल के कई सरकारी विश्वविद्यालयों के दूरदराज के इलाकों में कैंपस हैं। फैकल्टी की कमी का सबसे ज्यादा असर इन्हीं पर पड़ता है, जिससे शैक्षणिक सुविधाओं और बुनियादी ढाँचे में गिरावट आती है।

६. नीतिगत निष्क्रियता- लंबे समय तक फैकल्टी की भर्ती न कर पाना एक शासन संकट का संकेत है, जहाँ बजट, मंज़ूरी और राजनीतिक इच्छाशक्ति में व्यवस्थागत बाधाएँ साफ़ दिखाई देती हैं। यह लेख उन खास नीतियों - या उनकी कमी - की जाँच कर सकता है, जिन्होंने इस समस्या को बढ़ाने में योगदान दिया है।

७. वित्तीय बाधाएँ - हालाँकि कुछ लोगों का तर्क है कि बजट की कमी का यह कारण हो सकता है, लेकिन इससे सरकार के विकास एजेंडे में उच्च शिक्षा को दी जाने वाली प्राथमिकता को लेकर बड़े सवाल खड़े होते हैं।

८. रोजगार सृजन और कौशल विकास पर प्रभाव - शैक्षणिक रोजगार के अवसरों में गिरावट फैकल्टी की भर्ती न होने से PhD, स्नातकों और अन्य उच्च योग्यता प्राप्त लोगों के लिए रोजगार की संभावनाएँ कम हो जाती हैं, जिससे राज्य की रोजगार दर पर और भी बुरा असर पड़ता है - खासकर शिक्षा और अनुसंधान क्षेत्रों में। **कौशल की कमी:** आधुनिक कार्यबल की माँगों को पूरा करने के लिए छात्रों को जरूरी कौशल से कम करने में विश्वविद्यालयों की अहम भूमिका होती है। फैकल्टी की संख्या कम होने से इन संस्थानों की उद्योग-प्रासंगिक पाठ्यक्रम और नए कार्यक्रम विकसित करने की क्षमता कम हो जाती है।

९. प्राध्यापक की नियुक्ति कमी से विद्यार्थीयों के भविष्य पर प्रभाव - पीछले एक दशक में पश्चिमबंगाल के विद्यालय , महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक की स्थायी नियुक्ति न के बराबर है। जहां प्राध्यापक की आवश्यकता बहुत अधिक है परन्तु विद्यालय, महाविद्यालयों में न के बराबर प्राध्यापक है। मध्यमवर्ग परिवार के विद्यार्थीयों के जहां सरकारी नौकरी करने का सपना रहता है, आज वही विद्यार्थी विद्यालयविमुख (School Drop Out) होकर के बैङ्गलोर, चेन्नाई, हायद्रावाद, दिल्ली, सुरत जैसे बडे बडे शहरों में मजदूरी करने जा रहे हैं।

१०. प्राध्यापक की गुणवत्ता - शिक्षा की गुणवत्ता मुख्य रूप से प्राध्यापक की काबिलियत, कौशल, और मार्गदर्शन से तय होती है। विद्यालयों में, एक टीचर के पास B.Ed. होना जरूरी है, उच्चशिक्षणसंस्थानों में, NET/SLET/Ph.D के अलावा प्राध्यापक के लिए ऐसी कोई योग्यता नहीं है, और इन योग्यता वाले प्राध्यापक अभी पश्चिमबंगाल के शैक्षणिकसंस्थानों में बहुत कम हैं।

११. उच्चशिक्षणसंस्थानों में आधारभूत संरचना की कमी - ज्यादातर सरकारी महविद्यालयों में अच्छी गुणवत्ता का आधरभूतसंरचना नहीं है, जिसमें भवन, सही संकाय भवन, छात्रावास और पुस्तकालय शामिल हैं। इसके समाधान के तौर पर, राज्य सरकार को यह करना चाहिए की नेशनल असेसमेंट एंड एक्रेडिटेशन काउंसिल (NAAC) से मान्यता (Accreditation) निजी संस्थानों के साथ-साथ सरकारी विश्वविद्यालयों और अन्य उच्च शिक्षा संस्थानों के लिए भी जरूरी है, ताकि कुछ हद तक बुनियादी ढांचे की गुणवत्ता में सुधार किया जा सके।

विश्वविद्यालयों मे अध्यापकशिक्षा की व्यवस्था की कमी के कारन बंगाल में निजी अध्यापकशिक्षण संस्थान कुकुरमुत्ते की तरह दिखाई देते हैं। हालांकी "जास्टिस वर्मा एक्ट 2012" का कहना था की छात्राध्यापक की गुणवत्ता के कारण 2014 से बी.एड, एक वर्ष से दो वर्ष के बी.एड डिग्री के लिए आदेश दिया गया था।

१२. परीक्षा से जुड़े मुद्दे - विश्वविद्यालयों में सेमेस्टर सिस्टम होता है, लेकिन कॉलेजों में सालाना परीक्षा प्रणाली होती है, जिसमें ज्यादातर निबंध-प्रकार के प्रश्न होते हैं और 50% प्रश्नों में विकल्प (Choice) मिलता है। चॉइस-बेस्ड क्रेडिट सिस्टम (Choice-Based Credit System) को तुरंत लागू किया जाना चाहिए।

१३. रोज़गार से जुड़े मुद्दे - आज के बेहद प्रतिस्पर्धी दौर में, रोजगार पाने के लिए उच्च शिक्षा संस्थानों में पढ़ाई के दौरान ही छात्रों में प्रभावी कौशल (Skills) विकसित होने चाहिए, और शिक्षा जगत (Academia) तथा उद्योग जगत (Industry) के बीच एक मजबूत तालमेल होना चाहिए। पश्चिमबंगाल में इस तालमेल की कमी है, जिसके कारण रोजगार देने की क्षमता न के बराबर है।

आखिरकार, उच्च शिक्षा संस्थानों में किसी भी छात्र का मूल्यांकन इस आधार पर किया जाएगा कि क्या उसने कोर्स खत्म होने तक रोजगार पाने के लिए जरूरी सभी कौशल हासिल कर लिए हैं। संक्षेप में कहें तो, उच्च शिक्षा संस्थानों के सामने एक बड़ी चुनौती है - वह यह कि वे छात्रों को रोजगार पाने के लिए जरूरी कौशल से इतना सक्षम बना सकें कि उन्हें आसानी से नौकरी मिल सके और भावीजीवन जी सकें।

निष्कर्ष -

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पश्चिमबंगाल की उच्च शिक्षा व्यवस्था ने संस्थागत विस्तार और नामांकन के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है, किंतु गुणवत्ता, शिक्षक उपलब्धता, आधारभूत संरचना, अनुसंधान तथा रोजगारपरक शिक्षा के क्षेत्रों में अभी भी अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। शिक्षकों की कमी, ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षणिक संसाधनों का अभाव तथा उद्योग एवं शिक्षा के मध्य कमजोर समन्वय विद्यार्थियों के भविष्य को प्रभावित कर रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि राज्य सरकार और उच्च शिक्षा निदेशालय मिलकर शिक्षक नियुक्ति, गुणवत्तापूर्ण

शिक्षण, डिजिटल संसाधनों, अनुसंधान सुविधाओं तथा कौशल-आधारित पाठ्यक्रमों को प्राथमिकता दें। इससे न केवल उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होगा, बल्कि राज्य के सामाजिक-आर्थिक विकास तथा युवाओं के रोजगार अवसरों में भी वृद्धि होगी।

संदर्भ –

Bagchi, J. (2005). *The changing status of women in West Bengal, 1970–2000: The challenge ahead*. New Delhi, India: Sage Publications.

Bal, V. (2004, August 7). Women scientists in India: Nowhere near the glass ceiling. *Economic and Political Weekly, 39*, 47–53.

Begum, M. S. (2010). Women empowerment through higher education. *University News, 48*(43), 25–31.

Chauhan, C. P. S. (2011). Participation of women in higher education: The Indian perspective. *Analytical Reports in International Education, 4*(1), 67–86.

Government of West Bengal. (1984). *Report of the Commission for Planning of Higher Education in West Bengal* (Chairman: Bhabatosh Datta).

Government of West Bengal. (2015). *Database on labour and employment statistics of West Bengal-2014*. Kolkata:

Government of West Bengal. (2016). *Economic review: 2015–16*. Kolkata: Department of Statistics and Programme Implementation.

Government of West Bengal. (2016). *Expanding horizons: Higher education in West Bengal*. Kolkata: Department of Higher Education.

Government of West Bengal. (2014–2015; 2016–2017). *Annual report of the Department of Higher Education*. Kolkata: Government of West Bengal.

Jana, S. K. (2017). Efficiency analysis of higher education institutes: A study on colleges under Vidyasagar University in West Bengal, India. *Scholars Journal of Economics, Business and Management, 4*(1), 35–40.

Jana, S. K., & Barman, S. (2010). Quality of higher education in West Bengal: NAAC assessment. *Artha Beekshan, 19*(3), 108–123.

Jana, S. K. *Higher education in West Bengal: An overview*. [Working paper/report].

Kadam, L. N. (2012). Growth and development of higher education in India: A historical and statistical review. *Indian Streams Research Journal, 2*(10).

Kumar, J., & Sangeeta. (2013). Status of women education in India. *Educationia Confab*.

National Institute of Educational Planning and Administration. (2022). *Annual report 2021–22*. New Delhi, India: NIEPA.

N. W. (2006). *What is the evidence on effectiveness of empowerment to improve health?* Copenhagen, Denmark: WHO Regional Office for Europe.

Nongbri, C. (2005). Role of universities in the empowerment of women: A look into the induction programmes. *University News, 43*(47), 21–27.

Suresha, R., & Mylarappa, B. C. (2012). Development of Indian higher education in the 21st century. *International Journal of Social Science & Interdisciplinary Research, 1*(10).

Received: 19.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

निर्मल वर्मा की कहानियों में नगरीय जीवन

मोहित श्रीवास्तव*

mohitshrivastava83598@gmail.com

शोध सार –

हिंदी कथा-साहित्य में निर्मल वर्मा का स्थान आधुनिक चेतना के सर्वाधिक संवेदनशील और सूक्ष्म कथाकारों में है। वे 'नई कहानी' आंदोलन के प्रमुख हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने व्यक्ति के अंतर्जगत, अस्तित्वगत संकट, अकेलेपन, अजनबीपन तथा आधुनिक जीवन की विडंबनाओं को अत्यंत कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया। निर्मल वर्मा का कथा-संसार मुख्यतः नगरीय जीवन की जटिलताओं और आधुनिक मनुष्य की मानसिक अवस्थाओं का संसार है। उनकी कहानियों में नगर केवल एक भौतिक परिवेश नहीं है, बल्कि वह एक सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक और अस्तित्वगत संरचना के रूप में उपस्थित होता है। आधुनिक महानगरीय जीवन में व्यक्ति जिस प्रकार संबंधों के विघटन, संप्रेषणहीनता, आत्मनिर्वासन, स्मृति और वर्तमान के द्वंद्व से गुजरता है, उसका अत्यंत प्रभावशाली चित्रण निर्मल वर्मा ने किया है।

बीज शब्द :

महानगरीय, औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण, नगरीकरण, व्यावसायिक गतिविधियां, जनसंख्या - सघनता, जीवन पद्धति, अकेलापन, विडंबना, अजनबीपन, सांस्कृतिक विस्थापन, स्वतंत्रता, संवेदनशीलता।

नगरीय जीवन से आशय उस जीवन-पद्धति से है जो नगरों और महानगरों में विकसित होती है तथा जो ग्रामीण जीवन से अपनी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के कारण भिन्न होती है। यह जीवन-शैली औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण, तकनीकी विकास, व्यवसायिक गतिविधियों और तीव्र जनसंख्या-सघनता से निर्मित होती है। नगरीय जीवन में व्यक्ति का संबंध समुदाय की अपेक्षा संस्थाओं, व्यवसायों और औपचारिक सामाजिक संरचनाओं से अधिक होता है। यहाँ जीवन की गति तीव्र, प्रतिस्पर्धात्मक और यांत्रिक होती है, जिसके कारण व्यक्ति के जीवन-मूल्यों, संबंधों और मानसिक संरचना में व्यापक परिवर्तन दिखाई देते हैं।

समाजशास्त्री लुईस वर्थ (Louis Wirth) ने नगरीय जीवन को जनसंख्या के विशाल आकार, घनत्व तथा सामाजिक विषमता पर आधारित जीवन-पद्धति माना है। उनके अनुसार नगर में रहने वाला व्यक्ति अनेक प्रकार के संबंधों से घिरा होता है, किंतु उनमें आत्मीयता अपेक्षाकृत कम होती है। इसी कारण नगरीय जीवन में व्यक्तिवाद, औपचारिकता तथा अजनबीपन की प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं।[1] वहीं दूसरी ओर लुईस मम्मफोर्ड का मानना है कि "नगर आधुनिक सभ्यता का केंद्र है, जहाँ मनुष्य अनेक अवसरों के साथ-साथ सामाजिक अलगाव का भी अनुभव करता है।"[2]

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात भारतीय समाज में तीव्र नगरीकरण, औद्योगीकरण तथा पश्चिमी आधुनिकता के प्रभाव ने जीवन-मूल्यों में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किया। पारंपरिक सामाजिक संरचनाएँ शिथिल हुईं और व्यक्ति अधिक स्वतंत्र होने के साथ-साथ अधिक अकेला भी हो गया। निर्मल वर्मा ने इस संक्रमणशील युग की मनःस्थितियों को अपनी कहानियों में स्वर दिया। उनकी कहानियों में नगर की भीड़ के बीच व्यक्ति का अकेलापन, संबंधों का खोखलापन, मानसिक असुरक्षा और अस्तित्वगत रिक्तता प्रमुख विषय बनकर उभरते हैं।

निर्मल वर्मा आधुनिक मनुष्य के अकेलेपन और विस्थापन को अपनी कथा-दृष्टि का केंद्रीय विषय मानते हैं। उनके अनुसार, "मनुष्य का सबसे बड़ा संकट बाहर नहीं, उसके भीतर घटित होता है।"[3] यह कथन उनकी कहानियों में चित्रित नगरीय

---

* **शोधार्थी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (IGNOU), मानविकी विद्यापीठ, हिन्दी विभाग, नई दिल्ली**

जीवन की मूल संवेदना को व्यक्त करता है, जहाँ व्यक्ति बाह्य सुविधाओं के बावजूद मानसिक रिक्तता का अनुभव करता है। निर्मल वर्मा की कहानियों में नगरीय जीवन का चित्रण किसी सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि से नहीं, बल्कि संवेदनात्मक और मनोवैज्ञानिक स्तर पर हुआ है। वे नगर की बाहरी चकाचौंध से अधिक उसके भीतर छिपे हुए अकेलेपन और विघटन को रेखांकित करते हैं। उनकी दृष्टि में आधुनिक नगर मनुष्य को सुविधाएँ तो देता है, किंतु उसके अस्तित्व को खंडित भी कर देता है। व्यक्ति अपने परिवेश, परिवार और स्वयं से कटता चला जाता है।

उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ—'परिंदे', 'लंदन की एक रात', 'सितंबर की एक शाम', 'दहलीज', 'जलती झाड़ी', 'माया दर्पण' तथा 'कव्वे और काला पानी'—नगरीय जीवन की इसी त्रासदी को व्यक्त करती हैं। इन कहानियों में पात्र किसी बाहरी संघर्ष से अधिक अपने भीतर के संघर्ष से जूझते दिखाई देते हैं। वे सामाजिक भीड़ में रहते हुए भी मानसिक रूप से अलग-थलग हैं। यही आधुनिक नगर की सबसे बड़ी विडंबना है, जिसे निर्मल वर्मा ने अत्यंत सूक्ष्मता से अभिव्यक्त किया है।

निर्मल वर्मा की कहानियों का सबसे प्रमुख पक्ष आधुनिक मनुष्य का अकेलापन है। यह अकेलापन केवल शारीरिक नहीं, बल्कि मानसिक और अस्तित्वगत है। आधुनिक नगर में व्यक्ति हजारों लोगों के बीच रहते हुए भी स्वयं को असुरक्षित और अकेला महसूस करता है। आलोचक नामवर सिंह ने नई कहानी की प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए लिखा है कि "नई कहानी का नायक समाज से अधिक अपने आप से संघर्ष करता है।"[4] निर्मल वर्मा की कहानियाँ इस कथन की पुष्टि करती हैं, योंकि उनके पात्र सामाजिक संघर्षों की अपेक्षा आत्मिक संघर्षों से अधिक जूझते हैं।

'परिंदे' कहानी में लतिका का चरित्र इसी अकेलेपन का प्रतीक है। उसके जीवन में स्मृतियाँ वर्तमान से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वह अपने अतीत में जीती है और वर्तमान जीवन उसके लिए अर्थहीन प्रतीत होता है। उसके आसपास लोग हैं, किंतु भावनात्मक स्तर पर वह उनसे जुड़ नहीं पाती। यहां लतिका दोहरी मन: स्थिति में जीती हुई लगती है। वह सोचती है " अब वैसा दर्द नहीं होता सिर्फ उसकी याद आती है, जो पहले कभी होता था।"[5] यह स्थिति आधुनिक नगरीय जीवन की उस त्रासदी को उद्घाटित करती है, जहाँ व्यक्ति संबंधों के होते हुए भी संबंधहीन हो जाता है। नगरीय जीवन का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष अजनबीपन है। आधुनिक नगर में व्यक्ति अपने परिवेश और लोगों के प्रति अपरिचय का अनुभव करता है। संबंध औपचारिक होते जाते हैं और आत्मीयता का स्थान कृत्रिमता ले लेती है। निर्मल वर्मा की कहानियों में पात्र अक्सर ऐसे परिवेश में दिखाई देते हैं जहाँ वे अपने ही जीवन में अजनबी बन गए हैं। 'लंदन की एक रात' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। विदेश में रह रहे पात्र केवल भौगोलिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और मानसिक स्तर पर भी विस्थापित हैं। वे अपने आसपास की दुनिया से जुड़ नहीं पाते और एक गहरे अजनबीपन का अनुभव करते हैं। " इस कहानी में लंदन की ठिठुरती रात है, डर है, आतंक है, बेकारी है, अलावा इसके अजनबीपन की अनुभूति भी है, भूख है, तलब है - सिगरेट पीने की, दुख है लड़की को न पाने का और इन सबसे अलग रंगभेद का अहसास भी है।"[6]

यह अजनबीपन केवल विदेशी परिवेश तक सीमित नहीं है। भारतीय नगरों में रहने वाले पात्र भी इसी अनुभूति से ग्रस्त हैं। वे परिवार, मित्रों और प्रेम-संबंधों के भीतर भी आत्मीय संवाद स्थापित नहीं कर पाते। परिणामस्वरूप उनके जीवन में एक गहरी रिक्तता उत्पन्न हो जाती है।

निर्मल वर्मा स्वयं आधुनिकता की समस्या पर विचार करते हुए लिखते हैं कि "आधुनिकता कोई तैयार मूल्य नहीं, बल्कि एक सतत आत्मसंघर्ष की प्रक्रिया है।"[7] निर्मल वर्मा की कहानियों में आधुनिक नगरीय जीवन के कारण पारिवारिक संबंधों के विघटन का चित्रण भी अत्यंत प्रभावशाली ढंग से हुआ है। परंपरागत भारतीय समाज में परिवार सामाजिक और भावनात्मक सुरक्षा का प्रमुख आधार था, किंतु नगरीकरण और आधुनिकता के प्रभाव से यह संरचना कमजोर होती गई। 'दहलीज' और 'माया दर्पण' जैसी कहानियों में परिवार के भीतर व्याप्त मानसिक दूरी स्पष्ट दिखाई देती है। पात्र एक ही घर में रहते हुए भी भावनात्मक रूप से एक-दूसरे से कटे हुए हैं। संवाद का अभाव और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की आकांक्षा संबंधों को खोखला बना देती है।

निर्मल वर्मा ने पारिवारिक विघटन को किसी नैतिक संकट के रूप में नहीं, बल्कि आधुनिक जीवन की अपरिहार्य परिणति के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके पात्र दोषी नहीं हैं; वे केवल बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के शिकार हैं। निर्मल वर्मा की कहानियों में स्त्री पात्र विशेष महत्त्व रखते हैं। आधुनिक नगरीय जीवन में स्त्री की बदलती हुई स्थिति और उसकी मानसिक जटिलताओं का अत्यंत संवेदनशील चित्रण उनकी कहानियों में मिलता है। लतिका, नीरजा, तरन और अन्य स्त्री पात्र

पारंपरिक भूमिकाओं से आगे बढ़कर अपनी स्वतंत्र पहचान की तलाश करती हैं। किंतु यह स्वतंत्रता उन्हें संतोष नहीं देती। वे भी अकेलेपन, असुरक्षा और संबंधों की विफलता से जूझती हैं। इसका प्रमुख कारण ये स्त्रियां आधुनिक होने के साथ साथ परंपराओं और नैतिक मूल्यों को लेकर चलती हैं। जिस प्रकार 'माया दर्पण' कहानी की नायिका ' तरन ' अपने पिता की झूठी शान की वजह से वह पिता से अलगाव महसूस करती है तथा अकेलापन, खालीपन को भी महसूस करती है - "वह सोचती है कि वह अपनी जिंदगी स्वयं जियेगी किंतु उसकी विडंबना है, कि वह अकेली रहेगी किंतु (बाबू) की छाया से बंधी हुई।"[8]

यही कारण है कि निर्मल वर्मा की स्त्रियाँ विद्रोही कम और संवेदनशील अधिक हैं। वे आधुनिक जीवन की विसंगतियों को गहराई से अनुभव करती हैं। उनके भीतर प्रेम की आकांक्षा है, किंतु वे स्थायी संबंध स्थापित नहीं कर पातीं। इस प्रकार स्त्री पात्रों के माध्यम से भी नगरीय जीवन की त्रासदी व्यक्त होती है। निर्मल वर्मा की कहानियों में स्मृति एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। नगरीय जीवन की नीरसता और रिक्तता से बचने के लिए पात्र अक्सर अतीत की स्मृतियों में शरण लेते हैं। स्मृति उनके लिए केवल अतीत का पुनर्स्मरण नहीं, बल्कि वर्तमान जीवन के अर्थहीन अनुभवों के विरुद्ध प्रतिरोध का माध्यम बन जाती है।

'परिंदे' और 'जलती झाड़ी' जैसी कहानियों में पात्र वर्तमान से अधिक अतीत में जीते हैं। स्मृतियाँ उन्हें मानसिक सहारा देती हैं, किंतु साथ ही उन्हें वर्तमान जीवन से और अधिक दूर भी कर देती हैं। 'परिंदे' कहानी में लतिका का चरित्र आधुनिक नगरीय स्त्री की मानसिक विडंबना का प्रतिनिधित्व करता है। उसके माध्यम से लेखक यह संकेत करता है कि "स्मृतियाँ कभी-कभी वर्तमान से अधिक जीवित होती हैं।"[9] स्मृति और वर्तमान के इसी द्वंद्व में आधुनिक व्यक्ति का अस्तित्व उलझा हुआ दिखाई देता है। यह द्वंद्व आधुनिक मनुष्य की मानसिक स्थिति का सूक्ष्म चित्रण है। नगर का वर्तमान जीवन यांत्रिक और भावनाशून्य है, जबकि स्मृति का संसार आत्मीयता और संवेदना से भरा हुआ है। इसलिए पात्र बार-बार अतीत की ओर लौटते हैं।

निर्मल वर्मा ने लंबे समय तक यूरोप में निवास किया था। इसलिए उनकी अनेक कहानियों में यूरोपीय नगरों का परिवेश दिखाई देता है। किंतु इन कहानियों का मूल स्वर भारतीय संवेदना से जुड़ा हुआ है। यूरोपीय नगरों में रहने वाले पात्र सांस्कृतिक विस्थापन और पहचान के संकट से जूझते हैं। वे न पूरी तरह पश्चिमी बन पाते हैं और न ही अपनी जड़ों से जुड़े रह पाते हैं। यह स्थिति आधुनिक वैश्विक जीवन की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है।

'लंदन की एक रात' और अन्य विदेशी परिवेश वाली कहानियाँ इस सांस्कृतिक अजनबीपन को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करती हैं। यहाँ नगर केवल भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता के संकट का प्रतीक बन जाता है। इसी प्रकार 'किसी अलग रोशनी में' कहानी में विदेशी जमीन पर प्रवासी सब अपने अपने अकेलेपन से झूझ रहें हैं। इस कहानी में एक ऐसा पब (बार) है, जहां कुछ रोज़ आने वालों के अलावा ' पब का मालिक ' भी इन्हीं सब में शामिल है क्योंकि वह भी अपने आप में अजनबी और अकेलेपन का शिकार है। इन सब के सुख- दुख है, जो ये सभी शराब के नशे में खोकर आपस में बांटते हैं। लेकिन एक दिन अचानक ऐसी दंपत्ति उस पब में आ जाते हैं जो अपनी लंबी बीमारी की कैद से बाहर आकर इस पब में अधीरात के समय अपनी खुशियां यहां के समूचे व्यक्ति समुदाय के साथ बांटते हैं और उस घड़ी को ही ' एक अलग रोशनी ' का नाम देते हैं।

निर्मल वर्मा की कथा-शैली अत्यंत कलात्मक और सांकेतिक है। वे नगरीय जीवन का चित्रण प्रत्यक्ष वर्णन के माध्यम से नहीं करते, बल्कि वातावरण, प्रतीकों और सूक्ष्म संकेतों के माध्यम से उसकी अनुभूति कराते हैं। उनकी कहानियों में धुंध, बारिश, खाली कमरे, खिड़कियाँ, सड़कें, पक्षी और चुप्पी जैसे प्रतीक बार-बार आते हैं। ये प्रतीक आधुनिक मनुष्य की मानसिक अवस्थाओं को व्यक्त करते हैं। उदाहरणतः 'परिंदे' में पक्षी स्वतंत्रता और विस्थापन दोनों के प्रतीक हैं। निर्मल वर्मा का नगर भी एक प्रतीक है—एक ऐसे संसार का प्रतीक जहाँ व्यक्ति निरंतर अपने अस्तित्व की तलाश में भटक रहा है। उनकी भाषा में काव्यात्मकता और सूक्ष्मता है, जो नगरीय जीवन की जटिल अनुभूतियों को प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त करती है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि निर्मल वर्मा की कहानियाँ आधुनिक नगरीय जीवन की गहन और बहुआयामी व्याख्या प्रस्तुत करती हैं। उनके यहाँ नगर केवल भौतिक विकास का प्रतीक नहीं, बल्कि आधुनिक मनुष्य की मानसिक और अस्तित्वगत स्थिति का रूपक है। अकेलापन, अजनबीपन, संप्रेषणहीनता, पारिवारिक विघटन, स्मृति, विस्थापन और

अस्तित्वगत संकट उनकी कहानियों के प्रमुख विषय हैं। उन्होंने नगरीय जीवन की बाहरी चकाचौंध के पीछे छिपी हुई मानवीय त्रासदी को अत्यंत संवेदनशीलता और कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त किया है। आलोचक नामवर सिंह ने नई कहानी की प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए लिखा है कि "नई कहानी का नायक समाज से अधिक अपने आप से संघर्ष करता है।"[10] निर्मल वर्मा की कहानियाँ इस कथन की पुष्टि करती हैं, क्योंकि उनके पात्र सामाजिक संघर्षों की अपेक्षा आत्मिक संघर्षों से अधिक जूझते हैं। निर्मल वर्मा की विशेषता यह है कि वे सामाजिक यथार्थ को मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक गहराई प्रदान करते हैं। उनकी कहानियाँ आधुनिक जीवन की उन सूक्ष्म अनुभूतियों को स्वर देती हैं जिन्हें सामान्यतः व्यक्त करना कठिन होता है। राजेंद्र यादव के अनुसार, "नई कहानी ने व्यक्ति की भीतरी टूटन और आधुनिक जीवन की त्रासदी को पहली बार केंद्र में स्थापित किया।"[11] निर्मल वर्मा की कहानियाँ नई कहानी आंदोलन की सबसे परिपक्व अभिव्यक्तियों में गिनी जाती हैं। इस दृष्टि से उनका कथा-साहित्य न केवल हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर है, बल्कि आधुनिक नगरीय सभ्यता के संकटों को समझने का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज भी है।

संदर्भ

[1] Wirth, Louis. *Urbanism as a Way of Life*. University of Chicago Press, 1938, p. 30.

[2] Mumford, *Lewis. The City in History*. Harcourt, Brace & World, 1961, p. 24.

[3] वर्मा, निर्मल. *परिंदे और अन्य कहानियाँ*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2018. पृ. 45

[4] सिंह, नामवर. *कहानी : नई कहानी*. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, 2011. पृ. 87

[5] वर्मा, निर्मल. *परिंदे*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1980, पृ. 52

[6] केंगरानी, डॉ. वंदना. *निर्मल वर्मा के स्त्री विमर्श*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2007 पृ. 128

[7] वर्मा, निर्मल. *शब्द और स्मृति*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2019 पृ. 67

[8] वर्मा, निर्मल. *"जलती झाड़ी", माया दर्पण*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 1965 पृ. 38

[9] वर्मा, निर्मल. *कव्वे और काला पानी*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन 2016, पृ. 31

[10] सिंह, नामवर. *कहानी : नई कहानी*. नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2011 पृ. 82

[11] यादव, राजेंद्र. *कहानी : स्वरूप और संवेदना*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2012 पृ. 117

Received: 20.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

Custom's Ceiling: Ownership and Inheritance Through the Lens of Dima Hasao District of Assam

Loilungthianglimi Nampui*
liminampui777@gmail.com

Kingaule Newme†
angau.newme@gmail.com

Abstract

Property ownership and inheritance are governed by Customary Laws among the indigenous tribes of Dima Hasao, Assam, among the Dimasa, Hmar, Jaintia, Khelma, Biate, Karbi and Hrangkhol communities. These Customary Laws preserve tribal identity and autonomy under India's Sixth Schedule, erect a ceiling that conscientiously restricts women's rights to land and productive assets. This paper analyze how daughters are excluded from ancestral property, widows are granted only life-use without alienation rights, and entrust married women to dependence on male kin. Based on ethnographic accounts, comparative legal analysis and customary dispute resolutions, the study argues that this ceiling is not just a cultural object but an active system of gendered economic marginalization. The access to land, when granted to women on temporary, conditional and spatially confined to domestic rather than productive zones. The paper further examines the tension between the state's non-interference policy and the constitutional guarantees of gender equality in matters of tribal customary laws. Although recent court rulings and grassroots action have gradually reduced at this ceiling, the formal harmonization or codification remains elusive. The study concludes by suggesting a balanced reform that preserves customary autonomy while abolishing biased and discriminatory inheritance rules. Custom's ceiling will continue to preserve female landlessness and undermine sustainable development in Dima Hasao without such intervention.

Keywords:

Customary law, Sixth Schedule, Dima Hasao, inheritance systems, legal pluralism.

Introduction

Customary law determines the rights, responsibilities, transfer of property and family obligations from one generation to another, and inheritance is a significant aspect of Customary Law.

* **Assistant Professor, Department of Political Science, Haflong Government College, Assam**

† **Assistant Professor, Department of Journalism, Lady Shri Ram College for Women, University of Delhi**

Inheritance practices are deeply rooted in traditional beliefs, clan structure and social organization among the indigenous communities of North East India. These Customary Laws preserve cultural identity, community values and family relationships and regulate the distribution of property. This study analyze the inheritance systems of the Dimasa, Hmar, Biate, Hrangkhol, Karbi, Jaintia (Pnar), and Khelma (Sakachep) communities of Dima Hasao District. Most of these societies follow patrilineal inheritance patterns, with the exception to the Jaintia (Pnar) community, which follows a distinctive matrilineal system. The study emphasizes the position of women in matters relating to inheritance, the rights and responsibilities of the inheritors, and the role of customary laws in protecting ancestral property and maintaining social harmony. Valuable insights about legal traditions and cultural diversity are gained through the understanding of these traditional systems among the tribal communities of Dima Hasao District.

Research Objectives

- To study the Customary Laws and inheritance rules governing various tribes in Dima Hasao district.
- To explore the codification initiatives, judicial interventions and community-led changes within customary law.

Research Methodology

The study adopts a qualitative research design, which is most suitable for understanding deeply embedded customary norms, oral traditions, and lived experiences of tribal communities regarding inheritance and property rights.

Study Area

Selected villages across three regions of Dima Hasao district, Assam - namely Haflong, Songpijang, Zion, and Moulhoi - represent a mix of different tribes group.

Sampling Technique

Purposive sampling has been used to identify key respondents, including elderly males, women, youth and educated Community members.

Literature review

Hasnu (2023) in her doctoral research, provided a comprehensive documentation of inheritance among the Dimasa community under Dimasa customary law. She categorised property into three distinct heads, including maternal property (jewellery, looms, baskets), succeeded through *Basu Han riba* inherited solely by daughters. Paternal property (land, house, cattle) is inherited through a system known as *Basa Hainribain*, and common property (money, household goods) is shared equally between sons and daughters.

Meenal Tula and Upasana Goswami (2022) critically analyses how customary land rights are evolving under state intervention and market economy. The study focuses on three communities of Assam and Meghalaya, the Garos, the Karbis and the Dimasas. She included key questions like how women perceive the customary law and the changes there in? Who has faced alienation of customary rights? And how has access to inheritance and use of land changed?

Jyoti Singh (2025) made a comparative study of inheritance rights of tribal women with special emphasis on Mizo (patrilineal) and Khasi (Matrilineal) tribes of North East India, where she found that daughters were completely excluded from inheritance, revealing the persistence gap between constitutional equality guarantees and customary practice across tribal societies in North East India.

Customary Law and Legal Pluralism in Dima Hasao

Customary Law is a system of unwritten, traditional rules and obligations, derived from long-established practices of a community, which are accepted as legally binding because they are considered essential to the group's identity, social order and survival. The Customary law focuses on survival and cohesion of the family, clan or tribe. Customary Laws in Dima Hasao District are unique laws to preserve tribal autonomy. Dima Hasao Autonomous Council under the Sixth Schedule are empowered to make laws on inheritance of property, marriage, divorce and social customs. Courts have traditionally refrained from interfering with the Customary Laws in the District. The Constituent Assembly adopted non-interference to protect tribal identity. While many tribal women seek equal rights, the study shows that most women resist codified statutory laws for fear of losing their distinct cultural identity.

Inheritance practices among the tribal communities of Dima Hasao

The patrilineal system prevails for inheritance among the tribal people of Dima Hasao, where property and familial titles are passed from father to son. The eldest son assumes responsibility and receives a larger share in some communities, while in some tribes, the youngest son receives the ancestral property and care of elderly parents. Daughters usually receive movable goods like livestock, jewellery, as marriage gifts and usually do not inherit land. The customary laws emphasise collective family welfare over individual ownership, which is mediated by the Village Council. Though legal influences are gradually bringing changes toward gender-equal inheritance, the customs and traditions preserve social hierarchy and community ties.

Karbi Inheritance and Distribution of Property

The Karbi community follows a customary system of inheritance, which allows the eldest son the right to inherit the ancestral property of the family. He assumes the responsibility of taking care of his elderly parents and maintaining the family household, but enjoys the privilege of inheriting the property. The movable properties, such as household items and personal belongings, are generally shared among siblings, while daughters usually receive a smaller share than sons.

The eldest son inherits the immovable properties like land, houses, according to tradition and becomes the custodian of these properties and assumes responsibility for preserving the family inheritance. The Village Chief or council *Rong Asar* should be informed in case of any family planning to leave the village permanently, as the hereditary holdings cannot be sold to outsiders.

Instead, they may be transferred to relatives. If no relatives are available or willing to accept the property, it must be handed over to the *Rong Asar*.

Families wishing to settle in a new village may receive permission to build a house and, after two years of good conduct and active membership, may also be allotted agricultural land. Additionally, every village must reserve at least ten bighas of land exclusively for funeral and burial purposes.

Biate Customary Laws on Inheritance and Family Rights

The Biate customary system provides clear rules regarding inheritance, family relationships, and social responsibilities. In matters of inheritance, ancestral property is normally passed to male heirs. The youngest son in the family inherits the ancestral property of the family by traditional customary law. The land is generally divided among the sons in the family. When there are no sons, brothers, or other male members of the clan eligible to inherit, it is passed to the first male cousin. The daughters are not entitled to receive the ancestral property. A portion of land may be given to the girl with the consent of the immediate relatives in case of no sons in the family. Biate customary law recognises inheritance rights mostly in favour of the sons. In the Biate society, customary law traditionally denies women's inheritance of ancestral property and land, which instead passes to the first cousin (usually male). In a notable case, a woman sought to claim her parents' property after being excluded under these customs. She approached the High Court to assert her rights. However, following negotiations, she was convinced by the clan *(Panam)* to relinquish her claim in exchange for other land belonging to her parents. The matter was resolved outside the judicial system. Under Biate Customary law, women may receive a portion of land only in the absence of any male objection.

A person raised by another family may return to his paternal home by paying a customary fee known as *Pheithuat*. The custom of *Donruang* regulates the care and return of children raised outside their paternal family. Children from a woman's previous marriage, known as *Nusul Izui*, have the right to remain with their mother if not adopted by maternal relatives. Furthermore, a sonless man who lives with his married daughter and contributes to the prosperity of her household may be exempted from paying the customary obligation known as *Lukhoi*.

Jaintia (Pnar) Inheritance System

The Pnar or Jaintia community follows a matrilineal system in which lineage, clan identity, and inheritance are traced through the mother. Children inherit their mother's family name, and after marriage, the husband usually resides with his wife's family. Although daughters inherit ancestral property, the society is not fully matriarchal, as women are traditionally excluded from the village council (*Dorbar Shnong*) and cannot hold Prominent positions such as *Rangbah Shnong* or Goan Bura cannot be occupied by the women. Though women are entitled to the ancestral property, they are excluded from *Dorbar Shnong*, the Village Council of the Jaintia (Pnar) tribe.

In Jaintia tribe, the youngest daughter is the custodian of the family heritage and ancestral property. The youngest daughter is known as *Ka Khadduh* or *Ka Khianruid*, in the Jaintia tribe. She inherits the parental home after marriage and takes responsibility for her parents. She supports all dependent siblings in her family, and after her mother's death, she assumes responsibility for the household. Inheritance is passed to the next eligible female heir in the absence of a younger daughter.

According to the Jaintia tradition, men support and protect their mother's household before marriage and perform dual roles within the family structure. After marriage, men become providers and guardians of their wives' families. The maternal uncle exercises significant authority over family matters and ancestral property and holds a respectable position in the family as a mentor, an adviser and guardian of the clan. The maternal uncle ensures the preservation of family assets and clan heritage for future generations, and traditionally, the property of the family cannot be sold without his advice.

Hrangkhol Social Life and Inheritance Customs

The Hrangkhol tribe operates under a patrilineal system, and inheritance is primarily reserved for male members according to the tradition. Sons inherit the ancestral property, while daughters traditionally have no claim in the ancestral property. In case of a family without sons but only daughters, the property may be transferred to the daughter through a will, if the daughter marries within the clan. The nearest male relative of the clan becomes the rightful heir in the absence of any children in the family. Property is generally shared among all sons, but the eldest son generally receives a larger share of ancestral property.

In the case of no descendants, adoption is permitted with the consent of both spouses. The adopted child, by tradition, must be inducted as a member of the adoptive father's clan. The family obligations include repayment of ancestral debt, if any, by the sons, grandsons, or the nearest clan relatives, as the community places importance on family obligations.

Hrangkhol customs strengthen family and social ties through the practice of *Ruongmabe,* which recognises families blessed with twelve healthy children. For the welfare of the children through *Bachei luo*, a custom widow can marry her deceased husband's younger brother, but an elder brother cannot marry his younger brother's widow. But under customary law, he can marry his wife's younger sister.

Hmar Laws of Inheritance

The Hmar community adheres to a patrilineal system in which inheritance is generally passed through the sons in the family. The male inherits Family property, which includes land, houses, agricultural fields, household goods, machinery, gardens, and even traditional offices such as chieftainship. The heir inherits property and shoulders the responsibility for taking care of their parents and supporting the family. Hmar clans mostly follow the principle of ultimogeniture, where the youngest son stays on the family estate and inherits the family property, while some clans give inheritance rights to the eldest son and follow primogeniture.

The tradition includes inheritance rights and links it to family responsibilities. The family heir may lose his right to inherit if he abandons his family duties and neglects the aged parents or refuses to support the family of his deceased brother. In the absence of a suitable heir, parents may appoint another family member or relative as a designated heir. If the legal heir fails in his responsibilities, a person faithfully caring for an elderly parent or relative may also inherit the property.

The Hmar customary system allows the youngest daughter to inherit her mother's dowry and recognises certain rights to widows over property acquired during marriage. Decisions over property

distribution arranged during a patriarch's lifetime are protected by customary law and respected even after death.

Dimasa Kachari Customary Law of Inheritance

The Dimasa Kachari customary law of inheritance enumerates three categories of property, which include property owned by males, property owned by females, and common property. Land, houses, livestock, weapons, and other assets traditionally used are male-owned property. Household items, traditional clothing, ornaments, looms, used by women are owned by women and shared family assets, money, crops, livestock, and utensils are included in common property.

Inheritance is governed by family ties and customary expectations. Sons are designated the primary heirs of the father's holdings, mostly land and ancestral assets. Property is traditionally divided among the sons and a larger share may be given to the youngest son or the child who cares for the parents. Daughters also may receive it through a will or when there are male descendants.

Dimasa women inherit their mother's personal belongings, ornaments, and other assets. Husband's property can be inherited by the widow if she remains responsible for the children's upbringing. Preference is generally given to the child who remains with and supports the parents with respect to common property sharing between sons and daughters. The customary laws ensure fairness, family harmony, and the protection of traditional rights and responsibilities over any dispute concerning inheritance and property distribution.

Khelma (Sakachep) Customary Inheritance System

The Khelma (Sakachep) community are governed by a traditional system where sons are the primary successors of the family property. Inheritance rests upon the eldest son according to Khelma customary law. This inheritance reflects the responsibility of maintaining the family's tradition, leadership within the household and ownership rights.

The father's property is not passed directly to his daughters in case of no male heir in the family. Rather, it is transferred to his closest paternal relatives in accordance with customary laws practiced by the community. Property is generally distributed equally among the sons. Symbolising the position of the eldest son as the head and representative of the family, the ancestral house is exclusively inherited by the eldest son.

The Khelma (Sakachep) people are organized into eighteen clans, namely Banmaher, Bomlien, Kêlphúng, Kholum, Khothang, Langkai, Mõtsun, Neibom, Nistarai, Saithuvai, Sumtinkha, Tansurai, Telengsing, Thingphun, Thirsu, Tuipai, Vaichei, and Zeite. These clans represent the foundation of the community's social structure and cultural distinctiveness.

Findings

The study highlights significant divergences in inheritance traditions among the Dimasa, Hmar, Karbi, Biate, Jaintia (Pnar), Hrangkhol, and Khelma (Sakachep) communities of Dima Hasao. Inheritance across most communities serves a common purpose despite the differences, like protecting and preserving ancestral property, maintaining clan lineage, and strengthening social obligations within the family. The findings imply that inheritance is not merely an economic arrangement but also a method of preserving cultural identity and customary laws.

The prevalence of patrilineal inheritance is a notable attribute identified across the Dimasa, Hmar, Biate, Hrangkhol, Karbi and Khelma communities. Immovable property and ancestral land are generally transferred by way of male heirs in these communities. Limited and conditional rights are granted to the daughters, but they are often excluded from inheriting ancestral property. Women's access to productive assets remains restricted, leading to economic dependency and narrowed decision-making power both within the family and the public domain. In the absence of male heirs, daughters may receive property through special arrangements such as wills or family consent.

The Biate Inheritance system by the customary laws exhibits one of the most restrictive examples with respect to inheritance rights, where daughters are customarily denied inheritance rights in the absence of sons in the family. Ancestral property is passed to male relatives where male heirs are absent. The Biate tribe also follow the principle of ultimogeniture. Meanwhile matrilineal system is followed in Jaintia (Pnar) community, in which the youngest daughter inherits the ancestral property and takes responsibility for its management. But Jaintia (Pnar) women remain excluded from traditional decision-making institutions, which translate the unequal participation in governance.

The findings uncover the conflict between customary inheritance laws and the constitutional provision of equality. The Constitution provides equality before the law, prohibits discrimination on the basis of sex, and protects the right to live with dignity under Article 14,15, and 21 of the Constitution. However, under the protection of tribal autonomy provided by the Sixth Schedule and the Customary Laws, restriction to women's inheritance remain in practice. This gives rise to a complex legal landscape in which constitutional safeguards stand alongside traditions that reinforce gender-based inequalities in access to land and property.

The study observed significant efforts toward reform in Customary Laws. The initiative of the Dima Hasao Autonomous Council to document and publish customary laws represents an Important step toward codification and greater transparency the Dima Hasao Autonomous Council took an important step to document and publish the customary laws of the various tribes of Dima Hasao district. This has created opportunities for identifying and addressing discriminatory provisions, encouraging community dialogues and critical examination of Customary practices among the communities. These developments reveal the potential for meaningful reform in the society through community-led approaches that respect tradition while advancing equity.

Conclusion

The richness and diversity of indigenous customary law is reflected in the inheritance systems of the people of Dima Hasao. The customary inheritance systems have historically played a vital role in preserving clan identity, protecting ancestral property, regulating family responsibilities, and ensuring collective harmony. However, with the exception of the matrilineal Jaintia (Pnar) community, other communities follow the patrilineal system. The inheritance continues to privilege male heirs over women. Though inheritance norms have produced unequal outcomes for women Tribal customary laws are considered integral to tribal identity. The denial or limitation of daughters' inheritance rights fuels landlessness among and economic subordination and exclusion or limited participation in decision-making processes. Unequal access to inheritance carries wider

implications for gender justice and sustainable development as land remains indispensable for livelihood, social prestige, and security in tribal societies.

The study draws attention to the difficulty of aligning constitutional guarantees of equality with the Sixth Schedule protection of customary practices in the district. Instead of perceiving the outcomes as opposing forces, there is a need to promote change that preserves cultural traditions while removing unequal practices. Avenues for change increased with the recent efforts towards codification by the Autonomous Council in the district. The future of customary inheritance systems in Dima Hasao requires a balanced framework that upholds tribal autonomy, ensuring inclusive and just outcomes. Community-guided reforms, with legal awareness and constructive exchange, can eliminate restrictions on women's property rights without compromising the cultural integrity of indigenous groups. These reforms are indispensable not only for achieving gender balance but also for reinforcing the social and economic vitality of tribal communities as a whole.

References

Hasnu, S. (2023). *Dimasa customary inheritance laws* (Doctoral dissertation), National Law University and Judicial Academy, Assam.

Singh, J. (2025). *Comparative tribal inheritance: A comparative study of inheritance rights of tribal women with special emphasis on Mizo and Khasi tribes of Northeast India*. Christ University, Bangalore.

The Biate Customary Law 2025, Dima Hasao Autonomous Council, Haflong, Insight Brandcom pvt.ltd

The Dimasa (Kachari) Customary Law 2025, Dima Hasao Autonomous Council, Haflong, Insight Brandcom pvt.ltd

The Hmar Customary Law 2025, Dima Hasao Autonomous Council, Haflong, Insight Brandcom pvt.ltd

The Hrangkhol Customary Law 2025, Dima Hasao Autonomous Council, Haflong, Insight Brandcom pvt.ltd

The Jaintia (Pnar) Customary Law 2025, Dima Hasao Autonomous Council, Haflong, Insight Brandcom pvt.ltd

The Karbi Customary Law 2025, Dima Hasao Autonomous Council, Haflong, Insight Brandcom pvt.ltd

The Khelma (Sakachep) Customary Law 2025, Dima Hasao Autonomous Council, Haflong, Insight Brandcom pvt.ltd

Tula, M., & Goswami, U. (2022). *Intimate inheritance: Indigenous women, land and customs in Northeast India*. North Eastern Social Research Centre.

Received: 20.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

अवधी लोकगीतों में रामकथा

अदिती शुक्ला*

aditishukla831@gmail.com

सारांश

यह शोधपत्र अवधी लोकगीतों में निहित रामकथा की परंपरा, लोक-संवेदना तथा सांस्कृतिक महत्ता का विश्लेषण करता है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि रामकथा केवल शास्त्रीय ग्रंथों तक सीमित नहीं है, बल्कि अवधी लोकजीवन में जन्म से लेकर विवाह, वनगमन, सीताहरण, लंका विजय, सीता-निर्वासन तथा लव-कुश प्रसंगों तक विविध लोकगीतों के माध्यम से जीवंत रूप में संरक्षित है। इन गीतों में शास्त्रीय कथा के साथ लोक-कल्पना, क्षेत्रीय विश्वास और जनजीवन की सहज भावनाओं का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। सोहर, विवाहगीत, गारी, मंगल तथा करुण गीतों के माध्यम से राम और सीता लोकजीवन के आत्मीय पात्र बन जाते हैं। शोधपत्र यह प्रतिपादित करता है कि अवधी लोकगीत न केवल रामकथा को लोकभाषा में जीवंत बनाए रखते हैं, बल्कि अवध की सांस्कृतिक स्मृति, सामाजिक मूल्यों, पारिवारिक संबंधों और लोक-सौंदर्य को भी संरक्षित करते हैं। इस प्रकार ये लोकगीत भारतीय लोकसंस्कृति और रामकथा परंपरा की अमूल्य धरोहर हैं।

मुख्य शब्द

अवधी लोकगीत, रामकथा, लोकसंस्कृति, लोकसाहित्य, रामचरितमानस, लोकपरंपरा, सांस्कृतिक विरासत, लोकजीवन, सीता, अवध।

'राम' और 'रामकथा' का फलक अत्यंत ही विस्तृत है। संस्कृत साहित्य से लेकर अपभ्रंश,हिंदी, बंग्ला, असमिया, दक्षिण भारतीय भाषाओं और यहां तक विदेशी भाषा-साहित्य में भी रामकथा प्राप्त होती है। वास्तव में राम का चरित्र अत्यंत निर्मल, विशाल और विलक्षण है– '**राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाए सहज संभाव्य है**'। अपनी निर्मलता और सहजता से यह आज भी भारतीय जनमानस और विश्व के रसिकजनों में प्रतिष्ठित है। श्रेष्ठ जन रामकथा रूपी निर्मल सरोवर में स्नान कर मुक्त कण्ठ से जय-जय गान करते हैं। रामकथा के वाचन और श्रवण की परंपरा बहुत ही प्राचीन है और आज भी रामकथा उसी उल्लास के साथ देश-विदेश में गाई-सुनाई जाती है। रामकथा को भाषाबद्ध करके तुलसी संत तुलसीदास हो गए। 'रामचरितमानस' में गोस्वामी जी लिखते हैं कि रामकथा की संसार में कोई सीमा नहीं है–

"रामकथा कै मिति जग नाहीं। अस प्रतीति तिन्ह के मन माहीं।।
नाना भांति राम अवतारा।। रामायन सत कोटि अपारा।।"[1]

'वाल्मीकि रामायण', 'रामचरितमानस', 'कृत्तिवास रामायण', 'कम्बरामायण' आदि ग्रंथों के साथ ही लोक ने अपने परम आराध्य और उनके जीवन चरित को हृदय में संजोए रखा है। लोकगीतों में प्राप्त रामकथा का लालित्य अद्वितीय है। इन गीतों को सुनने से हृदय का तार-तार झंकृत हो उठता है। अयोध्या तो भगवान राम की जन्मस्थली है, जहां की धूल-मिट्टी में खेलकर भगवान राम बड़े हुए। अयोध्या में 'राम' ईश्वर से अधिक पुत्र के रूप में देखे जाते हैं, उनका सुख-दुख पूरे जनमानस का सुख-दुख है। राम का जीवन चरित आज भी अवध के इन लोकगीतों में संरक्षित है। राम के जन्म से लेकर उनके विवाह, वनगमन, वनवास, सीताहरण, लंका दहन, राक्षस वध, लंका विजय आदि छोटी-बड़ी कथाएं इन गीतों में पिरोई गई हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी ये गीत हस्तांतरित होते रहते हैं।

विवाह के कई वर्षों बाद भी जब राजा दशरथ के संतान नहीं हुई तो रानी को चिंता सताने लगी। प्रस्तुत लोकगीत में रानी की चिंता, उनके गर्भधारण और पुत्र जन्म के प्रसंग को वर्णित किया गया है –

* **शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

"मचिअइ बइठी कउसिल्या रानी, सुनउ राजा दसरथ।
राजा ! बिन रे सन्तति घर सून, मइ तपसिनि होबइ।।

××× ××× ××× ××× ××× ××× ×××

कउसिल्या के भये राजा राम, सुमित्रा के लछिमन।
रानी केकही के भरत भुआल, त तीनिउ घर सोहर।।"[2]

राम के जन्म के समय अयोध्या नगर वासियों में आनंद की लहर व्याप्त है। राजमहल में मंगलगीत गाए जा रहे हैं। अपने राजकुमार के आने की खुशी में नगरवासी भी न्यौछावर डालने की अभिलाषा प्रकट कर रहे हैं। यह मधुर सोहर गीत साधारण जन की निश्छल भावना और लोक सौंदर्य को अभिव्यंजित करता है –

"चइतइ कै तिथि नउमी तौ नउवति बाजइ हो।
एइ हो बाजइ राज दुआर कउसिल्या रानी मंदिर हो।
मिलहु न सखिया सहेलरि मिलि-जुलि चलतिउ हो।
सखिया, राजा के जलमे हैं राम, करी नेउछावरि हो।"[3]

ये सोहर गीत अवध प्रदेश की अमूल्य धरोहर हैं। आज भी संतान जन्म के अवसर पर ये गीत घर-आंगन में गूंजते हैं। राम का जन्म आनंद का प्रतीक बन गया है इसीलिए संतान धनवान या निर्धन किसी के यहां जन्म ले उसका स्वागत अवधी जन 'राजा के जलमे हैं राम' गाकर ही करते हैं। सोहर गीत में गर्भधारण, जन्म, छठी, बरही, बधावा, मंगल, आदि गीत समाहित हैं। राम के जन्म और मंगल से जुड़े ऐसे सैकड़ो गीत लोक की पिटारी में संरक्षित हैं।

राम और सीता के विवाह की कथा पर आधारित विवाह गीत – तिलक, मातृपूजा, मांडव गीत, भात, नाखर, सोहाग, भांवर, बाती, गारी, परछन, नकटा आदि अवध के विविध क्षेत्रों में प्रचलित हैं। लोक में आने से इन कथाओं के पारंपरिक स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। यह लोकगीतों की बहुत बड़ी विशेषता है कि ये शास्त्र मुखापेक्षी नहीं होते। लोकगीतों में रामकथा का जो स्वरूप प्राप्त होता है, भले ही वह शास्त्रों से शत-प्रतिशत न मिलता हो, परंतु वह बहुत ही रोचक और लोक के सुख-दुख से जुड़ा है। इन गीतों में लोक जीवन की सुंदर झांकी देखने को मिलती है और यही इनका सौंदर्य है। प्रतापगढ़ जनपद में गाए जाने वाले एक गीत में राम बानिन के यहां सीता को ब्याहने के लिए सिंदूर खरीदने जाते हैं। सिंदूर खरीदने समय उन्हें छींक आ जाती है। राम बानिन से छींक का विचार बताने को कहते हैं, बानिन कहती है–

"दान भल पउब्या, दहेज भल पउब्या, दुलहिनि सुरुज कै जोति
सीता बियहि जे बेटा घर के लउटब, तोहका लिखा बनवास जी।"[4]

लोक का शब्द भंडार अपरिमित है। इस मंजूषा में ऐसे-ऐसे बेजोड़ शब्द रखे हैं कि मन आह्लाद से भर उठता है। दुल्हन सीता के सौंदर्य को 'सुरुज कै जोति' जैसा शब्द देकर एक सुकुमार सौंदर्य की सृष्टि की गई है। विवाह के समय कन्या पक्ष द्वारा वर पक्ष के लिए 'गारी गीत' गाया जाता है। भगवान राम जब सीता को ब्याहने जाते हैं तो वे भी इन मीठी-मीठी गालियों से बच नहीं पाते। पाहुन राम के लिए सीता की सखी-सहेलियों की चुहल से भरा यह गारी गीत आज भी विवाह के अवसरों पर बड़े उल्लास के साथ गाया जाता है–

"रामा जी जैवे लछन अकुताने चला भइया चली ससुरारी कि हां जी
ओरिन-ओरिन सखी सब आई, बइठी आसन भारी, कि हां जी
सुरसि-सुरसि देइं गारी परसपर, लै-लै नाउ पुकारी, कि हां जी
घूमि चलौ राम, घूमि चलौ लछिमन, घूमि चलौ दूनो जोड़ी, कि हां जी
चढ़बे कै घोड़वा अलग से देबै, अलगे से करबै बिदाई कि हां जी।"[5]

इसी गीत में आगे राम कहते हैं कि हम तीनों लोक के ठाकुर हैं हमें गाली कैसे दे रहीं हैं? इसपर सखियां परिहास करती हुई कहती हैं कि जो आप तीनों लोक के ठाकुर हैं तो ससुराल क्यों आए। लोकसाहित्य के इसी सौंदर्य पर मुग्ध होकर हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं, **"इसकी एक-एक बहू के चित्रण पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएं, खंडिताएं और**

धीराएं निछावर की जा सकती हैं, क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से लदी हुई होकर भी निष्प्राण हैं।"[6]

रामकथा से जुड़े लगभग समस्त प्रसंग लोक में कहे-सुने जाते रहें है। ये प्रसंग बड़े ही रोचक हैं। लोक में शास्त्र प्रधान नहीं होता, बल्कि भावों की प्रधानता होती है। घटनाओं का जैसा वर्णन शास्त्र करते हैं वैसा लोकगीतों में यथावत नहीं है। यहां घटनाएं भी लोकरंग में रंगी हैं तभी तो राजा राम बानिन की दुकान पर सिंदूर खरीदने स्वयं जाते हैं। इसी प्रकार कैकेयी द्वारा राजा दशरथ से वरदान में भरत का राज्याभिषेक और राम को वनवास मांगने की कथा से जुड़ा यह गीत अत्यंत मार्मिक है। जिस प्राणआधार राम को देखे बिना पिता दशरथ को नींद नहीं आती कैकेयी ने उसी के लिए वनवास मांग लिया–

"जवन मंगनवा हम मांगब राजा दसरथ, उहइ मंगन हम लेब।
मांगन तउ तुहूं मांगिव रानी केकई, मांगिव प्रान अधार।
जउने राम बिनु निंदिया न लागइ, ते रामा बन कइसे जाइ।"[7]

राम के वनगमन पर राजा दशरथ विलाप के गीत पिता के प्रेम की कारुणिक अभिव्यक्ति हैं। राम वनगमन पर माता कौशल्या के दुख को व्यक्त करने वाले बहुत से गीत अवध में गाए जाते हैं। राम को वनवास मिलने की पीड़ा केवल राम की माता कौशल्या की पीड़ा नहीं वरन अवध की प्रत्येक माता की पीड़ा है, माताएं इस प्रसंग के गीत को गाते हुए विह्वल हो उठती हैं। वनगमन का प्रसंग बड़ा ही मार्मिक है, जिन राम के राज्याभिषेक की तैयारियां जोर-शोर के साथ की जा रही थी उनके वनवास का सुनकर सर्वत्र दुख व्याप्त है। सीता भी राम के साथ वन जाने की प्रार्थना करती हैं। राम जहां हैं सीता के लिए वही स्वर्ग है और इसके लिए वे प्रत्येक कष्ट उठाने को तैयार हैं –

"फूल नेवारी के सेज लगायेउं, हम भुइयन ढुर जाबै।
रघुबर चलब तोहरे संगे; अब न अवध मां रहबै।"[8]

रावण के द्वारा सीता को हर ले जाने का वर्णन भी इन गीतों में है–

"राम लखन चले बन के अहेरवा, बन बिच गोड़िला खचाइ।

××× ××× ××× ××× ××× ××× ×××

न तोहरी सीता दइउ हर लीना, न सीता भइ अलोप।
जोगिआ भेलस धइके आवहइ रावनवां, लइगहा रथ बइठाइ।"[9]

इन्हीं लोकगीतों में मंदोदरी द्वारा रावण को समझाने का वर्णन भी मिलता है। इस प्रसंग के एक गीत में सीता को रावण से उत्पन्न बताया गया है। लोक में प्रचलित एक कथा के अनुसार रावण ने ऋषियों से दण्डस्वरूप उनके रक्त को लेकर एक घड़े में भरकर जनकपुर में गाड़ दिया और उसी घड़े से सीता निकली –

"मति ठानेउ राम से बैर पिया।
काहू का कुछ दोख नहीं, तुमही सीता उत्पन्न किहा।

××× ××× ××× ××× ××× ××× ×××

ओहि घड़े से सीता निकसी, उनही कै अपहरन किहा।
सब परदा मैं खोलि कहत हौं, तबहूं नहीं सुझाइ पिया।"[10]

इसी प्रकार रामकथा के रावण-जटायू युद्ध, शबरी की भक्ति,राम-सुग्रीव मिलन, बाली वध, हनुमान पराक्रम, लंका दहन, अंगद के दूतत्व,लक्ष्मण मूर्छा,लव-कुश जन्म आदि पर आधारित सैकड़ो गीत अवध में गाए जाते हैं। मुख्य प्रसंगों के साथ ही छोटी-छोटी कथाओं को भी इन लोकगीतों में पिरोया गया है। सीता के निर्वासन की कथा भी इन लोकगीतों में अलग ढंग से कही जाती है। इनके अनुसार सीता का निर्वासन ननद सुभद्रा की चुगली के कारण हुआ। ननद स्वयं ही सीता से रावण का चित्र उकेरने को कहती है और बाद में भाई से इस विषय की चुगली कर देती है। यह सुनकर राम लक्ष्मण को बुलवाते हैं और सीता को वन छोड़ आने को कहते हैं–

"मचिअइ बइठी सुभद्रा तउ भउजी से अरज करइं हो।

भउजी, जवन रवना तोहरा बइरी बनाइ के देखावहु है।

××× ××× ××× ××× ××× ××× ×××

राम जेवइं जेवनार तउ बहिनी अरज करइं हो।
भइया जवन रवना तोहरा बइरी, त भउजी उरेहइं हो।"[11]

राम के द्वारा विशाल यज्ञ का आयोजन और सीता को मनाने का वर्णन भी इन गीतों में है। कौशल्या के निवेदन पर गुरु वशिष्ठ सीता को अयोध्या वापस चलने के लिए मनाने जाते हैं परन्तु सीता गुरु के सम्मान में केवल पांच पग चलती हैं और अयोध्या जाने से मना कर देती हैं। सीता की वेदना और आत्मसम्मान इस लोकगीत में मुखरित हुआ है –

"बिसरि गये रामजी उ दिन,जवने दिन बन दिहे हो।
गुरूजी महल से दिहिनि निकास, फिर कबउ न बोलाये हो।
राउर कहन गुरु करबइ, पयग पांच चलबइ हो।
गुरूजी! लउटि हियईं चली अउबइ,अजोध्यइ न जाबइ हो।"[12]

लव-कुश के जन्म पर सीता राम के अतिरिक्त सब के लिए रोचना(संतान के जन्म की सूचना) भेजती हैं, यहां उनके हृदय की टीस प्रकट होती है। एक लोकगीत में राम सीता से अयोध्या वापस चलने के लिए कहते हैं। सीता केवल एक बार राम की ओर देखतीं हैं, कुछ भी नहीं बोलतीं और धरती में समा जाती हैं।

निष्कर्ष :

अवध की समृद्ध संस्कृति के ये जीवंत दस्तावेज रामकथा के आनंद को दोगुना कर देते हैं। लोक की बोली में रघुनायक का जीवन चरित साधारण जन की स्निग्धता और समर्पण को दर्शाता है। इन गीतों के अनाम रचनाकारों ने एक-एक गीत में अपना हृदय उड़ेल कर रख दिया है। ये कल्पनाएं कितनी अनुभूतिपरक हैं ! गीतकारों ने इन पात्रों की संवेदनाओं के साथ स्वयं को एकाकार कर लिया है तभी तो ये कालजयी लोकगीत आज भी लोगों को विह्वल कर देते हैं। निश्चय ही रामकथा परंपरा इन लोकगीतों से समृद्ध होती है।

संदर्भ

1. तुलसीदास, गोस्वामी. *श्रीरामचरितमानस*. गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. 35.
2. अवस्थी, महेश प्रतापनारायण, संपा. *अवधी लोकगीत हजारा*. वसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985, पृ. 75.
3. अवस्थी, महेश प्रतापनारायण, संपा. *लोकगीत रामायण*. अवधी समिति प्रकाशन, प्रयाग, 1990, पृ. 23.
4. अवस्थी, महेश प्रतापनारायण, संपा. *अवधी लोकगीत हजारा*. वसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985, पृ. 160.
5. अवस्थी, महेश प्रतापनारायण, संपा. *अवधी लोकगीत हजारा*. वसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985, पृ. 104.
6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. *हिंदी साहित्य की भूमिका*. हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, 1948, पृ. 130.
7. अवस्थी, महेश प्रतापनारायण, संपा. *अवधी लोकगीत हजारा*. वसुमती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985, पृ. 43.
8. उपाध्याय, कृष्णदेव. *अवधी लोकगीत*. साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, 1978, पृ. 278.
9. उपाध्याय, कृष्णदेव. *अवधी लोकगीत*. साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद, 1978, पृ. 60.
10. अवस्थी, महेश प्रतापनारायण, संपा. *लोकगीत रामायण*. अवधी समिति प्रकाशन, प्रयाग, 1990, पृ. 116–117.
11. अवस्थी, महेश प्रतापनारायण, संपा. *लोकगीत रामायण*. अवधी समिति प्रकाशन, प्रयाग, 1990, पृ. 127.
12. अवस्थी, महेश प्रतापनारायण, संपा. *लोकगीत रामायण*. अवधी समिति प्रकाशन, प्रयाग, 1990, पृ. 129.

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

Received: 22.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

आत्मसंस्मरणातून उलगाडणारे जयपाल सिंह मुंडा: एक अभ्यास

विश्वेश्वर भगवान महाजन*

आत्मसंस्मरण आणि आत्मचरित्र या दोन्हीमध्ये साम्य असे की ते स्वतच लिहिलेले असते. आत्मचरित्र आणि आत्मसंस्मरण या मध्ये एक मूलभूत भेद असतो. तो असा की आत्मचरित्र हे सखोल आणि परिपूर्ण असते. त्यामध्ये व्यक्ति आपल्या जीवनातील सर्व घटना ह्या कालक्रमानुसार आणि सुसंगतवार देण्याचा प्रयत्न करतो. एकप्रकारे ते सर्वसमावेशक घटनाक्रम असण्याकडे भर दिल्या जातो. पण आत्मसंस्मरण हे सर्वसमावेशक नसते. त्यामध्ये काही विशेष घटनावरच भर दिल्या जातो. जयपाल सिंह मुंडा यांचे बाबतीत असेच दिसून येते. जयपाल सिंह मुंडाचे आत्मसंस्मरण आदिवासी समाजाच्या त्याचे भारतातील जे बाकी महान व्यक्तींचे आत्मचरित्र म्हणता येईल त्याप्रमाणे परिपूर्ण नाही. कारण सदर पुस्तकामध्ये आपल्याला जयपाल सिंह मुंडा यांचे जीवनाबद्दल कालक्रमानुसार सुसंगत माहिती आढळत नाही. यामागील कार्यकारणभाव समजून घेणे महत्वाचे आहे. एकतर जयपाल सिंह ज्यावेळी आजारातून बाहेर पडले तेव्हा शारीरिक आणि मानसिक बाबतीत थकले होते. आजारातून बाहेर पडून हवापालत करणे,नव्याने कार्याला लागण्यासाठी ऊर्जा प्राप्त करणे, आपल्या आयुष्यभरातील यश आणि अपयशाचा लेखाजोखा समजून घेणे यासाठी त्यांनी जहाजाने प्रवास केला होता. कदाचित या शारीरिक आणि मानसिक थकव्याचा परिणाम त्यांच्या स्वतबद्दल लिहिण्याच्या प्रक्रियेवर झाला असेल हे तथ्य नाकारता येत नाही. त्यामुळेच या पुस्तकाचे शीर्षक “In And With Adivasidom An Auto Memoir Of Marang Gomke Jaipal Singh Munda’’ असे देण्यात आले आहे. पण काहीही असो जयपाल सिंह मुंडा यांचे जीवनातील काही महत्वपूर्ण प्रसंग, त्यांचे गाव, तेथिल शाळा, इंग्लंडमधील शिक्षण, क्रीडाविश्व, बर्माशेल कंपनीमध्ये मिळालेले अनुभव, दक्षिण आफ्रिकेतील अचिमोटा, बिकानेर, रायपुर, काश्मीर असा जगभरातून भारतापर्यंत नौकारीसाठी केलेला प्रवास, वैवाहिक जीवन, राजकारणातील प्रवेश, राजकीय जीवनातील चढउतार, राजकारणातील षड्यंत्र याबद्दल माहिती आढळून येते.

आयुष्यभरातील व्यस्ततेमुळे स्वतःबद्दल लिहिण्यास अवकाश मिळाला नाही

1969 मध्ये जहाजाने भारतातून इंग्लंडला जात असताना त्यांनी स्वताच्या जीवनातील काही महत्वाच्या घटनांचा ओझरता उल्लेख करणारे काही प्रसंग लिहून काढले. आणि सदर लिखित हस्तलिखित त्यांनी इंग्लंडमधील महाविद्यालयत त्यांनी एका प्राध्यापकाला दिले होते. . सुरुवातीला हे पुस्तक इंग्रजी भाषेतच होते पण त्याचा हिन्दी भाषेमध्ये अनुवाद करण्याचे अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य अश्विनी कुमार पंकज यांनी केल्याने बहुतांश वाचकांसाठी हे पुस्तक उपलब्ध होऊ शकले. कदाचित जयपाल सिंह मुंडा यांना काही सूचित करायचे असावे. जयपाल सिंह मुंडा यांनी संपूर्ण आयुष्य आदिवासी समाजाच्या कल्याणासाठी अर्पण केले. त्यांचे व्यक्तिमत्व बहुआयामी होते त्यांनी एक संपादक, संपूर्ण विश्वात भारताचे नाव रोशन करणारा खेळाडू,एक नामवंत कंपनीतील सर्वोच्च पदाची जबाबदारी, एक वैश्विक स्तरावरील शिक्षक आणि शिक्षण तज्ञ, भारतीय संस्थानात शिक्षक, प्राचार्य, परराष्ट्रमंत्री, भारतातील एक डझन पेक्षा जास्त भारतीय क्रिडा संस्थाचे अध्यक्षपद, आदिवासी महासभा ते झारखंड पक्ष प्रवास, संविधानसभेतील व्यस्तता या सर्व जबाबदाऱ्यांमुळे कदाचित स्वतविषयी काही लिहिण्यास वेळ मिळाला नसावा.

आदिवासी समाजात इतिहास लिहिण्याची फारसी परंपरा नव्हती याचाही एक पिढीजात प्रभाव जयपाल सिंह यांचेवर पडला असावा. वास्तविक पाहता केवळ आदिवासी समाजातच नव्हे तर संपूर्ण भारत देशाचा विचार केला तरी ब्रिटिश सत्तेच्या आगमनानंतरच आधुनिक शिक्षणाला सुरुवात झाली परंतु इतर समाज वगळता आदिवासी समाजात मौखिक परंपरेचे अस्तित्व जास्त कालावधी पर्यन्त टिकून होते. जीवनाच्या एका वळणावर जयपाल सिंह प्रचंड टीकेचे पात्र ठरवले जातात. विशेषतः 1963 ला झारखंड पक्षाचे कॉंग्रेस पक्षात विलीनीकरण त्याचे जीवनातील सर्वात टीकेचा काळ ठरतो. खरतर हे विलीनीकरना शिवाय काहीच पर्याय नसल्याने नाईलाजाने हा निर्णय घ्यावा लागतो यामागेही जयपाल सिंह यांची

* **संशोधक विद्यार्थी स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाडा विद्यापीठ, नांदेड, महाराष्ट्र**

दुरदर्शित्व असते पण परिस्थिति त्यांचे बाजूने नसल्याने त्यांचा हा निर्णय दुर्दैवी ठरतो. आपल्या वरील हे आरोप बिनबुडाचे आहेत आपण कालही आणि आजही सदासर्वकाळ आदिवासी समाजाच्या हिताचाच विचार करूनही होणारे आरोप जयपाल सिंह यांना उद्विग्न करणारे होते. आपल्यावरील हे आरोप दूर करण्यासाठी आणि समाज बांधवांना सत्य परिस्थिति कळावी म्हणून आपल्या जिवनावर आधारित एखादे पुस्तक असावे अशी त्यांची इच्छा होती. म्हणून आपल्या जीवनावर आधारित पुस्तक लिहण्याची इच्छा ते कुमार सुरेश सिंह यांचेकडे व्यक्त करतात. कुमार सुरेश सिंह हे प्रशासकीय सेवेत कार्यरत होते. त्यांनी प्रशासकीय सेवेव्यतीरिक्त भारतीय मानवविज्ञान सर्वेक्षण विभागात महासंचालक पदावर काम केले होते. ते एक इतिहासकार होते. त्यांनी बिरसा मुंडा यांचे जीवनावर आधारित 'बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन' नावाचे पुस्तक लिहिले होते. जयपाल सिंह मुंडा आणि कुमार सुरेश सिंह यांची भेट झाली होती. जयपाल सिंह मुंडा यांनी कुमार सुरेश सिंह यांना त्यांचे जीवनावर आधारित पुस्तक लिहावे अशी विनंती केली असल्याचे संदर्भ मिळतात. याबद्दल जयंत जयपाल असे म्हणतात की, "मी कुमार सुरेश सिंह यांना भेटलो असता त्यांनी यासंदर्भात सांगितले की जयपाल सिंह मुंडा यांनी त्याचे जीवनासंदर्भातील कागदपत्रे त्यांना दिली होती. पण काही कारणास्तव ते हे कार्य करू शकले नाही.'' [जयंत जयपाल मुलाखत] जयपाल सिंह यांचे म्हणणे असे होते की तुम्ही एक इतिहासकार आहात आणि तुम्ही बिरसा मुंडा यांचे जीवनावर पुस्तक लिहून योग्य प्रकाश टाकला. त्याचप्रकारे माझ्याही जीवनावर एक पुस्तक लिहावे म्हणजे माझ्या संदर्भात ज्या चुकीच्या बाबी पसरल्या आहेत त्या दूर होतील. बिरसा मुंडा यांना प्रकाशात आणण्याचे सर्वप्रथम कार्य जयपाल सिंह यांनी आदिवासी महासभेच्या माध्यमातून केले होते. नंतर काँग्रेस पक्षाने त्यांना आपल्या व्यासपीठावर स्थान देण्यास सुरुवात केली.

2001-2002 च्या दरम्यान इंग्लंडमधील काही संशोधक विद्यार्थी झारखंडमध्ये संयशोधन कार्य पूर्ण करण्यासाठी येणार होते तेव्हा स्टेन लुर्दुस्वामी यांनी जयपाल सिंह मुंडा यांचे हे हस्तलिखित या विद्यार्थ्यांकडे दिले आणि सांगितले की जयपाल सिंह मुंडा यांचे कोणी अपत्य असल्यास त्यांचेकडे हे द्यावे. या विद्यार्थ्यांनी हे हस्तलिखित जयपाल सिंह मुंडा यांचे सुपुत्र जयंत जयपाल सिंह मुंडा यांचेकडे सुपूर्द केले.

या पुस्तकाचे वैशिष्ट्य म्हणजे हे एकमेव असे पुस्तक आहे जे जयपाल सिंह मुंडा यांनी स्वतः बद्दल आणि जीवनातील प्रसंगा बद्दल काही महत्वाच्या घटनांचा उल्लेख केला आहे. पण खऱ्या अर्थाने या पुस्तकाला आत्मचरित्र म्हणण्याएवजी आत्मसंस्मरण म्हटले जाते त्याचे हेच कारण असावे. पण काहीही असो जयपाल सिंह मुंडा यांचे जीवनातील काही महत्वपूर्ण प्रसंग, त्यांचे गाव, तेथिल शाळा, इंग्लंडमधील शिक्षण, क्रीडाविश्व, बर्माशेल कंपनीमध्ये मिळालेले अनुभव, दक्षिण आफ्रिकेतील अचिमोटा, बिकानेर, रायपुर, काश्मीर असा जगभरातून भारतापर्यंत नौकारीसाठी केलेला प्रवास, वैवाहिक जीवन, राजकारणातील प्रवेश, राजकीय जीवनातील चढउतार, राजकारणातील षड्यंत्र याबद्दल माहिती आढळून येते.

जयपाल सिंह यांची कौटुंबिक माहिती या पुस्तकातून आपणास मिळते,वडिल अमरू पहान त्यांची जीवनशैली, उद्योग, न्यायप्रियता, आई राधामणी, तिचा जयपाल सिंह बद्दलचा जिव्हाळा याबद्दल जयपाल सिंह म्हणतात की. "मी माझ्या आईचा लाडका होतो" [आदिवासियत और मै मरङ गोमके जयपाल सिंह मुंडा का आत्मसंस्मरण [अंग्रेजी 'लो बिर सेंदरा' का हिन्दी संस्करण] संपादक : रश्मि कात्यायन, हिन्दी अनुवादक :अश्विनी कुमार पंकज, फरवरी [2023], प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, चेशायर होमरोड बरीहातू रांची, झारखंड, पृ. क्र-7] या विधानावरून त्यांच्या आईचे त्यांचेवरील प्रेम दिसून येते. मोठी बहीण राधामणी,भाउ जयश्री आणि रघुनाथ व इतर चार बहिणी होत्या याचाही ते उल्लेख करतात.

अतिरेकी विचारांचा अभाव आणि आदिवासीयतचा प्रभाव

या आत्मसंस्मरणात त्यांनी अतिशय प्रामाणिकपणे त्यांचे जीवनातील विविध पैलुवर प्रकाश टाकण्याचा प्रयत्न केलेला वाचकाच्या लक्षात येते. या पुस्तकात कुठेही जयपाल सिंह मुंडा यांनी अतिरेकी किंवा टोकाचे विचार मांडल्याचे दिसून येत नाही. जयपाल सिंह मुंडा यांचे मांडणीत एक संथपणा आपल्याला दिसून येतो. जयपाल सिंह मुंडा यांनी अतिशय सुलभ आणि लाघवी शब्दात आपल्या मताचे सादरीकरण केले. त्यामुळे हे पुस्तक वाचत असतांना कंटाळा येत नाही. त्यांचेवर आयुष्यात झालेले अन्यायही नमूद करत असतांना ते नाउमेद झालेले ते दिसत नाहीत. ह्या बाबी त्यांचे मधील खेळाडू वृत्तीचे दर्शन घडवतात. कारण आयुष्याच्या एका अशा टप्प्यावर असतांना जेथे त्यांना प्रचंड टिकेला आणि अपयशाचा सामना करावा लागला होता. 1939 मध्ये आदिवासी महासभेच्या अध्यक्षपदी असतांना असलेले प्रचंड जनसमर्थन, झारखंड पक्षाचा अश्व सर्व दिशेने करत असलेला दिग्विजय, अफाट लोकप्रियता आणि त्यानंतर राजकीय घडून आलेली कट कारस्थाने, प्रामाणिकपणे आदिवासी समाजासाठी केलेले प्रयत्न निष्फळ होतांना पाहून आलेली निराशा या सर्व घटनांना याची देही याची

डोळी पाहिलेले जयपाल त्याचे आत्मसंस्मरणात सर्वच घटनांना व्यक्त करत नाहीत. खेळातील मैदानाप्रमाणे राजकीय जीवनाच्या खेळातही आलेले यश अपयश ते संयमाने पचवतात. हे एक महान नेत्याची ओळख आहे. प्रत्येक महामानवाच्या जीवनात असे अनेक प्रसंग येत असतात पण या दरम्यान त्यांच्यातिल संयमाचे दर्शनही घडते. त्यांच्या या आत्मसंस्मरणात आपणास आदिवासी असण्याचा एक पैलू दिसतो तो म्हणजे जीवनातील सर्वच घटनावर बोलण्याचे टाळणे. त्यांच्या जीवनात अनेक वेळा त्यांच्यावर विरोधकांनी टीकेची झोड उठवली पण त्यांचे मौन ही त्यांची कमजोरी नसून अवास्तव वादात अडकून पडणे हे त्यांना मान्य नव्हते असे दर्शवते. जसे ते संविधान सभेत म्हणतात की, "मला या प्रस्तावाच्या शब्दयोजनेवर काहीही आपत्ती नाही एक जंगली आणि आदिवासी असल्याने या प्रस्तावाचा वैधानिक पेच समजण्याची माझ्याकडून अपेक्षाही केली जात नाही." [मुंडा. ज. स,जयपाल सिंह यांचे प्रस्तावाच्या उद्देशावर भाषण, 19 डिसेंबर 1946, parliament of India, Digital Library, पृ. क्र. -21 https://eparlib.sansad.in] वरील विधानाचा अभ्यास केला तर असे लक्षात येते की जयपाल सिंह मुंडा यांना अलंकारिक शब्दांवर नव्हे तर वास्तव कृतीवर जास्त विश्वास होता. त्यांना शाब्दिक रचनेवर फारशी रुचि नव्हती. जयपाल सिंह यांचे हे व्यक्तिमत्व त्यांच्या आत्मसंस्मरणात सुद्धा दिसून येते. आदिवासी मन हे नको शाब्दिक जटिलतेत पडू इच्छित नाही. जयपाल सिंह सुद्धा कोणत्याही शाब्दिक आश्वासनांना महत्व देत नाहीत. त्यांच्यावर जे आरोप झाले त्याला ते फारसे महत्व देत नसल्याने ते व्यक्त होतांना दिसत नाहीत.

आपल्या उत्पत्तिस्थान आणि पूर्वजांच्या वारश्याबद्दल प्रचंड आस्था

जयपाल सिंह यांच्या व्यक्तिमत्वातील प्रकट होणारा सर्वात महत्वाचा पैलू म्हणजे त्यांना त्यांच्या मुळाशी असलेले प्रेम दिसून येते. यासंदर्भात आपणास जयपाल सिंह यांचे सुपुत्र जयंत जयपाल यांनी जे विधान केले ते महत्वाचे आहे. "सर्वात महत्वाची आणि गर्वाची बाब म्हणजे ते आपल्या गावाला कधीच विसरले नाहीत. गाव त्यांच्या स्मरणात नेहमी राहिले." [जयंत जयपाल मुलाखत 03/05/2025, वेळ 1.58] या विधानाची सत्यता हे आत्मसंस्मरण वाचल्यानंतर सहज आपल्या लक्षात येते. आपल्या गावाची भौगोलिक स्थलाकृती, सामाजिक, धार्मिक, राजकीय, सांस्कृतिक संस्था याबद्दलही विवेचन करतात. मधुका सिंह ज्या जयपाल सिंह यांच्या खाजगी सहायक नरेंन्द्र सिंग यांच्या पत्नी यांनी सुद्धा जयपाल सिंह यांच्याबद्दल माहिती दिली की, "जयपाल सिंह हे संसदेच्या रजेच्या कालावधीत आपल्या मतदारसंघात खेडोपाडी जाउन लोकांशी संवाद साधत असत. ते पाड्यावर मुक्काम करत असत." [मधुका सिंह, मुलाखत 07/05/2025, वेळ 11.57] जयपाल सिंह यांच्या आई आणि जन्मभूमी यांच्यावरील प्रेमाचा सर्वात मोठा पुरावा म्हणजे आपल्या निधनानंतर त्यांनी आपले दफन आपल्या मूळ टकरा गावी आईच्या शेजारी करावे ही व्यक्त केलेली इच्छा होय. यापेक्षा त्यांच्या विचारातील आपल्या पूर्वजांबद्दलच्या प्रेमाची आणि जिव्हाळयाची साक्ष देता येणार नाही." 'घर प्यारा घर' या पहिल्या प्रकरणात त्यांच्या गाव आणि कुटुंबाची सविस्तर माहिती देण्यावर त्यांनी भर दिला.

इंग्लंड कडे प्रवास, शैक्षणिक प्राप्ति आणि व्यक्तिमत्व विकासाची दिशा

जयपाल सिंह यांच्या जीवनात जर सर्वात महत्वाची,निर्णायक घटना कोणती असेल तर कॅनन कासग्रेव या त्यांच्या गुरूच्या माध्यमातून उच्च शिक्षणासाठी इंग्लंडमध्ये जाणे होय. याठिकाणी जयपाल सिंह यांच्या शिक्षण आणि खेळातील प्रतिभेचा परिचय आपणास होतो. शिक्षणात आय.सी.एस. आणि खेळात विश्वविजेत्या संघाचा कर्णधार दोन्ही क्षेत्रात शिखर गाठण्याचे कार्य त्यांनी केले. शिक्षणातील त्यांची प्रगती त्यांच्या एक बुद्धिमान विद्यार्थी असल्याची साक्ष देते. खेळात मिळालेल्या यशाला ते आपल्या मातृभूमी आणि पूर्वजांच्या माध्यमातून आलेल्या वारश्याला महत्व देतात. ते म्हणतात की, "एक पदक आपणास सर्व पदक मिळवून देते. मला फुटबॉल, टेनिस, रग्बी या खेळासाठी अनेक खिताब मिळाले. झारखंडच्या जंगलातून आल्यामुळे मला क्रिकेट ब्लु मिळू शकले असते. मी बॉलला इतरांपेक्षा काही सेकंद अगोदर बघू शकत होतो." [आदिवासियत और मै मरङ गोमके जयपाल सिंह मुंडा का आत्मसंस्मरण [अंग्रेजी 'लो बिर सेंदरा' का हिन्दी संस्करण] संपादक : रश्मि कात्यायन, हिन्दी अनुवादक :अश्विनी कुमार पंकज, फरवरी [2023], प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, चेशायर होमरोड बरीहातू रांची, झारखंड पृ. क्र. -19] यावरून आपल्या पूर्वजांकडून मिळालेल्या नैसर्गिक प्रतिभेला त्यांनी सन्मान दिला.

मित्रजगतातील जयपाल सिंह मुंडा आणि आंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष निर्माण होण्यास मदत

विश्वभरातील विद्वान मित्रांशी संपर्क हा एक त्यांच्या शैक्षणिक प्रवासातील महत्वाचा पैलू राहिला आहे. वेरियर एल्वीन सारखा मानववंशशास्त्री ज्याच्या कार्याची दखल स्वत जवाहरलाल नेहरू यांनी घेतली होती. इंग्लंडमधील विद्यापीठिय वाद

विवादांच्या स्पर्धा घडत असत येथे भंडारनायके,लिलामणी नायडू अश्या अनेक दिग्गज विद्वान मित्रांच्या सहवासात त्यांचे आणि या मित्रांचेही व्यक्तिमत्व घडत गेले असे म्हणावे लागेल. जयपाल सिंह अश्या ठिकाणी शिक्षण घेत होते. ज्याठिकाणच्या लोकांनी अर्ध्या जगाला आपले गुलाम केले होते. एका अर्थाने अर्धे जग त्यांचे वसाहत बनले होते. त्या देशाच्या राजधानीच्या ठिकाणी शिक्षण घेतांना त्यांना विश्वभरातील ज्या प्रगल्भ विद्वान विद्यार्थ्यांशी महत्वाच्या विषयावर चर्चा करता आली तेव्हा त्यांच्यासह त्यांच्या मित्रांच्याही विचार करण्याच्या शैलीला एक वैश्विक परिप्रेक्ष प्राप्त झाला असावा असे म्हणता येईल. यासंदर्भात अश्विनी कुमार पंकज यांनी केलेल्या विधानाला समजून घेणे अगत्याचे आहे. ते म्हणतात की, "ऑक्सफोर्ड मध्ये राहत असतांना जयपाल सिंह यांचे विश्व हे केवळ पुस्तकी ज्ञानाने बनले नव्हते. ते एक खेळाडू, कुशल वक्ता, आणि लोकप्रिय संघटक होते. त्यांच्या ज्ञानाचे परीघ हे विश्वातील त्या सामाजिक आणि राजकीय घडामोडीतून आकारास येत होते, ज्याचे केंद्र युरोप होते." [संपादक- पंकज अश्विनी कुमार, संविधान सभा में जयपाल [कोलोनियल रिबेट, फ्यूडल डीबेट और आदिवासी आखेट] [फरवरी 2021] notionpress.com, पृ.क.-32] सहाजिकच जयपाल सिंह मुंडा हे केवळ ज्ञानात पारंगत असे व्यक्तिमत्व होते असे म्हणणे चुकीचे होईल. त्यांच्या व्यक्तिमत्वाला अनेक पैलू होते. एका अर्थाने ते बहुआयामी बनले होते. त्यांच्या आत्मसंस्मरणाच्या अभ्यासतूनच आपल्याला त्यांच्या या वैश्विक परिप्रेक्षाची कल्पना येऊ शकते. येथे एक प्रश्न उपस्थित होतो तो असा की काय जयपाल सिंह यांच्या आदिवासी महासभेतील, संविधान सभेतील, स्वातंत्र्योत्तर काळातील एकूण आदिवासी हिताच्या कार्यासंदर्भात त्यांच्या ह्या वैश्विक प्रगल्भतेचा प्रभाव पडला आहे का? या प्रश्नाचे उत्तर त्यांच्या संविधान सभेतील एकूण वक्तव्यावरुण आपणास लक्षात येतो. त्यांच्या या वैश्विक प्रगल्भतेची निर्मिती प्रक्रिया समजून घेण्यासाठी आपणास त्यांचे आत्मसंस्मरण खूप उपयोगी पडते.

एक विश्वप्रसिद्ध हॉकी खेळाडू म्हणून आकारास आलेले राजकारणी

जयपाल सिंह यांच्या आत्मसंस्मरणातून त्यांच्या इंग्लंड मधील वास्तव्यातून निर्मित अजून एक महत्वाचा पैलू म्हणजे त्यांनी खेळाच्या माध्यमातून वैश्विक पातळीवर निर्माण केलेली आपली ओळख आहे. खेळाच्या माध्यमातून त्यांना ओळख जरी मिळाली तरी त्यांना खूप काही गमवावे लागले होते. त्यांना हॉकी साठी आय. सी. एस सारख्या सन्मानाच्या नौकरीवर पाणी सोडावे लागले. याठिकाणी आपल्या देशासाठी त्यांचा सर्वोच्च त्याग सुद्धा दिसून येतो. जयपाल सिंह यांच्या खेळाच्या कौशल्याचा त्यांच्या राजकीय जिवनावर सखोल प्रभाव पडला. त्यांच्या राजकीय जीवनात अनेक चढ-उतार आले. पण 1952 च्या पहिल्या सार्वत्रिक निवडणुकीपासून ते आयुष्याच्या शेवटच्या क्षणापर्यंत ते खासदार पदावर नाबाद राहिले. त्यांनी संसद सदस्यांचे क्रिकेटचे सामने भरवून राजकीय नेतृत्वा मध्येही खेळाडू वृत्ती निर्माण करण्याचा प्रयत्न केला होता. सदर सामन्याबद्दल ते लिहितात की, "केशव मालविय तिसऱ्या स्थानावर होते. ते डावखुरे फलंदाज होते. त्यांनी मारलेल्या चेंडूचा पंडित नेहरूंनी झेल पकडला त्यावेळी उपस्थितांनी जोरदार टाळ्या वाजवल्या. अनेक महीने नेहरू त्या झेलाची चर्चा करत राहिले." [आदिवासियत और मै मरङ गोमके जयपाल सिंह मुंडा का आत्मसंस्मरण [अंग्रेजी 'लो बिर सेंदरा' का हिन्दी संस्करण] संपादक : रश्मि कात्यायन, हिन्दी अनुवादक :अश्विनी कुमार पंकज, फरवरी [2023], प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, चेशायर होमरोड बरीहातू रांची, झारखंड पृ.क्र. -116] म्हणजे जयपाल सिंह हे स्वत एक प्रतिभाशाली खेळाडू होते असेच नव्हे तर त्यांनी खेळाची आवड निर्माण करण्याचा प्रयत्न केला. भारतातील किमान डझन भर क्रिडा संघटनाचे ते अध्यक्ष, सदस्य काहींच्या बाबतीत संस्थापक होते. जयपाल सिंह यांच्या निधनानंतर अनेकांनी स्तुतीसुमने उधळली. भारतीय जनसंघाचे बलराम मधोक यांनी असे म्हटले की, "जयपाल सिंह यांनी भारतीय राजकारणात खिलाडू वृत्ती आणली." [दत्त. बलबीर,जयपाल सिंह एक रोमांचक अनकही कहानी [जीवनी, संस्मरण एवं ऐतिहासिक दस्ताऐवज] [2017] प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. क्र. -204] तत्कालीन परिस्थितित जयपाल सिंह यांचे सारखे एकच वेळी अनेक क्षेत्रात आपल्या कार्याची छाप पाडणारे व्यक्तिमत्व दुर्मिळ होते. जयपाल सिंह यांची खिलाडू वृत्ती जरी नंतर राजकारणात दिसून आली तरी त्यांच्यामधील खेळाडू हॉकीच्या माध्यमातून कसा घडत गेला ही बाब त्यांच्या आत्मसंस्मरणातून आपल्या लक्षात येते.

प्रेमी जयपाल

जयपाल सिंह यांचा प्रथम विवाह तारामणी यांच्याशी झाला. त्या राष्ट्रीय सभेच्या प्रथम अध्यक्ष उमेश चंद्र बॅनर्जी यांच्या नात होत्या. त्यांची आई ही उमेशचंद्र यांची मुलगी होती. जयपाल सिंह यांच्या जीवनातील प्रेमप्रसंग आणि नंतर विवाह यामधून त्यांच्या व्यक्तिमत्वातील एक प्रेमी आपणास दिसून येतो. पण ह्या सुखद अनुभवाचा आदिवासी महासभेत प्रवेश करण्यावरुण शेवट व्हावा ही त्यांच्या जीवनाची शोकांतिका म्हणावी लागेल. त्यांच्या या शोकांतिकेवर आधारित श्रुती नाटक गिरिधारी

राम गोंझु यांनी लिहिले. हे नाटक थोडे कल्पनिकतेवर आधारित असले तरी त्यात काही सत्याचे अंश आपणास दिसून येतात. जयपाल यांच्या वैवाहिक आणि राजकीय जीवनातील शोकांतिका लेखकाने मांडतांना झारखंड राज्याच्या जन्मदिनी आयोजित समारंभात जयपाल सिंह आणि तारामणी यांचे आत्मे एकमेकांशी संवाद साधतांना दाखवले आहेत. नाटकाच्या सुरुवातीला उदास धुन सुरू होते. शपथ ग्रहण समारोह सुरू होणार तितक्यात "जयपाल सिंह आणि तारामणी यांचे आत्मे आपापसात धडकतात." गोंझू गिरिधारी राम, 'झारखंड आंदोलन के जनक मरङ गोमके जयपाल सिंह मुंडा, [2018] विकल्प प्रकाशन सोनिया विहार दिल्ली,पृ. क्र. -75] येथून हा संवाद सुरू होतो त्यात झारखंड राज्याचे त्यांचे स्वप्न, तारामणीशी झालेली फारकत यावर प्रकाश टाकण्यात आला जयपाल सिंह यांच्या प्रेमाची झालेली शोकांतिका या नाटकाच्या माध्यमातून पूर्ण झाली असावी असे वाटते.

एक आंतरराष्ट्रीय शिक्षण तज्ञ ते भारतीय संस्थानात शिक्षण क्षेत्रातील कार्य आणि आदिवासी तज्ञ

आफ्रिकेतील अचिमोटा याठिकाणी त्यांनी शिक्षणाचे कार्य केले होते. ते म्हणतात की, "एकूण 45 विद्यार्थी होते. सर्वच्या सर्व आदिवासी प्रमुखांची मुले होती." [आदिवासियत और मै मरङ गोमके जयपाल सिंह मुंडा का आत्मसंस्मरण [अंग्रेजी 'लो बिर सेंदरा' का हिन्दी संस्करण] संपादक : रश्मि कात्यायन, हिन्दी अनुवादक :अश्विनी कुमार पंकज, फरवरी [2023], प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, चेशायर होमरोड बरीहातू रांची, झारखंड, पृ.क्र-7] जयपाल सिंह हे भारतात कार्य सुरू करण्याच्या अगोदर आंतरराष्ट्रीय पातळीवरचे शिक्षण तज्ञ बनले होते. येथेच त्यांच्या आदिवासी समाजाच्या संदर्भातील वैश्विक परिप्रेक्ष निर्माण होण्यास मदत झाली. ज्यावेळी ठक्कर बाप्पा यांनी त्यांना बिहारच्या बाहेरच्या आदिवासी समाजाचे त्यांना ज्ञान नाही तेव्हा त्यांनी म्हटले की, "माझे माननीय मित्र श्री ठक्कर बाप्पा यांनी किती वेळ जग भ्रमण केले मला माहीत नाही. मी किमान दोनदा संपूर्ण जग फिरलो. पाच वर्ष मी आफ्रिकेत राहिलो आहे. पालीनेसियाच्या आदिवासींना मी पहिले आहे. वर्तमान तथा पूर्ववर्ती शासनकाळात आदिवासी समस्येला मी वैज्ञानिक परिप्रेक्षातून समजून घेण्याचा प्रयत्न करीत आहे. राजनैतिक बाबतीत नाही." [घोडेस्वार देविदास सजनराव, संविधान सभा डिबेटस [2020 द्वितीय संस्करण], साक्षी प्रकाशन, नवानकाशा, नागपूर-17 खंड [निकाय]-7, पृ.क्र.- 237-238] जयपाल सिंह याठिकाणी ठक्कर बाप्पा यांना आपल्या वैश्विक आदिवासी समजुतीची माहिती देतात ती समज कशी प्रगल्भ होत गेली हे समजून घेण्यासाठी त्यांचे आत्मसंस्मरण महत्वाचे ठरते.

एक आदिवासी समाजातील संपादक म्हणून भूमिका

जयपाल सिंह यांनी 'आदिवासी सकम' या आदिवासी महासभेच्या मुखपत्रात आदिवासी महासभेचा प्रचार करण्यासाठी मते प्रदर्शित केलीत. याअगोदर इंग्लंडमध्ये शिक्षण घेत असतांना खेळाच्या बातम्या लिहण्याच्या त्यांच्या अनुभवाचा त्यांना पुढील काळात उपयोग झाल्याचे दिसते. बिगर आदिवासी दर्जेदार वर्तमानपत्रातील त्यांच्या लिखाणाचा विचार करता 'द बिहार हेराल्ड', 'द सेन्टीनल', 'द टाइम्स ऑफ इंडिया', 'द इलेस्ट्रेटेड विकली ऑफ इंडिया' या तत्कालीन वर्तमान पत्रात त्यांनी अतिशय अभ्यासपूर्ण अशी मते मांडलीत. म्हणजे त्यांच्यातील पत्रकार हा केवळ आदिवासी महासभेच्या बातम्या छापण्यापुरता सीमित नसून भारतातील तत्कालीन महत्वपूर्ण वर्तमानपत्रासहित, आंतरराष्ट्रीय पातळीवरील वर्तमानपत्रात त्यांच्या पत्रकारितेची दखल घेतली गेल्याचे दिसून येते. एक हाडाचे पत्र संपादक किंवा पत्रकार म्हणून त्यांनी मांडलेल्या विचारांचे जर संशोधन केले तर त्यांच्या एकूण राजकीय आणि सामाजिक प्रगल्भतेची ओळख होण्यास मदत होते.

जयपाल सिंह मुंडा - एक प्रगल्भ विद्यार्थी ते एक शिक्षणतज्ञ

जयपाल सिंह मुंडा यांची एक जिज्ञासू विद्यार्थी म्हणून कारकीर्द जशी यशस्वी राहिली तशीच एक शिक्षण तज्ञ म्हणून त्यांची कामगिरी लक्षवेधी आहे. जयपाल सिंह मुंडा यांच्या मेधावी विद्यार्थी म्हणून त्यांनी केलेल्या कामगिरीबद्दल खालील यशाचा उल्लेख करावा लागेल

1]रेसपोन्सियंस -ही ऑक्सफोर्ड विद्यापीठातील बी.ए ची पदवीमधील प्रथम वर्षाची परीक्षा आहे. भारतातही हा पदवीचा अभ्यासक्रम सर्व विद्यापीठात घेतली जाते. आपल्या देशात सर्व राज्य सरकार व केंद्र सरकारच्या लोकसेवा आयोगाच्या परीक्षा देण्यासाठी कोणत्याही शाखेत पदवी पूर्ण असणे गरजेचे असते. त्यांचे अभ्यासाचे विषय तत्वज्ञान, अर्थशास्त्र आणि राज्यशास्त्र होते.

2]हर्टफोर्डशायर शिष्यवृत्ती - मेसकानाईट यांचेकडून 40 पौंडची शिष्यवृत्ती प्राप्त. हुशार आणि प्रतिभावंत विद्यार्थी असल्यामुळे जयपाल सिंह मुंडा यांना ही शिष्यवृत्ती देण्यात आली होती.

3]1927 मध्ये आय. सी. एस परीक्षा उत्तीर्ण - जयपाल सिंह मुंडा हे भारतीय आदिवासी समाजातील पहीले असे विद्यार्थी आहेत जे ही परीक्षा उत्तीर्ण झालेत. ही बाब संपूर्ण भारतातील आदिवासी समाजातील विद्यार्थ्यांसाठीच नव्हे तर सर्वच युवा वर्गासाठी अत्यंत प्रेरणादायी आहे. आय. सी. एस ही परीक्षा अत्यंत अवघड समजली जाणारी स्पर्धा परीक्षा होती. I. C.S [INDIAN CIVIL SERVICE] ही ब्रिटिश सरकारकडून भारतातील ब्रिटिश प्रशासन सांभाळण्यासाठी उपयुक्त असे अधिकारी तयार करण्याची परीक्षा होती. पण सुरुवातीपासूनच इंग्रजांचा भारतीय लोकांकडे पाहण्याचा कल हा हिनतेचा होता. फक्त इंग्लंडमधील तरूणच ही परीक्षा उत्तीर्ण होऊ शकतील आणि भारतीय लोकांना कसे डावलता येतील याकडेच ब्रिटिश लक्ष देत असत. म्हणूनच ही परीक्षेला बसण्याची वयोमार्याद सुरुवातीला 23 वर्षापर्यंत होती ती 19 व 18 वर्षापर्यंत कमी करून भारतीय विद्यार्थी कसे अपात्र ठरतील याची पुरेपूर काळजी इंग्रज अधिकाऱ्यांनी घेतली होती. त्याची काही विशेष कारणे होती ही परीक्षा अत्यंत सन्मानाची होती म्हणून या पदावर इंग्रज लोकच असायला पाहिजेत आणि एखादा भारतीय ही परीक्षा उत्तीर्ण होऊन पदावर आला तर एक भारतीय आपल्यावर किंवा आपल्यासोबत प्रशासन चालवणार ही बाब इंग्रज लोकांच्या मानसिकतेला पटणारी नव्हती. त्यामुळे 1915 पर्यन्त फक्त 63 भारतीय विद्यार्थिच ही परीक्षा उत्तीर्ण होऊ शकलेत. अश्या अवघड परिस्थितीमध्ये जयपाल सिंह मुंडा ही परीक्षा उत्तीर्ण झाले असतील बाब किती असाधारण असेल याची कल्पना येईल. त्यात आदिवासी समाजातून ही परीक्षा उत्तीर्ण होणे हे किती विशेष आहे. ही एकच यश किंवा रेकॉर्ड जयपाल सिंह यांची आठवण करण्यासाठी आणि त्यांचा सन्मान करण्यासाठी पुरेशी आहे. विशेष म्हणजे कोणत्याही प्रकारचे आजसारखे आरक्षण न घेत ते ही परीक्षा उत्तीर्ण झालेत हे त्याहून विशेष म्हणावे लागेल पण सर्व भारतीयांचे तर दूर पण आज भारतातील आदिवासी समाजातील बांधवांना सुद्धा याबद्दल माहिती नाही. त्यातले त्यात महाराष्ट्रातील जो आदिवासी समाज आहे त्यापैकी किती आदिवासी बांधवांना जयपाल सिंह मुंडा कोण होते हे माहीत असेल हा स्वतंत्र संशोधनाचा विषय ठरेल. ही परीक्षा सध्याच्या I.A.S [INDIAN ADMINISRATIVE SERVICE] परीक्षेचेच नवीन स्वरूप आहे. सध्याची परीक्षा ही UPSC कडून घेतल्या जाते. पण ब्रिटिश कळतील या परीक्षेची काठिण्य पातळी आजच्या परीक्षेपेक्षा जास्त होती, मग अश्या परिस्थितित जयपाल सिंह ही परीक्षा उत्तीर्ण झाले ही बाब किती गौरवास्पद आहे हे आपल्या ध्यानात येइल आज या महाराष्ट्रातील वा देशातील आदिवासी बांधवांसाठी इतिहासातून प्रेरणा घ्यायची असे तर जयपाल सिंह मुंडा सारखे मोठे आणि भव्यदिव्य उदाहरण शोधूनही सापडणार नाही. टकरा सारख्या गावातून अगदी दुर्गम भागातून आधुनिक शिक्षणाचे क्षेत्रात प्रतिभेची अशी झलक दुरान्वयाने सापडेल.

4] M.A[ECONOMICS]- जयपाल सिंह मुंडा यांनी अर्थशास्त्र या विषयात एम. ए ची परीक्षा उत्तीर्ण झाले होते. ही पदव्युत्तर पदवी आहे.

5]Ph.D. संदर्भात काही धागेदोरे –

जयपाल सिंह मुंडा यांनी Ph.D. संदर्भात काही कार्य केले होते का अश्या काही बाबी आता समोर आल्या आहेत त्याचे विवरण असे –

"रणेन्द्र नावाच्या एक बुद्धिजीवी विद्वानाने असे म्हटले कलकत्त्याचे एक गृहस्थ हे खेळावरील Ph.D. जमा करण्यासाठी ऑक्सफोर्ड विद्यापीठात गेले तेव्हा त्यांना असे वाटले की ते भारतातील पहिले व्यक्ति असतील जे खेळावर Ph.D. जमा करतील पण ऑक्सफोर्ड विद्यापीठात Ph.D. थेसिस जमा करायला गेले तेव्हा असे निदर्शनास आले की जयपाल सिंह मुंडा यांनी अगोदरच तेथे आपला Ph.D. थेसीस जमा केला होता. त्यांचा चा विषय sport and economy असा होता." [संतोष किरो मुलाखत]

इतके प्रगल्भ विद्यार्थी असलेले जयपाल पुढे एक शिक्षण तज्ञ म्हणून नावारूपास आले. त्यांनी आफ्रिकेतील अचिमोटा याठिकाणी त्यांनी आदिवासी समाजातील विद्यार्थ्यांना शिक्षण देण्याचे पवित्र कार्य केले. याचा अर्थ असा की ते भारतात अध्यापन करण्यापूर्वी आंतरराष्ट्रीय शिक्षक म्हणून त्यांच्या कार्याची नोंद घ्यावी लागेल. शिक्षक होणे हे त्यांच्या जीवनातील सर्वात आवडते कार्य होते. त्यांनी तत्कालीन मध्यप्रदेश मधील रायपुर येथे प्राचार्यपदी कार्य केले. हा त्यांच्या कार्याचा उचित सन्मान म्हणावा लागेल. काश्मीरला तेथील राजपुत्राला शिक्षण दानाचे कार्यही त्यांनी केले होते. त्यांना

शिक्षकी पेशात रुचि असल्याने त्यांनी भारताचे प्रथम राष्ट्रपती डॉ राजेंद्रप्रसाद यांना आपल्या मातृभूमीत कार्य करण्याची संधि मिळावी असा आशावाद व्यक्त केल्याचे पुढील पत्रव्यवहारतून दिसून येते. ते 11 जून 1938 ला अशी विनंती करतात की, “मी एकमात्र असा छोटानागपूरचा व्यक्ति आहे ज्याने विदेशात राहूण उच्च शिक्षण ग्रहण केले आहे आणि खेळात आपल्या देशाचा सन्मान वाढवला आहे. या आधारावर मी स्वतला तुमच्या उदारतेची अपेक्षा करतो. माझी शिक्षणक्षेत्रात विशेष रुचि आहे. पण संधी मिळाली तर मी प्रशासकीय जबाबदारी घेण्यास उत्सुक आहे.” [पंकज. अश्विनी कुमार,मरङ गोमके जयपाल सिंह मुंडा,vअश्विनी कुमार पंकज [2021], प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली,पृ.क्र.-54] जयपाल सिंह यांना आपल्या जन्मभूमीत शिक्षण किंवा क्रिडा क्षेत्रात नौकरीची अपेक्षा असल्याचे दिसते पण त्यांची ही साधारण इच्छा कधीही पूर्ण होऊ शकली नाही. त्यांनी विद्यार्थ्यांना राज्यशास्त्र,इतिहास,तत्वज्ञान आणि अर्थशास्त्र विषयाचे अध्यापन केले होते. त्यांच्या आत्मसंस्मरणातून आपणास त्यांचा हा एक पैलू दिसून येतो.

जयपाल सिंह -एक कामगार नेता

आदिवासी समाजातील बेरोजगारीचा प्रश्न अत्यंत भयावह बनला होता. आदिवासी समाजात निरक्षरता अधिक असल्याने आणि काम करण्यास इच्छुक माणसे जास्त असल्याने त्यांना कमी रोजगार देऊन काम करून घेण्याकडे कल होता. आदिवासी समाजातील बांधवांना रोजगार मिळावा. त्यांना उचित मोबदला मिळण्याची हमी असावी म्हणून त्यांनी म्हटले आहे की, “मी माझ्या निवासस्थानी एक कार्यालय सुरू केले, जेथे कुली आणि रेजा [आदिवासी महिला कामगार] हे त्यांचे आवेदन करू शकत होते. “[Katyayan. Rashmi [editor] “In and With Adivasidam An Auto Memoir of Marang Gomke Jaipal Singh Munda’’ 2023, pyaraa kerketta foundation, Ranchi, Jharkhand , पृ.क्र.-115] जयपाल सिंह यांचा कामगार नेता म्हणून टिकाव लागू शकला नाही याबद्दल ते लिहितात की यासाठी धनाचा आणि सत्तेचे पाठबळ त्यांच्याकडे नव्हते. पण काहीही असो जयपाल सिंह यांनी आदिवासी समाजाची कामगार संघटना असावी असा विचार प्रथमतः मांडला हे त्यांच्या कार्याचे योगदान आपल्याला विसरता येणार नाही.

निष्कर्ष

जयपाल सिंह मुंडा यांच्या आत्मसंस्मरणातून आपणास केवळ त्यांच्या व्यक्तिगत जीवन आणि उपलब्धी बद्दलच माहिती मिळत नसून त्या काळातील राजकारण, कट-कारस्थाने, आदिवासी समाजाची परिस्थिति, आदिवासी कामगारांच्या व्यथा, आदिवासी आणि बिगर आदिवासी समाजाला पक्षपातिपणे दर्शवणारे तसेच निष्पक्ष वृत्तललेखन करणारे दोन्ही प्रकारचे प्रसारमाध्यमे, आदिवासी समाजातील शिकार करण्याच्या लो बिर सेंद्रा आणि एरा सेंद्रा या आदिवासी समाजातील वार्षिक आणि सप्तवार्षिक प्रथा अश्या अनेक पैलुबद्दल माहिती मिळते. जयपाल सिंह यांचे बहूआयामी व्यक्तिमत्वाचे अनेक पैलू आपल्यासमोर प्रकर्षाने दिसून येतात. त्यांनी त्यांच्या आत्मसंस्मरणात त्यांच्या जीवनातील बऱ्याच घटनाबद्दल बोलण्याचे टाळले किंवा त्याबद्दल मौन पाळले असेही लक्षात येते. पण त्यांच्याबद्दल भलेही त्रोटक माहिती मिळत असली तरी त्यातून पुढील संशोधनाची दिशा सापडू शकते. सदर संशोधनातून त्यांच्या व्यक्तिमत्वाचे पैलू इतर ग्रंथातील त्यांच्याबद्दल नमूद केलेल्या माहिती संदर्भात अभ्यासली असता त्यांच्या अनेक अनिर्णित घटनांचा आपल्याला शोध घेण्याचा मार्ग मोकळा होतो. त्यांची आदिवासी समाजाबद्दलची तळमळ, संघटनात्मक कार्य, आदिवासी कार्यक्रमाची त्यांची दिशा समजण्यास मदत होते. त्यांनी केलेल्या वकतव्यांना जेव्हा इतर माध्यमातून पडताळणी केली तेव्हा त्यांच्या विचारांची परिपक्वता दिसून आली. जयपाल सिंह यांचे एक व्यक्तिमत्व जे संविधान सभेत एखाद्या सिंहा प्रमाणे प्रत्येक आदिवासी प्रश्नावर गर्जना करतांना दिसते त्याचा अभाव अभाव येथे दिसून येतो. ते आपल्या आत्मसंस्मरणात अतिशय संथपणे आपले विचार मांडतात. त्यांची भाषा अत्यंत लाघवी आणि मृदु असल्यांचे जाणवते. आपले टकरा गाव, पूर्वज, गावापासून ऑक्सफोर्ड पर्यंत झालेला शैक्षणिक प्रवास, त्याचबरोबर खेळातील प्राविण्य, खाजगी क्षेत्रातील त्यांची कामगिरी, शिक्षण क्षेत्रातील कामगिरी, राजकीय पातळीवरील त्यांचे कार्य, तत्कालीन इतर पक्षातील नेत्यांच्या संदर्भात त्यांची मते आणि इतर नेत्यांचे त्यांच्याशी असलेले संबंध अश्या अनेकविध घटकांवर प्रकाश टाकण्यासाठी हे आत्मसंस्मरण अत्यंत महत्वाची भूमिका पार पडू शकते यात शंका नाही.

संदर्भ सूची

1] आदिवासियत और मै मरङ गोमके जयपाल सिंह मुंडा का आत्मसंस्मरण [अंग्रेजी 'लो बिर सेंदरा' का हिन्दी संस्करण] संपादक : रश्मि कात्यायन, हिन्दी अनुवादक :अश्विनी कुमार पंकज, फरवरी [2023], प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, चेशायर होमरोड बरीहातू रांची, झारखंड

2] आदिवासियत जयपाल सिंह मुंडा के चुनीदा लेख और वक्तव्य, संपादक -अश्विनी कुमार पंकज, [मार्च 2022] प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, चेशायर होमरोड बरीहातू रांची, झारखंड

3] संविधान सभा में जयपाल [कोलोनियल रिबेट, फ्यूडल डीबेट और आदिवासी आखेट] संपादक -अश्विनी कुमार पंकज [फरवरी 2021] ISBN9781638321545

4] जयपाल सिंह एक रोमांचक अनकही कहानी [जीवनी, संस्मरण एवं ऐतिहासिक दस्ताऐवज] बलबीर दत्त [2017] प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

5] झारखंड आंदोलन के जनक मरङ गोमके जयपाल सिंह मुंडा, गिरिधारी राम गोंझू 'गिरीराज' [2018] विकल्प प्रकाशन, सोनिया विहार, दिल्ली

6] संविधान सभा डिबेटस [2020 द्वितीय संस्करण] प्रा. देविदास सजनराव घोडेस्वार, साक्षी प्रकाशन, नवानकाशा, नागपूर-17] एकूण 10 खंड [निकाय]

7] मरङ गोमके जयपाल सिंह मुंडा, अश्विनी कुमार पंकज [2021], प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

8] [जयंत जयपाल मुलाखत 03/05/2025, वेळ 1.58]

8] संतोष किरो मुलाखत 04/05/2025, वेळ-11.31]

9] [मधुका सिंह,मुलाखत 07/05/2025, वेळ 11.57]

Received: 22.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

डिजिटल युग में तर्क और नैतिकता की चुनौतियाँ: सैद्धांतिक विश्लेषण

डॉ. नीलिमा नागर*
neelimaaman02@gmail.com

सारांश (Abstract)

*डिजिटल युग ने मानव जीवन के प्रत्येक आयाम को प्रभावित किया है, लेकिन इसके साथ ही इसने तर्क (Logic) और नैतिकता (Ethics) के क्षेत्र में अभूतपूर्व चुनौतियाँ प्रस्तुत की हैं। यह शोध-पत्र डिजिटल युग में तर्क और नैतिकता से संबंधित प्रमुख चुनौतियों का बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें सूचना अतिरेकता (Infodemic), पक्षपातपूर्ण एल्गोरिदम (Algorithmic Bias), डीपफेक तकनीक से उत्पन्न वास्तविकता का संकट (Crisis of Knowing), तार्किक भ्रांतियों का प्रसार, गोपनीयता उल्लंघन, साइबरबुलिंग, डिजिटल असमानता, AI में पूर्वाग्रह, और बौद्धिक संपदा के मुद्दे शामिल हैं। शोध में पाया गया कि विश्व आर्थिक मंच (WEF, 2025) ने गलत सूचना को दूसरे वर्ष भी शीर्ष वैश्विक जोखिम घोषित किया है, और भारत में 100.28 करोड़ इंटरनेट उपयोगकर्ताओं के साथ ये चुनौतियाँ और भी विकट हो गई हैं। इस शोध में **भारतीय संदर्भ** पर विशेष ध्यान केंद्रित किया गया है, जिसमें **DPDP Act 2023**, **IT Rules 2021**, **Bharatiya Nyaya Sanhita 2023**, **PMGDISHA** (6.39 करोड़ प्रमाणित लाभार्थी), **NEP 2020**, **IndiaAI Governance Guidelines**, और **राष्ट्रीय साइबर अपराध समन्वय केंद्र (I4C)** जैसी प्रयत्नों का विश्लेषण किया गया है। शोध के निष्कर्ष बताते हैं कि डिजिटल साक्षरता, नैतिक AI विकास, प्लेटफॉर्म जवाबदेही, और सामूहिक नैतिक जागरूकता के माध्यम से ही एक स्वस्थ और न्यायसंगत डिजिटल समाज का निर्माण संभव है।*

मुख्य शब्द (Keywords):

डिजिटल युग, तर्क, नैतिकता, AI पूर्वाग्रह, डीपफेक, गोपनीयता, साइबरबुलिंग, डिजिटल साक्षरता, डिजिटल असमानता, भारत, DPDP Act 2023, IT Rules 2021, NEP 2020, IndiaAI Governance Guidelines

1. परिचय

डिजिटल युग (Digital Age), जिसे सूचना युग (Information Age) भी कहा जाता है, से आशय उस ऐतिहासिक कालखंड से है जिसमें डिजिटल प्रौद्योगिकियाँ — विशेषतः इंटरनेट, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म, मोबाइल संचार, और कृत्रिम बुद्धिमत्ता — सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन के केंद्र में आ गई हैं (Castells, 2010)। इस युग के प्रमुख लक्षणों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

- **सूचना का अभूतपूर्व प्रवाह:** प्रतिदिन अरबों गीगाबाइट डेटा उत्पन्न होता है। अकेले सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर प्रति मिनट लाखों पोस्ट, वीडियो और चित्र साझा किए जाते हैं।
- **सूचना का विकेंद्रीकरण:** पारंपरिक मीडिया गेटकीपर (जैसे समाचार पत्र, टेलीविज़न) की भूमिका क्षीण हुई है। कोई भी व्यक्ति सामग्री निर्माता और प्रकाशक बन सकता है।
- **एल्गोरिदमिक क्यूरेशन:** सामग्री का चयन और प्रस्तुतीकरण अब मानव संपादकों के बजाय एल्गोरिदम द्वारा नियंत्रित होता है, जो उपयोगकर्ता की प्राथमिकताओं और व्यवहार के आधार पर वैयक्तिकृत अनुभव प्रदान करते हैं (Pariser, 2011)।

* **एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, उन्नाव**

- **वास्तविक और आभासी का विलय:** डिजिटल प्लेटफॉर्म अब भौतिक वास्तविकता से इतने अभिन्न हो गए हैं कि ऑनलाइन और ऑफलाइन जीवन के बीच की सीमा धुंधली हो गई है (Floridi, 2014)।
- **AI-जनित सामग्री का विस्फोट:** 2025 तक लगभग 57% ऑनलाइन सामग्री AI-जनित या AI-अनुवादित थी, जिसका अधिकांश भाग तथ्य-जाँच के दायरे से बाहर रहा (BloombergNEF, 2025, जैसा कि DebugliesIntel, 2025 में उद्धृत)।

तर्क और नैतिकता का महत्व :

तर्क (Logic/Reasoning) और नैतिकता (Ethics) मानव समाज के दो स्तंभ हैं जो सभ्यता के आरंभ से ही दार्शनिक चिंतन के केंद्र में रहे हैं। तर्क हमें सत्य और असत्य में विभेद करने, तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालने और सुसंगत तर्क-श्रृंखला निर्मित करने की क्षमता प्रदान करता है (Aristotle, 350 BCE/1999)। नैतिकता हमारे कार्यों के उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय और अच्छे-बुरे के आयामों को निर्धारित करती है (Kant, 1785/1993)। डिजिटल युग में इन दोनों का महत्व और भी बढ़ गया है, क्योंकि प्रौद्योगिकी के अनियंत्रित उपयोग के गंभीर सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक परिणाम हो सकते हैं।

उद्देश्य:

इस शोध-पत्र का उद्देश्य डिजिटल युग में तर्क और नैतिकता से जुड़ी प्रमुख चुनौतियों की व्यवस्थित पहचान, सैद्धांतिक विश्लेषण और उनके समाधान के लिए नीतिगत-शैक्षिक उपायों का प्रस्तुतीकरण है। यह पत्र निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास करता है: (क) डिजिटल पारिस्थितिकी तंत्र में तर्क और नैतिकता के समक्ष कौन-कौन सी मुख्य चुनौतियाँ हैं? (ख) इन चुनौतियों के सामाजिक और राजनीतिक परिणाम क्या हैं? (ग) इन चुनौतियों का सामना करने के लिए किस प्रकार के शैक्षिक, नियामक और तकनीकी उपाय प्रभावी हो सकते हैं?

शोध प्रविधि (Research Methodology)

प्रस्तुत शोध में **गुणात्मक (Qualitative)** और **विश्लेषणात्मक (Analytical)** शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- **शोध का स्वरूप:** यह एक वैचारिक शोध है जो डिजिटल युग में तर्क और नैतिकता के अंतर्संबंधों का विवरणात्मक विश्लेषण करता है।
- **आँकड़ा संग्रहण:** शोध पूरी तरह से **द्वितीयक स्रोतों (Secondary Sources)** पर आधारित है। इसके लिए अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं (UNESCO, WEF, WHO), सरकारी रिपोर्टों (PIB, IBEF), भारतीय कानूनों (DPDP Act 2023, IT Rules 2021) और विभिन्न शैक्षणिक शोध-पत्रों से आँकड़े संकलित किए गए हैं।
- **विश्लेषण विधि:** संकलित सूचनाओं का **सामग्री विश्लेषण (Content Analysis)** किया गया है, जिसमें भारतीय संदर्भ (जैसे- NEP 2020 और डिजिटल इंडिया अभियान) पर विशेष ध्यान केंद्रित किया गया है।

2. डिजिटल युग में तर्क की चुनौतियाँ (Logic Challenges in the Digital Age)

डिजिटल युग ने ज्ञानमीमांसा (epistemology) के पारंपरिक ढाँचे को मौलिक रूप से बदल दिया है। तर्क, जो कि साक्ष्यों के आधार पर सही निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया है, वर्तमान डिजिटल पारिस्थितिकी तंत्र में कई गंभीर संकटों का सामना कर रहा है।

2.1 सूचना की अतिरेकता और सत्यता का मूल्यांकन : वर्तमान युग की सबसे बड़ी चुनौती सूचना का विस्फोट है, जिसे अक्सर 'इंफोडेमिक' (infodemic) कहा जाता है। प्रति सेकंड उत्पादित होने वाला विशाल डेटा उपयोगकर्ता के लिए 'सूचना अतिरेकता' (Information Overload) की स्थिति पैदा करता है। यूनेस्को (UNESCO, 2025) के अनुसार, हम केवल

"गलत सूचना के संकट" का नहीं, बल्कि "जानने के संकट" (crisis of knowing) का सामना कर रहे हैं। जब सूचना की मात्रा व्यक्ति की प्रसंस्करण क्षमता से अधिक हो जाती है, तो वह सत्यता के मूल्यांकन के लिए गहरे तर्क के बजाय मानसिक शॉर्टकट (heuristics) का सहारा लेने लगता है। इससे सूचना की गुणवत्ता और विश्वसनीयता का परीक्षण करना लगभग असंभव हो जाता है, जिससे भ्रामक नैरेटिव्स को फलने-फूलने का अवसर मिलता है।

2.2 पक्षपातपूर्ण एल्गोरिदम और निष्पक्षता का अभाव : डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर सूचना का प्रवाह 'पक्षपातपूर्ण एल्गोरिदम' (Biased Algorithms) द्वारा संचालित होता है। ये एल्गोरिदम उपयोगकर्ता की रुचि और जुड़ाव (engagement) को प्राथमिकता देते हैं, न कि सूचना की निष्पक्षता या सत्यता को। पेरीज़र (Pariser, 2011) द्वारा प्रतिपादित 'फिल्टर बबल' (Filter Bubble) की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि एल्गोरिदम व्यक्ति को केवल वही सूचना दिखाते हैं जो उसके पूर्व-मौजूदा विश्वासों की पुष्टि करती है। यह 'पुष्टि पूर्वाग्रह' (Confirmation Bias) को सुदृढ़ करता है और व्यक्ति को विपरीत तर्कों से पूरी तरह अलग कर देता है। हालिया शोधों से पता चला है कि जनरेटिव AI मॉडल भी अपने प्रशिक्षण डेटा में मौजूद नस्लीय और लैंगिक पूर्वाग्रहों को दोहराते हैं, जो निष्पक्ष तर्क की संभावना को बाधित करते हैं (Informs, 2025)।

2.3 डीपफेक और वास्तविकता का भ्रामक प्रस्तुतिकरण : डीपफेक (Deepfakes) और सिंथेटिक मीडिया ने "देखना ही विश्वास करना है" (seeing is believing) के पारंपरिक तार्किक आधार को नष्ट कर दिया है। डीपफेक ऐसी तकनीक है जो AI का उपयोग करके किसी व्यक्ति की आवाज़ या छवि का अत्यंत यथार्थवादी लेकिन झूठा प्रतिरूप तैयार करती है। Civicus (2025) की रिपोर्ट के अनुसार, डीपफेक 'यथार्थवाद अनुमान' (realism heuristic) का लाभ उठाते हैं, जहाँ मानव मस्तिष्क दृश्य सूचना पर पाठ्य सूचना की तुलना में अधिक भरोसा करता है। यह न केवल वास्तविकता का भ्रामक प्रस्तुतिकरण है, बल्कि यह सार्वजनिक विमर्श में 'संदेह का वातावरण' (liar's dividend) पैदा करता है, जहाँ वास्तविक साक्ष्यों को भी "डीपफेक" कहकर नकारा जा सकता है।

2.4 ऑनलाइन चर्चाओं में तार्किक भ्रांतियों का प्रसार : सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर होने वाली चर्चाओं में तार्किक भ्रांतियों (Logical Fallacies) का अनियंत्रित प्रसार देखा जाता है। ध्रुवीकृत वातावरण के कारण, 'एड होमिनेम' (Ad Hominem - व्यक्ति पर हमला करना), 'स्ट्रॉ मैन' (Straw Man - विपक्षी के तर्क को तोड़-मरोड़ कर पेश करना) और 'फाल्स डिलेमा' (False Dilemma) जैसी भ्रांतियाँ आम हो गई हैं। चूँकि डिजिटल प्लेटफॉर्म त्वरित प्रतिक्रिया को प्रोत्साहित करते हैं, इसलिए उपयोगकर्ता जटिल मुद्दों को काले-सफेद के खाँचे में देखने लगते हैं। तर्क अब सत्य की खोज का साधन नहीं, बल्कि केवल अपनी वैचारिक जीत सुनिश्चित करने का हथियार बन गया है।

2.5 डिजिटल प्लेटफॉर्म पर आलोचनात्मक सोच का क्षरण : डिजिटल युग में 'आलोचनात्मक सोच' (Critical Thinking) का निरंतर ह्रास हो रहा है। 'भ्रामक सत्य प्रभाव' (Illusory Truth Effect) के कारण, जब कोई गलत सूचना बार-बार उपयोगकर्ता के सामने आती है, तो वह उसे सत्य मानने लगता है, भले ही वह तार्किक रूप से त्रुटिपूर्ण हो (Elsner et al., 2025)। सूचना के तीव्र उपभोग की संस्कृति ने 'धीमे और व्यवस्थित चिंतन' (System 2 thinking) के स्थान पर 'त्वरित और भावनात्मक प्रतिक्रिया' (System 1 thinking) को प्रतिस्थापित कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप, नागरिक सूचना के स्रोतों, उनके निहित स्वार्थों और तार्किक विसंगतियों का विश्लेषण करने की क्षमता खो रहे हैं, जो एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिए अनिवार्य है।

3. डिजिटल युग में नैतिकता की चुनौतियाँ (Ethical Challenges in the Digital Age)

डिजिटल प्रौद्योगिकी के अभूतपूर्व विस्तार के साथ गंभीर नैतिक प्रश्न उठ खड़े हुए हैं। जहाँ तर्क ज्ञान की अखंडता से संबंधित है, वहीं नैतिकता मानवीय गरिमा, न्याय और अधिकारों से संबंधित है। डिजिटल युग में नैतिकता की निम्नलिखित चुनौतियाँ हैं:

3.1 डिजिटल गोपनीयता और डेटा सुरक्षा का उल्लंघन : डिजिटल गोपनीयता (Digital Privacy) का अधिकार मानव अधिकारों का एक मूलभूत अंग है, जिसे संयुक्त राष्ट्र के सार्वभौमिक मानवाधिकार घोषणा के अनुच्छेद 12 में मान्यता दी गई

है। तथापि, डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने डेटा संग्रहण और व्यावहारिक निगरानी (surveillance) को इतना सरल बना दिया है कि व्यक्तिगत गोपनीयता लगभग एक विलुप्त अवधारणा बन गई है।

प्रत्येक क्लिक, खोज, क्रय और अनुवर्ती गतिविधि (browsing history) को विज्ञापन कंपनियों, सरकारों और अपराधियों द्वारा विभिन्न उद्देश्यों के लिए एकत्रित, संसाधित और बेचा जाता है। ऑस्ट्रेलियाई अपराध संस्थान (Australian Institute of Criminology, 2025) की रिपोर्ट के अनुसार, 2024 में 25% लोगों ने डेटा ब्रीच का शिकार होने की सूचना दी, जो 2023 के 33.7% से कम है, लेकिन फिर भी एक चिंताजनक संख्या है। इसके अतिरिक्त, व्यक्तिगत डेटा का दुरुपयोग तेजी से गति पकड़ रहा है — साइबरपीस हेल्पलाइन (CyberPeace Helpline, 2025) ने बताया कि वित्तीय धोखाधड़ी के मामलों में 43% की वृद्धि देखी गई, जहाँ व्यक्तिगत डेटा दुरुपयोग का माध्यम था।

3.2 ऑनलाइन उत्पीड़न और साइबरबुलिंग :

साइबरबुलिंग डिजिटल युग की सबसे क्रूर वास्तविकताओं में से एक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organization, 2024) के अनुसार, 2024 में लगभग एक छठाई (16.7%) स्कूल-आयु के बच्चों ने साइबरबुलिंग का अनुभव किया, जो 2018 से बढ़ी हुई दर है। 2025 में, वैश्विक स्तर पर 22% इंटरनेट उपयोगकर्ता (आयु 12-17 वर्ष) साइबरबुलिंग का शिकार थे। संयुक्त राज्य में, 59.2% लड़कियों और 49.5% लड़कों ने जीवन में किसी न किसी समय साइबरबुलिंग का अनुभव किया है (Security.org, 2026)।

साइबरबुलिंग के परिणाम केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दोनों हैं। 2025 के अनुसंधान से पता चला है कि साइबरबुलिंग का शिकार हुए आधे से अधिक किशोर पोस्ट-ट्रॉमैटिक स्ट्रेस डिसऑर्डर (PTSD) के समान लक्षण दिखाते हैं (Security.org, 2026)। साइबरबुलिंग विशेषतः ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स पर प्रसारित होता है — YouTube (79%), Snapchat (69%), TikTok (64%), और Facebook (49%) सबसे आम हैं। CyberPeace Helpline (2025) के विश्लेषण के अनुसार, साइबरबुलिंग कुल साइबर अपराध मामलों का 26% है, जो वित्तीय धोखाधड़ी (43%) के बाद दूसरा सबसे सामान्य है।

3.3 डिजिटल असमानता और सामाजिक न्याय :

डिजिटल असमानता (Digital Divide) आधुनिक समय की एक संरचनात्मक समस्या है। ब्रुकिंग्स इंस्टीटूशन (Brookings, 2024) के अनुसार, 2022 तक विश्व की आबादी का एक-तिहाई (2.7 बिलियन लोग) अभी भी इंटरनेट से अलग है, और 53% को उच्च-गति ब्रॉडबैंड तक पहुँच नहीं है। यह असमानता केवल भौगोलिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि लिंग, आयु, और आर्थिक स्थिति पर आधारित है:

- **लैंगिक असमानता:** महिलाएँ पुरुषों की तुलना में 16% कम मोबाइल इंटरनेट का उपयोग करती हैं, और 264 मिलियन महिलाएँ इंटरनेट से पूरी तरह अलग हैं (Brookings, 2024)।
- **आर्थिक असमानता:** कम आय वाले घरों (US$75,000 प्रति वर्ष से कम) के बच्चों को साइबरबुलिंग का खतरा उच्च-आय वाले परिवारों के बच्चों की तुलना में दोगुना है (22% बनाम 11%) (Security.org, 2026)।
- **भौगोलिक असमानता:** विकासशील देशों में, विशेषतः सबसे कम विकसित देशों में, इंटरनेट पहुँच मात्र 36% है, जो विश्व औसत 66% से बहुत कम है (UN, 2023)।

डिजिटल असमानता शिक्षा, रोज़गार, और सामाजिक गतिशीलता में और भी बड़ी खाई पैदा करती है। जो लोग डिजिटल साक्षरता से वंचित हैं, वे आर्थिक अवसरों से भी वंचित रहते हैं, जिससे सामाजिक न्याय का मुद्दा और गंभीर हो जाता है।

3.4 कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नैतिक निहितार्थ :

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने मानव निर्णय-निर्माण में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है, लेकिन इसके साथ गंभीर नैतिक समस्याएँ भी आई हैं। AI में पूर्वाग्रह (bias) को मुख्य रूप से चार श्रेणियों में विभाजित किया जाता है (PMC, 2026):

1. **ऐतिहासिक/प्रतिनिधित्वात्मक पूर्वाग्रह:** जब प्रशिक्षण डेटा ऐतिहासिक असमानताओं को प्रतिबिंबित करता है (उदाहरण: COMPAS† प्रणाली, जिसने काले प्रतिवादियों को श्वेत प्रतिवादियों की तुलना में दोगुना दर से अधिक जोखिम का जोखिम माना)।
2. **चयन/माप पूर्वाग्रह:** डेटा संग्रहण में त्रुटियाँ (उदाहरण: 'Gender Shades' अध्ययन में, गहरी त्वचा वाली महिलाओं के लिए चेहरे की पहचान में 34.7% त्रुटि दर)।
3. **एल्गोरिथमिक/अनुकूलन पूर्वाग्रह:** जब किसी एल्गोरिदम या कंप्यूटर प्रोग्राम को बिना किसी न्यायसंगतता (fairness) या निष्पक्षता की बाधाओं के प्रशिक्षित (train) किया जाता है, तो वह डेटा में मौजूद असमानताओं को सीख लेता है। परिणामस्वरूप, यह तकनीक कुछ विशेष समूहों या व्यक्तियों के खिलाफ भेदभाव करने लगती है।
4. **प्रतिक्रिया/उदीयमान पूर्वाग्रह:** जब AI के आउटपुट भविष्य के इनपुट को प्रभावित करते हैं, स्व-सुदृढ़ करने वाली असमानताएँ बनाते हैं।

UNESCO (2026) द्वारा निर्धारित नैतिकता संबंधी सिफारिशें AI के उपयोग में निम्नलिखित सिद्धांतों की वकालत करती हैं: आवश्यकता (necessity), जोखिम आकलन (risk assessment), गोपनीयता संरक्षण (privacy protection), पारदर्शिता (transparency), और मानव जवाबदेही (human accountability)। तथापि, वर्तमान में अधिकांश AI प्रणालियाँ इन मानकों को पूरा नहीं कर रहीं।

3.5 सामग्री निर्माण और बौद्धिक संपदा अधिकार : डिजिटल युग में सामग्री निर्माण (Content Creation) की परिभाषा और स्वामित्व अत्यंत जटिल हो गया है। जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे के रचनात्मक कार्य को संशोधित करके साझा करता है, या AI टूल का उपयोग करके नई सामग्री तैयार करता है, तो बौद्धिक संपदा अधिकार (Intellectual Property Rights) की प्रश्न उठते हैं। उदाहरण के लिए:

- **कलात्मक चोरी:** जब AI मॉडल को बिना लेखक की अनुमति के कलाकारों की कृतियों पर प्रशिक्षित किया जाता है।
- **लेखक गलत श्रेय:** जब AI-जनित सामग्री को मानव सृजन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, या इसके विपरीत।
- **व्यावसायिक शोषण:** जब छोटे रचनाकारों के काम को बड़ी तकनीकी कंपनियाँ बिना मुआवजे के उपयोग करती हैं।

हालिया शोध (Informs, 2025) में पाया गया कि लगभग 57% ऑनलाइन सामग्री AI-जनित या AI-अनुवादित है, जिसका अधिकांश भाग तथ्य-जाँच के दायरे से बाहर है। यह सामग्री-निर्माण के क्षेत्र में एक "नैतिक वैकुआम" (ethical vacuum) पैदा करता है, जहाँ कौन स्रोत है, कौन लाभान्वित होता है, और किसे क्रेडिट दिया जाता है — ये सभी प्रश्न अनुत्तरित रहते हैं।

4. चुनौतियों का सामना करने के उपाय (Solutions to Address Challenges)

डिजिटल युग में तर्क और नैतिकता की चुनौतियों का समाधान केवल तकनीकी हस्तक्षेपों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक **बहुआयामी दृष्टिकोण** की मांग करता है, जिसमें **शैक्षिक, नीतिगत, तकनीकी, और सामाजिक-सांस्कृतिक** पहलू शामिल हों। निम्नलिखित उपाय इन चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करने में सहायक हो सकते हैं:

4.1 डिजिटल साक्षरता और मीडिया साक्षरता को बढ़ावा देना : डिजिटल साक्षरता (Digital Literacy) और मीडिया साक्षरता (Media Literacy) को बढ़ावा देने से नागरिकों में **आलोचनात्मक सोच, सूचना का मूल्यांकन, और डिजिटल सुरक्षा** के कौशल विकसित होते हैं। यूनेस्को (UNESCO, 2025) ने सुझाव दिया है कि डिजिटल साक्षरता को **तीन स्तंभों** पर आधारित होना चाहिए:

- **सूचना का मूल्यांकन (Information Evaluation):** उपयोगकर्ताओं को सिखाना कि वे सूचना के स्रोत, उसकी विश्वसनीयता, और निहित स्वार्थों का विश्लेषण करें। उदाहरण के लिए, **लेटरल रीडिंग** (Lateral

---

†**COMPAS** (Correctional Offender Management Profiling for Alternative Sanctions) यह एक एल्गोरिदम आधारित टूल है जो यह भविष्यवाणी करता है कि किसी अपराधी के भविष्य में दोबारा अपराध करने की संभावना कितनी है। इसका उपयोग संयुक्त राज्य अमेरिका की आपराधिक न्याय प्रणाली में किया जाता है।

Reading) तकनीक, जहाँ उपयोगकर्ता किसी दावे की पुष्टि करने के लिए अन्य स्रोतों का उपयोग करते हैं, भ्रामक सूचना की पहचान करने में मदद करती है (Wineburg & McGrew, 2019)।

- **डिजिटल सुरक्षा (Digital Safety):** नागरिकों को **गोपनीयता सेटिंग्स, पासवर्ड प्रबंधन, और साइबर धोखाधड़ी** से बचने के तरीके सिखाने चाहिए। ऑस्ट्रेलियाई अपराध संस्थान (AIC, 2025) के अनुसार, 2024 में 25% लोग डेटा ब्रीच का शिकार हुए, जो डिजिटल सुरक्षा के महत्व को रेखांकित करता है।
- **नैतिक उपयोग (Ethical Use):** डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर **साइबरबुलिंग, हेट स्पीच, और बौद्धिक संपदा के उल्लंघन** जैसे मुद्दों पर जागरूकता बढ़ानी चाहिए। साइबरपीस हेल्पलाइन (2025) के अनुसार, साइबरबुलिंग कुल साइबर अपराध मामलों का 26% है, जो इस दिशा में तत्काल कार्रवाई की मांग करता है।

भारत में डिजिटल युग की चुनौतियों से निपटने के लिए सरकार, नागरिक समाज, और निजी क्षेत्र ने मिलकर कई महत्वपूर्ण पहल की हैं। जून 2025 तक भारत में 100.28 करोड़ इंटरनेट उपयोगकर्ता हो चुके हैं (IBEF, 2025), जो इन समाधानों की तात्कालिकता और व्यापकता को रेखांकित करता है।

भारत सरकार ने प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान (PMGDISHA) के अंतर्गत मार्च 2025 तक 7.35 करोड़ लाभार्थियों को पंजीकृत किया, जिनमें से 6.39 करोड़ प्रमाणित हुए (IBEF, 2025)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) में डिजिटल साक्षरता, कोडिंग, और कम्प्यूटेशनल सोच को सभी विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य किया गया है (सांसद, 2024)। इसके अतिरिक्त, DIKSHA (डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर फॉर नॉलेज शेयरिंग) प्लेटफॉर्म पर अक्टूबर 2025 तक 565 करोड़ से अधिक शिक्षण सत्र आयोजित किए जा चुके हैं। नैसकॉम फाउंडेशन द्वारा संचालित 'DigiSaakshar' कार्यक्रम हाशिए के समुदायों को डिजिटल कौशल प्रदान करता है, जबकि Meta ने असम पुलिस के साथ मिलकर किशोरों के लिए 'We Think Digital' डिजिटल सुरक्षा कार्यक्रम शुरू किया है (Economic Times, 2025)।

4.2 नैतिक AI विकास और विनियमन के लिए दिशानिर्देश :

भारत ने AI के नैतिक उपयोग के लिए 'IndiaAI Governance Guidelines' जारी किए हैं, जो सात मूल सिद्धांतों — सुरक्षा, पारदर्शिता, जवाबदेही, निष्पक्षता, और मानवीय नियंत्रण — पर आधारित हैं (Ikigai Law, 2025)। डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम, 2023 (DPDP Act) ने सहमति-आधारित डेटा प्रसंस्करण को कानूनी आधार प्रदान किया है, डेटा उल्लंघन पर ₹250 करोड़ तक का जुर्माना निर्धारित किया है, और बच्चों के डेटा की सुरक्षा के लिए माता-पिता की सत्यापित सहमति अनिवार्य की है (Wikipedia, 2023)। CERT-In ने नवंबर 2024 में डीपफेक खतरों पर विशेष दिशानिर्देश जारी किए हैं (PIB, 2025)।

4.3 ऑनलाइन प्लेटफार्मों पर जवाबदेही सुनिश्चित करना :

सूचना प्रौद्योगिकी (मध्यवर्ती दिशानिर्देश और डिजिटल मीडिया आचार संहिता) नियम, 2021 (IT Rules, 2021) के अंतर्गत सभी प्रमुख सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर शिकायत अधिकारी नियुक्त करना, 72 घंटों में अवैध सामग्री हटाना, और मासिक अनुपालन रिपोर्ट प्रकाशित करना अनिवार्य है (PIB, 2025)। भारतीय साइबर अपराध समन्वय केंद्र (I4C) और SAHYOG पोर्टल के माध्यम से अवैध सामग्री हटाने के लिए केंद्रीयकृत तंत्र स्थापित किया गया है। नागरिक https://cybercrime.gov.in पोर्टल और हेल्पलाइन नंबर 1930 के माध्यम से साइबर अपराध की शिकायत कर सकते हैं। इसके अलावा, राष्ट्रीय महिला आयोग (NCW) ने 2025 में 200 से अधिक सिफारिशें प्रस्तुत की हैं, जिनमें साइबरबुलिंग, ट्रोलिंग, और डीपफेक को औपचारिक रूप से मान्यता देने और पीड़ितों के लिए जिला स्तरीय सहायता तंत्र स्थापित करने की मांग शामिल है (Ikigai Law, 2025)।

4.4 नागरिकों और प्रौद्योगिकी निर्माताओं के लिए नैतिक जागरूकता का प्रसार :

इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय (MeitY) प्रतिवर्ष अक्टूबर में राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा जागरूकता माह (NCSAM), फरवरी में Safer Internet Day, और प्रत्येक माह के पहले बुधवार को साइबर जागरूकता दिवस (CJD) आयोजित करता है (PIB, 2025)। CERT-In द्वारा अब तक देश भर में 4,309 जागरूकता कार्यशालाएँ आयोजित की जा चुकी हैं, जिनमें 9.63 लाख से अधिक प्रतिभागी शामिल हुए हैं, जिनमें 3.38 लाख स्कूली बच्चे और विद्यार्थी शामिल हैं

(PIB, 2025)। 'डिजिटल सखी' जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को डिजिटल वित्तीय साक्षरता प्रदान की जा रही है, जो डिजिटल असमानता को कम करने में सहायक है।

निष्कर्ष (Conclusion)

भारत, विश्व के सबसे बड़े डिजिटल बाजारों में से एक होने के नाते, तर्क और नैतिकता की इन चुनौतियों के केंद्र में है। 'डिजिटल इंडिया' अभियान ने करोड़ों नागरिकों को सशक्त बनाया है, लेकिन साथ ही 'सूचना अतिरेकता' और 'भ्रामक सूचनाओं' (विशेषकर व्हाट्सएप यूनिवर्सिटी और सोशल मीडिया के माध्यम से) ने सामाजिक तर्कशीलता के लिए गंभीर संकट उत्पन्न किया है।

भारतीय संदर्भ में, **साइबरपीस हेल्पलाइन (2025)** के आँकड़े बताते हैं कि वित्तीय धोखाधड़ी (43%) और साइबरबुलिंग (26%) सबसे बड़ी नैतिक चुनौतियाँ हैं। भारत की भाषाई विविधता के कारण स्थानीय भाषाओं में विश्वसनीय 'तथ्य-जाँच' (Fact-checking) संसाधनों की कमी तार्किक भ्रांतियों को और अधिक बल देती है। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण-शहरी डिजिटल विभाजन सामाजिक न्याय और अवसरों की समानता में बाधा बना हुआ है।

भविष्य की दिशा:

भारत के लिए भविष्य का मार्ग **'डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम' (DPDP Act, 2023)** के प्रभावी कार्यान्वयन और **'एआई फॉर ऑल' (AI for All)** के नैतिक दृष्टिकोण में निहित है। भारत को स्थानीय भाषाओं में डिजिटल साक्षरता को प्राथमिकता देनी चाहिए ताकि नागरिक तर्कपूर्ण निर्णय ले सकें। भारतीय दर्शन के **'वसुधैव कुटुंबकम'** (विश्व एक परिवार है) के सिद्धांत को डिजिटल नैतिकता में एकीकृत करते हुए, हमें एक ऐसा उत्तरदायी डिजिटल पारिस्थितिकी तंत्र विकसित करना होगा जो तकनीकी प्रगति के साथ-साथ मानवीय मूल्यों और लोकतांत्रिक तर्कशीलता को भी सुरक्षित रखे।

संदर्भ सूची (References)

भारत सरकार, इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय [MeitY]. (2023). *डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम, 2023*. https://www.meity.gov.in/content/digital-personal-data-protection-act-2023

भारत सरकार, इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय [MeitY]. (2021). *सूचना प्रौद्योगिकी (मध्यवर्ती दिशानिर्देश और डिजिटल मीडिया आचार संहिता) नियम, 2021*. https://www.meity.gov.in/content/it-rules-2021

भारत सरकार, गृह मंत्रालय. (2023). *भारतीय न्याय संहिता, 2023*. https://www.mha.gov.in/en

भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

भारत सरकार, वित्त मंत्रालय. (2025). *केंद्रीय बजट 2025-26*. https://www.indiabudget.gov.in/

राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् [NCERT]. (2024). *सुरक्षित ऑनलाइन सीखना: कोविड-19 के समय में*. https://ncert.nic.in/pdf/announcement/Safetolearn_Hindi.pdf

संसद, भारत सरकार. (2024). *डिजिटल साक्षरता और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* (संसदीय परिशिष्ट, प्रश्न संख्या 2592). https://sansad.in/getFile/annex/266/AU2592_QFFJT5.pdf

Creswell, John W., & Creswell, J. David. (2018). *Research design: Qualitative, quantitative, and mixed methods approaches* (5th ed.). SAGE Publications.

Digital Empowerment Foundation. (2026). *National Digital Literacy Mission*. https://www.defindia.org/national-digital-literacy-mission-3/

Ikigai Law. (2025, November). *The DPDP Rules have landed* (TechTicker Issue 72). https://www.ikigailaw.com/article/654/techticker-issue-72-november-2025

India Brand Equity Foundation [IBEF]. (2025). *Digital India: Objectives, initiatives & achievements*. https://www.ibef.org/government-schemes/digital-india

JETIR. (2025). *The IT Act 2000 and DPDP Act 2023 in the age of AI and big data*. https://www.jetir.org/papers/JETIR2508143.pdf

Kothari, Chakravanti Rajagopalachari. (2004). *Research methodology: Methods and techniques* (2nd ed.). New Age International Publishers.

Nasscom Foundation. (2025). *National Digital Literacy Mission: Digital skills training program*. https://www.nasscomfoundation.org/digital-literacy

National Commission for Women [NCW]. (2025, November 4). *Report on gender-sensitive approach to India's cyber laws* (200+ recommendations submitted to four Union ministries).

Organisation for Economic Co-operation and Development [OECD]. (2019). *Artificial intelligence in society*. OECD Publishing. https://doi.org/10.1787/eedfee77-en

Press Information Bureau [PIB], Government of India. (2025, January 1). *India well-equipped to tackle evolving online harms and cyber crimes*. https://www.pib.gov.in/PressReleseDetail.aspx?PRID=2154268

Press Information Bureau [PIB], Government of India. (2025). *Government of India press release on AI safeguards and DPDP*. https://www.pib.gov.in/PressReleaseDetail.aspx?PRID=2238191

RAND Corporation. (2022). *Truth decay: A threat to democracy and public health*. https://www.rand.org/research/projects/truth-decay.html

Sansad. (2024). *Digital literacy and National Education Policy 2020* (Parliamentary Annexure, Question No. 2592). https://sansad.in/getFile/annex/266/AU2592_QFFJT5.pdf

The Economic Times. (2025). *Digital literacy programme: Latest news and initiatives*. https://economictimes.indiatimes.com/topic/digital-literacy-programme

United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization [UNESCO]. (2023). *Technology in education: A tool on whose terms?* Global Education Monitoring Report. UNESCO Publishing.

Wikipedia. (2023). *Digital Personal Data Protection Act, 2023*. https://en.wikipedia.org/wiki/Digital_Personal_Data_Protection_Act,_2023

World Economic Forum [WEF]. (2025). *The Global Risks Report 2025* (20th ed.). https://www.weforum.org/publications/global-risks-report-2025/

World Health Organization [WHO]. (2022). *Infodemic*. https://www.who.int/health-topics/infodemic

Yin, Robert K. (2018). *Case study research and applications: Design and methods* (6th ed.). SAGE Publications.

Received: 24.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना की अवधारणा

डॉ. शारदा वंदना*

s.vandanarnc@gmail.com

सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना को मानव अस्तित्व का मूल आधार माना गया है। भारतीय दार्शनिक चिंतन में चेतना केवल मनुष्य की मानसिक क्रिया या जैविक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि वह समस्त सृष्टि के अस्तित्व का आधारभूत तत्व है। वेद, उपनिषद, भगवद्गीता, योग, सांख्य, वेदांत, बौद्ध तथा जैन दर्शन में चेतना की अवधारणा का विस्तृत विवेचन मिलता है। भारतीय मनीषियों ने चेतना को आत्मा, ब्रह्म, चित्त, प्रज्ञा और जीवत्व के विभिन्न रूपों में समझने का प्रयास किया है। आधुनिक विज्ञान जहां चेतना को मुख्यतः मस्तिष्क की गतिविधियों से जोड़कर देखता है, वहीं भारतीय ज्ञान परंपरा इसे अस्तित्व के आध्यात्मिक एवं सार्वभौमिक आयाम के रूप में स्वीकार करती है। भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना की अवधारणा का दार्शनिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्दः

चेतना, आत्मा, ब्रह्म, भारतीय ज्ञान परंपरा, वेदांत, योग, उपनिषद, चित्त

प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ कुछ प्रश्न सदैव जिज्ञासा के केंद्र में रहे हैं—मैं कौन हूं? जीवन का उद्देश्य क्या है? मृत्यु के बाद क्या होता है? क्या मनुष्य केवल शरीर है या उससे परे भी कुछ है? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास विश्व की विभिन्न दार्शनिक परंपराओं में हुआ है, लेकिन भारतीय ज्ञान परंपरा ने इन विषयों पर अत्यंत गहन और व्यापक चिंतन प्रस्तुत किया है।

भारतीय चिंतन का मूल आधार चेतना है। यहां मनुष्य को केवल भौतिक सत्ता नहीं माना गया, बल्कि उसे चेतन सत्ता के रूप में देखा गया है। भारतीय दर्शन के अनुसार शरीर नश्वर है, लेकिन चेतना अथवा आत्मा शाश्वत है। यही चेतना जीवन को अर्थ प्रदान करती है और मनुष्य को अन्य जीवों से विशिष्ट बनाती है।

आज जब कृत्रिम बुद्धिमत्ता, तंत्रिका विज्ञान और संज्ञानात्मक विज्ञान चेतना की प्रकृति को समझने का प्रयास कर रहे हैं, तब भारतीय ज्ञान परंपरा का चेतना संबंधी विमर्श पुनः वैश्विक स्तर पर प्रासंगिक हो उठा है।'चेतना' शब्द संस्कृत धातु 'चित्' से बना है, जिसका अर्थ है—जानना, अनुभव करना या जागरूक होना। सामान्य अर्थ में चेतना वह शक्ति है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने अस्तित्व, परिवेश और अनुभवों का बोध करता है।

चेतना के कारण ही मनुष्य सुख-दुःख का अनुभव करता है, विचार करता है, निर्णय लेता है तथा आत्मनिरीक्षण कर पाता है। यदि शरीर से चेतना का संबंध समाप्त हो जाए, तो शरीर मात्र एक निर्जीव पदार्थ बनकर रह जाता है। भारतीय चिंतन में चेतना को केवल मानसिक क्रिया नहीं माना गया है, बल्कि उसे अस्तित्व का मूल तत्त्व स्वीकार किया गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल स्रोत वेद हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में चेतना के बीज रूप में अनेक संकेत मिलते हैं। वेदों में समस्त सृष्टि को एक ही परम सत्ता की अभिव्यक्ति माना गया है। यह सत्ता चेतन है तथा उसी के कारण समस्त जगत संचालित होता है। ऋग्वेद में ब्रह्मांडीय चेतना की कल्पना प्रस्तुत की गई है, जिसमें सम्पूर्ण सृष्टि एक ही दिव्य शक्ति से अनुप्राणित मानी गई है।

* **सहायक प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, गोरेलाल मेहता कॉलेज, बनमनखी**

पूर्णियाँ विश्वविद्यालय, पूर्णियाँ , बिहार

वेदों के अनुसार मनुष्य का जीवन केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं है, बल्कि आत्मिक उन्नति भी उसका लक्ष्य है। यही आत्मिक उन्नति चेतना के विकास का आधार बनती है। चेतना का सर्वाधिक गहन विवेचन उपनिषदों में मिलता है। उपनिषदों का केंद्रीय विषय आत्मा और ब्रह्म का संबंध है। उपनिषदों के अनुसार आत्मा ही चेतना का मूल स्रोत है। यह आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है और न ही किसी प्रकार के परिवर्तन से प्रभावित होती है।

छांदोग्य उपनिषद का प्रसिद्ध महावाक्य— "तत्त्वमसि" (तू वही है)—व्यक्ति और परम चेतना की एकता को व्यक्त करता है। इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद का महावाक्य "अहं ब्रह्मास्मि" यह उद्घोष करता है कि आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। उपनिषदों के अनुसार चेतना कोई व्यक्तिगत या सीमित सत्ता नहीं है, बल्कि वह सार्वभौमिक और अनंत है। मनुष्य का वास्तविक स्वरूप शरीर या मन नहीं, बल्कि वही शुद्ध चेतना है। भगवद्गीता भारतीय दर्शन का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें चेतना के स्वरूप का अत्यंत सरल और व्यावहारिक विवेचन किया गया है। गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं—

"न जायते म्रियते वा कदाचित्"

अर्थात आत्मा न कभी जन्म लेती है और न कभी मरती है।

गीता के अनुसार शरीर परिवर्तनशील है, लेकिन आत्मा शाश्वत चेतना है। मनुष्य का वास्तविक अस्तित्व उसी चेतना में निहित है। गीता चेतना को आत्मबोध, कर्तव्यबोध और परमात्मा से एकत्व की दिशा में विकसित करने का मार्ग प्रस्तुत करती है।

सांख्य दर्शन भारतीय दर्शन की अत्यंत प्राचीन और वैज्ञानिक परंपरा है। इसके अनुसार समस्त सृष्टि दो मूल तत्त्वों से निर्मित है—पुरुष और प्रकृति। सांख्य दर्शन में पुरुष शुद्ध चेतना का प्रतीक है, जबकि प्रकृति भौतिक जगत का आधार है। पुरुष निष्क्रिय, शाश्वत और चेतन है। प्रकृति सक्रिय किंतु अचेतन है। संसार की समस्त गतिविधियां प्रकृति के माध्यम से होती हैं, जबकि चेतना पुरुष से प्राप्त होती है।सांख्य दर्शन चेतना को स्वतंत्र और मूलभूत तत्त्व मानता है। यह दृष्टिकोण आधुनिक भौतिकवादी विचारधारा से भिन्न है।

पतंजलि के योगसूत्र चेतना के अध्ययन की एक वैज्ञानिक पद्धति प्रस्तुत करते हैं। योगसूत्र का प्रसिद्ध सूत्र है—

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"

अर्थात चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।

योग दर्शन के अनुसार मनुष्य की चेतना अनेक प्रकार के विचारों, इच्छाओं और विकारों से आच्छादित रहती है। योगाभ्यास के माध्यम से इन आवरणों को हटाकर चेतना के शुद्ध स्वरूप का अनुभव किया जा सकता है।ध्यान, प्राणायाम, धारणा और समाधि जैसे योगिक अभ्यास चेतना के विकास के साधन माने गए हैं। आधुनिक मनोविज्ञान और तंत्रिका विज्ञान भी ध्यान के सकारात्मक प्रभावों को स्वीकार कर चुके हैं।

आदि शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत वेदांत भारतीय दर्शन में चेतना की सर्वोच्च व्याख्या प्रस्तुत करता है। अद्वैत वेदांत के अनुसार—

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।"

अर्थात ब्रह्म ही सत्य है और जीव उसी ब्रह्म का स्वरूप है।

इस दर्शन में चेतना को परम सत्य माना गया है। संसार में दिखाई देने वाली विविधता केवल अज्ञान के कारण है। जब मनुष्य आत्मज्ञान प्राप्त करता है, तब वह अपनी वास्तविक चेतना को पहचान लेता है। अद्वैत वेदांत के अनुसार चेतना न तो शरीर है, न मन और न बुद्धि; वह इन सबकी साक्षी है।

बौद्ध दर्शन चेतना को एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में देखता है। बुद्ध ने स्थायी आत्मा की अवधारणा को स्वीकार नहीं किया, किंतु उन्होंने चेतना के अस्तित्व को नकारा भी नहीं।बौद्ध विचार में चेतना निरंतर परिवर्तनशील है। यह विभिन्न मानसिक और भौतिक कारकों के परस्पर संबंध से उत्पन्न होती है। विपश्यना ध्यान के माध्यम से व्यक्ति अपने मन और चेतना का प्रत्यक्ष अवलोकन कर सकता है। बौद्ध दर्शन चेतना को आत्मनिरीक्षण और जागरूकता के माध्यम से समझने पर बल देता है।

जैन दर्शन में चेतना को जीव का मूल गुण माना गया है। जैन आचार्यों के अनुसार प्रत्येक जीव में चेतना विद्यमान होती है।जितनी अधिक चेतना विकसित होती है, उतना ही जीव आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर होता है।अहिंसा, संयम और तपस्या के माध्यम से चेतना को शुद्ध किया जा सकता है। जैन दर्शन चेतना को नैतिक जीवन और आत्मानुशासन से जोड़ता है।

आधुनिक विज्ञान चेतना को समझने का प्रयास कर रहा है, लेकिन अभी तक इसकी कोई सर्वमान्य व्याख्या नहीं दे पाया है। तंत्रिका विज्ञान के अनुसार चेतना मस्तिष्क की जटिल प्रक्रियाओं का परिणाम हो सकती है। वहीं कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि चेतना ब्रह्मांड की मूलभूत विशेषता भी हो सकती है।

भारतीय ज्ञान परंपरा चेतना को केवल मस्तिष्क तक सीमित नहीं मानती। यह उसे अस्तित्व की मूल वास्तविकता के रूप में स्वीकार करती है। यही कारण है कि आज अनेक वैज्ञानिक और दार्शनिक भारतीय दृष्टिकोण का पुनर्मूल्यांकन कर रहे हैं। वर्तमान युग में तकनीकी विकास ने मानव जीवन को सुविधाजनक बनाया है, लेकिन तनाव, अवसाद, हिंसा और अस्तित्वगत संकट भी बढ़े हैं।ऐसे समय में भारतीय ज्ञान परंपरा की चेतना संबंधी अवधारणा अत्यंत प्रासंगिक हो जाती है। यह मनुष्य को—

आत्मबोध प्रदान करती है,
मानसिक संतुलन विकसित करती है,
नैतिक जीवन की प्रेरणा देती है,
प्रकृति के प्रति संवेदनशील बनाती है,
तथा वैश्विक सद्भाव का मार्ग दिखाती है।

योग, ध्यान और आध्यात्मिक अभ्यास आज विश्वभर में मानसिक स्वास्थ्य और जीवन की गुणवत्ता सुधारने के प्रभावी साधन के रूप में स्वीकार किए जा रहे हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना की अवधारणा केवल दार्शनिक विमर्श का विषय नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन, सृष्टि और परम सत्य को समझने का मूल आधार है। भारतीय मनीषियों ने चेतना को मनुष्य के अस्तित्व की केंद्रीय शक्ति माना है और उसके माध्यम से जीवन के गूढ़तम रहस्यों को जानने का प्रयास किया है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन में चेतना को केवल मानसिक गतिविधि, बौद्धिक क्षमता अथवा जैविक प्रक्रिया तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसे आत्मा, ब्रह्म और सार्वभौमिक सत्ता से जोड़कर देखा गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा का यह दृष्टिकोण विश्व की अनेक दार्शनिक परंपराओं से भिन्न और अधिक व्यापक प्रतीत होता है।

वेदों से लेकर उपनिषदों, भगवद्गीता, सांख्य, योग, वेदांत, बौद्ध तथा जैन दर्शन तक चेतना की अवधारणा विभिन्न रूपों में विकसित हुई है। यद्यपि इन सभी दर्शनों की व्याख्याएं और दृष्टिकोण अलग-अलग हैं, तथापि उनका मूल उद्देश्य मनुष्य को उसके वास्तविक स्वरूप का बोध कराना है। उपनिषदों में चेतना को आत्मा और ब्रह्म की एकात्मकता के रूप में देखा गया है, जबकि वेदांत दर्शन इसे परम सत्य के रूप में स्थापित करता है। सांख्य दर्शन चेतना को पुरुष के रूप में स्वीकार करता है तथा योग दर्शन उसके प्रत्यक्ष अनुभव का मार्ग प्रस्तुत करता है। बौद्ध और जैन दर्शन भी आत्मानुशासन, ध्यान और जागरूकता के माध्यम से चेतना के विकास पर बल देते हैं। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना केवल विचार का विषय नहीं, बल्कि अनुभव और आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया भी है।

भारतीय चिंतन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह चेतना को मानव जीवन के नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आयामों से जोड़कर देखता है। यहाँ ज्ञान का उद्देश्य केवल बाह्य संसार को जानना नहीं, बल्कि स्वयं को जानना भी है। आत्मबोध के माध्यम से व्यक्ति अपने भीतर करुणा, सहिष्णुता, प्रेम, अहिंसा और समभाव जैसे गुणों का विकास करता है। यही कारण है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना का विकास व्यक्तिगत उन्नति के साथ-साथ सामाजिक कल्याण का भी आधार माना गया है। जब व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता है, तब वह स्वयं को समस्त सृष्टि से जुड़ा हुआ अनुभव करता है और उसके भीतर लोकमंगल की भावना विकसित होती है।

वर्तमान युग में चेतना का प्रश्न पुनः वैश्विक विमर्श का विषय बन गया है। तंत्रिका विज्ञान, मनोविज्ञान, संज्ञानात्मक विज्ञान तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसे आधुनिक ज्ञान क्षेत्रों में चेतना की प्रकृति को समझने के लिए निरंतर अनुसंधान हो रहे हैं। यद्यपि विज्ञान ने मानव मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को समझने में उल्लेखनीय प्रगति की है, फिर भी चेतना का रहस्य पूरी तरह

उद्घाटित नहीं हो सका है। ऐसे समय में भारतीय ज्ञान परंपरा चेतना के अध्ययन के लिए एक वैकल्पिक और समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जो अनुभव, आत्मनिरीक्षण और आध्यात्मिक साधना को समान महत्व देता है। यह दृष्टिकोण आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान को नई दिशा प्रदान कर सकता है।

आज का समाज भौतिक प्रगति के बावजूद अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। तनाव, अवसाद, हिंसा, असहिष्णुता, पर्यावरणीय संकट और नैतिक मूल्यों के ह्रास जैसी समस्याएँ मानव जीवन को प्रभावित कर रही हैं। ऐसी परिस्थितियों में भारतीय ज्ञान परंपरा की चेतना संबंधी अवधारणा विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाती है। योग, ध्यान और आत्मचिंतन की भारतीय पद्धतियाँ व्यक्ति को मानसिक शांति, आत्मनियंत्रण और संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। साथ ही, वे मनुष्य को यह समझने में सहायता करती हैं कि उसका अस्तित्व केवल व्यक्तिगत हितों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह व्यापक मानवता और प्रकृति का अभिन्न अंग है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना की अवधारणा केवल दार्शनिक विमर्श का विषय नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन, सृष्टि और परम सत्य को समझने का मूल आधार है। भारतीय मनीषियों ने चेतना को मनुष्य के अस्तित्व की केंद्रीय शक्ति माना है और उसके माध्यम से जीवन के गूढ़तम रहस्यों को जानने का प्रयास किया है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन में चेतना को केवल मानसिक गतिविधि, बौद्धिक क्षमता अथवा जैविक प्रक्रिया तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसे आत्मा, ब्रह्म और सार्वभौमिक सत्ता से जोड़कर देखा गया है। भारतीय ज्ञान परंपरा का यह दृष्टिकोण विश्व की अनेक दार्शनिक परंपराओं से भिन्न और अधिक व्यापक प्रतीत होता है।

निष्कर्ष :-

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में चेतना की अवधारणा अत्यंत व्यापक, गहन और बहुआयामी है। यह मनुष्य को केवल ज्ञान प्रदान नहीं करती, बल्कि जीवन जीने की एक ऐसी समग्र दृष्टि प्रदान करती है जिसमें आत्मबोध, नैतिकता, आध्यात्मिकता और लोककल्याण का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में, जहाँ मानवता नई चुनौतियों और संभावनाओं के बीच खड़ी है, भारतीय ज्ञान परंपरा का चेतना-विमर्श एक मार्गदर्शक प्रकाशस्तंभ की भाँति है। यह न केवल व्यक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप से परिचित कराता है, बल्कि उसे संतुलित, सार्थक और कल्याणकारी जीवन की दिशा में अग्रसर भी करता है। इसी अर्थ में भारतीय चेतना-दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना सहस्रों वर्ष पूर्व था, और भविष्य में भी मानव सभ्यता को दिशा प्रदान करता रहेगा।

संदर्भ :-

1. पतञ्जलि. (2016). *पतञ्जलि योगसूत्र*. गोरखपुर : गीता प्रेस.
2. ईश्वरकृष्ण. (2014). *सांख्यकारिका*. वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत सीरीज.
3. शंकराचार्य. (2015). *विवेकचूडामणि*. गोरखपुर : गीता प्रेस.
4. शंकराचार्य. (2018). *ब्रह्मसूत्र भाष्य*. वाराणसी : चौखम्बा विद्या भवन.
5. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (2017). भारतीय दर्शन (भाग 1 एवं 2). नई दिल्ली: राजपाल एंड संस.
6. शर्मा, चन्द्रधर. (2019). *भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन*. नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
7. दासगुप्ता, सुरेन्द्रनाथ. (2015*). भारतीय दर्शन का इतिहास*. नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
8. हिरियन्ना, एम. (2018). *भारतीय दर्शन की रूपरेखा*. नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास.
9. विवेकानन्द, स्वामी. (2018). *ज्ञान योग*. कोलकाता: अद्वैत आश्रम.
10. विवेकानन्द, स्वामी. (2018). राजयोग. कोलकाता: अद्वैत आश्रम.
11. Dalai Lama. (2005). The Universe in a Single Atom: The Convergence of Science and Spirituality. New York: Broadway Books.

12. Chalmers, David J. (1996). The Conscious Mind: In Search of a Fundamental Theory. Oxford University Press.
13. Wallace, B. Alan. (2007). Contemplative Science: Where Buddhism and Neuroscience Converge. Columbia University Press.
14. Varela, Francisco J., Thompson, Evan & Rosch, Eleanor. (1991). The Embodied Mind: Cognitive Science and Human Experience. MIT Press.
15. Rao, K. Ramakrishna. (2011). Consciousness Studies: Cross-Cultural Perspectives. McFarland Publications.
16. Mohanty, J. N. (2000). Classical Indian Philosophy. Rowman & Littlefield Publishers.
17. Deutsch, Eliot. (1980). Advaita Vedanta: A Philosophical Reconstruction. University of Hawaii Press.
18. Ranganathananda, Swami. (2001). The Message of the Upanishads. Bharatiya Vidya Bhavan.
19. UNESCO. (2023). Indian Knowledge Systems and Holistic Education. UNESCO Publications.
20. Ministry of Education, Government of India. (2023). Indian Knowledge Systems: Concepts and Applications. New Delhi.
21. Singh, R. & Sharma, A. (2022). "Consciousness in Indian Philosophical Traditions." Journal of Indian Philosophy and Culture, 14(2), 45–61.
22. Rao, R. R. (2021). "Indian Knowledge Traditions and Consciousness Studies." International Journal of Indic Studies, 8(1), 22–38.
23. Mishra, P. (2023). "The Concept of Consciousness in Vedanta and Modern Cognitive Science." Journal of Consciousness Studies, 30(4), 71–89.

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

Received: 24.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

सामूहिक आत्माभिव्यक्ति के बीच पाठ की रचना / पुनर्रचना और प्रदर्शन तक उसकी यात्रा : समकालीन हिंदी डिवाइस्ड थिएटर के विशेष संदर्भ में

आशुतोष प्रताप सिंह *

rangkarm@gmail.com

"यदि आप (कोई बात) कह नहीं सकते, तो उसकी तरफ़ इशारा कीजिए।"

लुडविग विटगेंस्टाइन[1]

प्रस्तावना :

डिवाइस का शाब्दिक अर्थ होता है 'युक्ति', 'उपाय'। रंगमंच के संदर्भ में यह युक्ति है, बीज - रूप में किसी विचार को लेकर उसे अलग – अलग प्रयोगों के द्वारा विकसित करते हुए प्रदर्शन तक ले जाने की। इस प्रक्रिया में रंग - समूह का प्रत्येक सदस्य अभिनेता, निर्देशक, परिकल्पक, लेखक आदि एक साथ मिलकर अभ्यास और प्रयोगों की यात्रा पर निकलते हैं। किंतु इस सामूहिक प्रक्रिया की सबसे विशेष बात होती है – **सामूहिकता के बीच वैयक्तिकता (Individuality) का सम्मान और वैयक्तिकता के आग्रह के साथ सामूहिकता की भावना।** डिवाइस्ड थिएटर की दुनिया में सामूहिकता और वैयक्तिकता एक दूसरे के विरुद्ध नहीं होते बल्कि यहाँ विरुद्धों का सामंजस्य होता है। रंग – समूह का प्रत्येक सदस्य लोकतांत्रिक रूप से 'स्व' (Self) की अभिव्यक्ति करने के लिए स्वतंत्र होता है। एक ही विचार के संदर्भ में प्रत्येक सदस्य की आत्माभिव्यक्ति का एक दूसरे से साझा होना उस विचार को अतिरिक्त संदर्भ देता है, उसमें एक और स्तर जोड़ता है। संभव है कभी – कभी समूह के दो या अधिक सदस्यों की आत्माभिव्यक्ति से उपजते विचारों के बीच द्वंद्व हो, किंतु इस द्वंद्व को तार्किक इम्प्रोवाइज़ेशंस से होकर एक सामंजस्य तक ले जाना होता है। यह उस विचार और संबंधित यथार्थ के विभिन्न पहलुओं को प्रदर्शन की प्रक्रिया में जोड़ते हुए दर्शकों तक ले जाता है। और प्रदर्शन के स्तर पर दर्शकों से साझा होती हुई प्रस्तुति उनके विचारों, उनके यथार्थ में एक अलग संदर्भ जोड़ती है। रंग – समूह के प्रत्येक सदस्य की उसके अपने - अपने माध्यम (अभिनय, निर्देशन, परिकल्पन, लेखन आदि) से हो रही आत्माभिव्यक्ति, दर्शकों के 'स्व' (Self) से संवाद करने का प्रयास करती है। दर्शक भी अपने 'स्व' की झलक प्रस्तुति में पा कर प्रस्तुति का अंतरंग हिस्सा बन पाता है। और यदि ऐसा होता है तो? तो यही तो किसी भी कला रूप का उद्देश्य है, ख़ुद की कहना – दूसरों की सुनना, संवाद और अनुभवों के साझे से दुनिया को बेहतर बनाना।

समकालीन हिन्दी डिवाइस्ड थिएटर प्रायः पाठ को दो प्रकार से बरतता दिखाई देता है। पहला है, किसी पूर्वलिखित पाठ को चुनकर उसे नये संदर्भों में डिवाइस करते हुए। दूसरा, एक या अनेक विचार सूत्रों को आधार बनाकर पूर्वाभ्यास के दौरान डिवाइस करते हुए एक सर्वथा नये पाठ और प्रस्तुति की रचना करते हुए। पहले प्रकार में भी पूर्वलिखित पाठ के रूप में परंपरागत रूप से लिखे गये नाट्य – आलेख की अनिवार्यता नहीं रहती बल्कि वह पाठ किसी भी साहित्यक/ असाहित्यिक कृति का भी टुकड़ा मात्र भी हो सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि पाठ को डिवाइस्ड थिएटर हमेशा एक नये अर्थ – संदर्भ में देखता और ग्रहण करता है। प्रस्तुत शोध – पत्र डिवाइस्ड थिएटर की परिधि में पाठ की रचना – पुनर्रचना और उसकी प्रस्तुति तक की यात्रा का अध्ययन करने का प्रयास है, समकालीन हिंदी डिवाइस्ड थिएटर के विशेष संदर्भ में।

---

* **शोधार्थी, भारतीय रंगमंच विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़**

शोध – प्रविधि :

प्रस्तुत - शोध को शोधार्थी ने गुणात्मक शोध की परिधि में पूरा करने का प्रयास किया है। शोध हेतु प्राथमिक स्रोत के रूप में मैंने अपने शोध की परिधि में आये संबंधित निर्देशकों के साथ हुई व्यक्तिगत बातचीत और साक्षात्कार को लिया है, उनकी प्रस्तुतियों में दर्शक के रूप में सहभाग और रंगमंच से संबद्ध अपने व्यक्तिगत अनुभव को शामिल किया है। द्वितीयक स्रोत के रूप में अन्य साक्षात्कारों तथा संदर्भ – ग्रंथों को अपने शोध का आधार बनाया है। प्रस्तुत शोध – पत्र में मैंने अपने द्वारा देखी गयी प्रस्तुतियों, व्यक्तिगत रूप से लिये गये साक्षात्कारों तथा पहले से उपलब्ध संबंधित साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

विषय- वस्तु :

डिवाइस्ड थिएटर की शुरुआत को सोलहवीं शताब्दी में इटली में शुरू होने वाले रंगमंच के एक स्वरूप "कॉमेदिया देल आर्ते" से मानते हुए निर्देशक अभिलाष पिल्लै **सामुदायिकता की भावना**, **आशु – अभिनय (Improvisation)**, **स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता (Self-determination)**, **आत्माभिव्यक्ति (Self-reflection), तात्कालिक सहजता (Spontaneity)** आदि को डिवाइस्ड थिएटर के विशेष गुणों में शुमार करते हैं। भारतीय रंगमंच के संदर्भ में इसके चिह्न देखते हुए वे कहते हैं –

"एक तरह से देखा जाय तो हमारे यहाँ परम्परागत रंगमंच के जितने भी रूप देखने को मिलते हैं, उनमें भी डिवाइस्ड थिएटर के तमाम गुण देखने को मिलते हैं, चाहे वो लिखित पाठ की अनुपस्थिति में इम्प्रोवाइजेशन के द्वारा हमारे महाकाव्यों की कथाओं का प्रदर्शन हो, या सामुदायिकता की भावना हो। दर्शक, प्रायः जानता है कि वह वहाँ कौन सी कथा देखने वाला है, फिर भी देखने जाता है। क्योंकि वह देखना चाहता है कि उस कथा को आज के संदर्भ में कलाकार किस तरह दिखाने वाले हैं। ऐसे में दर्शक और रंग समूह का संबंध एक स्वतःस्फूर्त और सहज (spontaneous) आदान - प्रदान का बन जाता है। यह एम्प्रोवाइजेशन, यह सहजता, स्वतःस्फूर्तता (spontaneity) डिवाइस्ड थिएटर का भी विशेष गुण है।"[2]

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि रंगमंच तो शुरू से ही स्वयं में एक सामूहिक प्रक्रिया है। विभिन्न कलाएँ और कलाकार तो रंगमंच में पहले भी एक साथ रचना करते रहे हैं। भारतीय शास्त्रीय संस्कृत रंगमंच की बात करें या ग्रीक रंगमंच की, सामूहिक प्रयास तो हमेशा ही रंगमंच के लिए आवश्यक रहा है। फिर डिवाइस्ड थिएटर की प्रक्रिया में ऐसा क्या विशेष है? इसके उत्तर में हम पाते हैं कि डिवाइस्ड थिएटर में मौजूद सामूहिकता (Collaboration) मात्र कलाकारों के कौशल, उनके हुनर के सम्मिलित योगदान तक सीमित नहीं होती, बल्कि लोकतांत्रिक धरातल पर उनके वैचारिक सहभाग से भी बनती है। यह लोकतांत्रिक सामूहिकता (Collaboration) डिवाइस्ड थिएटर की परिधि में किसी तरह के वरीयता क्रम या श्रेष्ठताबोध (Hierarchy) के लिए कोई स्थान नहीं बनने देती। यहाँ निर्देशक, नाटककार, अभिनेता, परिकल्पक आदि किसी भी तरह का एकाधिकार या विशेषाधिकार नहीं रखते। बल्कि डिवाइस्ड थिएटर में 'सत्ता का विकेंद्रीकरण' होता है। किसी प्रस्तुति में क्या होना चाहिए, कैसे होना चाहिए, इसका निर्धारण निर्देशक या कोई एक व्यक्ति नहीं करता। बल्कि पूरा रंग – समूह एक ही इकाई के रूप में कार्य करता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात इस प्रक्रिया में इन सभी का सहभाग पूर्वाभ्यास के पहले दिन से शुरू होता है। किसी पूर्वलिखित नाटक के न होने के कारण ऐसा होना अनिवार्य भी हो जाता है। इस संदर्भ में निर्देशक अभिलाष पिल्लै कहते हैं; **"इसके पीछे एक कारण है। ये जो चीज़ बन रही है, ये एक इश्यू से रिलेटेड है, और वह इश्यू वैसे के वैसे सब में जाता है। उसके बारे में रीडिंग मटेरियल से लेकर डायरेक्टर ने जितना भी रिसर्च किया है, वह सारी रिसर्च डायरेक्टर सबसे शेयर करता है। वह शेयरिंग अकेले नहीं होती है। बल्कि अभिनेताओं के साथ ही साथ लाइट डिज़ाइनर्स, साउंड डिज़ाइनर्स, बैकस्टेज आर्टिस्ट्स आदि सबसे ये शेयरिंग एक साथ होती है।"[3]**

इसके बाद इस रिसर्च के दूसरे स्तर पर पहले से और विस्तृत तथा और गहरी रिसर्च की ज़रूरत होती है। जो रिसर्च पहले स्तर पर निर्देशक से रंग – समूह की तरफ़ साझा की जाती है, उस से प्रेरणा लेते हुए अभिनेताओं सहित पूरे रंग-समूह की अपने स्व (self) को सामने रखते हुए संबंधित इश्यू के बारे में अपने – अपने माध्यम से रिसर्च शुरू होती है। रिसर्च के इस दूसरे चरण में उस इश्यू या विचार से जुड़े समय और परिवेश को जानने की आवश्यकता होती है। यह जानना वैचारिक स्तर पर ही नहीं बल्कि भौतिक स्तर पर भी ज़रूरी होता है। यदि आवश्यकता हो और संभव हो तो एक फ़ील्ड वर्क की तरह संबंधित

परिवेश और कम्युनिटी में जाने, उसे गहराई से समझने की आवश्यकता होती है। अभिनेता की यह तलाश जहाँ उस मूल विचार, उसके चरित्र, चरित्र के कथ्य तथा उसके संदर्भों से जुड़ी होती है, वहीं एक परिकल्पक की तलाश उस विचार या कथ्य के दृश्य और ध्वनि पक्ष से जुड़ी होती है। इसके लिए उस संबंधित इश्यू को, उस संदर्भ को, उसके कथ्य को व्यक्तिगत स्तर पर आत्मीयता के साथ अनुभव करना आवश्यक होता है।

उदाहरण के तौर पर, एक व्यक्तिगत साक्षात्कार के दौरान प्रसिद्ध निर्देशक अनामिका हक्सर बताती हैं कि नाटक 'उचक्का' की तैयारी के दौरान मूल मराठी उपन्यास 'उचल्या' के लेखक लक्ष्मण गायकवाड़ जेब कतरने और उठाईगीरी के पेशे से जुड़े लोगों को अभिनेताओं से मिलवाने के लिए लाते हैं, ताकि अभिनेता जहाँ एक तरफ़ उनके कौशल, उनकी देह - भाषा को समझ सकें, बल्कि उस से कहीं ज़्यादा उनके जीवन के उन पीड़ादायी संदर्भों को भी देख और महसूस कर सकें, जो प्रायः अनदेखे रह जाते रहे हैं। इस तरह हम देखें तो पाते हैं कि यह सामूहिक रिसर्च एक तरह से उस इश्यू को, उसके परिवेश को एक आत्मीय सहभागी (Insider) की तरह देखती – समझती है, न कि किसी बाहरी की तरह। कहने का अर्थ यह है कि यह रिसर्च केवल तार्किक रूप से तथ्यात्मक नहीं होती बल्कि इस रिसर्च में शामिल प्रत्येक व्यक्ति अपने – अपने स्तर पर देखने, सुनने, सूंघने, स्वाद और स्पर्श की अपनी पांचों इन्द्रियों के साथ आत्मिक स्तर पर शामिल होता है। पांचों इंद्रियों से अनुभूत तत्त्व जहाँ अभिनेताओं सहित परिकल्पकों, लेखक आदि को उनके शिल्प में सहयोग करते हैं, प्रदर्शन के क्षण तक उनके शिल्प को तराशते चलते हैं, वहीं कई बार प्रदर्शन का हिस्सा भी बनते हैं।

उदाहरण के रूप में, विख्यात रंग – निर्देशक पद्मश्री नीलम मानसिंह चौधरी निर्देशित प्रस्तुति 'किचन कथा' में प्रस्तुति के चरित्र जो कुछ भी कहते – दिखाते हैं, किचन का परिवेश उसके साथ - साथ चलता है। इस प्रस्तुति में स्त्री चरित्र जिन संदर्भों की बात करते हैं, उस मूल कथ्य में मसालों के कूटे जाने की आवाज़, उनकी गंध, खाना बनाने की तैयारी के साथ ही साथ खाना पकाये जाने की गंध भी एक अंदरूनी संदर्भ जोड़ रही होती है। दर्शक अभिनीत हो रहे दृश्य को सिर्फ़ देख ही नहीं रहा होता, सुन रहा होता है, उसकी गंध ले रहा होता है। यह दर्शक के अनुभव को और घनीभूत और बहुस्तरीय बना रहा होता है।

'किचेन कथा'[4] के दो दृश्य, निर्देशन: नीलम मानसिंह चौधरी

एक दर्शक के तौर पर ऐसा ही अनुभव मुझे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की भूतपूर्व निदेशक, अध्यापक और प्रसिद्ध निर्देशक अनुराधा कपूर निर्देशित 'विरासत' और 'नाले वाली लड़की' का प्रदर्शन देखते समय भी हुआ था, जहाँ दर्शक प्रस्तुति को अलग – अलग जगहों से अलग – अलग अनुभव लिए देख रहे होते हैं।

'विरासत'[5] का एक दृश्य, निर्देशन: अनुराधा कपूर

'विरासत' की प्रस्तुति के दौरान तो दर्शकों से कहा भी गया था कि प्रस्तुति के मध्यांतर के दौरान वे अपनी बैठने की जगहें बदल सकते हैं, जिस से वाड़े के अलग – अलग हिस्सों से वे 'वाड़े' के भीतर के जीवन में झाँक सकें। उस हिस्से के नज़रिए से कथ्य को देखते हुए एक अलग संदर्भ पा सकें। इस तरह हम देखते हैं कि प्रदर्शन स्थल (Performing Space) भी पाठ के संदर्भ और अर्थ को प्रभावित करता है, पाठ में अर्थ और संदर्भ के अतिरिक्त स्तरों की रचना करता है।

बहरहाल, वापस उस सामूहिक रिसर्च के बिंदु की तरफ़ चलते हैं। तो वह सामूहिक रिसर्च जिसे रंग- समूह का प्रत्येक सदस्य (अभिनेता, परिकल्पक, लेखक आदि) अपने – अपने व्यक्तिगत स्तर पर करता है, उसे निर्देशक सहित पूरे रंग – समूह के साथ साझा किया जाता है। इस प्रक्रिया में और इस पहले सामूहिक रिसर्च की प्रक्रिया में अभिनेता – परिकल्पक – निर्देशक – लेखक आदि उस विचार, उस इश्यू को नज़र में बनाए हुए जिस परिवेश, समुदाय, स्पेस या समय में जाते हैं, वहाँ उनके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण होता है उस विचार या मुद्दे से जुड़े उन तत्त्वों को याद रखना जिनसे उनका व्यक्तिगत रिश्ता बनता हो। अभिलाष पिल्लै कहते हैं कि इस रिसर्च के दौरान हर चीज़ के पीछे की कहानी की तलाश करनी चाहिए, उस से जुड़े 'सोर्स मैटेरियल' की तलाश करनी चाहिए। उस 'सोर्स मैटेरियल' से अपने रिश्ते को समझना चाहिए और अभ्यास और इम्प्रोवाइजेशन के दौरान उसे अपने काम में शामिल करना चाहिए।[6] यह रिश्ता दृश्य का हो सकता है, ध्वनि का हो सकता है, स्पर्श का हो सकता है, गंध या स्वाद का हो सकता है। उन्हें वह अनुभव याद रखने की ज़रूरत होती है। यह 'याद रखना', यह स्मृति एक कलाकार के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रसिद्ध अमेरिकन निर्देशक और सिद्धांतकार एने बोगार्ट[7] (Anne Bogart) अपनी पुस्तक 'एंड देन, यू ऐक्ट' (And then, you act) में लिखती हैं; **"याद करना या याद रखना एक शारीरिक क्रिया है जो रंगमंच के हृदय के साथ जुड़ी हुई होती है। यदि रंगमंच को क्रिया रूप में एक शब्द देना हो, तो वह होगा, 'याद रखना'।"[8]**

इस नज़रिये से रंग – समूह के प्रत्येक सदस्य को उसकी रिसर्च के दौरान मिले अनुभवों की बात करें तो उन अनुभवों की याद (Memory) उसकी सोच में, उसके शारीरिक व्यवहार में, उसके अभिनय, उसकी परिकल्पना में, उसके लेखन आदि में पूर्वाभ्यास से लेकर प्रदर्शन तक, अनुगूँज के रूप में मौजूद रहती है। यह अनुगूँज ही प्रदर्शन के दौरान और प्रदर्शन के बाद दर्शक की स्मृति में रुकती है, और भविष्य में फिर किसी बहाने से लौटती है।

साझा करने की प्रक्रिया पर वापस लौटें, तो यह दूसरा स्तर सबकी व्यक्तिगत रिसर्च को, व्यक्तिगत अनुभव को अलग – अलग संदर्भों से लैस करता है, बहुस्तरीय बनाता है। यह प्रक्रिया यथार्थ को देखने के दृष्टिकोण को समृद्ध करती है। **"यथार्थ हमारे चुनाव पर निर्भर करता है कि हम किस चीज़ को, किस तरह देखने (परखने) के लिए चुनते हैं।"[9]**

यानी हमारा यह चुनाव हमारे लिए हमारे हिस्से का यथार्थ बनाता है। डिवाइस्ड थिएटर रंग - समूह के प्रत्येक सदस्य को उनके अपने चुनाव के साथ यथार्थ का अपना – अपना पहलू सामने रखने की स्वतंत्रता देता है। इस तरह सबके हिस्से के

अपने - अपने यथार्थ से एक बृहत्तर यथार्थ का निर्माण होता है। लेकिन यहाँ डिवाइस्ड थिएटर की एक और विशेषता सामने आती है, वह यह कि रंग – समूह के प्रत्येक सदस्य का अपना – अपना यथार्थ, प्रस्तुति के उस बृहत्तर यथार्थ में गायब नहीं हो जाता, बल्कि विभिन्न स्तरों की तरह अलग – अलग स्तर पर अपनी वैयक्तिकता (Individuality) के साथ झलकता रहता है। सबका वैयक्तिक यथार्थ और यह बृहत्तर यथार्थ मिलकर डिवाइस्ड थिएटर के उस पाठ का निर्माण करते हैं, जो प्रस्तुति – आलेख के रूप में सामने आ भी सकता है और नहीं भी। यहाँ यह बात महत्त्वपूर्ण है कि यह 'पाठ' शाब्दिक ही हो, यह अनिवार्य नहीं है। चूँकि डिवाइस्ड थिएटर की प्रक्रिया में लेखक साथ - साथ हो भी सकता है और नहीं भी, इसलिए प्रस्तुति के पाठ की रचना में अभिनेता – निर्देशक- परिकल्पक अपने – अपने माध्यमों के द्वारा अपने हिस्से का पाठ जोड़ रहे होते हैं। और यह पाठ रचना होती है – इंप्रोवाइजेशन और अभ्यास (Exercises) के द्वारा। अभिलाष पिल्लै एक व्यक्तिगत बातचीत के दौरान बताते हैं कि परंपरागत अर्थों में जिस तरह नाटक होता है, जिसका आदि, मध्य और अंत होता है, डिवाइस्ड थिएटर में उस तरह पाठ रचना नहीं होती। बल्कि डिवाइस्ड थिएटर में शुरू में ही कहानी बना लेने की चिंता नहीं होनी चाहिए। डिवाइस्ड थिएटर में उत्पाद (Product) से कहीं ज़्यादा प्रक्रिया (Process) महत्त्वपूर्ण है। इस प्रक्रिया में चूंकि पहले से लिखा नाटक नहीं होता तो रंग – समूह के पास कोई बना - बनाया ढाँचा (Structure) भी नहीं होता जिसके आधार पर प्रस्तुति बनायी जाय। यहाँ जो ज्ञात (Known) होता है, वह है रिसर्च और सोर्स मैटेरियल। प्रस्तुति कैसी बन कर सामने आएगी यह पूरी तरह अज्ञात (Unknown) होता है। तो इस तरह डिवाइस्ड थिएटर की प्रक्रिया ज्ञात से अज्ञात में एक छलांग (Flight into unknown) होती है।

डिवाइस्ड थिएटर के संदर्भ में स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि इस पूरी रचना – प्रक्रिया में नाटककार की क्या भूमिका होती है? परम्परागत अर्थों में तो एक नाटककार कई बार अपने एकांत में रचना कर रहा होता है जबकि डिवाइस्ड थिएटर की रचना – प्रक्रिया इसके विपरीत सामूहिक सहभागिता की माँग कर रही होती है, तो ऐसे में एक लेखक/ नाटककार के सामने किस तरह की चुनौती आ सकती है? इस प्रश्न के उत्तर में प्रसिद्ध निर्देशक और नाटककार त्रिपुरारी शर्मा कहती हैं;

"डिवाइस करते हुए जैसे आप किसी विषय के बारे में अपने विचार देते हैं, वैसे ही दूसरे भी देते हैं। संभव है कि आप किसी चरित्र या घटना को जिस तरह देख रहे हैं और विकसित करना चाहते हैं, वह समूह के बाकी सहभागियों को महत्त्वपूर्ण न लगे। ऐसी स्थिति में वे विचार आपके पास ही रह जाते हैं। कभी - कभी आप एकांत में उन विचारों को फिर से परखते हुए उनके बारे में लिख सकते हैं। डिवाइस्ड थिएटर से अलग परंपरागत रचना प्रक्रिया में लिखने वाला नाटककार तो एकांत में बिना प्रभावित हुए नाटक लिख सकता है लेकिन समूह में काम करते समय यह मुश्किल हो जाता है क्योंकि उन विचारों को लेकर किया जा रहा आपका सारा मंथन समूह में रचे जाने वाले नाटक में पूरी तरह से फिट नहीं बैठता। हालाँकि, मैं इसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण मानती हूँ कि समूह क्या करना चाहता है। अलग - अलग दिशाओं में अलग - अलग वैचारिक खिंचाव हो सकते हैं और एक तरह से, विभिन्न पहलुओं को देखना अपने आप में एक समृद्ध अनुभव भी है। फिर आपको उस समृद्धि का आनंद लेना होगा और उसके साथ सृजन करना होगा।"[10]

जैसा कि हम देखते हैं कि डिवाइस्ड थिएटर की सामूहिक साझेदारी में, कोलैबोरेशन में रंग – समूह के सभी सदस्य एक साथ शामिल होते हैं। तो पाठ – रचना/ प्रस्तुति रचना के लिए किये जा रहे इम्प्रोवाइजेशन में भी रंग - समूह के अभिनेता ही नहीं, ध्वनि – प्रकाश – मंच – वस्त्र परिकल्पक आदि भी शुरू से साथ – साथ इंप्रोवाइज़ कर रहे होते हैं। परफॉर्मेंस का स्पेस कैसा हो, एक्टर्स की कॉस्ट्यूम कैसी हो, ध्वनि – प्रभाव या संगीत कैसा हो? प्रकाश के साथ किस तरह के प्रयोग किए जा सकते हैं? इन से जुड़े हुए परिकल्पक (Designers) लगातार इम्प्रोवाइज़ करते हुए पूरी सामूहिक प्रक्रिया में सहभाग का रहे होते हैं। उदाहरण के तौर पर अगर स्पेस की बात करें, वो जगह जहाँ पर परफ़ॉर्मेंस होनी है, उसका भी अपना एक चरित्र होता है, एक असर होता है। किसी प्रोसीनियम थिएटर के अंदर होने वाली प्रस्तुति अगर किसी खुले परिवेश में की जाय तो निश्चित रूप से उसका प्रभाव बदल जाएगा। अभिनेता और दर्शक दोनों ही मनुष्य के तौर पर पांचों इंद्रियों के द्वारा अपने आस – पास की दुनिया का प्रभाव ग्रहण करते हैं, उसका अनुभव करते हैं और शारीरिक – मानसिक स्तर पर वैसा ही व्यवहार करते हैं। ऐसे में एक ही प्रस्तुति को किसी बंद ऑडिटोरियम में खेलने पर और बाहर खुले मंच पर खेलने पर स्पेस और वातावरण का प्रभाव प्रस्तुति को और दर्शकों के अनुभव दोनों को प्रभावित करता है। तो यह स्पेस, यह परिवेश यदि पूर्वाभ्यास के दौरान ही, इंप्रोवाइज़ेशन के दौरान ही एक्सप्लोर कर लिया जाय तो वह प्रस्तुति के सन्दर्भों को अतिरिक्त स्तर प्रदान करता है।

साथ ही यहाँ यह बात ध्यान देने लायक है कि थिएटर डिज़ाइन का अर्थ मात्र स्टेज या स्पेस को डिज़ाइन करने से नहीं है। बल्कि अपनी संपूर्णता में यह प्रकाश और ध्वनि प्रभाव, वस्त्र सज्जा और संगीत आदि को प्रस्तुति के पूरे कैनवास के नज़रिये से डिज़ाइन करने, परिकल्पित करने की बात है। यह अभिनेता को उपयुक्त परिवेश उपलब्ध करवाने के स्तर पर नहीं बल्कि उस से कहीं आगे बढ़ कर विज़ुअल – ऑडियो नैरेटिव गढ़ने के स्तर पर प्रस्तुति की पाठ - रचना में एक आयाम जोड़ने की प्रक्रिया है। जैसे एक कवि या लेखक किसी दृश्य, किसी ध्वनि, किसी गंध, किसी विचार, किसी भी तरह के शारीरिक – आत्मिक अनुभव से गुज़रता हुआ अन्तः प्रेरणा से कविता या कोई भी साहित्य रचता है, डिवाइस्ड थिएटर की प्रक्रिया में एक परिकल्पक (Designer) भी उसी तरह प्रस्तुति के पीछे के उद्देश्य और उस उद्देश्य की खोज में की गयी रिसर्च में मिले आत्मिक तत्त्व, उस सोर्स मैटेरियल की अंतः प्रेरणा से एक काव्यात्मक परिकल्पना कर रहा होता है। और यह परिकल्पना बिना किसी रचनात्मक - मोह के पूर्वाभ्यास के दौरान, इंप्रोवाइज़ेशन के दौरान टूटती – बनती – बदलती रहती है। अभिलाष पिल्लै के अनुसार; **"रंगमंचीय विधान (Theatre Design), मंच – निर्माण की कला से कहीं अधिक, एक काव्यात्मक और राजनीतिक क्रिया है, धारणाओं को आकार देते हुए, स्मृतियों को उत्तेजित करते हुए, मौन की अर्थ में अभिव्यंजना करते हुए।"[11]**

परिकल्पना (Designing) किसी विचार को उसके मूल संदर्भ के अतिरिक्त अन्य संदर्भों में विस्तार भी दे सकती है तथा साथ ही भावनाओं के अतिरेक को किसी एक विचार विशेष पर केंद्रित भी कर सकती है। परिकल्पना की इसी विशेषता को रेखांकित करते हुए डॉ. सत्यव्रत राउत लिखते हैं;

"अभिकल्पना का विचार दर्शक में एक बौद्धिक या भावनात्मक प्रतिक्रिया को प्रोत्साहित करने पर लक्षित है। अभिकल्पना तत्त्वों के नियंत्रण, आदिम भावनाओं के उभार में व्यापक और प्रेरक हो सकती है। या वे एक बौद्धिक प्रतिक्रिया को प्रेरित करने में सूक्ष्म या परिष्कृत हो सकती हैं। अच्छी परिकल्पना एक विचार या केंद्रीय कथा – वस्तु द्वारा अंतर्बोधीय भावनाओं का परिणाम हो सकती है।"[12]

इसी प्रकार डिवाइस्ड थिएटर में लेखक / नाटककार / ड्रामैटर्ज़ की भूमिका भी पूर्वाभ्यास के पहले से ही उस सामूहिक रिसर्च के साथ शुरू हो जाती है, जिसमें पूरा रंग – समूह एक साथ भाग लेता है। लेखक का माध्यम उसकी वाचिक भाषा है, शब्द हैं, उसकी अभिधा – लक्षणा और व्यंजना शक्तियां[13] हैं। उसके शब्दों से बनते बिम्ब हैं, उसके रूपक (Metaphors) हैं। इन सबके साथ वो उस सामूहिक रिसर्च में अपना सोर्स मैटेरियल, उसकी कहानी तलाशता और गढ़ता है। लेकिन यहाँ उसकी प्रक्रिया दो स्तरों पर चलती है — प्रस्तुति के पीछे के विचार और उद्देश्य से जुड़ा उसका अपना अनुभूत यथार्थ महत्त्वपूर्ण तो है लेकिन साथ ही साथ रंग – समूह के अन्य सदस्यों का अनुभूत यथार्थ भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। उसे भी परिकल्पकों की ही तरह प्रत्येक इंप्रोवाइजेशन और अभ्यास के साथ अपने शब्दों को और उनके संयोजन को छोड़ते – तोड़ते – तराशते पाठ की रचना करनी होती है। स्पष्ट ही है कि डिवाइस्ड थिएटर के नज़रिये से 'लेखक' होना अपने रूढ़ अर्थ तक ही सीमित नहीं है। लेखक सिर्फ़ वही नहीं जो काग़ज़ पर कलम से शब्दों को उकेरते हुए नाटक के पाठ की रचना करता है, बल्कि अभिनेता, विभिन्न परिकल्पक, संगीतकार और निर्देशक आदि भी अपने – अपने माध्यमों – उपकरणों के द्वारा शारीरिक गतियों और मुद्राओं से, प्रकाश – मंच – वस्त्र – संगीत आदि की परिकल्पना से तथा इन सबको एक सूत्र में संयोजित (compose) करते हुए एक लेखक की ही तरह अपने – अपने पाठ की रचना कर रहे होते हैं। प्रस्तुति - प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में उनके अलग – अलग पाठ मिलकर एक बृहत्तर पाठ का निर्माण करते हैं, जो प्रदर्शन – स्थल पर दिखाई और सुनाई पड़ता है।

उपसंहार :

अब तक के अध्ययन में यह बात निकल कर आती है कि डिवाइस्ड थिएटर के संदर्भ में कोई सर्वथा निश्चित या रूढ़ तरीक़ा नहीं होता है, पाठ की रचना – प्रक्रिया या उसकी पुनर्रचना का। जैसे ब्रह्माण्ड के अपने कुछ ज्ञात नियम हैं वैसे ही डिवाइस्ड थिएटर के भी, किंतु उनसे परे यह भी स्वच्छंद है। 'इसी तरह होना चाहिए', या 'इस तरह नहीं होना चाहिए', का यहाँ कोई अंकुश नहीं है। यहाँ एक निरंतर बदलता हुआ व्याकरण है। वर्ष 1980 – वर्ष 2000 के दशक के डिवाइस्ड थिएटर और वर्तमान में हो रहे डिवाइस्ड थिएटर के बदलते व्याकरण के संदर्भ में अनामिका हक्सर कहती हैं;

"जब आप अपना थीम डिसाइड करेंगे कि थीम क्या है और मुझे इसको कैसे कहना है, तो ग्रामर ख़ुद ही बनेगा। और ग्रामर ढूँढना चाहिए। हर बार ग्रामर बदलेगा अपना डिवाइस का, हर जनरेशन में बदलेगा। जनरेशन के

अंदर भी प्रैक्टिशनर्स के हिसाब से बदलेगा। उनके क्या एक्सपीरिएंसेज़ हैं? क्या हिस्ट्री है? क्या कहाँ से सीखा है? कौन उनके गुरु हैं? उनसे भी बदलेगा ग्रामर।"[14]

तो हम देखते हैं कि यहाँ एक निरंतर चलने वाली खोज है। इस खोज में निर्देशक सूत्रधार या केन्द्रीय सत्ता नहीं बल्कि सहयात्री होता है। संभव है इस यात्रा की शुरुआत के प्रेरक विचार, यात्रा से संबधित रिसर्च और इम्प्रोवाइज़ेशन की प्रक्रिया में कुछ बदल जाएँ, या एकदम से ही उनकी जगह दूसरे विचार, इस प्रक्रिया से उभरकर आने लगें और महत्त्वपूर्ण सूत्र बन जाएँ। इस संभावना के साथ ही निर्देशक भी बिना किसी पूर्वाग्रह के लगातार अपने दृष्टिकोण और दृश्य संयोजन को बदलता – बुनता चलता है। कभी - कभी डिवाइस्ड थिएटर की प्रक्रिया में अलग – अलग कला रूपों के कलाकारों का भी कोलैबोरेशन होता है। इस कोलैबोरेशन में भी वही प्रक्रिया अपनायी जाती है। चाहे कोई भी कला - रूप हो, तकनीकी का कोई भी इस्तेमाल हो, डिवाइस्ड थिएटर की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी चाहे किसी भी अनुपात या संदर्भ में हो, उन्हें भी **सामुदायिकता की भावना, आशु – अभिनय (Improvisation), स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता (Self-determination), आत्माभिव्यक्ति (Self-reflection) तात्कालिक सहजता (Spontaneity)** जैसे मूल्यों का अभ्यास करते हुए लिखित / अलिखित पाठ की रचना और उसके प्रदर्शन तक की यात्रा में साझेदारी करनी होती है।

संदर्भ :-

[1] Ludwig Wittgenstein, (1889-1951) ऑस्ट्रियन—ब्रिटिश दार्शनिक, गणित, मस्तिष्क और भाषा के दर्शन पर विशेष कार्य

[2] https://www.youtube.com/live/Z4rdXl_ZnIk?si=MzKJesmc8uyUfEdI 7:23 mins

[3] https://www.youtube.com/live/Z4rdXl_ZnIk?si=MzKJesmc8uyUfEdI 11: 19 mins

[4] https://thecompanychandigarh.wordpress.com/kitchen-katha/

[5] https://www.forbesindia.com/article/forbeslifes-india/anuradha-kapur-directing-change/51967/1

[6] सेंटर फॉर क्रिएटिविटी, कोलकाता द्वारा बर्टोल्ट ब्रेख़्त की 125वीं सालगिरह के अवसर पर वर्ष 2023 (26 अगस्त – 31 अगस्त) में आयोजित कार्यशाला ' ब्रेकिंग द फोर्थ वॉल' में एक व्यक्तिगत बातचीत के दौरान

[7] प्रसिद्ध अमेरिकी रंग निर्देशक, 'एंड देन, यू एक्ट', 'ए डायरेक्टर प्रीपेयर्स', 'द व्यू प्वाइंट्स बुक' जैसी रंगमंच से संबंधित महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की लेखक, एस आई. टी. आई. कंपनी, अमेरिका की संस्थापक।

[8] Bogart, Anne. A director prepares, seven essays on art and theatre, Routledge, London and New York, 2001, page 22

[9] Bogart, Anne. A director prepares, seven essays on art and theatre, Routledge, London and New York, 2001, page 8

[10] त्रिपुरारी शर्मा से एक साक्षात्कार के दौरान

[11] https://indiaartreview.com/stories/theatre-design-space-performance/ 10 June 2025, 22 : 35

[12] राउत, सत्यब्रत, 'सीनोग्राफ़ी : शिक्षा एवं अभ्यास', अनुवाद अनिल शर्मा, रंग प्रसंग 51, अप्रैल – जून 2019, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, बहावलपुर हाउस, नयी दिल्ली, पृष्ठ 194

[13] हिंदी व्याकरण में ये तीन शब्द - शक्तियां मानी गई हैं। अभिधा शब्द – शक्ति किसी शब्द का शाब्दिक अर्थ या मुझे सांकेतिक अर्थ व्यक्त करती है। लक्षणा शब्द – शक्ति, अभिधा की तरह शाब्दिक अर्थ नहीं व्यक्त करती बल्कि शब्द के लाक्षणिक अर्थ को व्यक्त करती है या शब्द के मूल अर्थ से जुड़े किसी दूसरे अर्थ को लक्ष्य करती है। व्यंजना शब्द -शक्ति न तो शाब्दिक अर्थ व्यक्ति करती है, न ही लाक्षणिक, शब्द में छुपा कोई तीसरा ही अर्थ व्यक्त करती है, प्रायः व्यंग्यार्थ में प्रयुक्त होती है।

[14] व्यक्तिगत साक्षात्कार के दौरान।

A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal. ISSN: 2231-1351

Received: 26.04.2026 | Accepted: 28.04.2026 | Published: 30.04.2026

Educational Philosophy of Gorakh-Naath and Its Relevance to Contemporary Yoga Education

PREETAM*
preetamlamba065@gmail.com

DR. DEEPAK SINGH†
Associate professor

Abstract:

Gorakhnath was one of the most important yogic teachers of medieval India. He was a leading figure of the Nath tradition. He emphasized self-discipline. He focused on learning by doing, morals, and strengthening the body and mind using yoga. Gorakhnath said that the objective of education is to gain knowledge and develop character and self-realization. He felt that learning is a process of experience, practice and guidance from a teacher.

This paper examines the educational ideas of Gorakhnath and their importance in modern yoga education. It underscores his focus on all-round development, moral conduct, self-control and learning through experience. In the modern era where stress, mental illnesses and value crises have on the rise, there is the need for guidance from Gorakhnath's education philosophy. His teachings can be useful in making yoga education meaningful, that is, by making it a more integrated practice of physical fitness along with mental, moral and spiritual development. The study ends by affirming that Gorakhnath's philosophy of education is timeless and can benefit the modern yoga education.

Key Words: *Gorakhnath, Nath Sampradaya, Philosophy, Yogic Education.*

Introduction:

India is a treasure of all kind of knowledge. As far as concerned with philosophy, Indian philosophy is one of the oldest systems in world. It is divided in two types; one is orthodox philosophy and other is heterodox. Sankhya, Yoga, Nyaya, Vaishesik, Poorva Mimamsa, Uttar Mimamsa and Vedanta are part of orthodox system whereas Buddhism, Jainism and Charvak are part of heterodox system.

In Indian philosophy, the term "yoga" refers to an all-encompassing framework intended to promote mental, physical, and spiritual growth. It is a component of several Indian philosophical schools, such as Sankhya and Vedanta. Through a variety of practices and disciplines, yoga promotes the union of individual consciousness (Atman) with universal awareness (Brahman). One of the most advanced Indian philosophical systems, yoga is an essential component of India's rich cultural legacy. It is a priceless gift from the great Indian sage Patanjali to everyone who aspires to

* **Researcher, Department of History, Jyoti Vidyapeeth Women's University, Jaipur**

† **Department of History, Jyoti Vidyapeeth Women's University, Jaipur, Rajasthan**

spiritual enlightenment. Patanjali's Yoga sutra is the most significant contribution of yoga philosophy. The definition of yoga is the cessation of the alterations of Cita. The word yoga is derived from the root yuj with the suffix Ghana. In the Yoga sutra, yoga means the final annihilation of all the mental states. The earliest authentic treatise of this system is Yoga sutra of Patanjali, which is divided into four parts, viz., samadhipada, vibhutipada and kaivalyapada.

Nath Sampradaya is an important yogic and spiritual tradition of India, emerged in medieval times. Which was originated from Matsyendra Nath and was developed and popularized by Gorakhnath. The tradition is based on Shaivism and Yoga. This sect mainly focuses on self-realization, discipline, the Guru–Shishya relationship. Their main goal is to attain liberation through yogic practices. The Nath tradition was important in the continuity and transmission of yogic knowledge from one generation to the next and was a major influence on the evolution of Hatha Yoga.

Gorakhnath is considered one of the most influential yogis in the history of yoga. He codified yogic teachings and focused on experiential learning, moral discipline, physical health and spiritual development. Yoga was taught as a complete educational system that focused on the development of body, mind and spirit. His teachings remain relevant in today's world and continue to shape modern yoga education.

One of the most important aspects of Gorakhnath's educational thought is holistic approach. He believed that a healthy body and a focused mind are necessary for gaining true knowledge. He also stressed moral principles like honesty, simplicity, patience, self-control and compassion. The Guru (teacher) is an important figure in the Nath tradition, who is responsible for leading the student on the path of learning and self-improvement.

Today, education is more about exams, jobs and career. Consequently, some areas like mental health, moral values, and personal development are overlooked. Likewise, contemporary yoga is practiced primarily for physical fitness. But its more profound educational and spiritual aspects are not emphasized as much. Under such circumstances, the teachings of Gorakhnath are very relevant. His thoughts inspire a balanced education that integrates knowledge, discipline, values, and self-awareness.

This paper explores the educational philosophy of Gorakhnath and its applicability to modern yoga education. It speaks about his philosophy of education, the significance of self-discipline and learning through experience, the role of the teacher and the cultivation of moral and spiritual values. The study also explores how these ideas can contribute to modern yoga education and help in the overall development of individuals.

Historical Background of Gorkha Nath:

Gorakhnath was one of the most influential yogis and spiritual teachers of medieval India. He is regarded as the founder and the chief teacher of the Nath Sampradaya, especially the Kanphata Yogis. He was a disciple of Matsyendra Nath but he imparted a unique identity to the Nath tradition. He is said to have reorganized the earlier Shaiva sects into a new and systematic order. Gorakhnath is considered to be a representative or an avatar of Shiva in popular religious beliefs and folklore. He is also known as Yogeshvara (Lord of Yogis) and is worshipped in many places in the same way as Lord Shiva. In some legends, he is even considered to be better than Shiva.

One legend has it that Vishnu came out of the cosmic waters to create the universe, and Gorakhnath was already sitting in the netherworld (Patal) tending his sacred fire. It was Gorakhnath who gave Vishnu the ashes of his sacred fire and from those ashes the creation of the universe was made possible. So, he is depicted as the original guru of Brahma, Vishnu and Shiva.

Folklore attributes to him supernatural powers over nature, such as bringing an end to a twelve-year famine in Nepal or transforming barren gardens into flourishing ones. He is also said to have brought back to life people like King Bhatari and Queen Pingala. He is considered to be a staunch supporter of Shaivism and a religious reformer in northern India. He is revered in Nepal as the protector of the kingdom of Gorkha. In addition, it is believed that he freed his Guru Matsyendra Nath from the snares of worldly illusion (maya). He is also believed to be the author of significant texts of the Nath sampradaya, particularly the Go Raksha Shataka. In this work, he systematically explained the principles of Hatha Yoga and the science of the human body, including concepts such as chakras, Nadis, and kundalini.

The scholars have different views on the birthplace of Gorakhnath. Hazari Prasad Dwivedi has written about the various traditions and legends associated with the birthplace of Gorakhnath in his work Nath Sampradaya. One tradition, according to the Yogi sampradayaviskriti, says that he was born at Chandragiri near the Godavari River. A handwritten manuscript of the Go Raksha Sahasra Nama in the Nepal Durbar Library also indicates that his birthplace was in southern India.

Other scholars have suggested other sites. Briggs, based on the Nath traditions, identifies Gorakhnath with areas like Punjab (Peshawar), Gorakhpur, Haridwar, Kathiawar and the western Himalayan region. Likewise, Rangeya Raghava suggests that the north-western Punjab and the regions of modern-day Pakistan are likely to be associated with the birthplace of Gorakhnath. According to folk traditions in Bengal, Gorakhnath came from Punjab, and according to the folk traditions in Nepal, he went from Nepal to Punjab.

The different interpretations suggest that Gorakhnath was a roving yogi whose teachings were heard far and wide. His extensive travels throughout the Indian subcontinent led various regions to associate him with their own local traditions and sacred sites. It is hard to say exactly where he was born, however. Gorakhnath is not a regional yogic figure but should be seen as a pan-Indian one, whose teachings and influence spread across geographical boundaries.

There is also disagreement among scholars about the time of Gorakhnath. He is dated in the 8th to 12th centuries CE by various opinions. The conclusions are drawn from historical texts, popular traditions, hagiographical literature, contemporary references, literary works, mythological accounts, inscriptions and other related sources. But many scholars like Hazari Prasad Dwivedi, Dharmveer Bharati, Dr. Joshi, P. Parashuram Chaturvedi, Maharashtra Vidwan Yoga Mahendra, Pitambar Datt Barthwal and Dinesh Chandra Sen have critically studied the available evidence and generally dated Gorakhnath to the tenth century CE. However, there is still a lot of disagreement on this topic. There is debate among scholars about the date of birth, born place and time period of Gorkha Nath. But there is no doubt he is a prominent figure of medieval India.

Nath Sampradaya

The Nath Sampradaya is one of the most significant spiritual, philosophical, and yogic traditions of India, which has made remarkable contributions to the development of Indian culture,

religion, education, and systems of spiritual practice. This tradition is primarily based on yoga, austerity, self-discipline, and self-realization. The Nath tradition occupies a prominent place in the history of Indian yoga because it extended yoga beyond the realm of spiritual practice and connected it with the everyday lives of ordinary people. The Nath Sampradaya played a crucial role in the development of Hatha Yoga, the cultivation of physical and mental discipline, the Guru–Shishya (teacher-disciple) tradition, and the promotion of social harmony.

Origin and Development of the Nath Sampradaya

Various views exist regarding the origin of the Nath Sampradaya; however, it is generally believed to have originated from Lord Shiva, who is regarded as the Adi Yogi (the primordial yogi). Followers of the Nath tradition recognize Shiva as “Adinath,” the first Nath. According to tradition, the original knowledge of yoga and tantra was imparted by Shiva and later received and systematized by Matsyendra Nath, who is considered the first historical guru of the Nath tradition.

Guru Gorakhnath, the disciple of Matsyendra Nath, expanded and popularized this tradition. He systematized yogic practices and made them accessible to different sections of society. Through his efforts, the Nath Sampradaya emerged as a powerful spiritual and social movement. During medieval India, when religious ritualism, caste discrimination, and rigid social practices were prevalent, Nath yogis advocated a way of life based on spiritual discipline, morality, and self-knowledge.

Major Characteristics of the Nath Sampradaya

One of the most distinctive features of the Nath Sampradaya is its yoga-centered nature. The tradition holds that human beings can realize the ultimate truth through the integrated development of body, mind, and soul. According to Nath yogis, the human body itself is the primary instrument of spiritual practice and a means of attaining higher consciousness.

The role of the guru occupies a central place within the tradition. The guru is regarded as the source of wisdom, experience, and spiritual guidance. The Guru–Shishya relationship is not merely a method of instruction but also a process of personality development and spiritual transformation. Initiation, discipline, and dedicated practice are considered essential components of the Nath path.

The Nath Sampradaya emphasizes inner spiritual practice rather than external rituals and ceremonies. Its followers seek self-realization through self-control, meditation, pranayama, austerity, and yogic discipline. The tradition transcends religious orthodoxy and social divisions, promoting the values of humanity, equality, and universal brotherhood.

Philosophical Foundations of the Nath Sampradaya

The philosophy of the Nath Sampradaya represents a synthesis of several streams of Indian spiritual thought. It incorporates elements of Shaiva philosophy, Yoga philosophy, Tantric traditions, and non-dualistic ideas. According to Nath philosophy, the entire universe is a manifestation of one supreme consciousness, and the same divine power resides within every individual.

Nath yogis believe that ignorance prevents human beings from realizing their true nature. Through yoga and spiritual discipline, individuals can overcome this ignorance and attain self-

realization. This process of self-knowledge is not merely intellectual but experiential. Consequently, direct personal experience occupies a central place in Nath philosophy.

Gorakhnath emphasized the integration of knowledge and practice. According to him, the study of scriptures alone is insufficient; true knowledge is attained only when it is experienced and applied in one's life. This perspective makes the Nath Sampradaya a practical and experience-based philosophical tradition.

Nath Sampradaya and Yoga

The most significant contribution of the Nath Sampradaya is in the field of yoga. The tradition played a pivotal role in the development and dissemination of Hatha Yoga. Nath yogis developed various yogic techniques aimed at the purification of the body and mind. Practices such as asanas, pranayama, mudras, bandhas, meditation, and Kundalini awakening constitute integral aspects of Nath Yoga.

The objective of Nath Yoga is not merely physical health but the attainment of higher states of consciousness. Yoga is viewed as a means of self-control, self-development, and self-realization. Gorakhnath presented yoga as a comprehensive way of life that encompasses morality, discipline, mental concentration, and spiritual advancement.

Social Contributions of the Nath Sampradaya

The Nath Sampradaya was not only a spiritual movement but also an important force for social reform. The tradition opposed discrimination based on caste, class, and religious affiliation. Nath yogis advocated that spiritual knowledge and liberation are the universal rights of all human beings.

During a period marked by social inequalities and divisions, Nath saints promoted ideals of equality, fraternity, and humanism. They provided dignity, recognition, and confidence to marginalized sections of society. As a result, the influence of the Nath tradition spread widely across different regions of India.

Nath Sampradaya in the Context of Education

The educational philosophy of the Nath Sampradaya is experiential, practical, and holistic in nature. Its purpose extends beyond the acquisition of knowledge to the complete development of human personality. Within the Nath tradition, education is understood as the balanced development of body, mind, and spirit. Self-discipline, self-control, morality, meditation, and spiritual practice are regarded as essential components of the educational process.

Guru Gorakhnath advocated an educational system that would cultivate self-reliant, ethical, aware, and spiritually mature individuals. This perspective closely resembles the modern concept of holistic education. At a time when education is increasingly oriented toward professional and economic success, the educational philosophy of the Nath tradition offers valuable guidance for fostering balanced, value-based, and character-oriented learning.

Teachings of Guru Gorkha Nath:

Gorkh Nath is popularly known for development of Hath yoga. He taught that Hath yoga is important for physical and mental purification of mind. Through this we can attain higher spiritual

order. In Hath yoga, Ha is the Sun and the is the Moon. Hence, the combination of the Sun and the Moon is known as Hatha Yoga. Another interpretation is that the Sun is the symbol of Prana Vayu (vital breath) and the Moon is the symbol of Apana Vayu (downward breath), so the control and union of these two vital forces is called Hatha Yoga. It is also known as the process of directing prana from Ida and Pingala Nadis to Sushumna Nadi. The main goal of Hatha Yoga is to attain the state of Raja Yoga. It is believed that without mastering the body, it is not possible to practice the higher stages of spiritual discipline. Therefore, Hatha Yoga places great emphasis on disciplining and strengthening the body.

The seven main limbs of Hatha Yoga are referred to: Purification (Shodhana), Asana, Mudra, Pratyahara, Pranayama, Dhyana (Meditation), and Samadhi. In Hatha Yoga, the system of yogic postures is adopted to control the fluctuations of the mind through the support of the physical body. The mind is finally subdued by controlling the breath (pranayama) and samadhi is achieved. This samadhi is called Mahabodhi Samadhi. The great teachers of Hatha Yoga are the sages Markandeya, Bharadvaja, Marichi and Jaimini. Gorkh Nath give emphasis on controlling of mind and senses. He says that mind is the root cause of both bondage and liberation. We can control our senses through yoga and pranayama.

He viewed Kundalini as the divine power. He says every human being possesses this spiritual power. According to him, Kundalini is a subtle, divine, and dynamic energy that is present in the human body. It is thought to lie dormant at the base of the spine, in the Muladhara Chakra. This idea is very much linked to Hatha Yoga and Tantra. Nath yogis say that this energy can be awakened by using pranayama, asanas, bandhas, mudras and meditation. After awakening, Kundalini ascends through the Sushumna Nadi, passing through the different chakras until it reaches the Sansara Chakra. This process culminates in self-realization and liberation (moksha).

The Tantric tradition is an important aspect of the Nath Sampradaya and is closely related to yoga. The main goal of Tantra is to create harmony between the practitioner and the universal cosmic energy (Shakti). In the Nath tradition, Tantra is not limited to occult or mystical practices. Rather, it has developed as a practical system of spiritual discipline. It includes the practice of mantras, yantras, mudras, bandhas, and meditation practices. Nath yogis made Tantra an internalized spiritual practice, focusing on inner consciousness and the body as the main focus of spiritual discipline, rather than external rituals and experiences.

This tradition passes on spiritual knowledge, yogic practices, and philosophical views from one generation to the next. The tradition is said to have been started by Adinath (Shiva) and historically Matsyendra Nath is considered as the early founder and Gorakhnath as the main organizer and propagator of the tradition. This tradition is not only a system of religious discipline but a living tradition which involves initiation (diksha), practice (sadhana) and experience (Anubhav).

The guru is not just a teacher of knowledge for Nath yogis, but a spiritual guide and a medium of realization. The guru is regarded as the source of wisdom, guidance and direction in spiritual practice and the disciple is regarded as the seeker and experiencer of that wisdom. In the Nath tradition, initiation (diksha) is the first and most crucial phase of the relationship between the guru and the disciple. The disciple is initiated into not only the theoretical knowledge but also the

esoteric practices, symbols, and spiritual disciplines. This knowledge is not available to the public, but is passed on slowly by the guru, depending on the disciple's worthiness, discipline and dedication. Gorkha Nath believes that a true mentor is very helpful in guiding. He is the one who popularized guru- shishya Parampara in Nath sampradaya.

The principles of Gorakhnath are still relevant in today's education, as they focus on holistic development, self-discipline, experiential learning, ethical values, and mental health. His emphasis on yoga, meditation, and self-awareness aligns with modern educational objectives that prioritize physical well-being, emotional stability, and personal development. Moreover, the emphasis of the Nath tradition on experiential learning, as opposed to theoretical learning, is in line with the contemporary learner-centred and skill-based learning approaches. Therefore, the educational philosophy of Gorakhnath is a valuable tool for creating responsible, self-aware, and well-rounded individuals who can positively contribute to society.

Yogic Education

Yogic Education represents one of the most profound and holistic approaches to human development within the Indian knowledge tradition. Rooted in the ancient philosophy of yoga, it aims at the integrated development of body, mind, intellect, emotions, and spirit. Unlike conventional systems of education that primarily focus on intellectual achievement and vocational competence, Yogic Education seeks to cultivate a balanced personality through self-discipline, self-awareness, ethical conduct, and spiritual growth. It is based on the understanding that education is not merely the acquisition of information but a transformative process leading to self-realization and the harmonious development of human potential.

The concept of Yogic Education originates from the ancient Indian educational tradition, where learning was viewed as a means of attaining wisdom, inner peace, and liberation. The word “Yoga” is derived from the Sanskrit root *Yuj*, meaning “to unite” or “to join.” In educational terms, yoga signifies the integration of the physical, mental, emotional, and spiritual dimensions of human life. Therefore, Yogic Education seeks to establish harmony within the individual as well as between the individual and society.

One of the fundamental objectives of Yogic Education is the development of self-awareness. It encourages learners to understand their thoughts, emotions, behaviours, and inner capacities. Through practices such as meditation, introspection, and mindfulness, individuals become conscious of their strengths and weaknesses and develop the ability to regulate their actions. This process promotes emotional intelligence, mental clarity, and psychological stability, which are essential for personal and professional success in contemporary society.

Another significant objective of Yogic Education is the cultivation of physical well-being. Ancient yogic traditions emphasize that a healthy body is the foundation for higher intellectual and spiritual pursuits. Practices such as asanas (postures), pranayama (breathing techniques), and relaxation exercises contribute to physical fitness, flexibility, endurance, and overall health. These practices also help prevent lifestyle-related disorders and enhance the body's capacity to cope with stress and fatigue. In the context of modern education, where students often experience sedentary lifestyles and academic pressure, the inclusion of yogic practices can significantly improve physical and mental health.

Yogic Education places great emphasis on moral and ethical development. The ethical principles of yoga, particularly *Yama* and *Niyama*, provide a framework for character formation. Values such as truthfulness, non-violence, self-discipline, contentment, purity, and responsibility are considered essential for the development of an ideal human being. Through the practice of these principles, learners cultivate integrity, compassion, respect, and social responsibility. Thus, Yogic Education contributes not only to individual growth but also to the creation of a morally responsible society.

The development of concentration and cognitive abilities is another important aspect of Yogic Education. Yogic practices improve attention, memory, creativity, and decision-making skills. Meditation and breathing exercises help calm the mind and enhance the capacity for focused learning. In an age characterized by information overload, distractions, and technological dependence, these practices provide valuable tools for improving academic performance and intellectual efficiency.

Spiritual development constitutes the highest objective of Yogic Education. Spirituality in yoga does not necessarily refer to adherence to a particular religion; rather, it involves the realization of one's inner potential and connection with universal consciousness. Through meditation and self-reflection, individuals gain a deeper understanding of themselves and their place in the world. This spiritual awareness promotes inner peace, resilience, and a sense of purpose in life.

Within the Nath tradition, particularly in the teachings of Guru Gorakhnath, Yogic Education occupies a central position. Gorakhnath viewed yoga as a comprehensive system of education that integrates physical discipline, mental control, moral conduct, and spiritual realization. He emphasized experiential learning, self-discipline, and the practical application of knowledge. According to him, true education should transform the individual from within and lead to the realization of higher consciousness. His educational philosophy reflects the principles of holistic and transformative education that are increasingly recognized in contemporary educational discourse.

The relevance of Yogic Education in the modern world is undeniable. Contemporary society faces numerous challenges, including stress, anxiety, depression, moral decline, social conflicts, and lifestyle diseases. Traditional educational systems often focus primarily on academic achievement and professional success while neglecting emotional and spiritual well-being. Yogic Education addresses these limitations by promoting a balanced and integrated approach to human development.

In educational institutions, the incorporation of yoga-based practices can enhance students' physical health, emotional resilience, concentration, and ethical awareness. It can also create a positive learning environment characterized by discipline, mutual respect, and psychological well-being. Furthermore, Yogic Education supports the development of life skills such as self-management, adaptability, empathy, and leadership, which are essential in the twenty-first century. From a global perspective, the increasing acceptance of yoga as a means of promoting health and well-being has further highlighted the significance of Yogic Education. Educational policies and institutions across the world are increasingly recognizing the value of yoga in fostering holistic development. As a result, Yogic Education has emerged as an important educational paradigm capable of addressing the complex needs of modern learners.

Conclusion:

The principles of education at Gorakhnath have a holistic and transformative aspect which is very relevant in today's world. True education is more than just gaining knowledge, and his teachings focus on balanced development of the body, mind and spirit. Gorakhnath believes that education should provide self-awareness, self-discipline, moral character and spiritual awareness to the individual. A person can develop both his/her own growth and harmony within through the practice of yoga, meditation, moral conduct and ongoing self-examination.

The experiential learning is one of the most important features of Gorakhnath's educational ideology. He felt that knowledge must be acquired by practice and experience, not just in theory. In this method learners are motivated to self-discover and self-improve. His principles also emphasize discipline, perseverance, and the need for a competent teacher, which are fundamental principles in effective teaching and learning in any educational environment.

Gorakhnath's philosophy has some insights to offer in the context of current yoga education. Nowadays, the practice of yoga is mostly a physical exercise and a temporary cure for stress, and its educative, ethical and spiritual aspects are generally ignored. Gorakhnath's teachings remind us that yoga is a complete system of development of human personality. The focus on moral values, mental focus, emotional balance, and spiritual development has a potential to enrich the modern yoga education and make it more meaningful and transformative in its ideals.

In addition, the problems faced in the contemporary world, including with regard to psychological stress, anxiety, social conflicts, and a lack of values, all reinforce the need for comprehensive approaches to education. The philosophy of Gorakhnath offers a way to address these challenges by emphasizing the importance of self-control, compassion, responsibility and inner peace. His educational vision inspires people to live a balanced life and make a positive contribution to society.

He merely one concerned with the rich yogic tradition of India but also to create educational models of this time. His thoughts continue to inspire educators, yoga practitioners and scholars who are looking for a more holistic way to learn and human develop. His teachings, however, remained relevant and continue to be so today, underlining the timelessness of his ideas on holistic education, self-discipline, and spiritual awareness in medieval India.

Bibliography:

- Briggs, George Weston. Gorakhnath and the Kanphata Yogis. Calcutta: YMCA Publishing House, 1938.
- White, David Gordon. The Alchemical Body: Siddha Traditions in Medieval India . Chicago: University of Chicago Press, 1996.
- Pragya, Samani Sumedha. The Methodology of Jeevan Vigyan: Preksha Meditation and Yoga . Ladnun: Jain Vishva Bharati Institute.
- Singh, Jayaram. “The Yogic Tradition of Nath Yogis in Modern Indian Society.” Shrinkhala: A Research-Oriented Intellectual Journal, 2019.

- Kumari, Priya, and K. Ram Chandra Reddy. "The Importance of the Guru–Disciple Tradition in the Nath Panth." International Journal of Ayurvedic Medicine , 2021.
- Cohn, Bernard S. Colonialism and Its Forms of Knowledge: The British in India. Princeton: Princeton University Press, 1996.
- Guha, Ranajit, editor. Subaltern Studies I: Writings on South Asian History and Society. Oxford: Oxford University Press, 1982.
- Lorenzen, David N. Bhakti Religion in North India: Community Identity and Political Action. Albany: State University of New York Press, 1995.
- Mallinson, James, and Mark Singleton. Roots of Yoga. London: Penguin Books, 2017.
- Oberoi, Harjot. The Construction of Religious Boundaries: Culture, Identity, and Diversity in the Sikh Tradition. Oxford: Oxford University Press, 1994.
- Vansina, Jan. Oral Tradition as History. Madison: University of Wisconsin Press, 1985.
- Alter, Andrew. The Importance of Tantric Sects for Drum Practices in the Central Himalayas. Cambridge: Cambridge University Press, 2009.
- Hiltebeitel, Alf. Criminal Gods and Demon Devotees: Essays on the Guardians of Popular Hinduism. Baden-Baden: Nomos, 1991.
- Mallinson, James, and Peter-Daniel Szántó. The Amṛtasiddhi and Amṛtasiddhimūla: The Earliest Texts of the Hatha Yoga Tradition . Pondicherry: Institute Français de Pondichéry and École Française Extreme-Orient, 2021.
- Lamba Preetam. Role of Hagiography and Folklore in Construction of Baba Mastnath's Legacy. Journal of Modern Research and Reviews.2026.
- Siddiqui Nazia. Guru Gorakh-Naath and their Time Period. Journal of Emerging Technologies and Innovative Research.2019.
- Budhwal, Pitambar Datt, editor. Gorakhbani. 8th ed. Hindi Sahitya Sammelan.2004.
- Dwivedi, Hazari Prasad. Nath Sampraday. Lokbharti Prakashan, 1910.
- Shastri, Dwarikadas, editor and translator. Siddha-Siddhanta-Paddhati. Reprint ed., Chaukhamba Vidyabhavan, 2014.
- Srivastava, Ram Lal, editor and commentator. Gorakh bani. 3rd ed. Mahayogi Guru Gorakhnath Shodh Sansthan, Shri Gorakhnath Mandir, Vikram Samvat 2071.
- Upadhyaya, Nagendra Nath. Nath Sampradaya ke Pariprekshya Mein, 2nd ed. Vishwavidyalaya Prakashan. 2009.
- Kalita, Rajkumari. Exploring Yoga: Pathways in Indian Philosophy. International journal of Management. 2020.
- Kumari, Jyoti. Yoga: A system of Indian philosophy. International Journal of Sanskrit Research. 2022.

NOTES FOR AUTHORS

PADCHINHA: A Multidisciplinary Peer Reviewed & Refereed Journal

1. Submissions

Authors should send all submissions and resubmissions to padchinha@muditeducation.com some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within one month. As a general rule, Padchinha operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.5), an abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list and a word count on the front page (include all elements in the word count). Regular articles are restricted to an absolute maximum of 8,000 words, including all elements (title page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

2. Types of articles

In addition to Regular Articles, Padchinha publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

3. The manuscript

The final version of the manuscript should contain, in this order:

(a) title page with name(s) of the author(s), affiliation and Email

(b) Abstract

(c) Main text

(d) List of references

(e) Biographical statement(s)

(f) Tables and figures in separate documents

(g) Notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.5.

The final manuscript should be submitted in MS Word for Windows.

4. Language

Padchinha is a Bilingual Journal, i.e. English and हिंदी. The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.

5. The abstract

The abstract should be in the range of 200-300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the actual content of the article, rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be written

in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order increasing the visibility of the abstract in electronic searches.

6. Title and headings

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name an institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

7. Notes

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

8. Tables

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be fairly brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table. Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral, and printed on a separate page.

9. Figures

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure. Example: Figure 1.

10. References

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA form of reference.

11. Biographical statement

The biosketch in Padchinha appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

12. Proofs and reprints

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proofs will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (Corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 6–9 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

13. Copyright

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.

R.N.I. UPHIN/2011/37086

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली द्वारा प्रायोजित तथा महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी (24–25 फरवरी 2025) में प्रस्तुत शोध पत्रों का संकलन 'पदचिन्ह' पत्रिका के विशेषांक में प्रकाशित हुआ। इस विशेषांक का लोकार्पण संगोष्ठी के समापन सत्र में सम्पन्न हुआ।

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी (अक्टूबर 2024) में प्रस्तुत शोध पत्रों का संकलन 'पदचिन्ह' पत्रिका में प्रकाशित हुआ, जिसका लोकार्पण संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में किया गया।

के. एल. ई. संस्था, कर्नाटक द्वारा 10 जुलाई 2024 को आयोजित संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्रों का संकलन 'पदचिन्ह' पत्रिका के विशेषांक में प्रकाशित किया गया, जिसका लोकार्पण संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र में संपन्न हुआ।

**पदचिन्ह के लिए प्रकाशक अजय परमार, बी. 30/239, नगवां,
लंका वाराणसी द्वारा प्रकाशित और सूर्या आफसेट, 30,
विवेकानंद कालोनी, मलदहिया, वाराणसी में मुद्रित।
संपादक : अजय परमार | सह-संपादक : पंकज कुमार सिंह - 9823696685**